Elements

OF

Human Anatomy and Physiology in Hindi

PART II

By

TRILOKI NATH VARMA B.Sc., (Alld.);
M. B., B. S. (Punj.); F. R. F. P. & S. (Glasgow); D. T. M.
(Liverpool); L. M. (Dublin); Zeugnis holder, University
of Vienna; Fellow Royal Society of Tropical
Medicine and Hygiene, London

Provincial Medical Service, U. P.

Formerly Senior Demonstrator and sometime
Officiating Professor of Anatomy, King
George's Medical College
LUCKNOW

3rd edition—Revised and Enlarged

With 13 coloured plates and 232 other illustrations

ALLAHABAD
1929

[Price Rs. 4-2

Sole Agents

Sahitya Bhawan Ltd.,

Allahabad

1st Edition 1918 प्रयाग; पहली आवृत्ति सन १९१८ सं० १९७५
2nd Edition 1921 लखनऊ, दूसरी आवृत्ति सन १९२१ सं० १९७८
3rd Edition 1929 प्रयाग, तीसरी आवृत्ति सन् १९२९ सं० १९८५

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

द्वारा

सं० १९८० में

लेखक को "हमारे शरीर की रचना"

के

सम्बन्ध में

रेडिचे पदक

और

२००) का पुरस्कार

मिल चुके हैं

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

संवत् १९८३–वि० का

श्रीमंगलाप्रसाद-पारितोषिक

[रु० १२००]

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सप्तदश वार्षिक
अधिवेशन पर श्रीमान् डा० त्रिलोकी-
नाथजी वर्मा बी० एस्-सी०; एम०
बी० बी० एस्०; एफ० आर०
एफ० पी० एण्ड एस्०; डी०
टी० एम०; एल्०, एम०

को

उनकी विज्ञान विषयक रचना "हमारे शरीर
की रचना" के लिये सादर दिया गया।

स्थान भरतपुर
मिति चैत्र कृ० १२
सं० १९८३ वि०

गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा
[राय बहादुर]
सभापति

* यह पारितोषिक भरतपुर में पारितोषिकाधिकारी के अनुपस्थित होने के कारण प्रयाग में मार्गशीर्ष शुक्ल ५ सं० १९८४ वि० को पं० श्रीधर पाठकजी के द्वारा दिया गया।

भूमिका

इस (तीसरी) आवृत्ति में पिछली दो आवृत्तियों की अपेक्षा ये विशेषताएँ हैं।

१—पोषण संस्थान अधिक विस्तारपूर्वक है। 'ग्लाकोज' के विषय पर ५ नये पृष्ठ लिखे गये हैं। अध्याय १५ में कई नयी तालिकाएँ भी हैं।

२—नाड़ी संस्थान में बहुत से नये चित्र हैं।

३—प्रणाली विहीन ग्रन्थियों का वर्णन पहले से अधिक विस्तारपूर्वक है।

४—इस आवृत्ति में दूसरी आवृत्ति से ५० चित्र और अनुक्रमणिका को छोड़कर ५२ पृष्ठ अधिक हैं। दूसरी आवृत्ति में केवल ३ रंगीन चित्र थे इसमें १३ हैं। आशा है पाठक इस आवृत्ति को पहले से भी अधिक उपयोगी पायेंगे।

पौष शु० ५ }
सं० १९८९ }

त्रिलोकीनाथ वर्मा

विषय-सूची

चित्र-सूची

हमारे शरीर की रचना

दूसरा भाग

अध्याय १५

पोषण संस्थान (१)

जब सेलें कोई काम करती हैं तब उनके जीवोज में बड़ी ही विचित्र रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं से शक्ति उत्पन्न होती है जिसका अधिकांश कार्य के रूप में दिखाई दिया करता है। कार्य करने से सेलें घिसती और टूटती फूटती भी हैं। यदि सेलों को उन पदार्थों की जगह जिनका शक्ति उत्पन्न करने में व्यय होता है नये पदार्थ न मिलें और उनके टूटे फूटे भाग फिर ज्यों के त्यों न बन जावें तो शरीर का सब कारोबार क्षण भर में बंद हो जाय। परन्तु ऐसा नहीं है। जिस प्रकार अमीबा अपने शरीर के खर्च हुए पदार्थों की जगह उस जल में से जिसमें वह रहता है नये पदार्थ ग्रहण करता रहता है उसी प्रकार हमारे शरीर की सेलें भी उस लसीका से जो उनके पास रहता है पोषणकारक और शक्तिउत्पादक पदार्थ ग्रहण करती रहती हैं। लसीका रक्त से उत्पन्न होता है। रक्त में ये पदार्थ भोजन से आते हैं। जो भोजन हम खाते हैं उसपर शरीर में रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। इन क्रियाओं के पश्चात् उसमें से वे पदार्थ

जिनकी शरीर में आवश्यकता होती है शरीर में रह जाते हैं; जिन चीज़ों की आवश्यकता नहीं होती या जो चीज़ें पच नहीं सकतीं वे मल (विष्ठा) रूप में शरीर से बाहर निकल जाती हैं।

शरीर का रासायनिक संगठन

रासायनिक परीक्षा से शरीर में दो प्रकार के पदार्थ मिलते हैं :—

१—खनिज या निर्जीव पदार्थ।

२—सजीव या जान्तव पदार्थ—ये पदार्थ सजीव इस कारण कहलाते हैं कि वे केवल सजीव सृष्टि (अर्थात् बनस्पतियों वा प्राणियों में) ही में पाए जाते हैं, निर्जीव सृष्टि (जैसे कंकर, पत्थर) में नहीं।

खनिज पदार्थ

ये ऐसे होते हैं जैसे जल, अमोनिया गैस, नमक का तेज़ाब (हाइड्रोक्लोरिक अम्ल); भाँति भाँति के लवण जैसे स्फटिक संयोजित, साधारण लवण, स्फुरित (फोस्फेट्स), गंधित (सल्फेट्स) इत्यादि।

सजीव पदार्थ

इन सभों में कर्बन अवश्य पाया जाता है। ये पदार्थ दो प्रकार के होते हैं :—

१—नत्रजनीय—इनमें कर्बन के अतिरिक्त नत्रजन भी अवश्य होती है जैसे कई प्रकार की प्रोटीनें। प्रोटीनों के अतिरिक्त और भी कई नत्रजनीय पदार्थ होते हैं जैसे यूरिया, यूरिक अम्ल।

२ अनत्रजनीय या नत्रजनविहीन—इनमें नत्रजन नहीं
ानी जैसे वसा (चर्बी), शर्करा (शकर), श्वेतसार (मांड)
ारीर का रासायनिक संगठन इस प्रकार है :—

शरीर

ाजीव पदार्थ — निर्जीव पदार्थ

ात्रजनीय — अनत्रजनीय

(१) प्रोटीनें (अन्य कई चीजें) | (२) वसा | (३) कर्बोज जैसे शर्करा | (४) लवण | (५) जल

संक्षेप :—शरीर में मुख्यतः पांच प्रकार के पदार्थ मिलते हैं :—

१—प्रोटीनें।
२—वसा (चर्बी)।
३—कर्बोज जैसे शकर।
४—लवण।
५—जल।

प्रोटीन

विश्लेषण करने पर इनमें ये मौलिक पाये जाते हैं—कर्बन, उद्जन, ओषजन, गन्धक, नत्रजन या स्फुर। १०० भागों में

कर्बन के ५४, ओषजन के २२, नत्रजन के १६, उदजन के ७ और गंधक का १ होते हैं। इन मौलिकों के परस्पर रसायनिक संयोग से बने हुए विचित्र सम्मेलन को प्रोटीन कहते हैं।

प्रोटीनें कई प्रकार की होती हैं। कुछ जल में घुलनशील हैं कुछ नहीं। अंडे की सफ़ेदी एक प्रकार की प्रोटीन है। बहुत सी प्रोटीनें ऐसी होती हैं कि यदि उनको या उनके घोलों को गरम करें तो उनमें एक विशेष प्रकार का परिवर्तन हो जाता है: वे जम कर सख्त हो जाती हैं और फिर पानी में नहीं घुलतीं। यदि एक कांच की नली में अंडे की सफ़ेदी या उसका घोल लैम्प के ऊपर गरम किया जावे तो वह जम कर सख़्त हो जायगी और उसके छिछड़े (थक्का) नली की दीवार से चिपट जावेंगे।

शरीर में कोई सेल ऐसी नहीं जिसमें प्रोटीन न हो। वह प्रत्येक सेल का अत्यावश्यक अवयव है। शरीर की प्रोटीनों में सदा रासायनिक रूपांतर होते रहते हैं। प्रोटीन और ओषजन के संयोग से ओषजनीकरण (भस्म प्रक्रिया) नामक रासायनिक क्रिया होती रहती है; जिसका परिणाम यह होता है कि प्रोटीन से यूरिया, यूरिक अम्ल, अमोनिया, जल इत्यादि नये पदार्थ बन जाते हैं और साथ साथ उष्णता (गरमी) के रूप में शक्ति भी उत्पन्न होती है।

स्वस्थ मनुष्य के मूत्र में प्रोटीन नहीं होती। क्षुद्र वृक्क वा हृदय के रोगों में मूत्र में एक प्रकार की प्रोटीन आने लगती है। यह मूत्र में घुली रहती है; यदि मूत्र कांच की नली में यथाविधि पकाया जावे तो वह उष्णता के प्रभाव से अनघुल

बन जाती है और मूत्र की सतह पर एक गाढ़ी सफ़ेद तह दिखाई देने लगती है।

प्रोटीनों के जुदा जुदा नाम होते हैं। जो प्रोटीन मांस में पाई जाती है उसको **मांसज*** कहते हैं। अंडे की सफ़ेदी की प्रोटीन को **डिम्बज** कहते हैं। दुग्ध में दो प्रोटीनें होती हैं; जब दुग्ध से दही बनता है तो एक प्रोटीन अनघुल बन जाती है; दही का अधिक भाग इसी जमी हुई और अनघुल बनी हुई प्रोटीन से बनता है; पनीर का अधिक भाग भी इसी प्रोटीन से बनता है; पनीर या किलाट में पाए जाने के कारण उस प्रोटीन को **किलाटज** कहते हैं। दही बनने के पश्चात् दूसरी प्रोटीन तोड़ (दही का पानी) में घुली रहती है; इस प्रोटीन को **दुग्धज** या **दुग्ध डिम्बज** कहते हैं; यह प्रोटीन वैसी ही होती है जैसे कि अंडे की डिम्बज; मलाई† में दुग्धज होती है; गरमी के प्रभाव से यह जम कर दुग्ध के ऊपर आ जाती है। गेहूं (गोधूम) की प्रोटीन **गोधूमज**, चने और मटर की प्रोटीन **चणकज** कहलाती हैं।

वसा (चरबी)

वसा में तीन मौलिक होते हैं:—कर्बन, उद्जन और ओषजन। वसा (चरबी) जलाने से जल जाती है अर्थात् यह एक दहनशील पदार्थ है; जल से हलकी होने के कारण उस पर तैरती है, शीत

* प्रोटीनों का प्रत्यय हमने 'ज' माना है।

† मलाई = जब दूध पकाया जाता है तो उस के ऊपर जो पपड़ी पड़ जाती है उसको मलाई कहते हैं।

के प्रभाव से जम जाती है; उष्णता से पिघल जाती है। वैसे तो वसा का थोड़ा बहुत अंश शरीर की हर एक सेल में पाया जाता है परन्तु कुछ सेलें ऐसी होती हैं कि जो वसा से भरी रहती हैं; ये सेलें वसामय सौत्रिक तंतु में होती हैं।

जब चरबी का ओषजनीकरण (ओषजन से रासायनिक संयोग जैसे जलने के समय) होता है तब कर्बनद्विओषित गैस (वायव्य) और जल उत्पन्न होते हैं और साथ साथ उष्णता के रूप में शक्ति भी निकलती है। एक ग्राम (१ ग्राम = १ माशा लगभग) वसा के पूर्ण ओषजनीकरण से इतनी उष्णता पैदा होती है कि यदि वह जल गरम करने के काम में लाई जावे तो ९३०० ग्राम जल का तापक्रम १ दरजा शतांश बढ़ा दे; * यदि जल का ताप ३७° था तो अब ३८° श. हो जावेगा।

चरबी पानी में नहीं घुलती; क्लोरोफोर्म, ईथर, मद्यसार में घुल जाती है।

कर्बोज †

इन पदार्थों में भी वसा की भाँति तीन ही मौलिक होते हैं:—कर्बन, उदजन और ओषजन परन्तु इनका संयोग भिन्न प्रकार से होता है। ये पदार्थ ऐसे होते हैं जैसे शर्करा (शकर), श्वेतसार (मांड), ग्लाईकोजन ‡ (शर्कराजन, शर्कराजनक)। लकड़ी वा शाकों के रेशे एक प्रकार के कर्बोज ही से बनते हैं, इसको सेल्युलोज़ ‡ या काष्ठोज कहते हैं।

* या यूँ कहो कि १००० ग्राम जल का ताप ९.३° बढ़ा दे।

† कर्बोज का प्रत्यय हमने "ओज" माना है।

‡ अँगरेजी भाषा के शब्द हैं।

प्राणियों के शरीर में कर्बोज श्रेणी के दो ही पदार्थ पाये जाते हैं :—

१—शकर या शर्करा जो कई प्रकार की होती है।

२—शर्कराजन या शर्कराजनक।

श्वेतसार और काष्ठोज प्राणियों के शरीर में नहीं होते ये चीज़ें वनस्पतियों में पाई जाती हैं।

कर्बोज के ओषजनीकरण से कर्बनद्विओषित गैस, जल और शक्ति उत्पन्न होती हैं। वसा के मुकाबले में उष्णता कम बनती है।

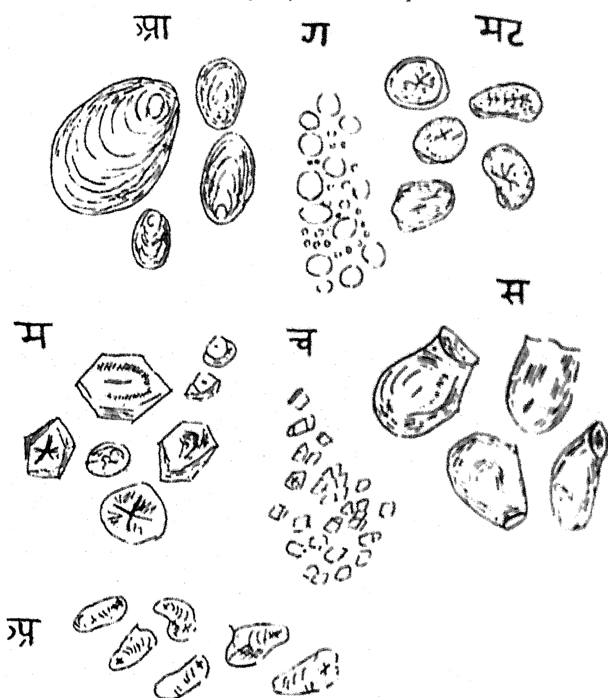
शर्कराओं के भिन्न भिन्न नाम होते हैं। दुग्ध की शर्करा दुग्धोज, अंगूर कीशर्करा द्राक्षोज, गन्ने की शर्करा इक्षोज, जौ की शर्करा यवोज* कहलाती है।

श्वेतसार :—वनस्पति वर्ग में बहुत पाया जाता है। चावल का अधिक भाग श्वेतसार ही होता है। गेहूँ का छिलका उतार दिया जावे तो भीतर से जो श्वेत रंग की चीज़ निकलेगी उसका अधिकांश श्वेतसार ही है। श्वेतसार के दाने अति सूक्ष्म (अणुवीक्ष्य) होते हैं और इनका आकार भिन्न भिन्न होता है जैसा कि चित्र १ से विदित है। हर एक दाने में कई तहें काष्ठोज की होती हैं ; इन काष्ठोज की तहों के बीच में श्वेतसार रहता है।

श्वेतसार ठंडे पानी में अनघुल होता है ; उबलते हुए पानी में वह घुल जाता है और यह घोल दूधिया सा और अपारदर्शक होता है। आयोडीन (नैल) से मिल कर श्वेतसार का रंग नीला हो जाता है। यदि खनिज अम्लों के साथ

* जब मद्य बनाने के लिये जौ सड़ाया जाता है तो उसके श्वेतसार से एक शकर बनती है। इसी को यवोज कहते हैं।

चित्र १६५ श्वेतसार के दाने।



आ=आलू के श्वेतसार के दाने ; ग=गेहूँ ;
मट=मटर ; म=मकी ; च=चावल ;
स=सागोदाना ; अ=अरारूट

श्वेतसार गरम किया जावे तो उससे अंगूरी शकर (द्राक्षौज) बन जावेगी।

लवण

शरीर में कई प्रकार के खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। ये

सोडियम, पोटेशियम, मग्निसियम, खटिक इत्यादि के लवण होते हैं। प्रत्येक सेल के जीवोज में किसी न किसी प्रकार के लवण अवश्य पाए जाते हैं। किसी किसी अंग में खनिज पदार्थ अधिक होते हैं जैसे अस्थि में।

जल

जल प्रत्येक सेल का अत्यावश्यक अवयव है ; कोई सेल नहीं, कोई तंतु नहीं जहाँ जल का कुछ न कुछ अंश न हो। शरीर के भार के १०० भागों में ६४ भाग जल के होते हैं। जल ओषजन और उद्जन का संयोजित है ; उद्जन के दो परमाणु और ओषजन के एक परमाणु के रासायनिक संयोग से जल का एक अणु बनता है। जल का रासायनिक संकेत अ२ ओ है (उद्जन को अभिद्रवजन भी कहते हैं ; ओषजन का संकेत 'ओ' और अभिद्रवजन का 'अ' है)।

शरीर में प्रोटीनों, वसा और कर्बोज के ओषजनीकरण से जल उत्पन्न हुआ करता है। रक्त और लसीका का अधिक भाग जल ही होता है।

उपरोक्त पदार्थ (प्रोटीन, वसा, कर्बोज, लवण, जल) सब के सब यौगिक हैं अर्थात् एक से अधिक मौलिकों से बनते हैं। अब हम उन मौलिकों को गिनाते हैं जिनसे ये यौगिक बनते हैं।

शरीर में पाए जानेवाले मौलिक

जितने मौलिक वैज्ञानिकों को मालूम हैं उनमें से हमारे शरीर में केवल १६ मौलिक पाए जाते हैं :—

१—कर्बन   २—नत्रजन

३—ओषजन	१०—मग्निसियम
४—उद्जन	११—प्राव (लीथियम)
५—गन्धक	१२—प्लव (फ़्लोरीन)
६—स्फुर	१३—हरिन (क्लोरीन)
७—सोडियम	१४—नैल (अयोडीन)
८—पोटेशियम	१५—शैल (सिलीकोन)
९—खटिक	१६—लोह

इनके अतिरिक्त कभी कभी बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में ताम्र (ताम्बा), मंगनीस, और सीसा भी पाए जाते हैं।

अनुमान है कि यदि किसी जवान मनुष्य के शरीर का जिसका भार १½ (डेढ़) मन हो विश्लेषण किया जावे तो उसमें इतने इतने मौलिक मिलेंगे :—*

मौलिक	सेर	छटाँक	तोला
१—ओषजन	४२	९	
२—कर्बन	७	४	२¼
३—उद्जन	५	१३	२¼
४—नत्रजन	१	१४	२
५—खटिक	१	४	
६—स्फुर	...	११	
७—गन्धक	...	३	
८—हरिन	...	१¼	
९—सोडियम	...	१⅛	

* Knight's Diagrammettes के आधार पर।

मौलिक	सेर	छटाँक	तोला
१०—पोटेशियम	...	१¼	
११—लव	...	१¼	
१२—मग्नेस्नियम	...	¾	
१३—लोहा			[¼] ३२ ग्रेन

शेष मौलिक अंश मात्र ही होते हैं।

योगिक पदार्थ कितने कितने होते हैं

हम केवल उन पदार्थों को लिखते हैं जो अधिक मात्रा में पाए जाते हैं :—

यौगिक	सेर	छटाँक	शरीर के भार के प्रति १०० भाग
१—जल	५२	८	५७
२—वसा	१	१२	
३—कणरञ्जक	०	०½	
४—खटिक स्फुरित	३	५½	
५—खटिक कर्बनित	०	६	४३
६—प्रोटीन	१०	१२	
७—अन्य लवण	०	११	
			१००

शरीर के १०० भागों में ५७ भाग जल के होते हैं, शेष ४३ भाग अन्य चीज़ों के।

खाद्य (भोजन)

जिन पदार्थों से शरीर बना है और जिनसे शक्ति उत्पन्न होती है वे सब भोजन में मौजूद होते हैं। जो चीज़ें हम खाते हैं अर्थात् जिनसे भोजन बनता है वे खाद्य द्रव्य कहलाती हैं।

भोजन से लाभ

१—भोजन से शरीर की सेलें अपनी वृद्धि के लिये सामग्री प्राप्त करती हैं। सेलों के बढ़ने और उनकी संख्या अधिक होने से शरीर का वर्धन होता है।

२—शक्ति उत्पन्न होने के लिये शरीर में मसाला पहुँचता है; शक्ति ही से सब काम होते हैं।

खाद्य के मुख्य (मूल) अवयव

ये वही चीज़ें हैं जो शरीर में पाई जाती हैं अर्थात् :—

१-**प्रोटीन**—जो दाल, दुग्ध, मटर, लाभिया, अखरोट, अंडा, (श्वेत भाग) मछली, गोश्त इत्यादि चीज़ों में पाई जाती है।

२-**वसा**—जो माखन, घी, बालाई (शर), अंडा (पीला भाग); तरह तरह के तैल; चर्बी, बादाम, पिस्ता, चिलगोज़ा इत्यादि चीज़ों में रहती है।

३-**कर्बोज**:—जो चावल, गेहूँ, अरारूट, सागोदाना, आलू, घुइयाँ, शकर, शहद, मीठे फल में रहता है।

४-खनिज पदार्थ :—"खटिक"—जो दुग्ध, अंडा, अनाज, हरे शाकों में पाया जाता है "स्फुर"—अंडे की ज़र्दी; दुग्ध, "लोहा"—अंडे की ज़र्दी, हरे शाक जैसे पालक, बथुआ, सरसों।

५—जल।

६—खाद्योज—जो थोड़ी बहुत बहुत से खाद्य पदार्थों में मिलती हैं।

किसी खाद्य द्रव्य में प्रोटीन अधिक होती है (जैसे चना, मूंग, मसूर, उड़द, गोश्त, अंडा दुग्ध,) किसी में वसा अधिक होती है (जैसे माखन, घी, तैल, बादाम, पिस्ता, चिलगोज़ा) किसी में कर्बोज (जैसे गेहूँ, चावल, अरारूट, सागोदाना, आलू, केला, गन्ना, किशमिश, मुनक्का,) किसी में अधिकांश जल और लवण ही होते हैं (जैसे बहुत से ताज़े फल नारङ्गी, अंगूर, इत्यादि)।

खाद्योज

जाँच पड़ताल से पता चला है कि यदि भोजन में केवल प्रोटीन, वसा, कर्बोज, खनिज पदार्थ और जल ही पाँच चीज़ें रहें तो हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता। इन चीज़ों से शरीर की वृद्धि होगी परन्तु वैसी नहीं जैसी होनी चाहिये; यही नहीं हमारा स्वास्थ्य अच्छा न रहेगा। रोगों का मुक़ाबला करने की शक्ति कम हो जाती है। कई विशेष प्रकार के रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं। इन चीज़ों को जिनके भोजन में यथा परिमाण रहने से हमारा स्वास्थ्य बढ़िया रहता है और जिनके न होने या कम होने से हमारे स्वास्थ्य को किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचती है "खाद्योज" कहते हैं। जीवन के लिये खाद्योज का भोजन में रहना आवश्यक है।

खाद्योज कई प्रकार के होते हैं। अभी तक उनका रासायनिक संगठन ठीक ठीक नहीं मालूम हुआ। और अभी तक खाद्योज भोजन के पदार्थों से अलग भी नहीं निकाले गये। इतना मालूम हुआ है कि कौन कौन खाद्योज किन किन खाद्य पदार्थों में विशेष कर मिलता है; उनके गुण भी मालूम किये गये हैं। जितने खाद्योज हैं उन सब की अन्तिम उत्पत्ति (आदि कारण) वनस्पति वर्ग से ही है। जिन लोगों का निर्वाह केवल वनस्पति वर्ग पर ही है यदि वे भोजन को यथा विधि तैयार करें तो उनके भोजन में खाद्योज की कमी कभी नहीं रह सकती।

A खाद्योज १—यह वृद्धिकारक खाद्योज है। इसकी कमी से शरीर की वृद्धि भली प्रकार नहीं होती। यह खाद्योज अधिकतर हरे पत्तों में पाया जाता है। पौदे इसको सूर्य के प्रकाश की सहायता से बनाते हैं। कौड मछली के यकृत में, समुद्र की हरी घासों में, और डाइएटम नामक अणुवीक्ष्य वनस्पतियों में, माखन में भी पाया जाता है। कौड मछली इस खाद्योज को छोटी छोटी मछलियों को खाकर प्राप्त करती है और ये छोटी मछलियाँ पौदों और डाइएटम नामक अणुवीक्ष्य वनस्पतियों को खाकर ग्रहण करती हैं।

यह खाद्योज १०० शतांश (जो पानी उबलने का ताप होता है) की उष्णता को सह सकता है अर्थात् यदि वे खाद्य पदार्थ जिसमें वह है १०० शतांश की गरमी पर पकाये जावें तो इस खाद्योज में "वृद्धि कारक शक्ति" बनी रहेगी। १०० शतांश से अधिक ताप को यह नहीं सह सकता; अर्थात् वह नष्ट हो जाता है।

लोहे या पीतल के बरतनों में सागों को "मज़ेदार" बनाने के लिये बहुत देर तक भूनना अच्छा नहीं। जो शाक कच्चे खाये जा सकें उनको कच्चा ही अर्थात् बिना पकाए खा लेना चाहिये; जिनको पकाने की आवश्यकता हो उनको उबाल कर या भाप से पका कर खाना चाहिये। भाप में १०० शतांश से अधिक ताप नहीं होता; लोहे या पीतल के बरतनों में भूनने से १०० शतांश से अधिक ताप पहुँचता है। भुने हुए शाक उबाले हुए या भाप द्वारा पकाए हुए शाकों की अपेक्षा स्वास्थ्य के लिये कम उपयोगी हैं।

खाद्योज १ के दो कार्य हैं :—

(१) बच्चे की वृद्धि के लिये वह आवश्यक है।

(२) कीटाणुजनक रोगों का मुकाबला करने के लिये उसका होना आवश्यक है।

जब बचपन में इसकी कमी होती है तो वृद्धि अच्छी नहीं होती; तरुण और प्रौढ़ावस्था में उसकी कमी से श्वास पथ के रोगों के होने की अधिक सम्भावना रहती है।

खाद्योज २—यह नाड़ी संस्थान के पोषण के लिये आवश्यक है। इसके न होने से नाड़ियों का प्रदाह हो जाता है और "बेरी बेरी" जैसे रोग हो जाते हैं।

यह खाद्योज अनाजों (गेहूँ, चावल) के उस भाग में पाया जाता है जिसको 'भ्रूण' कहते हैं; इस भ्रूण से ही पौदा उगता है। अनाजों के अतिरिक्त सब दालों में (जैसे उड़द, मूंग, मसूर, मटर, लोभिया इत्यादि) पाया जाता है। अंडे और खमीर में भी

खूब रहता है। ताज़े गोश्त में कम होता है। माखन, चर्बी, पनीर शाकवर्ग, मछली और बन्द डिब्बों के गोश्त में बहुत कम पाया जाता है। यह खाद्योज गेहूँ के भ्रूण और चोकर में होता है। यदि चोकर और भ्रूण अलग कर दिये जावें, तो गेहूँ के शेष भाग में न रहेगा। मैदा में गेहूँ का श्वेत भाग ही रहता है। पूरे गेहूँ के आटे में यह खाद्योज रहता है परन्तु मैदा में बहुत कम। आटे का प्रयोग अच्छा है मैदा का खराब। यह खाद्योज १२० शतांश तक नष्ट नहीं होता। वह चावल भी खाने योग्य नहीं होता जिसका भ्रूण और ऊपर का पतला भूरा भाग अलग कर दिया गया हो। मशीन द्वारा जो चावल साफ किया जाता है या चमकाया जाता है उसके खाने से 'बेरी बेरी' रोग हो जाता है जिसमें बदन फूल जाता है और पैर कमज़ोर हो जाते हैं। हृदय भी कमज़ोर हो जाता है।

खाद्योज ३—यह ताज़ी तरकारियों में, करमकल्ला के हरे पत्तों में; नींबुओं में (विशेष कर कागज़ी नींबू में) नारङ्गी में, टोमेटो में पाया जाता है। सूखी तरकारियों और फलों में नहीं पाया जाता है। गोभी करेला इत्यादि चीज़ों को सुखा कर रख लेना और फिर गैर मौसम में पका कर खाने का रिवाज ठीक नहीं है। दुग्ध और गोश्त में यह बहुत कम पाया जाता है; अंडे अनाज, मुरब्बे और रक्खे हुए नींबू के रस में नहीं पाया जाता। जब कुछ समय तक यह खाद्योज न मिले तो मसूड़े सूज जाते हैं और उनसे खून निकलने लगता है और उनमें ज़खम हो जाते हैं। बदन में दर्द होने लगता है। त्वचा में जगह जगह खून के दाग़ पड़ जाते हैं। नाक से, या मुँह से खून आने लगता है। यह खाद्योज सूखे बीजों में नहीं पाया जाता परन्तु जब बीज बोया

जावें तो जब वह उपजता है उस समय यह पाया जाता है। जब चना या उड़द या मटर पानी में भिगोए जाते हैं तो एक या दो दिन में उनमें कल्ले फूट आते हैं। इस समय उनमें यह खाद्योज पैदा हो जाता है।

ताज़े फलों को विशेष कर नीबू की जाति के फलों को अकसर खाना चाहिये यह खाद्योज १००° श की उष्णता को सह सकता है।

खाद्योज ४—इस खाद्योज बिना शरीर में खटिक और स्फुर का आत्मिकरण भली भाँति नहीं होता। अस्थियाँ अच्छी तरह नहीं बनतीं, टेढ़ी और कमज़ोर हो जाती हैं। बच्चे का स्वास्थ्य खराब रहता है। दाँतों का मज़बूत रहना भी इस खाद्योज पर निर्भर है। यह खाद्योज अधिकतर उन चीज़ों में पाया जाता है जिनमें खाद्योज नम्बर १ पाया जाता है। कौड के यकृत से जो तेल निकाला जाता है उसमें यह खाद्योज भी पाया जाता है। हमारे शरीर में यह खाद्योज सूर्य्य की "अल्ट्रा वायोलेट रेज़ (ultra violet rays) के त्वचा पर असर पड़ने से बनता है।

खाद्योज ५—कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि एक खाद्योज इस प्रकार का होता है कि उसके होने या न होने का मनुष्य की जनन शक्ति पर असर पड़ता है। इस खाद्योज का वंध्यता और फलदता से सम्बन्ध है। गेहूँ के भ्रूण में यह खाद्योज रहता है।

• २

खाद्योज १*

पाया जाता है	नहीं पाया जाता है
कौड मछली का तेल, माखन, अंडे की ज़रदी, जानवरों के यकृत, वृक्क, हृदय, गाय और बकरे की चर्बी; हेरिंग, सामन इत्यादि मछली; हरी तरकारियाँ, गाजर, टोमाटो, पूरे गेहूँ का आटा, चरबी से बनी हुई "मार्जरीन" (या नक़ली घी)	वानस्पतिक तेल जैसे जैतून बादाम, अलसी, बिनोलों का; अखरोट जैसे शुष्क फलों से निकाले हुए घृत; वानस्पतिक चर्बी से बनी हुई "मार्जरीन"; सुअर की चर्बी।

खाद्योज २*

पाया जाता है	नहीं पाया जाता है
अनाजों (जैसे पूरे गेहूँ का आटा) से उत्पन्न हुए पदार्थ; मटर, मसूर, लोभिया, मूंग, उड़द इत्यादि दालें; अखरोट, मूंगफली इत्यादि शुष्क फल; अंडे की ज़रदी; यकृत, हृदय, मस्तिष्क, वृक्क, कंदं; आलू, प्याज़, दुग्ध; खमीर, गेहूँ का भ्रूण।	मैदा, मैदे की बनी चीज़ें जैसे सिवय्याँ; सफेद (साफ़ और चमकाया हुआ) चावल, छिलका उतरा हुआ जौ (Pearl Barley); मकी का आटा, सागोदाना, शकर, शरबत, शीरा इत्यादि।

* Plimmer and Plimmer's Food and Health

खाद्योज ३

पाया जाता है	नहीं पाया जाता है
शंतरा, नारंगी, नीबू, अंगूर, टोमाटो, कच्ची हरी तरकारियाँ, शलजम, गाजर, आड़ू, और बहुत से फल; आलू, (उबले हुए) दुग्ध (बिना उबाला हुआ); थोड़ी देर तक पकाई हुई हरी तरकारियों में (बिना सोडा डाले पकाई गई हो)	सूखे फल जैसे अंजीर, खजूर, मुनक्का, किशमिश; टीन और बोतलों में रक्खे हुए फल और तरकारियाँ; सोडे के साथ पकायी गई हरी तरकारियाँ; बहुत देर तक पकाए हुए फल और तरकारियाँ; मुरब्बे; दो बार उबाला हुआ दूध; सोडियम सिट्रेट पड़ा हुआ दूध; चुकन्दर।

अच्छे भोजन के लक्षण

१—अच्छे भोजन में मूल अवयव उतने उतने होते हैं जितने की शरीर में आवश्यकता होती है।

२—भोजन जलवायु और मनुष्य के स्वभाव और प्रकृति के अनुकूल होना चाहिये। आयु, ऋतु, मनुष्य का भार, शारीरिक और मानसिक परिश्रम, स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य—इन बातों का भी ध्यान रखना चाहिये।

३—भोजन ऐसा होना चाहिये कि वह अच्छी तरह और आसानी से पच सके। भोजन जहाँ तक हो सके स्थूल और महाप्रमाण न हो।

भोजन के मूल अवयव कितने कितने खाने चाहियें

मामूली मानसिक और शारीरिक परिश्रम करने वालों को जिनका भार १½ मन के लगभग हो मूल अवयव निम्न लिखित परिमाण में खाने चाहियें :—

प्रोटीन ७०-८५ माशे (ग्राम) *
वसा (स्नेह) ८५ माशे (ग्राम)
कर्बोज २२०-२५० माशे (ग्राम)
लवण, जल—कोई विशेष परिमाण की आवश्यकता नहीं।

प्रोटीन, वसा और कर्बोज—इन तीनों में से प्रोटीन सेलों के बनाने के लिए बहुत आवश्यक है। मांस प्रोटीन से बनता है; शरीर के भार का आधे से कुछ ही कम मांस है [४२%]; इससे समझ लेना चाहिये कि प्रोटीन कैसी आवश्यक चीज़ है। जिस भोजन में प्रोटीन कम होती है उस भोजन को खानेवाले सदा निर्बल रहते हैं और उनकी मांस पेशियां पतली, कमज़ोर और पिचपिची होती हैं। मस्तिष्क से अधिक काम लेनेवालों को—जैसे विद्यार्थी, अध्यापक, वकील, डाक्टर—भी प्रोटीन की अधिक आवश्यकता है।

जैसे प्रोटीन सेलों के बनाने के लिये आवश्यक है वैसे ही वसा और कर्बोज शरीर में शक्ति उत्पन्न करने के लिये आवश्यक हैं। प्रोटीन से भी शक्ति उत्पन्न होती है परन्तु शरीर

* प्रसिद्ध वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि १½ मन वज़न वाले मनुष्य को १२० माशे प्रोटीन से अधिक खाने की कोई आवश्यकता नहीं (देखो Friedenwald and Ruhrah's Diet in Health and Disease 1919)

की सेलें इस पदार्थ को शक्ति पैदा करने के लिये इतनी काम में नहीं लातीं जितनी वसा और कर्बोज को। मानसिक परिश्रम करनेवालों की अपेक्षा शारीरिक परिश्रम करनेवालों को (फ़ौज के सिपाही, मज़दूर, पहलवान इत्यादि) इन पदार्थों की अधिक आवश्यकता होती है। शीत-ऋतु में शरीर का ताप स्थिर रखने के लिये इन उष्णता उत्पादक पदार्थों की ग्रीष्म-ऋतु की अपेक्षा अधिक आवश्यकता होती है।

कर्बोज और वसा (घृत, तैलादि) एक दूसरे की जगह काम दे सकते हैं अर्थात् यदि भोजन में वसा कम हो और कर्बोज काफ़ी हो तो शरीर को कुछ हानि न होगी और स्वास्थ्य ख़राब न होगा। इसी तरह यदि कर्बोज कम हो और वसा कुछ अधिक तब भी काम चल जायगा; इतनी बात अवश्य है कि वसा कर्बोज की अपेक्षा देर में पचती है और उतनी नहीं खाई जा सकती जितनी कि शर्करादि कर्बोज। ग़रीब मनुष्यों को वसा (घृतादि) बहुत कम प्राप्त होती है उनका काम कर्बोज (श्वेतसार, शकर) जैसी सस्ती चीज़ खाने से चल जाता है।

प्रोटीन भोजन में अवश्य होनी चाहिये विशेषकर वर्धन काल में (२५ वर्ष की आयु तक); यदि २५ वर्ष से पूर्व प्रोटीन कम मिले तो वर्धन अच्छा न होगा। गर्भवती स्त्री को, अपने स्तन से बालक को दुग्ध पिलानेवाली स्त्री को, क्षयरोगियों को वा अन्य कठिन रोगों से अच्छा होनेवालों को साधारण परिमाण से अधिक प्रोटीन मिलनी चाहिये। जवान मनुष्य के भोजन में ४५-५० माशे से कम प्रोटीन न होनी चाहिये। प्रोटीन का काम वसा और कर्बोज नहीं कर सकते। जो जातियाँ प्रोटीन कम खाती हैं वे कमज़ोर होती हैं।

जितनी उष्णता की एक हज़ार ग्राम या माशा जल के तापक्रम को एक दर्जा शतांश अधिक करने के लिये आवश्यकता है वह उष्णता की एक "इकाई" (उष्णांक) कहलाती है। परीक्षा से यह मालूम किया जा सकता है कि किसी चीज़ के जलने से या ओषजनीकरण से उष्णता की जितनी "इकाइयाँ" उत्पन्न हुईं। अर्थात् वह उष्णता एक हज़ार ग्राम जल का ताप कितना बढ़ा सकती है। एक हज़ार ग्राम शर्करा के जलने से (ओषजनीकरण से) उष्णता की ३'९५० इकाइयाँ बनती हैं।

इसी तरह और चीज़ों की इकाइयाँ ये हैं :—

वसा	९'३
श्वेतसार	४'१
प्रोटीन	४'१

इन अंकों से विदित है कि जहाँ तक उष्णता का संबंध है ४'१ ग्राम वसा ९'३ ग्राम प्रोटीन के बराबर है (प्रोटीन से उष्णता कम बनती है) या यह कहो कि १ भाग वसा २'२५ भाग प्रोटीन के बराबर है। यही निसबत कर्बोज और वसा की है। शीत-ऋतु में घृत का अधिक सेवन इसी कारण बहुत उपयोगी है।

इन तीनों मूल अवयवों के अतिरिक्त हमको जल और भाँति भाँति के लवणों की भी आवश्यकता है। प्रत्येक सेल में किसी न किसी प्रकार के लवण पाए जाते हैं। अस्थियाँ लवणों बिना (खटिक संयोजित) मज़बूत नहीं बनतीं। रक्त के कणरञ्जक के लिये लोह संयोजित की आवश्यकता है। लवण और जल शक्ति उत्पन्न करने के काम में नहीं आते। खनिज लवणों (साधारण लवण, खटिक स्फुरित और कर्बनित, लोह संयोजित) के अतिरिक्त शरीर को सजीव लवणों और अम्लों

की (जो शाकों और फलों में पाये जाते हैं.) भी बड़ी आवश्यकता है ; इनके बिना स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। भोजन में सब प्रकार के खाद्योज भी अवश्य रहने चाहियें।

भोजन की कुछ और चीज़ें

मसाले, चाय, क़हवा, कोका—इनमें से कोई चीज़ भी जीवन के लिये आवश्यक नहीं है; न इनसे सेलों की बढ़ोत होती है और न शक्ति उत्पन्न होती है। मसालों से भोजन स्वादिष्ट और रोचक बन जाता है; स्वादिष्ट भोजन अस्वादिष्ट भोजन की अपेक्षा भली प्रकार और शीघ्र पचता है। अधिक मसाला अजीर्ण पैदा करके स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

भारतवर्ष में चाय का रिवाज प्रति दिन बढ़ता जाता है। अच्छी बनी हुई चाय एक प्रकार का उत्तेजक है। थकान के बाद चाय पीने से थकान कम हो जाती है। बिना ज़रूरत उत्तेजक वस्तुओं का सेवन अच्छा नहीं। चाय को पानी में पकाना नहीं चाहिये, ऐसा करने से चाय के हानिकारक अवयव पानी में घुल जाते हैं। उबलते हुए जल में चाय को तीन चार मिनट भिगोकर छान लेना चाहिये; इस थोड़े से समय में इसके उत्तेजक अवयव तो पानी में घुल जाते हैं परन्तु हानिकारक अवयव बहुत कम घुल पाते हैं। ४ मिनट से ज़्यादा भिगोने से चाय कड़वी हो जाती है और अजीर्ण पैदा करती है।

चाय, क़हवा और कोका आमाशयिक रस की क्रिया को मंद करते हैं इसलिये भोजन के साथ उनको न पीना चाहिये; दुग्ध मिलाने से यह दोष कम हो जाता है। अधिक क़हवा पीने से अनिद्रा, शिर दर्द, मिर्गी, हृदयकंप इत्यादि रोग हो जाते हैं।

खाद्य का रासायनिक संगठन

कुछ खाद्य वनस्पति वर्ग से मिलता है और कुछ अन्य प्राणियों से। दुग्ध को छोड़कर जो खाद्य और प्राणियों से मिलता है वह उनको मारकर लिया जाता है।

१—अन्नवर्ग

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज (श्वेतसार)	खनिज पदार्थ	जल
गेहूँ (गोधूम)	११·४७	२·०४	७०·९०	३·१४	११·८३
जौ (यव)	८·९२	१·९०	७६·१०	२·३	१२·३
‡ मक्का (शस्य)	९·५२	४·४४	६८·९	३·७५	११·५०
चावल	६·६२	०·५०	८१·०७	१·०४	११·०५
बाजरा	८·७२	४·७६	७३·४०	१·५–२·०	११–१२
जुआर	७·६७	२·७७	६७·२६		
गेहूँ का आटा					
+ छना हुआ	१०·७	१·१	७५·४	०·५	
फूल मैदा	७·९	१·४	७६·४	०·५	
*चोकर (गेहूँ की)	१६·४	३·५	४३·६	६·०	१२·५

इन सभों में २—३% काष्ठोज होता है। चोकर में १८% काष्ठोज होता है। उपरोक्त तालिका से विदित है कि बिना छने गेहूँ के आटे में (पहली पंक्ति) छने हुए आटे और फूल मैदा की

‡ Mc Cay + Mc Cay after Hutchison *Hutchison.

अपेक्षा अधिक प्रोटीन होती है; गेहूँ के छिलके (चोकर) में प्रोटीन और लवण दोनों बड़े परिमाण में होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आटा बहुत बारीक छलनी में छानना अच्छा नहीं। बिना छना आटा सब से अच्छा होता है। इस आटे में न केवल प्रोटीन ही अधिक होती है; प्रत्युत काष्ठोज भी अधिक होता है और यह काष्ठोज कब्ज़ नहीं होने देता। अन्न वर्ग में कर्बोज श्वेतसार के रूप में पाया जाता है।

२—दालवर्ग*

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज
मूँग	२३·६२	२·६९	५३·४५
मसूर	२५·४७	३·००	५५·०३
चना	१९·९१	४·३४	५४·२२
मटर	२२·०१	१·९६	५३·९७
अरहर	२१·७०	२·५०	५४·०६
उड़द (माष)	२२·३३	१·९५	५५·२२

इन सभों में १०—११% जल, ३—४% खनिज पदार्थ और शेष भाग काष्ठोज होता है।

छिलके उतरी हुई दाल छिलकेदार की अपेक्षा जल्दी पचती है।

*यह तालिका Mc Cay's Protein Element in Nutrition नामक ग्रन्थ से ली गई है।

३—शाकवर्ग

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	खनिज पदार्थ	जल
बंद गोभी (करम कल्ला) ...	१·८	०·४	५·८	१·३	८९·६
फूल गोभी ...	२·२	०·४	४·७	०·८	९०·७
टोमाटो ...	१·३	०·२	५·०	०·७	९१·९
खीरा ...	०·८	०·१	२·१	०·४	९५·९
आलू ...	२·२	०·१	१५·७-२०·६	१·०	७८·३
शलजम ...	०·९	०·१५	५·०	०·८	९०·३
गाजर ...	०·५	०·३	१०·१	०·९	८६·५
हरी मटर ...	४·०	०·५	१६·०	०·९	७८·१
प्याज़ ...	१·६	०·३	१०·१	०·६	८७·६
मूली ...	१·३	०·७	१४·५	१·०	८२·५
केला ...	१·३	०·६	२२·०	०·८	७५·३
बैंगन (भाटा)	०·८९	०·९४	३·४८	०·२६	९०·९८
भिन्डी ...	१·९६	१·१	५·७२	०·८	९०·४
मीठा कद्दू ...	०·९०	१·०	३·९६	०·७	९३·४०

इन सभों में थोड़ा बहुत काष्ठोज होता है। शाक पकाकर खाने चाहियें। बथुआ, मेथी, सोया इत्यादि हरे शाकों का संगठन ऐसा ही होता है, उनमें कई प्रकार के उड़नशील तैल भी होते हैं जिनकी वजह से उनमें गन्ध आया करती है। यद्यपि शाकों में पौष्टिक पदार्थ बहुत कम होते हैं तथापि वे भोजन में

अवश्य होने चाहियें। उनसे हमको कई प्रकार के लवण मिलते हैं जिनके न होने से स्वास्थ्य बिगड़ने का भय रहता है। लवणों के अतिरिक्त इन हरी चीज़ों से हमको खाद्योज भी प्राप्त होते हैं; हरे साग (जैसे चने का साग) यदि कच्चे (बिना पकाये) खाये जावें तो अच्छा है क्योंकि इस विधि से हमको खाद्योज खूब प्राप्त होते हैं। केले के आटे में ये चीज़ें होती हैं:—प्रोटीन ४% वसा ०·५% कर्बोज ८०·०% खनिज पदार्थ २·५% जल १·३०%

४—फलवर्ग*

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	लवण अम्ल	जल
सेब ...	०·४	०·५	१२·५	१·४	८२·५
नाशपाती ...	०·४	०·६	११·५	१·४	८३·९
आड़ू ...	०·५	०·२	५·८	१·३	८८·८
बेर ...	१·०		१४·८	१·५	७८·४
स्ट्राबेरी ...	१·०	०·५	६·३	१·७	८९·१
रेस्पबेरी ...	१·०		५·२	२·०	८४·४
शहतूत ...	०·३		११·४	२·४	८४·७
अंगूर ...	१·०	१·०	१५·५	१·०	७९·०
खरबूज़ा (गूदा)	०·७	०·३	७·६	०·६	८९·८
तरबूज़ (गूदा)	०·३	०·१	६·५	०·२	९२·९
नारङ्गी ...	०·९	०·६	८·७	२·०	८६·७
नीबू ...	१·०	०·९	८·३	०·५	८९·३

*Hutchison's Food and Principles of Dietetics.

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	लवण अम्ल	जल
अनन्नास ...	०·४	०·३	९·७	०·३	८९·३
अनार ...	१·५	१·६	१६·७	०·६	७६·८
अंजीर (ताज़े)	१·५		१८·८	०·६	७९·१
मुनक्का ...	१·२	३·०	६४·०	२·२	२७·९
किशमिश ...	२·५	४·७	७४·७	४·१	१४·०

मिष्ट फलों में कर्बोज अधिकतर शर्करा (द्राक्षौज) के रूप में पाया जाता है। सब फलों में २ से ५%काष्ठोज होता है। आधी छटाँक नीबू के रस में २॥ माशे साइट्रिक अम्ल (नीबू का तेज़ाब) होता है नीबू (विशेषकर कागज़ी नीबू) में तीसरी श्रेणी का खाद्योज बड़ी मात्रा में पाया जाता है। खट्टे फलों में किसी न किसी प्रकार के अम्ल होते हैं। आम में गैलिक अम्ल, साइट्रिक अम्ल, टारटारिक अम्ल (इमली का तेज़ाब), मेलिक अम्ल पाए जाते हैं। पश्चिम देशों में (यूरोप, अमरीका में) सेब, नाशपाती, आड़ू, इत्यादि फलों को उबाल कर भी खाने का रिवाज है। हमारी राय में यह ठीक नहीं है। फल बिना उबाले ही खाने चाहियें।

५—शुष्क फलवर्ग (Hutchison)

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	खनिज पदार्थ	जल
चेस्टनट ताज़े	६·६	८·०	४१·२(क)	१·७	३८·५
„ सूखे	१०·१	१०·०	७१·४(क)	२·७	५·८

नाम	प्रोटीन	स्नेह (वसा)	कर्बोज	खनिज पदार्थ	जल
अख़रोट सूखे	१५·६	६२·६	७·४	२·०	४·६
बादाम (मीठा)	२४·०	५४·०	१०·०	३·०	६·०
पिस्ता ...	२१·७	५१·०	१४·०	३·३	७·४
नारियल (गूदा)	५·२	३५·९	८·४	१·०	४६·६
गोला (सूखा)	६·०	५७·४	३१·८(क)	१·३	३·५
नारियल का दूध	२०·५		९·०(क)		९०·३
* मूंगफली ...	७·५	४४·५	१५·७	२·५	७·५

सागोदाना :—इसमें ८६·७% कर्बोज (श्वेतसार के रूप में) होता है ; प्रोटीन अंशमात्र होती है ; शेष भाग जल रहता है ।

अरारूट :—इसमें ८२.५% कर्बोज (श्वेतसार के रूप में) होता है ; शेष भाग जल रहता है ; प्रोटीन, लवण अंश मात्र होते हैं ।

६—मसाले

हल्दी, काली और लाल मिर्च, धनिया, ज़ीरा इत्यादि :—इनमें किसी न किसी प्रकार के उड़नशील तेल होते हैं ; इन्हीं के कारण इनमें विशेष प्रकार की गंध आया करती है ; तेलों के अतिरिक्त उनमें विशेष अवयव भी होते हैं जिनके कारण ये चीज़ें अपना अपना गुण और स्वाद रखती हैं ।

राई :—१०० भागों में उड़नशील तेल ०·५ से २ तक, मामूली

(क)=इसमें काष्ठोज शामिल है ; शेष चीज़ों में ३—७% काष्ठोज होता है । *२·२ काष्ठोज होता है (Mackenzie Wallis)

तेल १५ से २५ तक, नत्रजनीय पदार्थ ३'१-४'१ तक, काष्ठोज २ से ५ तक, खनिज पदार्थ ४ से ६ तक ; श्वेतसार अंश मात्र होते हैं।

अदरक :—१.५ से ३% उड़नशील तेल; ३% मामूली तेल, और श्वेतसार होते हैं।

लौंग :—१० % उड़नशील तेल होता है।

७—दुग्धवर्ग

प्राणी	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
यूरोपियन स्त्री+	१'२५	३'५	७'०	०'२	८८'०५
बंगाली स्त्री ×	१'२	२'८०	५'९०	०'२४	८९'८६
गाय	३'५	४'०	३'५	०'७५	८७'२५
घोड़ी *	२'०	१'२०	५'६५	०'३६	९०'७९
गधी *	२'२५	१'६५	६'००	०'५०	८९'६०
बकरी *	४'३	४'७८	४'४६	०'७५	८५'७१
भैंस *	६'११	७'४५	४'१७	०'८७	८१'४०

गधी का दुग्ध स्त्री के दुग्ध से बहुत कुछ मिलता है। उस में स्त्री के दुग्ध से वसा कम होती है। जब शिशु को माता का दुग्ध मुआफिक न आवे या यकृत रोग के कारण उसको कम वसा देना उचित समझा जावे तो उसको गधी का दुग्ध पिलाना अच्छा है। घोड़ी के दुग्ध में वसा और भी कम होती है।

* Notter and Firth's Theory and Practice of Hygiene 1908

× Mc Cay

+ Holt.

दुग्ध के लवण*

स्त्री के दुग्ध की राख में ये लवण पाए जाते हैं:—

कैल्शियम फोस्फेट	२३·८७%
,, सल्फेट	२·२५ ,,
,, कार्बोनेट	२·२५ ,,
,, सिलीकेट	१·२७ ,,
पोटेशियम कार्बोनेट	२३·४७ ,,
,, क्लोराइड	१२·०५ ,,
,, सल्फेट	८·३३ ,,
मग्नेशियम कार्बोनेट	३·७७ ,,
सोडियम क्लोराइड	२१·७७ ,,
फेरिक ओक्साइड वा अल्युमिनियम	०·३७ ,,
	१००·००

माखन:—प्रोटीन २·००; वसा ८५·००; लवण १·००; जल १२·९५%

घृत:—वसा १००% (लगभग)

पनीर:—प्रोटीन १८·२१%; वसा २७·८३; शर्करा २·५०; लवण ४·८६; जल ३६·६०

दही:—प्रोटीन २४·०६%; वसा २·५; लवण १·१ जल शेष भाग।

तोड़ (दही का पानी):—प्रोटीन ०·८२%; वसा ०·२४%; शर्करा ४·६५%; लवण ०·६५%; जल=९३·६४%

* Friedenwald and Ruhrah's Diet in Health and Disease 1919.

* बालाई (शर) :—प्रोटीन २·५% वसा २० से ६५% सामान्यतः ४५% शर्करा ४·५% लवण ०·५% शेष भाग जल।

* मलाई :—में प्रोटीन, खटिक संयोजित और थोड़ी सी वसा होती है।

८—मांसवर्ग

प्राणी	प्रोटीन	वसा	शर्करा	लवण	जल
गाय, बैल	२०·०	१·५	०·६	१·२	७६·७
सुअर	१९·९	६·२	०·६	१·१	७२·६
घोड़ा	२१·६	२·५	०·६	१·०	७४·३
मुर्ग़ी	२२·७	४·१	१·३	१·१	७०·४
(पाइक) मछली	१८·३	०·७	०·९	०·८	७९·३
बकरा	१८·०	५·०		१·०	७६·०
हिरन	१९·७	१·९		१·१	७५·७
खरगोश	२२·३	१·१		१·१	७४·०

* कच्चे दूध को यदि कुछ देर के लिये एक ठंडे स्थान में रख दें तो थोड़ी देर पीछे वसा का अधिक भाग ऊपर तैर आवेगा। दूध का यह ऊपर का गाढ़ा भाग जिसमें वसा अधिक है "बालाई" या "शर" (अंग्रेज़ी में क्रीम=Cream) कहलाता है।

जब दूध गरम किया जाता है तो उबाल आने से पहले उसकी कुछ प्रोटीन (दुग्धज) एक पपड़ी के रूप में उसके ऊपर जम जाती है। यह चीज़ मलाई है।

९—डिम्ब (अंडा) *

मुर्ग़ी	प्रोटीन	वसा	लवण	जल
साबूत अंडा (खोल सहित)	१३.५०	११.६०	१.२०	७३.५०
अंडे का श्वेत भाग	१२.८७	०.२५	०.६३	८५.५०
अंडे का पीला भाग	१६.१२	३१.३९	१.०१	५१.०३

खोल अधिकतर खटिक कर्बनित से बनता है। अंडे के १०० भागों में १० भाग खोल, ६० भाग सुफ़ेदी, ३० भाग ज़र्दी के होते हैं।

१०—भोजन की चीज़ें जिनमें अधिकतर कर्बोज रहता है×

खाद्य पदार्थ ½ छटाँक में	कर्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	कितनी उष्णता प्राप्य होती है
सेब ताज़े	४	...	...	१६
जर्द आलू	३	०·२५	...	१३
केला	६	०·२५	...	२५
छिलका उतरा हुआ जौ	२१	२	०·२५	९५
लोबिया (सूखा)	१७	४	०·५	८९

* Notter and Firth's Theory and practice of Hygiene 1908.

× Maclean's Diagnosis and Treatment of Glycosuria and Diabetes 1927 के आधार पर।

खाद्य पदार्थ ½ छटाँक में	कर्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	कितनी उष्णता प्राप्य होती है
चुकंदर (ताज़े)	३	०·२५	...	१३
मैदा की डबल रोटी	१५	२	०·२५	७०
पूरे आटे की (भूरी) डबल रोटी	१३	१·२५	०·२५	६०
बंद गोभी	१·५	०·२५	...	७
गाजर	३	०·२५	...	१३
फूल गोभी	१·५	०·२५	...	७
खीरा	०·७५	...	...	४
खजूर (सूखे)	२०	०·५	०·७५	८८
अंजीर (सूखे)	१९	१	...	८०
अंगूर	५	०·२५	०·२५	२३
नींबू	२	०·२५	०·२५	११
मसूर	१७	७	०·२५	१००
दूध	१·२५	१	१	१९
डिब्बे का दूध (मीठा और गाढ़ा किया गया)	१५	२	२	८६
प्याज़	३	०·२५	...	१३
नारंगी (शांत्रा)	३	०·२५	...	१२
आड़ू ताज़े	२	...	...	८
नाशपाती ताज़ी	४	...	...	१६
हरी मटर	५	१·५	...	२६

खाद्य पदार्थ ½ छटाँक में	कर्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	कितनी उष्णता प्राप्य होती है
आलूबुखारा सूखा	२०	०'५	...	८२
आलू (कच्चा)	५	०'५	...	२२
मीठा कद्दू	१'५	०'२५	...	७
मूली	१'५	०'२५	...	७
चावल	२२	२	...	९६
पालक	१	०'५	...	६
स्ट्रॉबेरी	२	०'२५	...	९
टोमाटो	१	०'२५	...	५
शलजम	२	०'२५	...	९
आटा	२०	३	०'५	९६
मैदा	२१	२	०'२५	९४

११—भोजन की चीज़ें जिनमें अधिकतर प्रोटीन रहती है*

खाद्य पदार्थ ½ छटाँक में	कर्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	उष्णता
पनीर	१	७	९	११३
पनीर दूसरे प्रकार का	...	६	८	९६

* Maclean's Diagnosis of Glycosuria and Diabetes 1927 के आधार पर ।

खाद्य पदार्थ ½ छटाँक में	कर्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	उष्णता
अंडा	...	४	३	४३
बकरे का गोश्त (टाँग)	...	५	५	६५
ट्रौट मछली ताज़ी	...	५	३	४७
चूज़ा	...	६	१	३३
गाय बैल का गोश्त	...			
चर्बी निकला हुआ	...	५	३	४७
चर्बी वाला	...	५	७	८३
मुर्ग	...	५	४	५६

१२—भोजन की चीज़ें जिनमें अधिकतर वसा होतीहै*

खाद्य पदार्थ ½ छटाँक में	कर्बोज माशे	प्रोटीन माशे	वसा माशे	उष्णता
बादाम	४	५	१४	१६२
माखन	...	...	२३	२०७
बालाई	१	०·५	५	५१
अखरोट	४	५	१८	१९८
चर्बी (सुअर की)	...	...	२७	२४३
सुअर का गोश्त	...	३	१८	१७४
जैतून का तेल	...	...	२८	२५२

* Maclean's Diagnosis of Glycosuria and Diabetes 1927 के आधार पर ।

भोजन पकाने के लाभ

१—पकाने से भोजन स्वादिष्ट हो जाता है और आसानी से चब और पच सकता है।

२—उष्णता के प्रभाव से रोग उत्पादक कीटाणु (बकटेरिया) और कीट मर जाते हैं; पके हुए भोजन में हैज़ा, पेचिश इत्यादि रोगों के बकटेरिया के रहने की कम संभावना होती है।

३—पृष्ठ ३६३ पर लिख आये हैं कि श्वेतसार के दाने में काष्ठोज की कई तहें होती हैं; श्वेतसार के ज़र्रे काष्ठोज के इन खोलों (घेरों) से ढंके रहते हैं। काष्ठोज पर हमारे पाचक रसों का कोई असर नहीं होता, इसलिये कच्चा श्वेतसार हम अच्छी तरह से नहीं पचा सकते। पकाने से काष्ठोज के खोल या घेरे फट जाते हैं और श्वेतसार उनके बाहर आ जाता है और पाचक रस उससे भली प्रकार मिल कर उसको खूब पचा सकते हैं।

दुग्ध उबाल कर पीना चाहिये या ताज़ा बिना उबाला हुआ? उत्तर यह है कि ताज़ा दुग्ध उबाले हुए की अपेक्षा कुछ जल्द पचता है। यदि स्वस्थ गाय का दुग्ध पवित्र स्थान में स्वस्थ मनुष्य विधिपूर्वक शुद्ध किये हुए हाथों से शुद्ध बासन में निकाले तब ऐसा दुग्ध बिना उबाले पीने में कोई हानि नहीं परन्तु जैसा दुग्ध आज कल मिलता है उसको बिना गरम किये कदापि न पीना चाहिये। उसमें अनेक प्रकार के रोगों के कीटाणु रहते हैं; ये एक उबाल देने से मर जाते हैं। दुग्ध को बहुत देर तक नहीं पकाना चाहिये ऐसा करने से वह देर में पचता है; उसके कुछ और गुण भी दूर हो जाते हैं।

७०° शतांश (१५८° फहरनहाइट्) के ताप से आध घंटे में

बहुत से बकटेरिया मर जाते हैं। दुग्ध खुले बरतन में कभी न रखना चाहिये; खुला रखने से उसमें धूल मिट्टी पड़ने और हवा से दूषित गैसों के आ जाने की संभावना रहती है।

कुछ भोजनों के नमूने

(१)

भोजन (२४ घन्टे में)		मूल अवयव (लगभग)		उष्णांक*
चावल	१० छटाँक	प्रोटीन	५० माशे	
दाल	२ छटाँक	कर्बोज	५०० ,,	२४९७
तैल	½ छटाँक	वसा	३३ ,,	
शाक	थोड़ा सा			

* उष्णांक इस प्रकार निकाले जाते हैं :—

प्रोटीन ५०×४ = २००
कर्बोज ५००×४ = २०००
वसा ३३×९ = २९७
२४९७

हाल के प्रयोगों से यह ज्ञात हुआ है कि एक ग्राम (जो एक माशे के बराबर होता है) प्रोटीन से और एक ग्राम कर्बोज से ४ उष्णांक मिलते हैं; और एक ग्राम वसा से ९ उष्णांक। ४ और ४'१ में; ९ और ९'३ में ज़रा सा ही भेद है। हमने भोजनों के उष्णांक निकालते हुए ४, ९ अङ्कों का ही प्रयोग किया है, ४'१ और ९'३ का नहीं।

इस भोजन में प्रोटीन और वसा कम हैं वसा का काम कर्बोज से चल जायगा। यह भोजन मज़दूरों के लायक है; विद्यार्थियों, अध्यापकों वा अन्य मानसिक परिश्रम करनेवालों के लिये नहीं अच्छा है।

(२)

भोजन (२४ घन्टे में)		मूल अवयव		उष्णांक
चावल	८ छटाँक	प्रोटीन	५२ माशे	
दाल	१ ,,	वसा	३८ ,,	
दुग्ध	४ ,,	कर्बोज	४२२ ,,	२२३८
तैल या घृत	१/२ ,,			
शाक				

यह भोजन वैसा ही है जैसा कि नं० १। यह भी मानसिक परिश्रम करने वालों के लिये अच्छा नहीं है।

(३)

भोजन (२४ घन्टे में)		मूल अवयव		उष्णांक
दाल	३ छटाँक	प्रोटीन	५६ माशे	
जुआर का आटा	१० ,,	वसा	५० ,,	२२३४
तैल या घृत	१/२ ,,	कर्बोज	३९० ,,	
शाक				

यह भोजन भी शारीरिक परिश्रम करने वालों के लिये है।

(४)

भोजन (२४ घन्टे में)		मूल अवयव		उष्णांक
चावल	३ छटाँक			
गेहूँ का आटा	३ ,,			
दाल	१ ,,	प्रोटीन	६१ माशे	
दुग्ध	८ ,,	वसा	५० ,,	२०१५
घृत	½ ,,	कर्बोज	३३० ,,	
शर्करा	१ ,,			
शाक				

मामूली मानसिक और शारीरिक परिश्रम करने वालों के लिये अच्छा भोजन है। प्रोटीन और वसा इसमें भी कुछ कम हैं।

(५)

भोजन (२४ घन्टे में)		मूल अवयव		उष्णांक
गेहूँ का आटा	६ छटाँक			
दाल	१½ ,,			
दुग्ध	१२ ,,	प्रोटीन	८४ माशे	२५६८
घृत	१ ,,	वसा	९२ ,,	
शर्करा	½ ,,	कर्बोज	३५१ ,,	
शाक				

इस भोजन में प्रोटीन और वसा यथेष्ट परिमाण में हैं; कर्बोज कुछ अधिक है। मस्तिष्क से काम करने वालों के लिये अच्छा भोजन है।

(६)

भोजन (२४ घन्टे में)			मूल अवयव			उष्णांक
गेहूँ का आटा	३	छटाँक				
चने का आटा	२	,,				
दाल	१	,,	प्रोटीन	८१	माशे	
दुग्ध	१२	,,	वसा	१२०	,,	२६८४
घृत	१ १/२	,,	कर्बोज	३२०	,,	
शर्करा	१	,,				
शाक						

(७)

भोजन (२४ घन्टे में)			मूल अवयव			उष्णांक
गेहूँ का आटा	४	छटाँक				
दाल	१	,,				
दुग्ध	८	,,	प्रोटीन	७६	माशे	२१३८
घृत	१	,,	वसा	८२	,,	
मांस	२	,,	कर्बोज	२७५	,,	
शर्करा	१	,,				
शाक						

(८)

भोजन (२४ घन्टे में)			मूल अवयव			उष्णांक
गेहूँ का आटा	४	छटाँक				
दुग्ध	२०	,,	प्रोटीन	८०	माशे	
दाल	१	,,	वसा	१००	,,	२३८०
घृत	१	,,	कर्बोज	२९०	,,	
शर्करा	१	,,				
शाक						

(९)

भोजन (२४ घन्टे में)			मूल अवयव			उष्णांक
आटा	५	छटाँक				
दाल	१	,,				
मछली	२	,,	प्रोटीन	७२	माशे	
अंडा	१	,,	वसा	८३	,,	२२३०
घृत या तैल	१	,,	कर्बोज	३००	,,	
शाक						

६,७,८,९, ये सब अच्छे भोजनों के नमूने हैं। सब मूल अवयव यथेष्ट परिमाण में प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य मांसाहारी बने जैसा कि १,२,३,४,५,६,८,११ में विदित है।

हमारी राय में मांस खाना अच्छा नहीं है। शीत प्रधान देशों भी मांस खाने की आवश्यकता नहीं है। लेखक यूरोप में लग- ग २० मास रहा; ८-९ घन्टे रोज़ दिमाग़ी मेहनत करते हुए भी से कभी मांस खाने की आवश्यकता नहीं हुई; बिना मांस और दिरा पिये बरफ और ओलों की सरदी सहने में कोई कठिनता हीं हुई। यूरोप में भी हज़ारों मनुष्य बिना मांस खाये हते हैं।

यह असत्य है कि शीत प्रधान देशों में मांस, मदिरा और चाय का सेवन आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मदिरा एक हानिकारक वस्तु है।

(१०)

भोजन (२४ घन्टे में)			मूल अवयव (लगभग)			उष्णांक
आटा	६	छटाँक	प्रोटीन	११०	माशे	२८८७
चावल	४	,,	वसा	५४	,,	
दाल	१	,,	कर्बोज	४९०	,,	
दुग्ध	८	,,				
मांस	२	,,				
घृत	½	,,				

इस प्रकार का भोजन फ़ौज के सिपाहियों के लिये अच्छा है।

(११)

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के विद्यार्थियों का भोजन

भोजन (२४ घन्टे में)			मूल अवयव			उष्णांक
आटा	७	छटाँक				
चावल	२	,,	प्रोटीन	१०·५	माशे	
दाल	२	,,	वसा	९६	,,	
घृत	१	,,	कर्बोज	५१४	,,	३३४०
दुग्ध	१२	,,				
शर्करा	१	,,				
शाक						

यह भोजन १८ से २५ वर्ष की आयु के विद्यार्थियों को जिनका भार १½ मन के लगभग होता है दिया जाता है। हमारी सम्मति में भोजन बहुत अच्छा है, कर्बोज का परिमाण कुछ अधिक है; आटा और चावल नौ छटाँक की जगह ७ छटाँक और घृत १ छटांक की जगह १¼ छटांक दिया जावे तो और भी अच्छा होगा।

(१२)

खिचड़ी	मूल अवयव			उष्णांक
चावल ३ छटाँक	प्रोटीन	४०	माशे	
मूंग की दाल २ छटाँक	वसा	५१	,,	१४९१
घृत ४ तोला	कर्बोज	२१८	,,	

(१३)

कढ़ी चावल	मूल अवयव		उष्णांक
चावल ४ छटाँक	प्रोटीन	३६ माशे	१५३२
बेसन १½ ,,	वसा	४८ ,,	
घृत ४ तोला	कर्बोज	२३९ ,,	

(१४)

खीर		मूल अवयव		उष्णांक
दुग्ध	१६ छटाँक	प्रोटीन	३७ माशे	१६७१
चावल	१ ,,	वसा	३९ ,,	
शर्करा	३ ,,	कर्बोज	२०४ ,,	

डबल रोटी *

	प्रोटीन	वसा	कर्बोज	काष्ठोज	खनिज पदार्थ	जल
श्वेत (अर्थात् चोकर रहित)	६'५	१'०	५१'२	०'३	१'०	४०'०
भूरी (पूरे आटे से बनी हुई अर्थात् जिसमें से चोकर अलग न की गई हो)	६'३	१'२	४४'८	१'५	१'२	४५'०

* Hutchison's Principles of Dietetics.

डबल रोटी का ⅔ भाग गैस और शेष भाग ठोस होता है। ठोस भाग में ४०–५० % जल होता है।

बिसकिट *

जल	७·४५	अन्य कर्बोज	५८·०८
नत्रजनीय पदार्थ	७·१८	काष्ठोज	०·१६
वसा	९·२८	खनिज पदार्थ	०·८३
शर्करा	१७·०२		

†काष्ठोज की मात्रा प्रति शत भाग (सूखी चीज़ों में)

मैदा	०·४	गाजर	८·८
चावल	०·७	सेब	१०·०
गेहूं	२·९	मूली	१२·०
आलू	३·१	फूल गोभी	१३·०
मसूर	४·१	खीरा	१४·०
लोबिया	४·१	करमकल्ला	१८·०
प्याज़	५·०	स्ट्रॉबेरी	१९·०
पालक	८·१	खरबूजा	२२·०
हरी मटर	८·७	नाशपाती	२५·०

पढ़ने लिखने वालों को दुग्ध, दही, मलाई, बालाई (शर) घृत इत्यादि का अधिक सेवन करना चाहिये; अधिक शारीरिक परिश्रम करने वालों को चावल, शर्करा जैसी चीज़ों का। जितनी

* Hutchison's Principles of Dietetics.

† Rendle Short's New Physiology in Surgical & General Practice 1922

शक्ति १ माशा वसा (घृत) से प्राप्त होती है उतनी २·२५ माशा कर्बोज से मिलेगी; इससे विदित है कि शक्ति का एक नियत परिमाण प्राप्त करने के लिये वसा के मुक़ाबले में कर्बोज की अधिक मात्रा खानी पड़ेगी और आमाशय (पेट) पर अधिक भार पड़ेगा। इसीलिये दिमाग़ी मेहनत करने वालों को अधिक कर्बोज खा कर अपना पेट भारी न कर लेना चाहिये; कुछ कर्बोज की जगह घृत, मलाई बालाई बादाम इत्यादि खा सकते हैं।

अध्याय १६

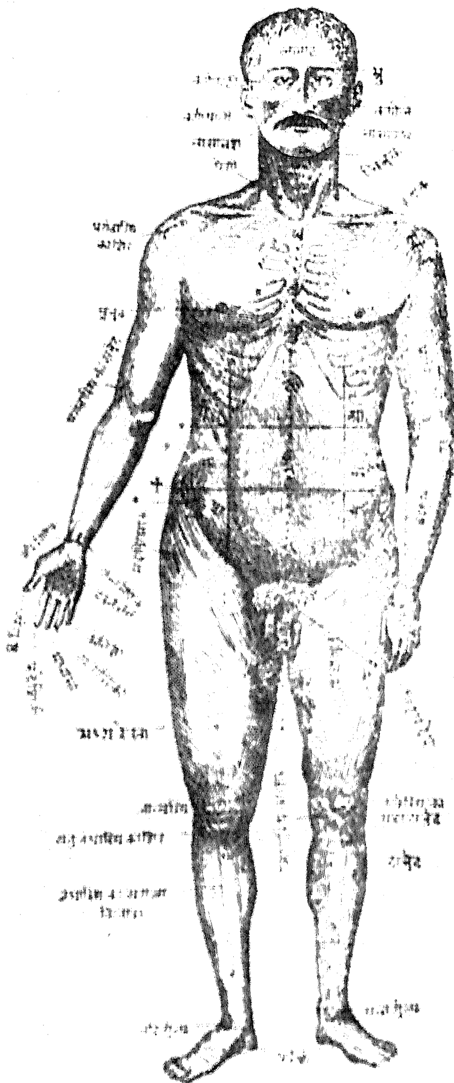
पोषण संस्थान (२)

उदर

उदर का संक्षिप्त वर्णन अध्याय २ में दिया गया है। चार कल्पित रेखाओं द्वारा व्यवच्छेदक उदर कोष्ठ के नौ भाग कर लेते हैं; ये भाग उदर के प्रदेश कहलाते हैं (देखो चित्र १६६)। दो रेखाएं खड़ी हैं और दो पड़ी। नितंबास्थि के ऊपर के किनारे के अगले नोकीले सिरे (पुरोर्ध्व कूट) (चित्र १६६ में +) और भगसंधि (विटप देश का मध्य) के ठीक बीच में एक खड़ी रेखा ऊपर को वक्ष की ओर खींची जाती है (चित्र १६६ में *) ऐसी ही रेखा दूसरी ओर खींची जाती है ; ये दो खड़ी रेखाएं हुईं। अब दो पड़ी रेखा खींचते हैं ; एक रेखा एक ओर की दसवीं पसली के नीचे के निकारे से दूसरी ओर की दसवीं पसली के नीचे के किनारे तक खींची जाती है (चित्र १६६ में ×) ; दूसरी पड़ी रेखा नितंबास्थियों के ऊपर के किनारों के उभारों के बीच में खींची जाती है ; ये उभार स्पर्श किये जा सकते हैं (चित्र १६६ में †)

कल्पित रेखाओं के नाम

१—पर्शुकाधो रेखा :—पड़ी रेखा जो एक ओर की दसवीं पसली के नीचे के किनारे से दूसरी ओर के नीचे के किनारे तक जाती है।



चित्र १६६—उदर के नौ प्रदेश

× पर्शुकाधो रेखा
* दाहिनी खड़ी रेखा
† अर्बुदांतरिक रेखा
+ नितंबास्थि के ऊपर के किनारे का अगला नोकीला सिरा=पुरोर्ध्वकूट

२—अर्बुदांतरिक रेखा :—पड़ी रेखा जो नितंबास्थियों के ऊपर के किनारों (जघन चूड़ा) के उभारों में से गुज़रती है।

३—दाहिनी ऊर्ध्व रेखा।

४—बाईं ऊर्ध्व रेखा।

उदर के नौ प्रदेश (चित्र १६६)

इन चारों रेखाओं से उदर के नौ प्रदेश हो जाते हैं ; इन में से तीन दाहिनी ओर, तीन बीच में, और तीन बाईं ओर रहते हैं।

१—चित्र १६६ में य = दाहिनो ओर पर्शुकाधो रेखा के ऊपर का देश यकृत प्रदेश कहलाता है; इस स्थान में यकृत रहता है ; यकृत के पीछे वृक्क होता है।

२—चित्र १६६ में कौ = यकृत प्रदेश के बाईं ओर कौड़ी प्रदेश है ; इस स्थान में यकृत का बायाँ भाग, आमाशय का कुछ अंश, बृहत् अंत्र का कुछ भाग रहते हैं।

३—चित्र १६६ में आ=कौड़ी प्रदेश के बाईं ओर आमाशयिक प्रदेश है ; यहाँ आमाशय का अधिक भाग रहता है ; आमाशय के पीछे और बाईं ओर प्लीहा रहती है।

४—चित्र १६६ में क = यकृत प्रदेश के नीचे दाहिना कटि प्रदेश है (साधारण बोलचाल में कटि को कमर कहते हैं)। यहाँ उद्गामी बृहदंत्र और क्षुद्रांत्र की कुछ गेंडलियाँ रहती हैं; दाहिने वृक्क का भी थोड़ा सा भाग रहता है।

५—चित्र १६६ में न = कौड़ी प्रदेश के नीचे नाभि प्रदेश है। यहाँ नाभि होती है ; उदर के इस भाग में क्षुद्रांत्र और उसके पीछे महाधमनी और महा शिरा रहती हैं।

६—चित्र १६६ में क = आमाशयिक प्रदेश के नीचे बायाँ कटि प्रदेश है। यहाँ क्षुद्रांत्र और अधोगामी बृहत् अंत्र रहती हैं।

७—चित्र १६६ में श = दाहिने कटि प्रदेश के नीचे दाहिना श्रोणि प्रदेश है ; यहाँ बृहत् अंत्र का प्रारम्भिक भाग रहता है।

८—चित्र १६६ में प = नाभि देश के नीचे पेडू (या कुक्षि प्रदेश ?) होता है ; यहाँ क्षुद्रांत्र रहती है ; नीचे के भाग में वस्ति या मूत्राशय रहता है ; स्त्रियों में मूत्राशय के पीछे वस्ति-गह्वर के अंदर गर्भाशय रहता है। गर्भस्थिति के पश्चात् जब गर्भाशय बढ़ता है वह तब पहले पेडू देश ही को घेरता है।

९—चित्र १६६ में श = पेडू के बाईं ओर बायाँ श्रोणि प्रदेश है; यहाँ क्षुद्रांत्र और अधोगामी बृहत् अंत्र रहती हैं।

उदर के नौ प्रदेशों में रहनेवाले मुख्य अंग

दाहिना यकृत प्रदेश	कौड़ी प्रदेश	आमाशयिक प्रदेश
यकृत पित्ताशय बृहत् अंत्र का दाहिना मोड़ दाहिना वृक्क	यकृत आमाशय अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र अंत्रच्छदा कला क्लोम पक्वाशय ; वृक्क उपवृक्क ; महाधमनी, महाशिरा, लसीका ग्रन्थियाँ	यकृत आमाशय बृहत्अंत्रकाबायाँमोड़ प्लीहा क्लोम की पुच्छ बायाँ वृक्क

पर्शुकाधो रेखा

दाहिना कटि प्रदेश	नाभि प्रदेश	बायाँ कटि प्रदेश
उद्गामी बृहत् अंत्र क्षुद्रांत्र दाहिना वृक्क	आमाशय पक्वाशय अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र मध्यम नाभिबंधन क्षुद्रांत्र वृक्क महाधमनी, महाशिरा लसीका ग्रन्थियाँ	अधोगामी बृहत् अंत्र क्षुद्रांत्र बायाँ वृक्क

अर्बुदांतरिक रेखा

दाहिना श्रोणि प्रदेश	बायाँ श्रोणि प्रदेश	पेडू
बृहत् अंत्र का प्रारंभिक भाग अंत्र परिशिष्ट लसीका ग्रन्थियाँ	बृहत् अंत्र लसीका ग्रन्थियाँ	क्षुद्रांत्र बृहत् अंत्र मूत्राशय (शिशुओं में) गर्भित जरायु

उदर की दीवारें (चित्र १६७, १७०, १७१)

उदर की अगली और पार्श्विक दीवारें त्वचा, वसा और मांस से बनती हैं; पिछली दीवार में रीढ़ की अस्थियाँ होती हैं जिनके इधर उधर मोटी मोटी मांस पेशियाँ लगी रहती हैं। चित्र १७० में उदर का व्यत्यस्त काट दिखाया गया है अर्थात् उदर का कोष्ठ चौड़ाई के रुख काटा गया है; गुणन चिह्न × वाले स्थान में क्षुद्रांत्र की गेंडलियाँ पड़ी रहती हैं। सामने की दीवार में दस पेशियाँ होती हैं जिनमें से आठ पेशियों के कटे हुए भाग चित्र १७० में दिखाए गये हैं (चित्र में ३, ४, ५, १९) दो पेशियाँ छोटी छोटी होती हैं और वे सरल पेशियों के सामने भग संधि के ठीक ऊपर रहती हैं (पेशियों के लिये देखो चित्र १६८, १६९)

उदर में हर जगह एक पतली झिल्ली (कला) बिछी रहती है; इस कला को उदरक कला कहते हैं। (चित्र १७० में ६); इस कला से उदर के बहुत से अंग ढके भी रहते हैं; इसी कला द्वारा क्षुद्रांत्र उदर की पिछली दीवार से लटकी रहती है; कला के इस भाग को अंत्रधारक कला कहते हैं (चित्र १७० में १७)

चित्र १६७

एक नारी शव के उदर को हमने बीच में से इस प्रकार काटा कि छुरी और आरी आमाशय के दक्षिणांश और पहले कटि कशेरुका के गात्र में से होकर गुज़री। यह चित्र इस काट का फोटो है।

चित्र १६७ की व्याख्या (उदर का व्यत्यस्त काट)

१=उदरच्छदा वहिःस्था की कंडरा जो सरला पेशी के सामने चली जाती है।

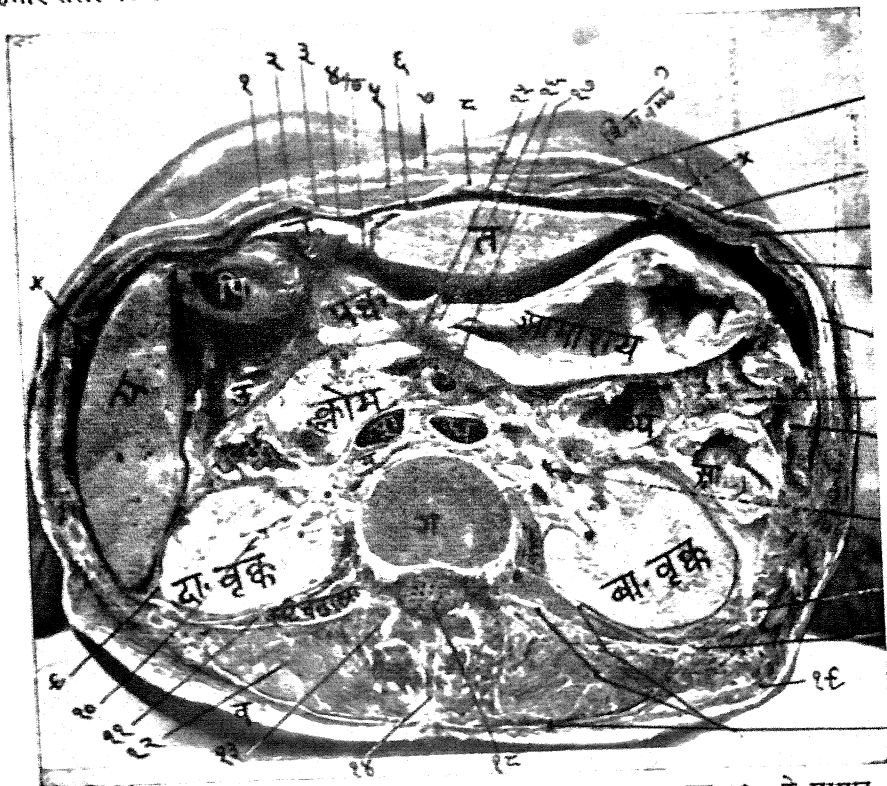
२=उदरच्छदा मध्यस्था की कंडरा।

३=सरला पेशी के निकट पहुँचकर उदरच्छदा मध्यस्था की कंडरा दो तहों में विभक्त हो जाती है, एक तह सरला के सामने जाती है दूसरी उसके पीछे; ३=पीछेवाली तह।

४=उदरच्छदा अंतःस्था की कंडरा जो ३ से जुड़ जाती है।

५, ६=सरला पेशी इस प्रकार झिल्लीकृत एक पिधान के भीतर रहती है। इस पिधान का अगला भाग उदरच्छदा बहिःस्था की कंडरा और उदरच्छदा मध्यस्था की कंडरा की अगली तह के आपस में जुड़ने से बनता है। पिछला भाग उदरच्छदा मध्यस्था की पिछली तह और उदरच्छदा अंतःस्था की कंडरा के आपस में जुड़ने से बनता है।

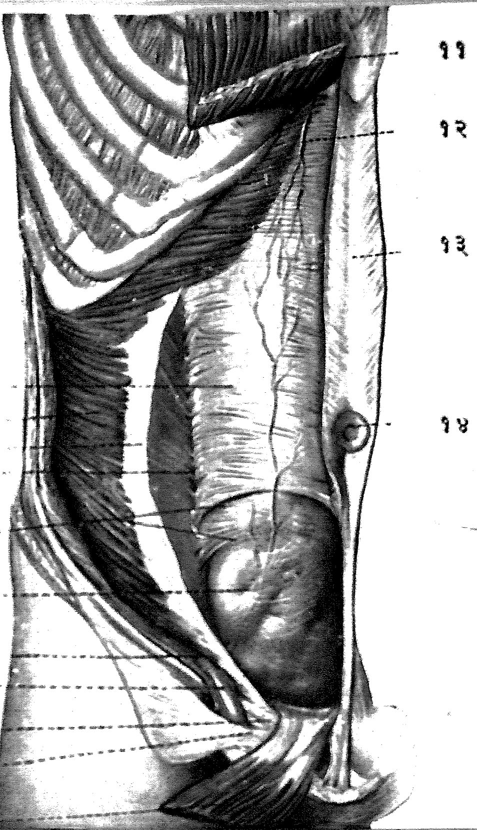
७=वसा; ८=श्वेत रेखा जो दोनों पिधानों के जुड़ने से बनती है; ९=वृक्क के चारों ओर रहनेवाली वसा १०=वृक्किका धमनी; ११=कटिचतुरस्रा पेशी; १२=त्रिकपृष्ठिका पेशी; १३=संधिप्रवर्द्धन; १४=कशेरकंटक; १५=आमाशय का अंत और पक्वाशय का आरंभ; १६=अंत्रोर्ध्व शिरा; १७=अंत्रोर्ध्व धमनी; १८=सुषुम्ना शंकु व नाड़ियां; १९=कटिपार्श्वप्रच्छदा पेशी; पि=पित्ताशय; पक=पक्वाशय; उ=उद्गामी बृहत् अंत्र; अनु=अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र; अ=अधोगामी बृहत् अंत्र; श=महाशिरा; ध=महाधमनी; ग=पहले कटिकशेरुका का गात्र; कल=कटिलम्बिनी पेशी; म=वक्षउदरमध्यस्थ पेशी का दाहिना स्तंभ; ×=परिविस्तृत कला; व=वसा; बं=यकृत का गोल बंधन।



पृष्ठ ४१० के सम्मुख

१=उदरच्छदा बहिःस्था पे० का आरंभ; २=सरला पेशी के पिधान का अगला पड़त; ३=उदरच्छदा मध्यस्था और अर्ध चन्द्राकार रेखा; ४=उदरच्छदा अंतःस्था पे० कटी हुई; ५=उदरच्छदा बहिःस्था की कंडरा कला; ६=उदरच्छदा अंतःस्था और अंडोत्थापिका पेशी; ७=अंडधारकरज्जु; ८=अधर शृंग; ९=ऊर्ध्व शृंग; १०=उदरच्छदा बहिःस्था पे०; ११=सरला पेशी के पिधान का अगला पड़त; १२=सरला पेशी; १३=उत्तंन रेखा; १४=नाभि; १५=उत्तंन रेखा

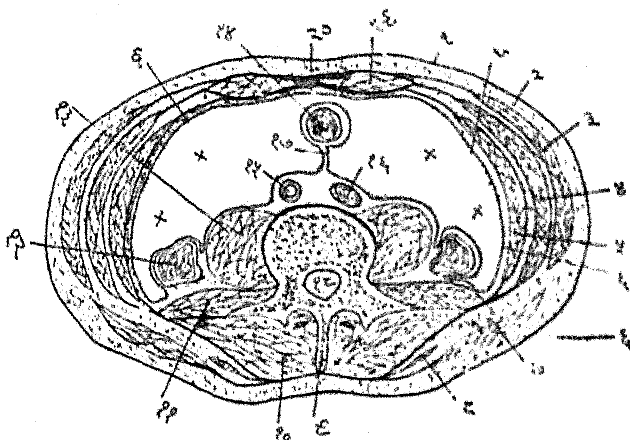
१=सरला पिधान का पिछला पड़त; २=उदरच्छदा मध्यस्था; ३=सरला पिधान का अगला पड़त; ४=सरला पिधान का पिछला पड़त और अर्धचक्र रेखा; ५=अंतःस्था कला; ६=उदरच्छदा अंतःस्था की नीचे की धारा; ७=अंड धारक रज्जु; ८=बाह्य उदरविवर का ऊर्ध्व शृंग; ९=अधर शृंग; १०=सरला का अंत; ११=सरला पे० कटी हुई; १२=सरला पिधान के ऊपर के भाग का पिछला पड़त; १३=उत्तंन रेखा; १४=नाभि



चित्र १६८ की व्याख्या

चित्र १६९ की व्याख्या

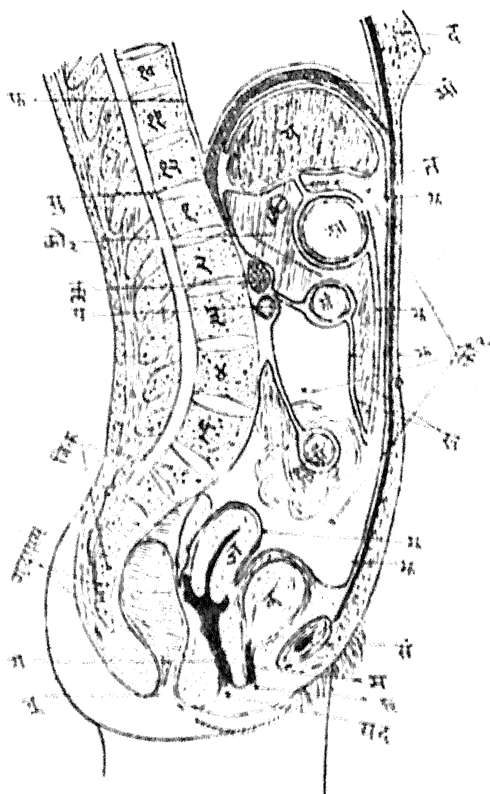
चित्र १७०—उदर का व्यत्यस्त काट



व्याख्या :—१—त्वचा, २—वसा; ३—उदरच्छदा बहिःस्था पे०; ४—उदरच्छदा मध्यस्था पे०; ५—उदरच्छदा अंतःस्था पे०; ६—उदरक कला ७—कटि पार्श्वप्रच्छदा पेशी; ८—एक छोटी पेशी; ९—कशेरुकण्टक; १०—पृष्ठवंशधरा पेशी; ११—कटिचतुरस्रा पेशी; १२—बृहत् अंत्र का कटा हुआ भाग; १३—कटिलम्बिनी पेशी; १४—क्षुद्रांत्र (कटी हुई); १५—महाधमनी (कटी हुई); १६—महाशिरा; १७—क्षुद्रांत्र धारक कला; १८—कशेरुका का छिद्र जिसमें सुषुम्ना रहती है; १९—सरला पेशी।

चित्र १७१ में स्त्री का उदर लम्बाई के रुख काटा गया है; उदरक कला (झ) किस प्रकार उदर में बिछी हुई है यह इस चित्र में समझाया गया है।

चित्र १७१—लम्बाई के रुख कटा हुआ स्त्री का उदर



व्याख्या :—दु=दुग्ध ग्रंथि; मां=वक्षउदरमध्यस्थ पेशी; य=यकृत; आ=आमाशय; अं=बृहत् अंत्र; क्षअं=क्षुद्रांत्र; ज=जरायु या गर्भाशय, ब=बस्ति या मूत्राशय; भं=भगसंधि; म=मूत्रमार्ग; द=मूत्रद्वार; यद्=योनिद्वार; चू=चूति या मलद्वार; य=योनि; १ से ५ तक=कटि कशेरुका;

१०, ११, १२=वक्ष के कशेरुका; फ=फुप्फुस वेष्ट या परिफुप्फुसीया कला; सु=सुषुम्ना के रहने की नली ; क्लो=क्लोम; प=पक्वाशय; अ=उदरक कला; ख=उदरक कला की चार तहें जो अंत्र के ऊपर पड़ी रहती हैं और जिनसे अंत्र ढकी रहती हैं; स्थूल शरीरों में इन तहों में वसा बहुत भर जाती है; सामान्यतः भी थोड़ी सी वसा रहती है यह भाग अंत्रछदा कला कहलाता है । उदरक कला से यकृत का अधिक भाग, आमाशय, अनुप्रस्त बृहत् अंत्र, क्षुद्रांत्र ढके हुए रहते हैं; यह कला वस्ति और जरायु के अधिक भागों पर भी लगी रहती है ।

अन्नमार्ग या आहारपथ

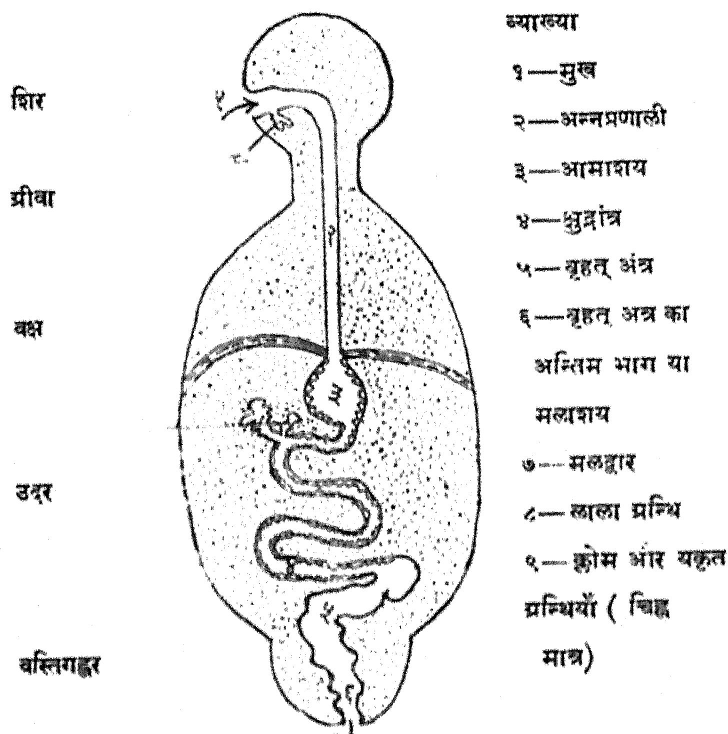
हमारे शरीर में कई प्रकार की नलियाँ हैं; इनमें से कई का वर्णन इस पुस्तक के पहिले भाग में किया जा चुका है (रक्त, लसीका, मूत्र इत्यादि की नलियाँ) । जब हम भोजन करते हैं तो वह भी एक नली के भीतर चला जाता है और जब तक वह पच नहीं जाता नली के भीतर ही रहता है । यह नली बहुत लम्बी होती है । इसका आरम्भ मुख से होता है और इसका अन्त नीचे जाकर मलद्वार पर होता है । इस नली को अन्नमार्ग या आहारपथ कहते हैं । (देखो चित्र १७२)

अन्नमार्ग का कुछ भाग ग्रीवा और वक्ष में रहता है ; अधिक भाग उदर में रहता है जैसा कि चित्र १७२ से विदित है । प्रौढ़ मनुष्य में मुख से मलद्वार तक अन्नमार्ग की लम्बाई २८—२९ फुट (नौ दस गज़) के लगभग होती है । यह नली हर एक स्थान में एक ही जैसी नहीं है; कहीं पतली और तंग होती है, कहीं चौड़ी और कहीं फूल कर थैली की समान हो [illegible] । नली के सब भाग एक ही काम भी नहीं करते ।

अन्नमार्ग (आहार पथ) के भागों के नाम

१—सब से ऊपर मुँह या मुख है; यहाँ दंत और जिह्वा रहते हैं। इस भाग में भोजन चबाया जाता है और थूक उस से खूब मिल जाता है (चित्र ६ में १)

चित्र १७२ अन्नमार्ग और उसके मुख्य भाग



२—मुँह के पिछले भाग को गला या कंठ कहते हैं। यहा

से एक नली का आरम्भ होता है जिसका नाम अन्नप्रणाली है इसकी लम्बाई १० इंच के लगभग होती है; ग्रीवा और वक्ष में होती हुई यह उदर में पहुँचती है और अन्नमार्ग के तीसरे भाग से जा मिलती है।

३—तीसरा भाग थैली जैसा होता है, इसको आमाशय या पाकस्थली कहते हैं। इस थैली में भोजन कुछ समय ठहरा करता है। इसकी लम्बाई १३ इंच के लगभग होती है (चित्र १७२ में ३)

४—आमाशय से अन्त्र का आरंभ होता है; यह गेंडली मारे हुए उदर में पड़ी रहती है। आमाशय के नीचे अन्नमार्ग का शेष भाग अन्त्र ही है; उदर का अधिक स्थान इसी से घिरा रहता है ;

अन्त्र की लम्बाई २६-२७ फुट के लगभग होती है; उसका नीचे का '५ फुट लम्बा भाग ऊपर के शेष भाग से अधिक चौड़ा होता है। ऊपर का पतला (कम चौड़ा) भाग जो २१-२२ फुट लम्बा होता है क्षुद्रांत्र कहलाता है; नीचे के चौड़े भाग को बृहत् अंत्र कहते हैं (चित्र १७२ में ४, '५)।

उपरोक्त से विदित है कि अन्नमार्ग के दो सिरे हैं; ऊपर का सिरा मुख और नीचे का मलद्वार है मुख से भोजन इस मार्ग में पहुँचता है; मलद्वार से भोजन का वह अंश जो पचा नहीं या जो पचने योग्य नहीं विष्ठा (मल) रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है

पाचक ग्रन्थियाँ

भोजन को पचाने के लिये कई रसों की आवश्यकता है,

जिन अंगों या यंत्रों में ये रस बनते हैं वे पाचक ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। कुछ पाचक ग्रन्थियाँ अतिसूक्ष्म (अणुवीक्ष्य) होती हैं; ये अन्नमार्ग की दीवार में (श्लैष्मिक कला में) रहती हैं। अन्नमार्ग से अलग भी कई ग्रन्थियाँ हैं। इन में से दो ग्रन्थियाँ उदर में रहती हैं; एक को यकृत या जिगर कहते हैं, दूसरा का नाम क्लोम या पेन्क्रियास * है। इन ग्रन्थियों के रस नलियों द्वारा क्षुद्रांत्र में पहुँचते हैं।

छः ग्रन्थियाँ मुख में हैं, तीन दाहिनी ओर और तीन बाईं ओर; इनमें थूक या लाला बनता है, ये लाला ग्रन्थियाँ हैं।

दंत या दाँत (चित्र १७३)

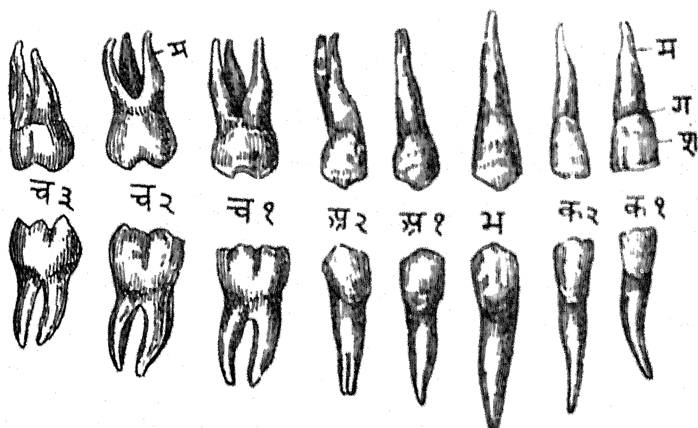
भोजन सब से पहिले मुँह में जाता है; यहाँ दाँत उस को चबाते हैं। चबाने से वह पिस जाता है और मुलायम हो जाता है।

२५-३० वर्ष की आयु में हमारे दोनों जाबड़ों में ३२ दाँत होते हैं, सोलह ऊपर सोलह नीचे। सब में आगे मध्य रेखा के इधर उधर दो दो चौड़े दाँत होते हैं; ये भोजन कतरने के काम में आते हैं। इस कारण इनको छेदक या कर्त्तनक दंत कहते हैं (चित्र १७३ में क १ क २) चार छेदक दंतों में से बीच के दो मध्य छेदक और इनके इधर उधर वाले बाह्य छेदक कहलाते हैं। बाह्य छेदक दंत से कान की ओर चलें तो एक नोकीला दाँत मिलता है; यह दाँत कुत्ते, बिल्ली, शेर इत्यादि माँस फाड़नेवाले जानवरों में अधिक लम्बा और नोकीला होता है; यह दाँत भोजन की चीज़ों में छेद करने अथवा उनको फाड़ने के काम आता है; मनुष्य अपना भोजन पका कर

* अङ्गरेज़ी भाषा का शब्द है।

खाता है इसलिये उसे फाड़ने का काम कम करना पड़ता है; इसी कारण यह दाँत भी छोटा होता है। यह दाँत भेदक या रदनक दन्त कहलाता है। (चित्र १७३ में भ)

चित्र १७३—दाहिनी ओर के दाँत



क १= दाहिना मध्य कर्त्तनक; क २=दाहिना बाह्य कर्त्तनक; भ=भेदक; अ १=प्रथम अग्र चर्वणक; अ २ द्वितीय अग्र चर्वणक; च १ प्रथम पश्चिम चर्वणक; च २ द्वितीय पश्चिम चर्वणक; च ३ तृतीय पश्चिम चर्वणक; चर्वणक (बुद्धि दन्त); म=दंत मूल; ग=दन्त ग्रीवा; श=दन्त शिखर

भेदक दन्त के पीछे दो दाँत होते हैं जिनका काम भोजन चबाने का है; ये अग्र चर्वणक कहलाते हैं (चित्र १७३ में अ) इनके पीछे तीन जाड़ें होती हैं; ये भी भोजन चबाने के काम में आती हैं, ये सब से मोटे दाँत हैं और पश्चिम चर्वणक दंत कहलाते हैं। इनकी गिनती सामने से पीछे की ओर होती

है—प्रथम, द्वितीय, तृतीय। तृतीय पश्चिम चर्वणक दंत को साधारण बोलचाल में "अक़ल जाड़ या बुद्धिदन्त" कहते हैं। कारण यह है कि यह बड़ी उमर में (१७ से २५ वर्षों के बीच में कभी कभी इससे भी अधिक आयु में निकलता है; कभी कभी वह निकलता भी नहीं (चित्र १७३ में च १ च २ च ३)।

६-७ महीने की आयु से दाँत निकलने आरम्भ होते हैं। २½ वर्ष के बालक के मुँह में २० दाँत होते हैं। छठे वर्ष में या इसके पीछे ये दाँत धीरे धीरे उखड़ कर गिरने लगते हैं और इनकी जगह नये दाँत निकल आते हैं। ये नये दाँत मनुष्य की शेष आयु भर रहते हैं। इनके गिरने के पश्चात् और दाँत नहीं निकलते। जो दाँत पहिले निकलते हैं वे अस्थायी या पतनशील दन्त कहलाते हैं क्योंकि ये कुछ वर्षों पीछे गिर जाते हैं; जो दन्त दूसरी बार निकलते हैं वे स्थायी दन्त कहलाते हैं। अस्थायी दन्त का वर्णन पुस्तक के किसी और अध्याय में किया जायगा।

दाँतों की रचना

प्रत्येक दन्त के तीन भाग होते हैं :—

१—दन्तशिखर

२—दन्तग्रीवा

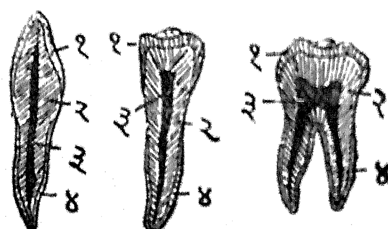
३—दन्तमूल

दन्तशिखर वह भाग है जो श्वेत और चमकदार होता है और मसूड़े से ऊपर निकला रहता है (चित्र १७३ में श) इसके नीचे (ऊपर के दाँतों में ऊपर) जो दाँत का दबा हुआ भाग रहता है उसको दंतग्रीवा कहते हैं। (चित्र १७३ में ग)। ग्रीवा के नीचे (ऊपर के दाँतों में ग्रीवा के ऊपर) जो भाग है उसको

दंतमूल (दाँत की जड़) कहते हैं (चित्र १७३ में म)। दंतमूल जाबड़े की अस्थि के भीतर उस गड़हे में जिसको दंतउलूखल कहते हैं रहता है। छेदक और भेदक दंत में केवल एक एक मूल रहता है; भेदक दंत का मूल छेदक से कुछ लम्बा होता है अग्रचर्वणक दंत में बहुधा एक ही मूल होता है, कभी कभी दो मूलें भी होती हैं या मूल पर दोनों ओर एक गहरी नाली होती है जो इस बात का चिह्न है कि यह मूल बीच में से फटते फटते रह गया।

ऊपर के हर एक पश्चिम चर्वणक दंत में तीन मूल होते हैं। नीचे के पश्चिम चर्वणक दंत में केवल दो मूल होते हैं।

चित्र १७४—दाँतों की रचना



१—दंतवेष्ट या रुचक २—रदिन ३—दंतकोष्ठ ४—संघात

दाँत भीतर से खोखले होते हैं जैसा कि चित्र १७४ से विदित है; इस चित्र में दाँत काट कर दिखाये गये हैं। काट से यह भी पता लगता है कि दाँत कई चीज़ों से बना है। सब से बाहर जो श्वेत भाग है (चित्र १७४ में १) उसका रासायनिक संगठन अस्थि जैसा होता है और उसको दंत वेष्ट या रुचक कहते हैं।

१०० भाग में ९६ भाग खनिज पदार्थ के और शेष भाग सजीव पदार्थ के होते हैं :—*

* Tomes' Dental Anatomy 1914.

दंतवेष्ट (रुच्चक) के अवयव	जवान पुरुष	जवान स्त्री
खटिक स्फुरित तथा प्लविद	८९·८२	८१·६३
खटिक कर्बनित	४·३७	८·८८
मग्न स्फुरित	१·३४	२·५५
अन्य लवण	०·८८	०·९७
सजीव पदार्थ (वसा भी ज़रासी होती है)	३·५९	५·९७

सजीव पदार्थों को उबालने से जेलाटीन बन जाता है। शरीर में जितने तन्तु हैं उनमें रुच्चक सब से कठिन होता है।

दंतवेष्ट के नीचे जो चीज़ है (चित्र १७४ में २) उसको रदिन कहते हैं। यह भी बहुत सख़्त होती है, रंग हलका पीला-हट लिये श्वेत होता है रदिन अर्धस्वच्छ होती है। मनुष्य की सुखाई हुई रदिन का रासायनिक संगठन इस प्रकार है :—*

जल और सजीव पदार्थ	२८·००	१० भाग के लगभग जल होता है
सोडियम के लवण हरति, स्फुरित	१·५०	
मग्न स्फुरित	१·००	
खटिक स्फुरित	६२·००	
खटिक प्लविद	२·००	
खटिक कर्बनित	५·५०	
	१००·००	

*

हाथी के रदिन में (साधारण लोग इसको हाथी दाँत कहते हैं) प्रतिशत ३४ भाग सजीव पदार्थ के होते हैं, खनिज पदार्थ ५७·५ भाग होते हैं।

दंत का खोखला भाग दंतकोष्ठ कहलाता है। इसके भीतर एक मुलायम चीज़ भरी रहती है, इसमें सूक्ष्म सौत्रिक तंतु, कई प्रकार की सेलें, रक्त केशिकाएँ और वात सूत्र (नाड़ी सूत्र) रहते हैं। इस मुलायम चीज़ को दंतमज्जा कहते हैं।

दंतमूल में रुचक नहीं होता—उसकी जगह एक और चीज़ होती है जिसको संघात कहते हैं (चित्र १७४ में ४)। संघात की सूक्ष्म रचना और रासायनिक संगठन अस्थि से बहुत कुछ मिलते हैं।

हर एक दंतमूल की शिखर में एक छोटा छिद्र होता है; इसी छिद्र में से होकर रक्त वाहिनियाँ और नाड़ियाँ (वात सूत्र) दंतकोष्ठ में प्रवेश करती हैं।

अधिक गरम और अधिक ठंडी चीज़ें दाँतों को ख़राब करती हैं, बहुत गरम चीज़ के सेवन के पश्चात् बहुत ठंडी चीज़ का सेवन दंतवेष्ठ को हानि पहुँचाता है। दाँतों को साफ़ करने के लिये बहुत सख्त चीज़ें न मलनी चाहियें (जैसे रेत), कोयला मला जावे तो मैदा की तरह बारीक पिसा हो।

भोजन करके दाँतों को हमेशा साफ़ कर लेना चाहिये ऐसा न करने से दाँतों के बीच में भोजन के अंश फँसे रह जाते हैं जो सड़ने लगते हैं। इन चीज़ों के सड़ने से न केवल मुख में दुर्गन्ध ही आती है प्रत्युत दाँत भी ख़राब होते हैं और स्वास्थ्य भी बिगड़ता है। यूरोपनिवासी भोजन के पश्चात् कुल्ला नहीं

रते, कुछ भारतवासी भी उनकी देखा देखी कुल्ला करने को
शान के खिलाफ़ समझने लगे हैं, हमारी राय में तो यह एक
हा मलिन आदत है जिसको कभी भी ग्रहण न करना चाहिये।
ह बात सब जानते और मानते हैं कि यूरोपनिवासियों के दाँत
हुत ख़राब होते हैं और जल्दी उखड़ जाते हैं।

मसूड़े

ये घनी सौत्रिक तंतु से बने हैं; एक ओर दंत ग्रीवा से और
दूसरी ओर जाबड़ों की अस्थि से लगे रहते हैं। सौत्रिक तंतु के
पर चिकनी रक्तमय श्लैष्मिक कला लगी रहती है।

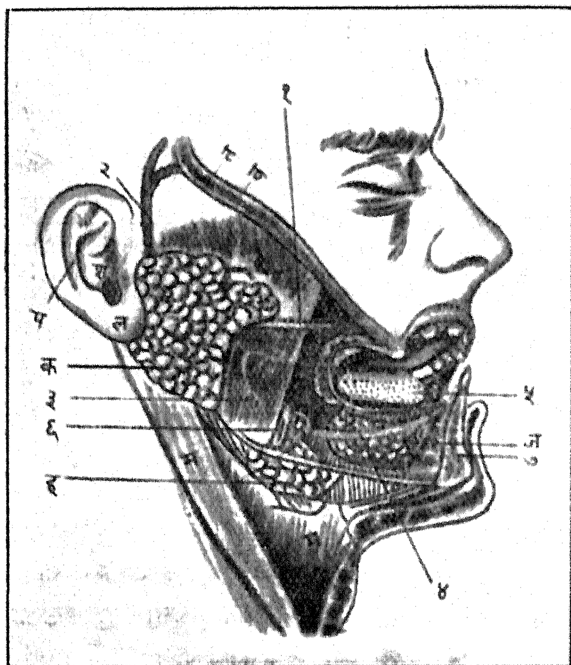
लाला ग्रन्थियाँ (चित्र १७५)

लाला ग्रन्थियाँ ६ हैं। तीन दाहिनी ओर तीन बाईं ओर *
क ग्रन्थि कान के सामने और नीचे है इसको कर्णाग्रवर्ती
ाला ग्रन्थि कहते हैं, दूसरी ग्रन्थि जिह्वा के नीचे रहती है
ह जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रन्थि कहलाती है, तीसरी
िम्न हनु के नीचे और उससे ढकी रहती है, इसका नाम
न्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि है।

१—कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि (चित्र १७५ में क):—यह
ोनों में सब से बड़ा है। इसके ऊपर त्वचा और नीचे शंखास्थि
ौर निम्न हन्वस्थि रहती है। ग्रन्थि का अगला भाग चर्वणी
शी से मिला रहता है। इसका भार १८ से २७ माशे तक होता

* निम्नओष्ठ और गाल की श्लैष्मिक कला में भी कई नन्हीं
ाला ग्रन्थियाँ रहती हैं।

चित्र १७५ लाला ग्रन्थियां



१. कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि की नली (लाला स्रोत या प्रणाली) २. कर्णाग्रवर्ती धमनी ३. चर्वणीपेशी ४. हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि प्रणाली ५. जिह्वा ६. कटी हुई निम्न हन्वस्थि ७. कटी हुई निम्न हन्वस्थि ।

क=कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि; ह=हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि; ज=जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रन्थि; प=कर्ण शष्कुली; ल=कर्ण पाली या लौर; श=कर्ण कुहर का आरंभिक भाग; म=मांस पेशी; त=त्वचा; व=वसा ।

है। 'हप्पू' इसी ग्रन्थि के प्रदाह को कहते हैं। ग्रन्थि के अगले भाग से एक नली निकलती है जिसके द्वारा लाला मुख में पहुँचता है (चित्र १७५ में १) इस नली का छिद्र गाल की श्लैष्मिक कला में ऊर्ध्वहनु के दूसरे पश्चिम चर्वणक दंत के पास होता है।

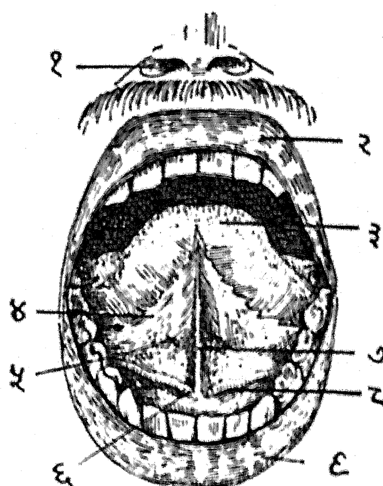
२—जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रन्थि (चित्र १७५ में ज) :—यह ग्रन्थि मुँह के फ़र्श में जिह्वा के नीचे रहती है। यदि आप मुँह खोलें और जिह्वा को भीतर कर लें तो छेदक दाँतों के पीछे मध्य रेखा के इधर उधर बादाम के बराबर दो उभार दिखाई देंगे (चित्र १७६ में ८) ये उभार इन्हीं ग्रन्थियों के हैं। ग्रन्थि श्लैष्मिक कला से ढकी रहती है। प्रत्येक ग्रन्थि का भार २ माशे के लगभग होता है। इस ग्रन्थि से कई सूक्ष्म सूक्ष्म नलियाँ निकलती हैं, इनमें से कुछ के छिद्र श्लैष्मिक कला में होते हैं, शेष नलियाँ तीसरी ग्रन्थि की नली से जुड़ी रहती हैं। यह ग्रन्थि तीनों में सब से छोटी है।

३—हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि (चित्र १७५ में ह) :—यह ग्रन्थि निम्न हनु के गात्र या समस्थ भाग के नीचे और उससे कुछ ढकी हुई रहती है। जिह्वाधोवर्ती ग्रन्थि इसके आगे और कर्णाग्रवर्ती ग्रन्थि इसके पीछे रहती है। इसका परिमाण एक छोटे से अखरोट के बराबर होता है। प्रत्येक ग्रन्थि से एक नली निकलती है जिसकी लम्बाई २ इञ्च के लगभग होती है (चित्र १७५ में ५); इस नली का मुख मध्य छेदक दन्त के ठीक पीछे जिह्वा के नीचे रहता है (चित्र १७६ में ६)। यदि आप जिह्वा को भीतर कर लें तो जिह्वा और छेदक दाँतों के बीच में ठीक मध्य रेखा में एक डोरी लगी हुई दिखाई देगी (चित्र १७६

चित्र १७६—मुँह

व्याख्या :—

१. नासारंध्र
२. ऊर्ध्वोष्ठ
३. जिह्वा ऊपर को उठी हुई है
४. श्लैष्मिक कला की झालर
५. यहाँ नीली धारी दिखाई दिया करती है, यह श्लैष्मिक कला में से चमकती हुई जिह्वा की शिरा है
६. हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि की नली का छिद्र
७. जिह्वा बंधन या ज़बान की लगाम
८. जिह्वाधोवर्ती लाला ग्रन्थि का उभार
९. अधोओष्ठ ।



में ७=जिह्वा बन्धन); इस डोरी के अगले सिरे के इधर उधर एक छोटा सा उभार होता है; इस उभार की शिखर में जो छिद्र है वह इस ग्रन्थि की नली ही का मुख है। इस नली से जिह्वाधोवर्ती ग्रन्थि की कुछ नलियाँ भी जुड़ी रहती हैं।

लाला (थूक)

लाला ग्रन्थियों में जो रस बनता है उसको लाला या थूक कहते हैं। यह एक क्षारीय रस है; उसमें श्लेष्म, ज़रासी प्रोटीन और कई प्रकार के लवण घुले रहते हैं। इन पदार्थों के अतिरिक्त उसमें एक विशेष गुणवाला पदार्थ होता है जिस में श्वेतसार

(मांड) से एक प्रकार की शर्करा बना देने की शक्ति होती है इस पदार्थ को लालाइन कहते हैं। भोजन के अन्य अवयवों पर (जैसे प्रोटीन और वसा) इस पदार्थ का कोई असर नहीं होता। यदि आप रोटी जैसी श्वेतसारीय चीज़ को देर तक चबाते रहें तो उसका स्वाद मीठा सा होने लगता है; इसका कारण श्वेतसार का शकर में परिवर्त्तन होना ही है। लाला पहिला पाचक रस है जो भोजन से मिलता है; इसका काम भोजन को गीला और मुलायम करना और उसके श्वेतसार को शकर में परिवर्त्तन करना है। लाला का गुरुत्व १००२ से १००६ तक होता है, उसमें ९९% जल होता है।

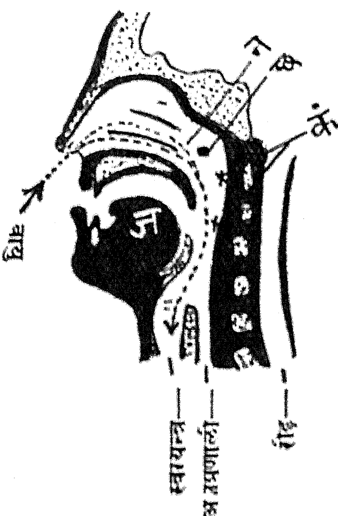
शिशुओं के थूक में ६ मास की आयु तक यह श्वेतसार परिवर्त्तक पदार्थ नहीं पाया जाता इस कारण ऐसे शिशु श्वेत-सारीय भोजन (जैसे हलुआ, रोटी) को पचाने के असमर्थ होते हैं। अन्नप्राशन संस्कार ६ मास के पश्चात् ही होना चाहिये। लाला अपना काम ऐसे भोजन पर कर सकता है कि जिसकी प्रतिक्रिया क्षारीय हो या न क्षारीय हो न अम्ल। अम्लत्व से उसका श्वेतसार परिवर्त्तक पदार्थ शिथिल हो जाता है इसलिये भोजन के साथ (विशेषकर श्वेतसारीय भोजन) सिरका इत्यादि अम्ल चीज़ों का खाना अच्छा नहीं। जिह्वा अपनी विचित्र गतियों से दाँतों द्वारा चबाये हुए लाला मिश्रित गीले भोजन से एक गोली सी बना लेती है जिसको 'गस्सा' या 'ग्रास' कहते हैं। अब यह गस्सा कण्ठ या गले में होता हुआ अन्नमार्ग के उस भाग में जाता है जिसे अन्न या आहारप्रणाली कहते हैं। भोजन के अन्नप्रणाली में पहुँचने को निगलना या 'गिलन' कहते हैं।

जिह्वा की जड़ (जिह्वा मूल) के ठीक पीछे स्वरयन्त्र का ऊपर का भाग रहता है; स्वरयन्त्र के पीछे अन्नप्रणाली का आरम्भिक भाग होता है। अन्नप्रणाली स्वरयन्त्र के पीछे है इस कारण भोजन के गस्से को अन्नप्रणाली में पहुँचने के लिये स्वरयन्त्र के ऊपर होकर जाना पड़ता है। प्रश्न उठता है कि यह गस्सा स्वरयन्त्र में क्यों नहीं गिर पड़ता? इसका उत्तर यह है कि स्वरयन्त्र के छिद्र के ऊपर एक ढकना लगा रहता है जिसे **स्वरयन्त्रच्छद*** कहते हैं (चित्र १७८ में ढ); जब हम श्वास लेते हैं तो यह ढकना स्वरयन्त्र के ऊपर नहीं रहता; स्वरयन्त्र का छिद्र खुला रहता है और वायु नासिका में से होकर बिना रुकावट के स्वरयन्त्र में पहुँचती है (चित्र १७७)। परन्तु जब हम भोजन खाते हैं तो गस्से के पीछे सरकते ही ढकना स्वरयन्त्र का छिद्र बन्द कर लेता है (चित्र १७८); यही नहीं प्रत्युत पेशियों के सङ्कोच से सम्पूर्ण स्वरयन्त्र कुछ आगे को जिह्वामूल के नीचे सरक जाता है। ढकने के बन्द होने और स्वरयन्त्र के आगे को सरकने से भोजन का स्वरयन्त्र में गिरना असम्भव हो जाता है। कभी कभी रोगों के कारण यह प्रबन्ध बिगड़ जाता है तब भोजन का अंश स्वरयन्त्र में गिर पड़ता है; इससे भयानक रोग उत्पन्न हो जाता है। कभी कभी असावधानी से या अतिशीघ्रता से जल पीने से (विशेषकर छोटे बच्चों में) जल का कुछ अंश स्वरयन्त्र में गिर पड़ता है। उस समय बड़े ज़ोर से खाँसी आती है। इस खाँसी का अभिप्राय यह है कि जल बाहर निकल जावे।

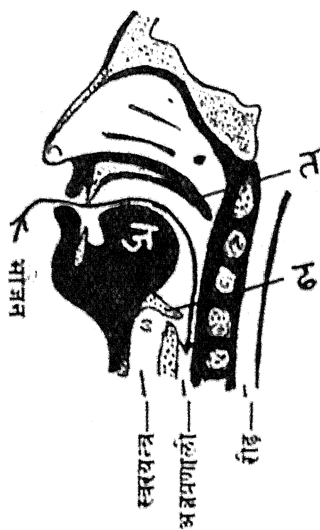
* उपजिह्वा भी कहते हैं।



चित्र १७७



चित्र १७८



व्याख्या :—न=नासिका का पिछला छिद्र । छ=कर्ण से सम्बन्ध रखने वाला छिद्र । कं=कंठ । ज=जिह्वा । त=कोमल तालु । ढ=स्वरयन्त्रच्छद ।

भोजन निगलने के समय स्वरयन्त्र ऊपर को उठता और फिर पूर्व स्थान को प्राप्त होता हुआ दिखाई दिया करता है।

कण्ठ (गला) के ऊपर के भाग में नासिका के पिछले छिद्र (चित्र १७७ में न) होते हैं। ये छिद्र कोमल तालु (चित्र १७८ में त) के ऊपर होते हैं, इसी कारण मुँह खोलने पर दिखाई नहीं देते। प्रश्न उठता है कि जब गस्सा गले में पहुँचता है तो नासिका के पिछले छिद्रों में घुस कर बाहर क्यों नहीं निकल आता? इसका उत्तर यह है कि ज्यों ही

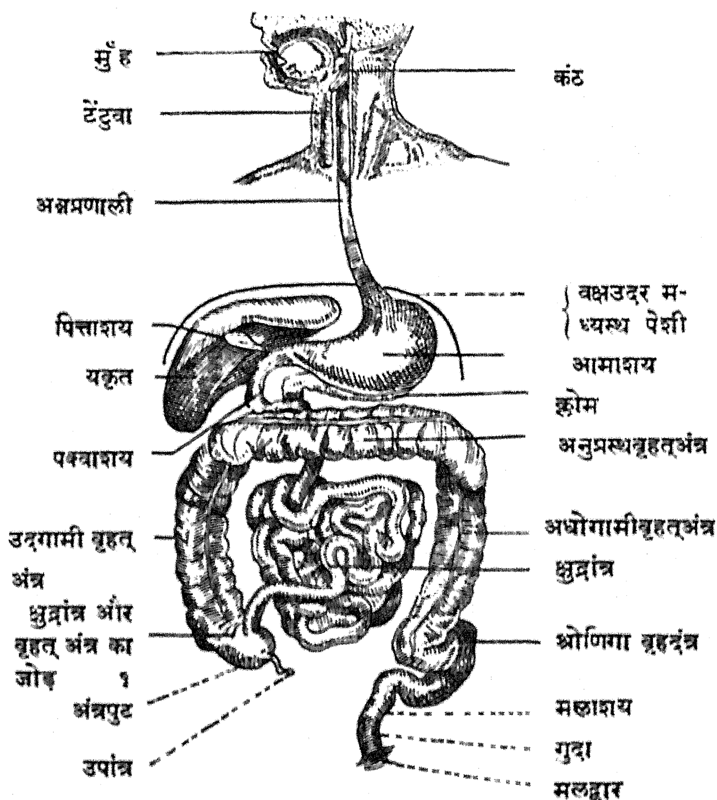
गस्सा गले में पहुँचता है त्यों ही कोमल तालु (तालूत्तंसनी तथा तालूत्थापिका पेशियों के सङ्कोच से) ऊपर को उठकर गले की पिछली दीवार के निकट जा पहुँचता है। इस क्रिया से नासिका के पिछले छिद्र जो तालु के ऊपर होते हैं ढक जाते हैं और गस्सा उनमें नहीं जा सकता। कभी कभी रोग के कारण यह प्रबन्ध बिगड़ जाता है, तब पतली चीज़ें जैसे दुग्ध, पानी, नासिका से बाहर निकल आया करती हैं। (चित्र १७७ में कोमल तालु नीचे लटका हुआ है और नासिका का गले से सम्बन्ध है; चित्र १७८ में कोमल तालु (त) ऊपर को उठकर गले की पिछली दीवार से जा लगा है, अब गले से कोई चीज़ नासिका में नहीं जा सकती)

अन्नप्रणाली (चित्र १७९)

थूक से ख़ूब मिल कर भोजन अन्नप्रणाली में पहुँचता है। इस नली का नीचे का सिरा एक थैली से जुड़ा रहता है जिसको आमाशय कहते हैं। अन्नप्रणाली की लम्बाई १० इञ्च होती है; उसका कुछ भाग ग्रीवा में रहता है; ग्रीवा में उसके सामने स्वरयंत्र वा टेंटुवा और उसके पीछे कशेरुका रहते हैं। ग्रीवा से यह नली वक्ष (छाती) में जाती है; यहाँ भी कुछ दूर तक टेंटुवा उसके सामने रहता है और रीढ़ उसके पीछे। जहाँ टेंटुवे का अन्त हो जाता है वहाँ से हृदय उसके सामने रहता है। वक्ष के दसवें या ग्यारहवें कशेरुका के सामने अन्नप्रणाली वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के एक छिद्र में से होकर उदर में पहुँच जाती है और आमाशय से जा जुड़ती है। उदर में रहने वाले भाग की लम्बाई १ इंच से अधिक नहीं होती।

अन्नप्रणाली में किसी प्रकार का पाचक रस नहीं बनता इस नली का काम केवल भोजन को कंठ से आमाशय तक पहुँचाने

चित्र १७९ अन्नमार्ग



(From Warwick and Tunstall's First Aid)

का है। नली की दीवार मांस और सौत्रिक तंतु से बनी है, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला बिछी रहती है। श्लैष्मिक कला में लम्बाई के रुख सलवटें पड़ी रहती हैं जैसा कि चित्र १४ में १ से विदित है। नली के ऊपर के भाग में ऐच्छिक मांस है और नीचे के भाग में अनैच्छिक मांस होता है।

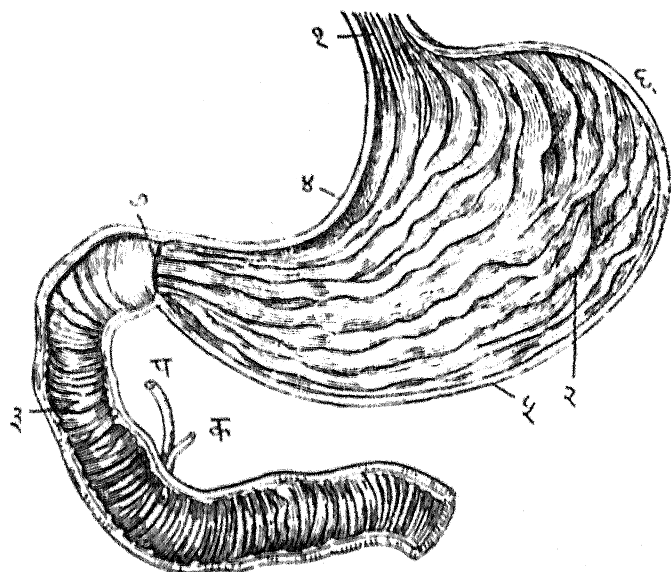
आमाशय (चित्र १६७, १७०, १८०, १८१)

इसको पाकस्थली भी कहते हैं; साधारण बोल-चाल में यह पेट कहलाता है। यह थैली उदर के बायें भाग में वक्ष-उदरमध्यस्थ पेशी के नीचे रहती है; पेशी के ऊपर वक्ष में बायाँ फुफ्फुस और हृदय रहते हैं। आमाशय का बायाँ भाग दाहिने की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। उसका आकार चमड़े की मशक से बहुत कुछ मिलता है; उसकी लम्बाई, १२-१३ इंच और चौड़ाई चार इंच के लगभग होती है। आमाशय के दो पृष्ठ होते हैं—एक सामने का जो कुछ ऊपर की ओर रहता है, दूसरा पीछे का जो कुछ नीचे की ओर रहता है। उसके दो किनारे होते हैं एक दाहिना नतोदर और छोटा, दूसरा बायाँ उन्नतोदर और लम्बा (चित्र १८० में ४ और ५) आमाशय में दो छिद्र या द्वार भी होते हैं, एक छिद्र बाईं ओर हृदय के निकट होता है। अन्नप्रणाली से भोजन इसी छिद्र या द्वार में होकर उसके भीतर आता है यह हृदयद्वार कहलाता है (चित्र १८० में १); दूसरा द्वार दाहिनी ओर होता है, इसमें से होकर भोजन अंत्र में पहुँचता है। यह पक्वाशयिक द्वार है (चित्र १८० में ७)। आमाशय की समाई १½ सेर के लगभग होती है (७०-७५ घन इंच)।



आमाशय की दीवार अनैच्छिक मांस और सौत्रिक तंतु की होती है। मांस की कई तहें होती हैं। भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक

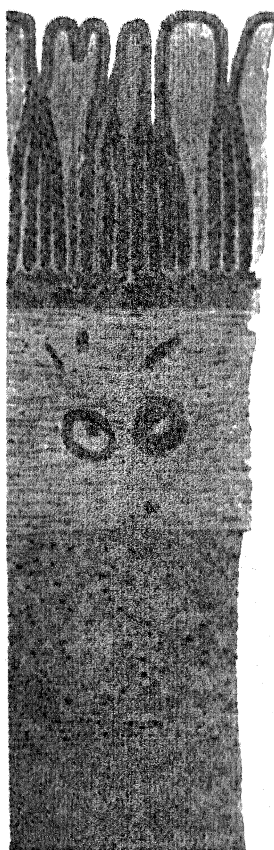
चित्र १८० आमाशय और पक्वाशय



१. अन्नप्रणाली का अन्तिम भाग; यह आमाशय का अन्नप्रणाली की ओर का द्वार है; हृदय के निकट रहने के कारण इसको हृदयद्वार भी कहते हैं। २. आमाशय की श्लैष्मिक कला की सलवटें। ३. पक्वाशय की श्लैष्मिक कला की सलवटें। ४. आमाशय का दाहिना नतोदर किनारा। ५. आमाशय का बायाँ उन्नतोदर किनारा। ६. आमाशय का ऊर्ध्वांश। ७. यहाँ पक्वाशय का आरम्भ होता है, यह आमाशय का पक्वाशयिक द्वार है। प=पित्तप्रणाली। क = क्लोमप्रणाली।

कला बिछी रहती है जिसमें अनेक सूक्ष्म सूक्ष्म नलाकार ग्रन्थियाँ

चित्र १८१ आमाशयिक दीवार की सूक्ष्म रचना (Mall)



होती हैं। मांस के बाहर अर्थात् आमाशय के बाहरी पृष्ठ पर एक

पतली झिल्ली चढ़ा रहती है—यह उदरक कला का भाग है (चित्र १७१ में आ के चारों ओर झिल्ली चढ़ी है)।

यदि आमाशय की दीवार के एक छोटे से भाग के अनेक पतले पतले पन्ने काटे जावें और फिर ये पन्ने अणुवीक्षण द्वारा यथाविधि देखे जावें तो दीवार की बनावट ऐसी दिखाई देगी जैसी कि चित्र १८१ में दर्शाई गई है।

पक्काशयिक द्वार पर मांस की मोटी तह होती है। इस मांस के संकोच से यह द्वार बंद रहा करता है; जब भोजन आमाशय से अंत्र में जाने वाला होता है तब मांस के प्रसार से यह द्वार खुल जाता है। इस द्वार पर लगे हुए मांस को पक्काशयिकद्वार संकोचनी पेशी या केवल पक्काशयिका पेशी कहते हैं।

आमाशय की श्लैष्मिक कला (चित्र १८१ वा १८२;१८४)

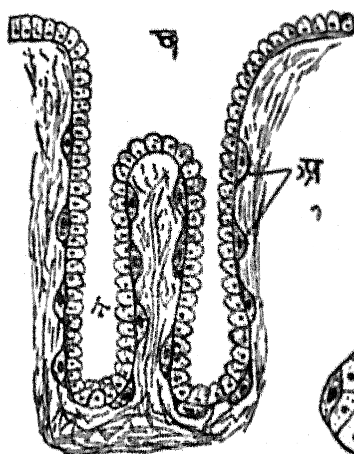
श्लैष्मिक कला में लम्बाई के रुख सलवटें पड़ी रहती हैं जैसा कि चित्र १८०, १८४ से विदित है। जब आमाशय खाली होता है तब कम रक्त रहने के कारण इस कला का रंग हलका पांडुर रहता है; जब उसमें भोजन आता है तब अधिक रक्त के कारण रंग लाल सा हो जाता है और रस बनने लगता है।

श्लैष्मिक कला में बहुत सी नली जैसी ग्रन्थियाँ होती हैं (चित्र १८२ में न एक नलाकार ग्रन्थि है)।

ग्रन्थि की दीवार में दो प्रकार की सेलें हैं जैसा कि चित्र १६ से विदित है :—१—स्तंभाकार या घनाकार सेलें; २—बड़ी और मोटी मींगी वाली सेलें (चित्र १८२ में अ); ये अम्लोत्पादक सेलें कहलाती हैं।

अम्लोत्पादक सेलें आमाशय के चौड़े भाग में (चित्र १८० में ६) बहुत होती हैं; पक्वाशय की ओर के भाग में कम।

चित्र १८२ आमाशय की नलाकार ग्रन्थियाँ



छ=ग्रन्थि स्रोत का छिद्र; न=नलाकार ग्रन्थि; अ=अम्लोत्पादक सेलें।

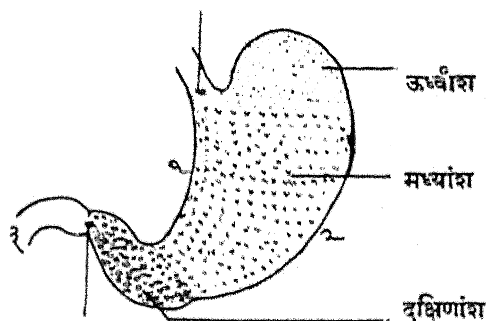
आमाशयिक रस

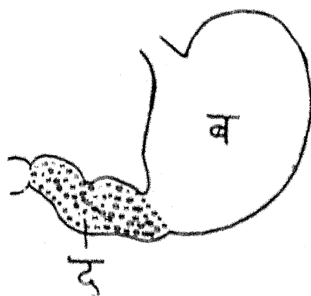
आमाशय की ग्रन्थियों में जो रस बनता है वह आमाशयिक रस कहलाता है। इस रस की प्रतिक्रिया अम्ल होती है। जिस अम्ल के कारण इसकी प्रतिक्रिया अम्ल होती है उसका नाम हाइड्रोक्लोरिक अम्ल* या नमक का तेज़ाब है। यह उदजन और

*हिन्दी नाम उज्जहरिक या अभिद्रवहरिक हैं।

हरिन दो गैसों का संयोजित है। इस अम्ल के अतिरिक्त इस रस में पेप्सीन† और रेनेट† नामक दो विशेष पदार्थ होते हैं;

चित्र १८३ आमाशय





चित्र व्याख्या

(१) १=नतोदर किनारा २=उन्नतोदर किनारा। ३=पक्काशय (२) भोजन पचने के समय आमाशय की आकृति। द=दक्षिणांश मांस के संकोच से लम्बा और नली जैसा हो जाता है; भोजन इसी भाग में मथा जाता है।

ब=आमाशय का शेष भाग। इसमें भोजन इकट्ठा रहता है और धीरे धीरे दक्षिणांश में जाता है।

†अङ्गरेज़ी भाषा के शब्द हैं।

रस में कई प्रकार के लवण भी रहते हैं। आमाशयिक रस एक पतला और कुछ कुछ विवर्ण द्रव होता है; उसमें विशेष प्रकार की गन्ध आया करती है; उसका गुरुत्व १००२ से १००३ तक होता है।

लाला मिश्रित गीला भोजन आमाशय के बायें चौड़े भाग में आकर इकट्ठा हुआ करता है। भोजन पहुँचने पर आमाशयिक रस बनना आरम्भ होता है (वास्तव में रस बनने की तैयारी तो स्वादिष्ट और रोचक भोजन को देखते ही होने लगती है); रस तैयार होने में कोई आध घंटा लगता है। जब तक यह अम्ल रस भोजन से नहीं मिलता तब तक लाला का श्वेतसार परिवर्त्तक पदार्थ भोजन के श्वेतसार पर अपना असर करता रहता है। ज्योंही भोजन की प्रतिक्रिया आमाशयिक रस से मिलने के कारण अम्ल हो जाती है त्योंही लाला का असर बन्द हो जाता है।

चौड़े भाग से भोजन थोड़ा थोड़ा क्रमशः बायें तङ्ग भाग में पहुँचता है।

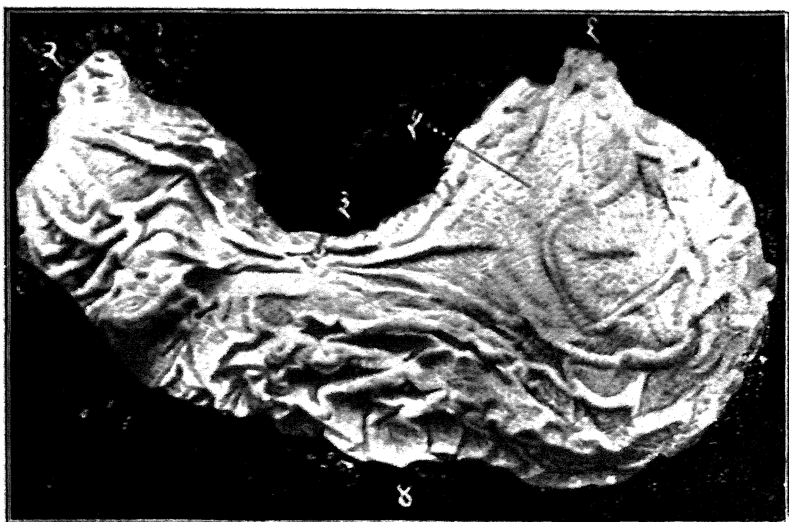
आमाशय की गतियाँ—(चित्र १८४)

जहाँ तक गतियों का सम्बन्ध है हम आमाशय के पाँच भाग मान सकते हैं :—

१—वह भाग जहाँ अन्नप्रणाली का अंत होता है; यह हृदय-द्वार है; यहाँ मांस अधिक होता है; मांस के संकोच से यह द्वार बंद रहता है; उसके प्रसार से यह द्वार खुल जाता है जब आमाशय खाली होता है तब यह द्वार बहुधा खुला रहता है परन्तु जब आमशय में भोजन होता है तब यह द्वार बंद रहता है।

हमारे शरीर की रचना—प्लेट ३२
चित्र १८? आमाशय की श्लैष्मिक कला

चित्र १८५ आमाशय की श्लैष्मिक कला



त्रि० ना० वर्मा

१=अन्न प्रणाली का अन्त (हृदय द्वार); २=आमाशय का अन्त (पक्वाशयिक द्वार);
३=नतोदर किनारा ; ४=उन्नतोदर किनारा

पृष्ठ ४३८ के सम्मुख

२—बाईं ओर का चौड़ा और स्थूल भाग इसको ऊर्ध्वांश कहते हैं।

३—बीच का भाग—यह मध्यांश कहलाता है

४—दाहिनी ओर का तंग भाग यह दक्षिणांश है

५—पक्काशयिक द्वार। यह द्वारसंकोचनी पेशी के संकोच से सदा बंद रहता है; जब भोजन आमाशय से अंत्र में जाने योग्य बनता है तब ही यह द्वार खुलता है।

अम्ल रस अधिकतर मध्यांश में बनता है; ऊर्ध्वांश और दक्षिणांश में अम्ल बनाने वाली ग्रन्थियाँ कम होती हैं; दक्षिणांश में पक्काशयिक द्वार के पास इस प्रकार की ग्रन्थियाँ होती ही नहीं।

भोजन आकर ऊर्ध्वांश और मध्यांश में इकट्ठा हो जाता है। आमाशय के बायें भाग में बहुत कम गतियाँ होती हैं; यह भाग भंडार का काम देता है जिस में भोजन जमा रहता है। मध्यांश में धीरे धीरे अम्ल रस बनने लगता है; आमाशयिक रस सब भोजन से एक दम नहीं मिल जाता इस कारण भोजन के उस भाग में (विशेषकर उस भाग में जो आमाशय के बीच में दीवारों से बचा हुआ है) जो अभी अम्ल रस से नहीं मिला लाला अपनी पाचक क्रिया करता रहता है।

अब मध्यांश में गतियाँ होने लगती हैं; मांस सिकुड़ता है और फैलता है जिसके कारण आमाशय की दीवारें कभी मोटी हो जाती हैं और कभी पतली; मांस के संकोच से इस भाग की समाई घट जाती है और भोजन पर दबाव पड़ता है; थोड़ा सा भोजन दक्षिणांश में चला जाता है। दक्षिणांश में मांस अधिक होता है; इस कारण यहाँ गतियाँ भी खूब होती हैं; गतियों की

लहरें उठती हैं जो मध्यांश से पक्काशयिक द्वार की ओर जाती हैं; मांस के संकोच से दक्षिणांश में जो भोजन है वह खूब मथ जाता है और आमाशयिक रस से मिलकर पतला हो जाता है। जब तक भोजन पतला नहीं बन जाता और उसके मोटे टुकड़े खूब पिस नहीं जाते तब तक दक्षिणांश में गतियाँ होती रहती हैं और पक्काशयिक द्वार भी बन्द रहता है। मध्यांश से पक्काशयिक द्वार तक पहुँचने में एक लहर को २० सेकंड लगते हैं; एक लहर के बाद दूसरी दूसरी के बाद तीसरी इस प्रकार गतियाँ होती रहती हैं।

जब दक्षिणांश में आया हुआ भोजन अम्ल रस से खूब मिल कर पतला हो जाता है तब पक्काशयिक द्वार मांस के प्रसार से खुल जाता है और दक्षिणांश इस पतले भोजन को बड़े वेग से पक्काशय में ढकेलता है। अब मध्यांश से कुछ और भोजन आता है; यह भी उसी प्रकार मथा जाता है और फिर पक्काशय में ढकेल दिया जाता है। इस तरह सहज सहज सब भोजन पक्काशय में पहुँच जाता है।

सामान्य भोजन आमाशय में लगभग ४½ घन्टे ठहरता है। जो भोजन दाँतों द्वारा भली प्रकार नहीं चबाया गया वह आमाशय में देर तक ठहरता है कारण यह है कि जहाँ तक हो सकता है आमाशय किसी सख़्त चीज़ को अंत्र में नहीं जाने देता। दाँतों का काम आमाशय जैसे कोमल अंग से कभी न लेना चाहिये, भोजन को खूब चबाकर खाना चाहिये। उपरोक्त मंथन क्रिया द्वारा भोजन से अम्ल प्रतिक्रिया वाले बने हुए द्रव को आहार रस कहते हैं। अंत्र में पहुँच कर आहार रस की प्रतिक्रिया क्षारीय हो जाती है

आमाशयिक रस और दुग्ध

दुग्ध में दो प्रोटीनें होती हैं—दुग्धज और किलाटजजनक। ये दोनों प्रोटीनें घुली रहती हैं। कई साधन ऐसे हैं जिनके द्वारा इन प्रोटीनों में से एक अनघुल बनाई जा सकती है। अम्लों के प्रभाव से किलाटजजनक अनघुल बन जाती है; नींबू का रस (इसमें साइट्रिक अम्ल होता है) दूध में मिलाया जावे तो दूध फट जायगा और एक प्रकार का दही बन जायगा। इसमें परिवर्त्तन यह होता है कि घुलनशील किलाटजजनक अब अनघुल बन गई है और पानी से अलग हो गई है। एक प्रकार के बकटेरिया (सूक्ष्म वनस्पतियाँ) ऐसे होते हैं कि यदि वे दुग्ध में मिला दिये जावें तो दुग्ध से दही बन जायगा, ये बकटेरिया भी एक अम्ल बनाते हैं जो किलाटजजनक को अनघुल बना देता है; दही में यह बकटेरिया रहते हैं और उसका खटास इन बकटेरिया के बनाये हुए अम्ल के कारण होता है। बकटेरिया अधिक उष्णता के प्रभाव से मर जाते हैं और अधिक शीत से उनकी बढ़ोत बन्द हो जाती है। यह सब लोग जानते हैं कि यदि उबलते हुए दुग्ध में जामन दिया जावे (अर्थात् ज़रा सा दही मिलाया जावे) तो वह दुग्ध बहुधा नहीं जमता; इसका कारण यह है कि अम्लोत्पादक बकटेरिया तो मर जाते हैं और ज़रा से दही में इतना अम्ल होता नहीं जो किलाटजजनक को अनघुल बना सके। अधिक शीत के कारण दुग्ध इस कारण नहीं जमता कि अम्लोत्पादक बकटेरिया की बढ़ोत बन्द हो जाती है; ग्रीष्म ऋतु में दुग्ध बिना जामन दिये भी कभी कभी जम जाता है, या फट जाता है; इसका कारण यह है कि वायु से

उसमें अम्लोत्पादक बकटेरिया आ जाते हैं ।

जब दुग्ध आमाशय में पहुँचता है तब वहाँ अम्ल मिलता है, आमाशयिक रस में दुग्ध जमानेवाला "रेनेट" नामक पदार्थ भी होता है । रेनेट में यह गुण है कि वह उन खटिक संयोजित की सहायता से जो दुग्ध में रहते हैं किलाटजजनक को अनघुल बनाकर दुग्ध से दही बना दे; अम्ल की सहायता से यह क्रिया और भी जल्दी होती है । आमाशय में जो दही बनता है उसका थक्का इतना बड़ा और दृढ़ नहीं होता जैसा शरीर से बाहर जमे हुए दही का; इसके थक्के छोटे छोटे बनते हैं । जितने छोटे थक्के होते हैं उतनी ही अच्छी तरह से आमाशयिक रस का पाचक असर उनपर होता है ।

दुग्ध का आमाशय में पहुँच कर जम जाना एक स्वाभाविक क्रिया है अस्वाभाविक नहीं जैसा कि कुछ लोगों का मिथ्या विचार है ।

जमने के पश्चात् दही उसी प्रकार पचता है जैसे कि और भोजन ।

आमाशयिक रस का भोजन की प्रोटीनों पर असर

भोजन की प्रोटीनें (चाहे वे मांस से प्राप्त हों और चाहे अन्न से) ऐसी होती हैं कि जब तक उनमें एक विशेष प्रकार का परिवर्त्तन न हो वे अन्नमार्ग की श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में नहीं पहुँच सकतीं । जब तक भोजन की वस्तुएं हमारे शरीर के भीतर रक्त में न पहुँच जावें उस वक्त तक उनका खाना या न खाना बराबर है ।

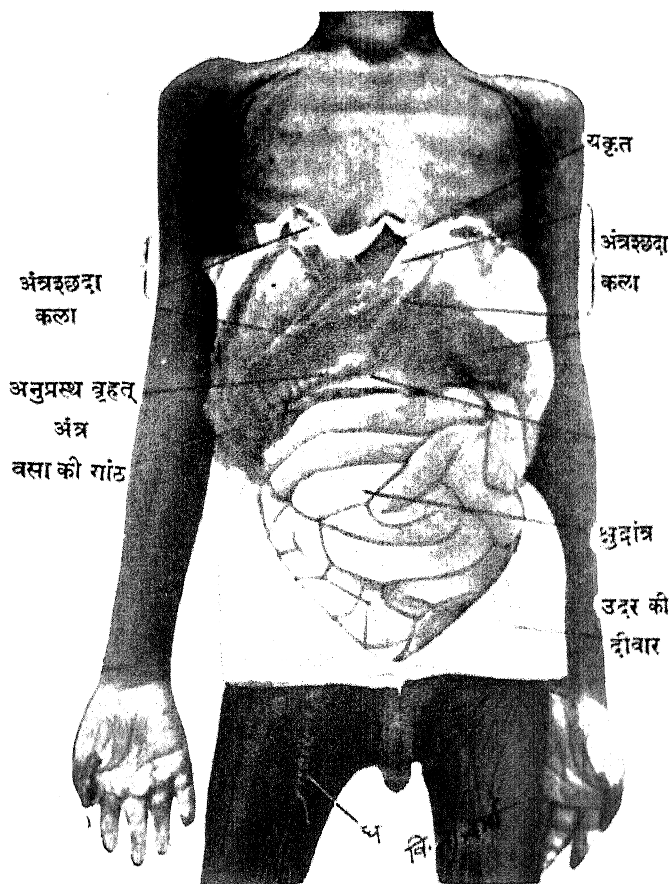
चित्र १८५



उदर की अगली दीवार के काटने पर उदरस्थ अंगों का दृश्य।
१०–११ वर्ष के बालक की शव का फोटो

पृष्ठ ४४२ के सम्मुख

चित्र १८६



अंत्रश्छदा कला ऊपर को हटा दी गयी है

आमाशयिक रस में पेप्सीन नामक एक पदार्थ होता है। यह पदार्थ प्रोटीनविश्लेषक है अर्थात् वह प्रोटीनों का विश्लेषण करके उनसे और नये पदार्थ बना सकता है। पेप्सीन के काम करने के लिए अम्ल का होना ज़रूरी है। बिना इस हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के पेप्सीन अपना काम नहीं कर सकता। अम्लमिश्रित पेप्सीन की क्रिया से जो प्रोटीनों से नये पदार्थ बनते हैं वे अधिकतर घुलनशील होते हैं और उनमें से कुछ तो ऐसे होते हैं कि श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में पहुँच सकते हैं। परंतु सामान्यतः सब प्रोटीन का पूर्ण विश्लेषण आमाशय में नहीं होता इसलिये यह अधपची प्रोटीनें अंत्र में पहुँचती हैं और वहाँ जाकर और पाचक रसों की सहायता से जिनमें पेप्सीन से अधिक प्रबल प्रोटीनविश्लेषक पदार्थ होता है पूरे तौर से पचती हैं तत्पश्चात् उनसे बने हुए नये पदार्थ रक्त में पहुँचते हैं।

आमाशयिक रस का कर्बोज पर असर

आमाशयिक रस का श्वेतसार पर कोई असर नहीं होता, जहाँ तक इस रस का सम्बन्ध है वह ज्यों का त्यों रहता है। हम पीछे बतला चुके हैं कि जब तक यह रस भोजन से अच्छी तरह नहीं मिलता तब तक लाला आमाशय में भी अपना असर श्वेतसार पर करता रहता है।

आमाशयिक अम्ल के प्रभाव से इक्षोज (गन्ने की शकर) से द्राक्षोज (अंगूरी शकर) वा फलोज बन जाती हैं।

आमाशयिक रस का वसा* और तैल पर असर

जमी हुई वसा (चर्बी, घृत) आमाशय में पहुँचकर शरीर की गरमी से पिघल कर द्रवरूप में आ जाती है। वसा (चर्बी, घृत) सेलों के भीतर रहती है; अम्ल मिश्रित पेप्सीन की क्रिया से सेल का प्रोटीन भाग घुल जाता है और वसा के बिंदुक बाहर निकल आते हैं। वसा और तैल पर किसी और प्रकार की रासायनिक क्रिया नहीं होती।

आहार रस

आमाशय से आहार रस अंत्र में जाता है। इस आहार रस की प्रतिक्रिया अम्ल है; उसमें प्रोटीनों के विश्लेषण से उत्पन्न हुए नये और घुलनशील यौगिक हैं; वसा पिघली हुई है; और उसके बिन्दुक अब सेलों के भीतर नहीं हैं; श्वेतसार थोड़ा बहुत यवौज के रूप में आ गया है; इक्षोज से द्राक्षौज और फलौज बन गई हैं। जल और लवण ज्यों के त्यों हैं।

क्षुद्र अंत्र—(चित्र १८५, १८६, १८७, १८८, १८९)

यह नली कोई २२ फुट लम्बी होती है और उसका व्यास

---

* वसा—यह शब्द सामान्यतः प्राणियों के शरीर में पाई जाने वाली चर्बी के लिए लाया जाता है, घृत और वनस्पतियों से निकलनेवाले तैल के लिये नहीं परन्तु रसायनानुसार चर्बी, घृत और तैलों में अधिक भेद नहीं है। इस कारण हम ने इस पुस्तक में वसा शब्द इन सब चीज़ों के लिये लिखा है। उसका अर्थ वही समझना चाहिये जो कि अंगरेज़ी भाषा के फेट्स Fats का होता है।

$1\frac{1}{4}$ से $1\frac{3}{4}$ इंच तक होता है। क्षुद्रांत्र सर्प की तरह गेंडली मारे उदर में पड़ी रहती है। इसका नीचे का सिरा बृहत् अंत्र से जुड़ा रहता है। क्षुद्रांत्र बृहत् अंत्र से कम चौड़ी होती है परन्तु लम्बाई में उससे चौगुनी होती है।

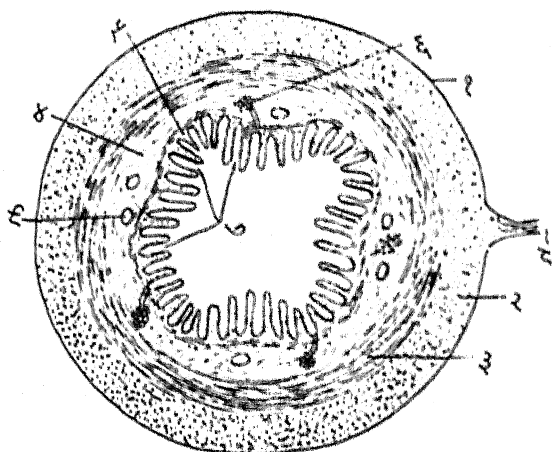
क्षुद्रांत्र का प्रारंभिक बारह अंगुल (१० इंच) लम्बा भाग एक अपूर्ण चक्र की शकल में मुड़ा रहता है (देखो चित्र १७९, १८०)। इस भाग को द्वादशांगुल अंत्र या पक्वाशय कहते हैं। क्षुद्रांत्र के शेष भाग के उपर के $\frac{2}{5}$ भाग की रचना नीचे के $\frac{3}{5}$ भाग की रचना से ज़रा भिन्न है। ऊपर के भाग को उत्तर या ऊर्ध्व क्षुद्रांत्र और नीचे के भाग को दक्षिण या अधर क्षुद्रांत्र कहते हैं। यकृत और क्लोम ग्रन्थियों के रस पक्वाशय में आकर भोजन से मिलते हैं।

क्षुद्रांत्र की दीवार की रचना वैसी ही है जैसी कि आमाशय की; सब से बाहर उदरक कला रहती है। सब से भीतर श्लैष्मिक कला; दोनों के बीच में अनैच्छिक मांस रहता है। मांस की दो तहें होती हैं एक बाहरी जिसमें सेलें लम्बाई के रुख बिछी रहती हैं; दूसरी भीतरी। इसमें सेलें चौड़ाई के रुख रहती हैं। मांस और श्लैष्मिक कला के बीच में सौत्रिक तंतु की एक तह रहती है; इस तह में कुछ ग्रन्थियाँ भी रहती हैं (चित्र १८७ में ६; चित्र १८८)। श्लैष्मिक कला से मिली हुई एक बहुत पतली तह अनैच्छिक मांस की होती है (चित्र १८७ में ५, चित्र १८८)।

क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला (चित्र १८८, १८९, १९०)

श्लैष्मिक कला में गोलाई (चौड़ाई) के रुख झोल या

चित्र १८७—अंत्र की रचना

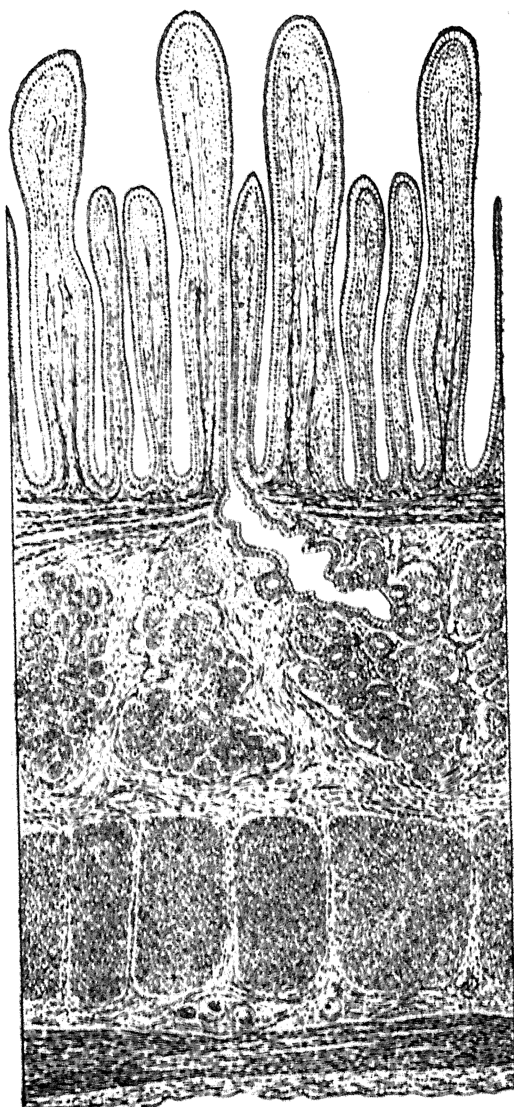


व्याख्या :—१. उदरक कला; २. मांस की बाहरी तह; ३. मांस की भीतरी तह; ४. सौत्रिक तंतु; ५. श्लैष्मिक कला का मांस; ६. सौत्रिक तंतु की ग्रन्थि; ७. श्लैष्मिक कला की नलाकार ग्रंथियाँ; ८. अंत्रधारक कला

सलवटें पड़ी रहती हैं जैसी कि चित्र १८९ में दिखाई देती हैं। कला की सूक्ष्म रचना आमाशय की कला की रचना से कुछ भिन्न है; यह बात चित्र १८८ का चित्र १८१ से मुक़ाबला करने से समझ में आ जावेगी।

श्लैष्मिक कला में नलाकार ग्रन्थियों के बीच में बहुत से बाल जैसे बारीक उभार होते हैं (चित्र १८८) ये उभार ग्राहकांकुर कहलाते हैं क्योंकि इनका काम चीज़ों को ग्रहण करना है जैसा कि आगे चलकर बतलाया जायगा। एक वर्ग इंच श्लैष्मिक कला में कोई १२००० ग्राहकांकुर होते

चित्र १८८—क्षुद्रांत्र की सूक्ष्म रचना



(After Schäfer from Gray's Anatomy.)

हैं। हर एक ग्राहकांकुर की लम्बाई १/४८ से १/८ इंच तक होती है। ग्राहकांकुर केवल क्षुद्रांत्र में ही होते हैं, न आमाशय में पाए जाते हैं और न बृहत् अंत्र में। हर एक ग्राहकांकुर के भीतर बीच में एक बड़ी लसीका वाहिनी रहती है; लसीका वाहिनी के चारों ओर कुछ सेलें, रक्त कोशिकाएं और अनैच्छिक मांस रहते हैं; इस अनैच्छिक मांस के संकोच से ग्राहकांकुर बहुधा हिला करते हैं।

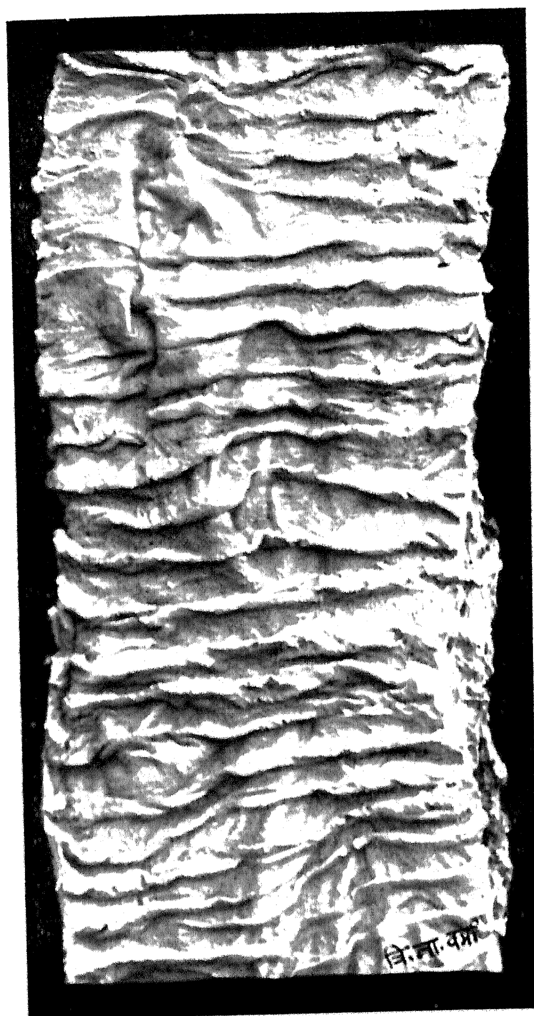
पक्वाशय की सौत्रिक तंतु में बहुत सी एक विशेष प्रकार की कोष्ठाकार ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं (चित्र १८८) ये ग्रन्थियाँ क्षुद्रांत्र के शेष भाग में नहीं होतीं।

क्षुद्रांत्र के नीचे के भाग (दक्षिण क्षुद्रांत्र) की दीवार में कुछ विशेष "ग्रन्थि समूह" होते हैं; इनकी लम्बाई १/२ से ४ इंच तक और चौड़ाई १/२ इंच होती है; ये समूह श्लैष्मिक कला के नीचे रहते हैं; इस स्थान में ग्राहकांकुर नहीं पाये जाते। ये ग्रन्थि समूह उत्तर क्षुद्रांत्र के ऊपर के भाग में अर्थात् पक्वाशय के निकट कम होते हैं। कुल क्षुद्रांत्र में इनकी संख्या २० से ३० तक होती है। वृहत् अंत्र में ये ग्रन्थि समूह नहीं होते। टायफौयड ज्वर में इन ग्रन्थिसमूहों का प्रदाह हो जाता है और इन में ज़ख्म भी बन जाते हैं; अंत्र के क्षय रोग में भी ऐसा हो जाता है (देखो चित्र १९०)।

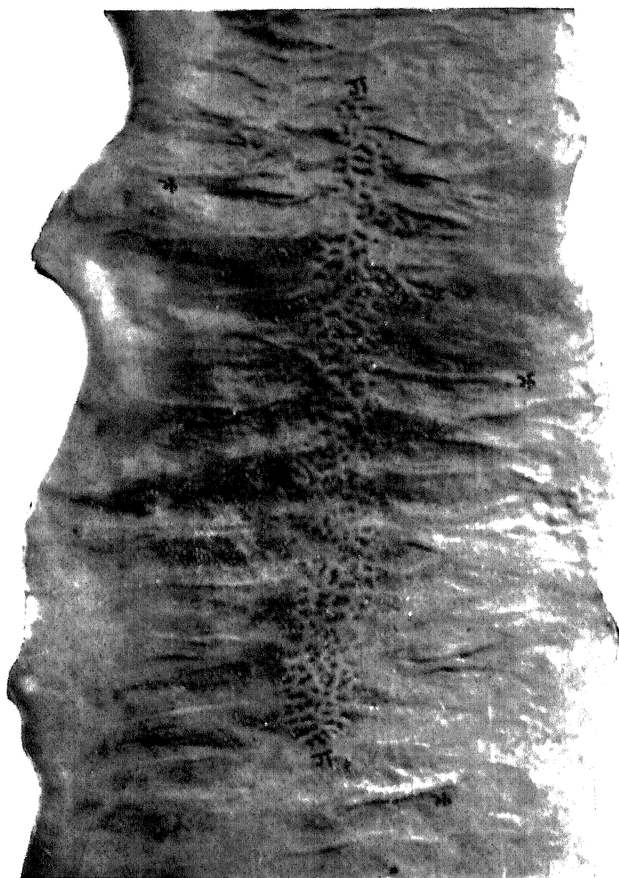
तुद्रांत्रीय रस

जो रस क्षुद्रांत्र की ग्रन्थियाँ बनाती हैं उसको क्षुद्रांत्रीय रस कहते हैं; इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इस रस में कई विशेष गुणवाले पदार्थ होते हैं जिनका वर्णन आगे किया जावेगा।

चित्र १८९ क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला



चित्र १९० क्षुद्रांत्र के नीचे के भाग की श्लैष्मिक कला



ग से ग तक=ग्रन्थि समूह

पृष्ठ ४४९ के सम्मुख

यकृत (चित्र १७९, १९१, १९२, १९७)

यह शरीर भर में सब से बड़ा ग्रन्थि है और उदर के ऊपर क भाग वक्षउदरमध्यस्थ पेशी के नीचे पसलियों की आड़ में हती है। यकृत का अधिक भाग मध्य रेखा के दाहिनी ओर गैर कौड़ी प्रदेश में रहता है; शेष भाग मध्य रेखा के बाईं ओर आमाशयिक प्रदेश में आमाशय के सामने रहता है (चित्र ६७, १८६)।

वक्ष में यकृत के ऊपर (परन्तु उससे वक्षउदरमध्यस्थ पेशी द्वारा बचे हुए) दाहिना फुप्फुस और हृदय रहते हैं। यकृत का भार १$\frac{3}{4}$ सेर से कुछ कम होता है; उसके भार की शरीर के भार से निसबत यह रहती है :—१: ४०। नवजात शिशु के यकृत के भार की उसके शरीर के भार से निसबत यह रहती है :—१:२० से १:१८ तक। गर्भावस्था में भी यकृत का आपेक्षिक परिमाण बड़ा होता है। उसका गुरुत्व १००५—१००६ होता है। यकृत रंग में गहरा सुर्खी मायल भूरा और स्पर्श करने में मुलायम और मृदु परन्तु ठोस होता है। उसकी लम्बाई (दाहिनी ओर से बांई ओर तक का माप) ८ से १० इं० तक होती है; दाहिना भाग मोटा और चौड़ा होता है, बायाँ पतला और चपटा; दाहिने भाग की ऊँचाई ६-७ इंच और चौड़ाई (सामने से पीछे तक का माप) ४-६ इंच होता है।

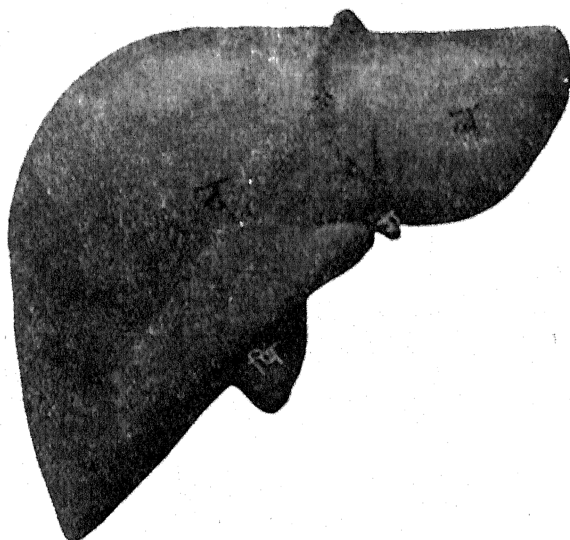
स्वस्थ मनुष्य का यकृत दाहिनी चूचुक रेखा * में पसलियों से नीचे नहीं रहता अर्थात् इस रेखा में सब का सब पसलियों

* चूचुक में से होती हुई एक कल्पित खड़ी रेखा ; यह रेखा उदर की खड़ी रेखा के समान्तर रहेगी।

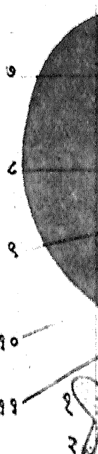
की आड़ में रहता है। जब विकारों के कारण वह बड़ा हो जाता है तब पसलियों के नीचे उतर आता है और चूचुक रेखा में उदर की दीवार को अँगुलियों से दबाकर सहज में स्पर्श किया जा सकता है।

यकृत के पाँच पृष्ठ होते हैं दाहिना पार्श्विक, नीचे का, सामने का, पीछे का और ऊपर का। इनमें से नीचे का पृष्ठ (अधोभाग) सब से चौड़ा और बड़ा होता है और शेष पृष्ठों की अपेक्षा कुछ सपाट होता है ; और चारों पृष्ठ उभरे हुए होते हैं।

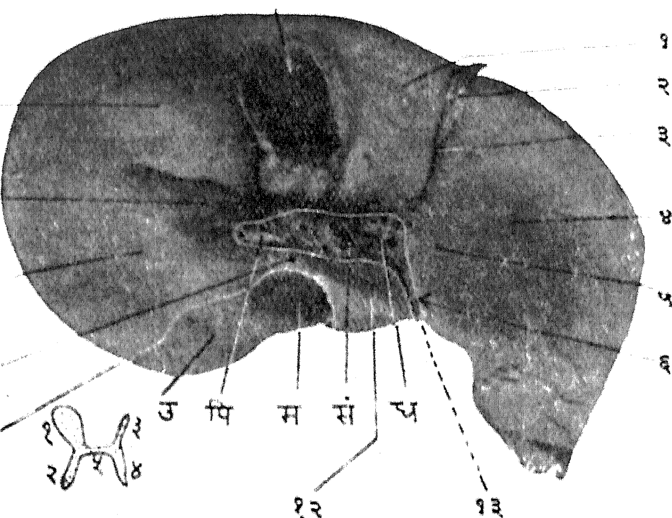
चित्र १९१ यकृत (सामने का भाग)



द=दहिना खंड ; ब=बायां खंड ; दा=दात्रिका बंधन ; ग=गोल बंधन; पि=पित्ताशय; प=पसलियों के निशान।



चित्र १९२— यकृत का अधोभाग



चित्र-व्याख्या :—१=चतुरस्र खंड; २=गोल बन्धन; ३=नाभि शिरा खात; ४=आमाशय का स्थान; ५=उभार; ६=उद्रक कला ७=बृहत् न्त्र के याकृत कोण का स्थान; ८=पक्वाशय का स्थान; ९=दाहिने वृक्क का थान; १०=उभार; ११=उद्रक कला, १२=यकृत का एक खंड; १३=शिरा योजक खात; उ=उपवृक्क का स्थान (उद्रक कला रहित); म=अधोगा हाशिरा खात; पि=पित्त प्रणाली; सं=संयुक्ता शिरा; ध=याकृति धमनी।

छोटा चित्र :—१=पित्ताशय खात; २=महा शिरा खात; ३=नाभि मनी खात; ४=शिरा संयोजक खात ; ५=यकृत द्वार (बड़े चित्र में इसके ारों ओर श्वेत रेखा है) पाचों खातों के मिलने से अँगरेज़ी भाषा के] अक्षर जैसी शकल बन जाती है।

यकृत का अधोभाग (चित्र १९२) :—नीचे के और सामने के पृष्ठों के बीच में यकृत का अगला किनारा रहता है। यकृत के सामने के पृष्ठ का अधिक भाग पसलियों की महराब के नीचे कौड़ी प्रदेश में रहता है और उदर की दीवार में से स्पर्श किया जा सकता है (देखो चित्र १८५, १८६)। नीचे के पृष्ठ (अधो भाग) पर पाँच गढ्हे होते हैं। एक गढ्हे में पित्ताशय रहता है; यह अंग दाहिनी नौवीं उपपर्शुका के ठीक पीछे रहता है। पित्ता-शय के बाईं ओर एक गढ्हे में यकृत का गोल बन्धन* रहता है। (चित्र १९२ में २)। पित्ताशय और गोल बन्धन के गढ्हे पीछे जाकर एक चौड़े और गहरे गढ्हे से जा मिलते हैं; इस बड़े गढ्हे को यकृत द्वार कहते हैं; इस स्थान में यकृत की धमनी, संयुक्ता शिरा और कुछ नाड़ियाँ† भीतर घुसती हैं और पित्त स्रोत बाहर निकलते हैं। यकृत द्वार के पीछे दो गढ्हे और होते हैं; एक में अधोगा महाशिरा रहती है, यकृत की शिराएँ इसी गढ्हे में अधोगा महाशिरा से जुड़ जाती हैं; दूसरा गढ्हा कम गहरा होता है, इसमें गर्भावस्था में नाभि शिरा की एक शाखा रहा करती है; जब बच्चा पैदा हो जाता है तब इसमें रक्त नहीं रहता और वह सूख कर रज्जु के समान हो जाती है। (चित्र १९२)।

---

* गर्भावस्था में इस गढ्हे में नाभि शिरा रहती है। प्रसव के पश्चात् इस शिरा में रक्त नहीं बहता और वह सूखकर एक रज्जु के समान हो जाती है। एक ओर यह रज्जु यकृत से जुड़ी रहती है दूसरी ओर नाभि से। यही यकृत का गोल बन्धन है (चित्र १६७ में वं)

† वात सूत्र

यकृत का अधोभाग (चित्र १९२) :—नीचे के और सामने के पृष्ठों के बीच में यकृत का अगला किनारा रहता है। यकृत के सामने के पृष्ठ का अधिक भाग पसलियों की महराब के नीचे कौड़ी प्रदेश में रहता है और उदर की दीवार में से स्पर्श किया जा सकता है (देखो चित्र १८०, १८६)। नीचे के पृष्ठ (अधो भाग) पर पाँच गढ़हे होते हैं। एक गढ़हे में पित्ताशय रहता है, यह अंग दाहिनी नौवीं उपपर्शुका के ठीक पीछे रहता है। पित्ताशय के बाईं ओर एक गढ़हे में यकृत का गोल बन्धन* रहता है। (चित्र १९२ में २)। पित्ताशय और गोल बन्धन के गढ़हे पीछे जाकर एक चौड़े और गहरे गढ़हे से जा मिलते हैं; इस बड़े गढ़हे को यकृत द्वार कहते हैं; इस स्थान में यकृत की धमनी, संयुक्ता शिरा और कुछ नाड़ियाँ† भीतर घुसती हैं और पित्त स्रोत बाहर निकलते हैं। यकृत द्वार के पीछे दो गढ़हे और होते हैं; एक में अधोगा महाशिरा रहती है, यकृत की शिरायें इसी गढ़हे में अधोगा महाशिरा से जुड़ जाती हैं। दूसरा गढ़हा कम गहरा होता है, इसमें गर्भावस्था में नाभि शिरा की एक शाखा रहा करती है; जब बच्चा पैदा हो जाता है तब इसमें रक्त नहीं रहता और वह सूख कर रज्जु के समान हो जाती है। (चित्र १९२)।

* गर्भावस्था में इस गढ़हे में नाभि शिरा रहती है। प्रसव के पश्चात् इस शिरा में रक्त नहीं बहता और वह सूखकर एक रज्जु के समान हो जाती है। एक ओर यह रज्जु यकृत से जुड़ी रहती है दूसरी ओर नाभि से। यही यकृत का गोल बन्धन है (चित्र १९० में ४)

† वात सूत्र

पित्त

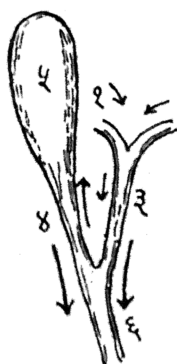
यकृत में जो पाचक रस बनता है उसको पित्त कहते हैं। यह पीलाहट लिये हुए हरे रंग का क्षारीय प्रतिक्रिया वाला कड़वा द्रव होता है। पित्त का गुरुत्व १०२६ से १०३२ तक होता है। उस में कई प्रकार के लवण और दो प्रकार के रंग घुले रहते हैं।

यकृत से दो नलियाँ निकलती हैं—एक दाहिने भाग से दूसरी बायें भाग से; ये पित्त स्रोत हैं (चित्र १९२ में १, २); यकृत द्वार में दोनों पित्त स्रोत एक दूसरे से जुड़ जाते हैं और संयुक्त पित्त स्रोत बन जाता है (चित्र १९२ में ३); संयुक्त पित्त स्रोत और पित्ताशयिक नली के संयोग से पित्त प्रणाली बनती है जिसके द्वारा पित्त पक्वाशय में पहुँचता है। पित्त के कार्य आगे बतलाये जावेंगे।

पित्ताशय (चित्र १९२, १९३)

यह मांस और सौत्रिक तन्तु से निर्मित एक थैली है जो यकृत के नीचे के पृष्ठ के एक गढ़हे में रहती है। यह थैली यकृत से उदरक कला की सहायता से जुड़ी रहती है। पित्ताशय की आकृति नाशपाती जैसी होती है। उसका स्थूल भाग या गात्र सामने को रहता है और कुछ यकृत के अगले किनारे के नीचे निकला रहता है (देखो चित्र १९०); इस भाग के सामने दाहिनी ओर की नौवीं उपपर्शुका रहती है। पतला और नोकीला भाग पीछे को यकृत द्वार में रहता है; इससे एक नली निकलता है (चित्र १९२ में ४) इस नली और संयुक्त पित्तस्रोत के मेल से पित्त प्रणाली बनती है।

चित्र १९३



१=दाहिना पित्त स्रोत

२=बायाँ पित्त स्रोत

३=संयुक्त पित्त स्रोत

४=पित्ताशयिक नली

५=पित्ताशय

६=पित्त प्रणाली

पित्त पित्तस्रोतों द्वारा पित्त प्रणाली में पहुँचता है; जब भोजन पक्काशय में होता है तब यह रस इस अंग में जा पहुँचता है; जब भोजन पचाने के लिये इसकी आवश्यकता नहीं होती तब यह संयुक्त पित्तस्रोत से पित्त प्रणाली में जाने के बजाय पित्ताशय में चला जाता है और वहाँ इकट्ठा रहता है।

कभी कभी पित्ताशय, पित्त प्रणाली या पित्तस्रोतों में छोटी छोटी पित्त की कंकड़ियाँ बन जाती हैं। कंकड़ियों की चुभन से बड़ा दर्द होता है। कंकड़ियाँ पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक बना करती हैं।

क्लोम* (या पैनक्रियास†) (चित्र १६७, १९४)

यह ग्रन्थि उदर की पिछली दीवार से लगी रहती है। उस की आकृति पिस्ताल जैसी होती है। क्लोम का दहिना भाग मोटा होता है और शिर कहलाता है, बायाँ भाग पतला होता

* अग्न्याशय दूसरा नाम है। † अंगरेजी भाषा का शब्द है।

है और उस को पुच्छ कहते हैं। शिर और पुच्छ के बीच का भाग ग्रन्थि का गात्र है। शिर पक्वाशय के घेरे में रहता है; पुच्छ का सिरा प्लीहा से मिला रहता है। क्लोम के सामने अनुप्रस्थ वृहत् अंत्र और आमाशय रहते हैं; उसके पीछे अधोगा महाशिरा, महाधमनी, बायें उपवृक्क का कुछ भाग, बायाँ वृक्क और प्लीहा रहते हैं। ग्रन्थि का भार ६० से १०० माशे तक होता है; उस की लम्बाई ५ से ६ इंच तक होती है।

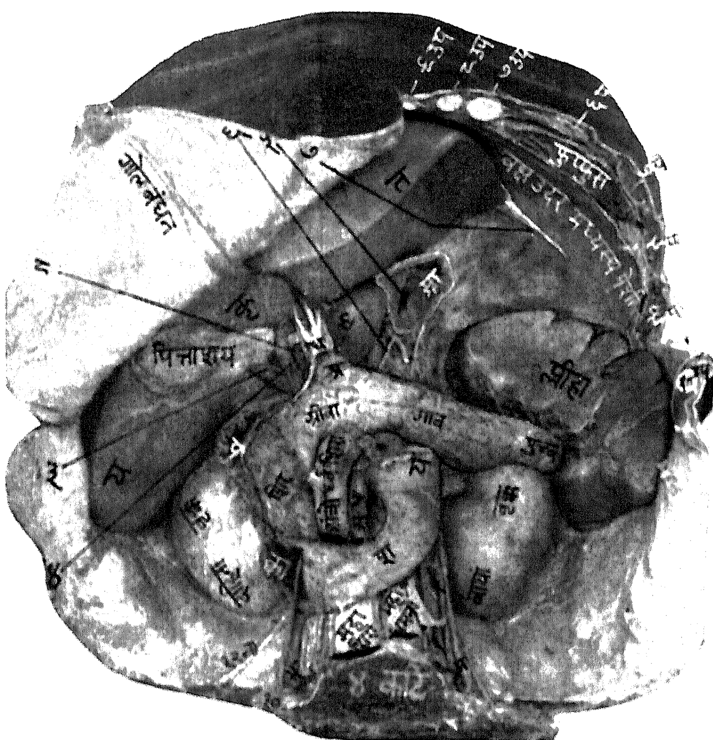
इस ग्रन्थि में जो पाचक रस बनता है उस को क्लोम रस कहते हैं। ग्रन्थि के विविध भागों से पतली पतली नलियाँ निकलती हैं जिनको क्लोम स्रोत कहते हैं। क्लोम स्रोतों के एक दूसरे से मिलने से एक बड़ी नली बन जाती है, यह क्लोम प्रणाली कहलाती है। क्लोम प्रणाली का आरंभ ग्रन्थि की पुच्छ में होता है; यहाँ से वह शिर तक जाती है। क्लोम प्रणाली का अधिक भाग ग्रन्थि के भीतर ही रहता है और बिना ग्रन्थि को चीरे दिखाई नहीं देता ; ज्यों ज्यों वह शिर के निकट पहुँचती है त्यों त्यों वह स्रोतों के जुड़ने से बड़ी होती जाती है। शिर में पहुँचकर क्लोम प्रणाली ग्रन्थि से बाहर निकलती है और पित्त प्रणाली के साथ साथ पक्वाशय तक पहुँचती है। दोनों प्रणालियाँ एक ही साथ और एक ही स्थान पर पक्वाशय की दीवार में घुसती हैं और दोनों का रस एक ही छिद्र द्वारा पक्वाशय के भीतर पहुँचता है।

क्लोम रस*

यह एक पतला स्वच्छ क्षारीय द्रव होता है; जिस का गुरुत्व

* क्लोम ग्रन्थि का विकार 'मधुमेह रोग' का एक कारण है।

चित्र १९४ यकृत, क्लोम, प्लीहा



ब्रि० ना० वर्मा

३ पित्ताशय की नली ४ पित्त प्रनाली

८ संयुक्ता शिरा ५ याकृती धमनी

आ आमाशय ।

पृष्ठ ४५६ के सम्मुख

१००७ होता है। इस रस में तीन (कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार चार) विशेष पाचक पदार्थ पाए जाते हैं :—

१—प्रोटीन विश्लेषक (या ट्रिप्सिन *)—इस का वही कार्य है जो आमाशय की पेप्सीन का अर्थात् उसके द्वारा भोजन की प्रोटीनों का विश्लेषण होता है और उन से छोटे अणु वाले घुनलशील पदार्थ बन जाते हैं। क्लोम का प्रोटीन विश्लेषक पेप्सीन से अधिक प्रबल होता है। पेप्सीन अपना काम अम्ल घोलों पर ही कर सकती है, अन्यतः क्लोम के प्रोटीन विश्लेषक के लिये घोलों की प्रतिक्रिया या तो खूब क्षारीय हो या न क्षारीय हो न अम्ल।

२—श्वेतसार विश्लेषक (या अमाइलोप्सिन*)—यह वही काम करता है जो लाला का श्वेतसार परिवर्त्तक करता है अर्थात् उसकी सहायता से श्वेतसार से यवौज शकर बन जाती है। शिशुओं में यह पदार्थ ५-६ मास की आयु के पश्चात् बनना आरंभ होता है।

३—वसा विश्लेषक (या स्टीयप्सिन*)—इस की क्रिया से वसा से ग्लोसरीन और अम्ल बन जाते हैं।

४—कुछ लोगों का विचार है कि क्लोम रस में दुग्ध को जमा देने वाली चीज़ भी होती है।

क्षुद्रांत्रीय रस और पित्त से मिल कर क्लोम रस की चीज़ें अपनी अपनी क्रिया में और भी प्रबल हो जाती हैं।

---

* अंगरेज़ी भाषा का शब्द है।

क्षुद्रांत्रीय रस

इस रस में चार चीज़ें पाई जाती हैं :—

१—क्लोमोत्तेजक—यह चीज़ रक्त द्वारा क्लोम में पहुँचती है। इस चीज़ के पहुँचने पर क्लोम ग्रन्थि बड़ी शीघ्रता से अपना रस बनाने लगती है।

२—एक पदार्थ ऐसा होता है कि जिस से क्लोम के प्रोटीन विश्लेषक की शक्ति बढ़ जाती है।

३—प्रोटीन विश्लेषक (या इरेप्सिन *)। यह उन पदार्थों का जो प्रोटीनों के विश्लेषण से बने हैं विश्लेषण करता है।

४—शर्करा परिवर्तक—इस पदार्थ की क्रिया से यवौज, इक्ष्वोज, दुग्धोज इत्यादि शर्करों से द्राक्षौज या अंगूरी शकर बन जाती है।

क्षुद्रांत्रीय रस की प्रतिक्रिया क्षारीय होती है।

पित्त के कार्य

१—पित्त से मिल कर क्लोम रस अपनी सब क्रियाओं में प्रबल हो जाता है। पित्त के कारण क्लोम रस की वसा विश्लेषक शक्ति विशेष कर बढ़ जाती है।

२—वसा के पचाव और आत्मीकरण के लिये पित्त बड़ी आवश्यक चीज़ है। जब पित्त कम बनता है या किसी कारण अंत्र में नहीं पहुँच सकता तब वसा बहुत कम पचती है और उसका अधिक भाग विष्ठा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

३—आमाशय से आए हुए अम्ल प्रतिक्रिया वाले आहार

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है।

रस की अम्लता क्षारीय पित्त और क्लोम रस के क्षार के कारण जाती रहती है। आहार रस अब क्षारीया हो जाता है। क्लोम रस का असर क्षारीय घोलों पर अच्छी तरह होता है।

४ – अंत्र में पित्त के रहने से सड़ाव कम होने पाता है। जब अंत्र में पित्त नहीं पहुँच पाता तब सड़ाव अधिक होता है और विष्ठा बहुत बदबूदार होती है।

यकृत और क्लोम के अन्य कार्य के लिये देखो अध्याय २८।

अध्याय १७

पोषण संस्थान (३)

प्रोटीनों का पचाव

भोजन की प्रोटीनों के सम्बन्ध में (चाहे ये प्रोटीनें दाल और गेहूँ से प्राप्त हों और चाहे दुग्ध और मांस से) दो बातें याद रखनी चाहियें :—

१—ये प्रोटीनें ज्यों की त्यों अन्नमार्ग की श्लैष्मिक कला में से हो कर रक्त में नहीं जा सकतीं। जब तक वे रक्त में न पहुँचें उनका भोजन में होना या न होना बराबर है।

२—ये प्रोटीनें उन प्रोटीनों से जो हमारे रक्त में पाई जाती हैं भिन्न प्रकार की हैं। जब तक इन प्रोटीनों से परिवर्त्तन हो कर ऐसी प्रोटीनें न बनें जैसी रक्त में पाई जाती हैं रक्त उनको ग्रहण नहीं करता।

भोजन की प्रोटीनों के इन दोनों दोषों का दूर करने के लिए अन्नमार्ग में कई रस उन पर अपना असर करते हैं।

इन रसों की क्रिया से प्रोटीनों का विश्लेषण होता है। यह विश्लेषण आमाशय में आरंभ होता है और क्षुद्रांत्र में क्लोम रस और क्षुद्रांत्रीय रस की क्रिया से पूर्ण होता है। विश्लेषण से जो नये छोटे अणुवाले यौगिक बनते हैं वे श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त में पहुँचते हैं। रक्त में पहुँचते ही इनके परस्पर संयोग से वे प्रोटीनें बन जाती हैं जो रक्त में

पाई जाती हैं जैसे सीरम अलब्युमेन, * सीरम ग्लोब्युलिन * फ़ाइब्रिनजनक † ।

रक्त की विशिष्ट प्रोटीनों के बनने के लिये भोजन की प्रोटीनों का विश्लेषण क्यों होता है ? इसके उत्तर में हम एक उपमा देते हैं :—

यदि आप एक पुराने मकान से (जो आप को पसंद नहीं है) नया मकान बनाना चाहें तो आप क्या करेंगे ? आप इस मकान को ढाना आरंभ करेंगे। किसी दीवार को गिरा देंगे और किसी को ज्यों की त्यों रहने देंगे; फिर इस ढाये हुए मकान की ईंटों और दीवारों और मिट्टी से नया मकान खड़ा कर लेंगे। भोजन की प्रोटीनें उस मकान के सदृश हैं जो शरीर की सेलों को पसन्द नहीं हैं। शरीर उन से नई प्रोटीनें बनाने के लिये उनका विश्लेषण करता है और उनसे छोटे अणुवाले यौगिक बना लेता है। फिर इन यौगिकों के इच्छानुसार संयोग से अपनी विशिष्ट प्रकार की प्रोटीनें बना लेता है।

वसा का पचाव

वसा (चरबी, तैल, घृत) दो चीज़ों के संयोग से बनती है; एक का नाम गिलिस्रीन * है, दूसरी चीज़ अम्ल ‡ है। अम्ल सब वसाओं में एक ही प्रकार का नहीं होता; परन्तु गिलिस्रीन सब में एक ही चीज़ होती है। अम्लों के जुदा जुदा नाम होते हैं। इस विशेष अम्ल और गिलिस्रीन के रासायनिक

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। † अंग्रेज़ी शब्द का हिन्दी रूप।

‡ ये अम्ल खनिज अम्लों से भिन्न प्रकार के होते हैं और मैदस अम्ल कहलाते हैं।

संयोग से वसा बन जाती है; अन्यतः वसा के विश्लेषण से अम्ल और गिलिस्रीन उत्पन्न होते हैं।

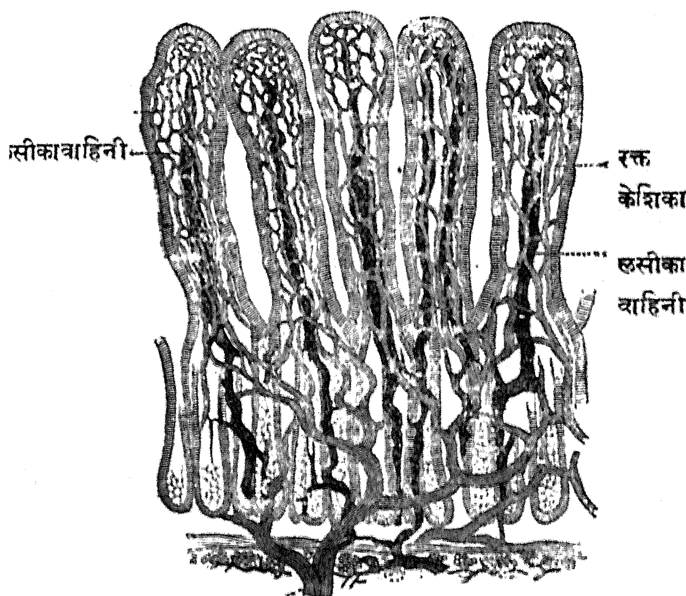
जब साबुन बनाया जाता है तब वसा को किसी क्षार के साथ पकाते हैं। वसा का विश्लेषण हो जाता है और गिलिस्रीन और अम्ल पृथक् पृथक् हो जाते हैं। अम्ल और क्षार के संयोग से जो चीज़ बनती है उसको साबुन कहते हैं। गिलिस्रीन अलग निकाल लिया जाता है।

मुख में भोजन की वसा ज्यों की त्यों रहती है। आमाशय में वह पिघल जाती है; यदि सेलों के भीतर है तो उनसे बाहर निकल आती है। क्षुद्र अंत्र में पहुँचकर पित्त के प्रभाव से वसा के नन्हे नन्हे बिंदुक बन जाते हैं और उसका एक दूधिया घोल * बन जाता है। क्लोम रस के प्रभाव से वसा का विश्लेषण होता है जिसके कारण गिलिस्रीन और अम्ल पृथक् पृथक् हो जाते हैं। अम्ल और क्षार (क्षार पित्त और क्लोम रस में होता ही है) के संयोग से साबुन बन जाते हैं जो क्षुद्रांत्र के द्रवों में घुल जाते हैं। अब ये साबुन और गिलिस्रीन ग्राहकांकुरों की सेलों में पहुँचते हैं; सेलों में पहुँचते ही साबुन का अम्ल गिलिस्रीन से मिल जाता है और फिर वसा के बिंदुक बन जाते

* किसी तैल का दूधिया घोल इस प्रकार बन सकता है :—तैल में साबुन का घोल मिला कर दोनों चीज़ों को खूब हिलाइये; शीघ्र ही दूधिया घोल बन जायगा। तैलों के इस प्रकार के दूधिया घोल को अंगरेज़ी में इमलशन कहते हैं इमलशन में वसा या तैल के एक बिन्दु से अनेक नन्हे नन्हे बिन्दुक बन जते हैं, इसी कारण रंग श्वेत सा हो जाता है। तैल को गोंद के घोल के साथ घोटने से भी इमलशन बन जाता है।

हैं; वसा के बिंदुक अब ग्राहकांकुरों की लसीका केशिकाओं में पहुँच जाते हैं (चित्र १९५)।

चित्र १९५ ग्राहकांकुरों की लसीका वाहिनियाँ



(After Cadiat from Gray's Anatomy.)

वसा के पचाव के सम्बन्ध में यह बात याद रखनी चाहिये कि वह क्षुद्रांत्र से सीधी रक्त में नहीं जाती; वह पहले लसीका में जाती है, फिर रक्त में मिलती है। वसा के नन्हें बिन्दुकों के कारण क्षुद्रांत्र के लसीका का रंग दूधिया सा होता है।

जब क्लोम और यकृत भली प्रकार काम नहीं करते तब वसा

अच्छी तरह नहीं पचती और उसका अधिक भाग विष्ठा में ज्यों का त्यों निकल जाता है; विष्ठा का रंग श्वेत सा रहा करता है।

कर्बोज का पचाव

श्वेतसार—मुख में श्वेतसार से यवौज शकर बननी आरम्भ होती है; यह परिवर्तन आमाशय में कोई आध घंटे तक होता रहता है। अब यह अधपचा श्वेतसार क्षुद्र अंत्र में पहुँचता है; यहाँ क्लोम रस की क्रिया से कुल श्वेतसार से यवौज बन जाती है। क्षुद्रांत्रीय रस की क्रिया से यवौज से द्राक्षौज (अंगूरी शकर) बन जाती है जिसको रक्त केशिकाएँ ग्रहण कर लेती हैं।

शर्करा—क्षुद्रांत्रीय रस की क्रिया से सब शकरों से द्राक्षौज या अंगूरी शकर और फलौज बन जाती हैं। शकरें आसानी से पच जाती हैं।

काष्ठौज—हमारे पाचक रसों का इस पर कोई असर नहीं होता; इसी कारण शाकों के रेशे ज्यों के त्यों विष्ठा में निकल जाते हैं।

लवण और जल

इन चीज़ों पर कोई पाचक क्रिया नहीं होती; ये ज्यों के त्यों श्लैष्मिक कला में से रक्त में चले जाते हैं।

क्षुद्रांत्र की गति

अंत्र की दीवार में जो मांस होता है उसके संकोच और प्रसार से अंत्र में सदा गति हुआ करती है। यह गति उसी प्रकार की होती है जैसी कि केंचुवे इत्यादि कृमियों के शरीर में

ोती है; इसी कारण अंत्र की गति को कृमिवत् आकुञ्चन कहते हैं। इस आकुञ्चन से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो ाचक रस भोजन से भली प्रकार मिल जाते हैं, दूसरे दीवार क दबाव के कारण आहार रस धीरे धीरे नीचे को सरकता है। जैसे जैसे आहार रस नीचे को जाता है पाचक रसों की क्रिया उस पर होती रहती है और पचने योग्य पदार्थ पच जाते हैं और श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त और लसीका में पहुँच जाते हैं। क्षुद्रांत्र के अंत तक पहुँचने से पहले आहार रस में से बहुत से पदार्थ रक्त और लसीका में पहुँच लेते हैं।

पक्वीकरण और आत्मीकरण

भोजन का पचना एक बात है और उसका रक्त में पहुँचना दूसरी बात। यह हो सकता है कि भोजन पाचक रसों की क्रिया से पच कर इस योग्य बन जावे कि वह रक्त में पहुँच कर शरीर का भाग बन सके और फिर भी वह रोगों के कारण ज्यों का त्यों विष्टा रूप में शरीर से बाहर निकल जावे।

वह क्रिया जिस से भोजन के अवयव शरीर के भीतर अर्थात् रक्त और लसीका में पहुँचने योग्य बन जाते हैं पक्वीकरण कहलाती है। इन अवयवों के श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त और लसीका में पहुँचने को आत्मीकरण कहते हैं।

बृहत् अंत्र (चित्र १७९ और १९६)

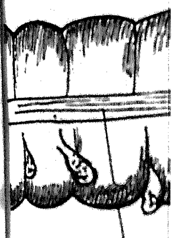
जितनी चीज़ें क्षुद्र अंत्र में पच कर रक्त और लसीका में पहुँच गई उनको छोड़ कर आहार रस का शेष भाग बृहत् अंत्र में चला जाता है।

वृहदंत्र क्षुद्रांत्र से अधिक चौड़ी होती है; उसकी लम्बाई पाँच फुट के लगभग होती है ।

क्षुद्रांत्र वृहदंत्र से दाहिने श्रोणि प्रदेश में जुड़ती है (यह जोड़ उस जगह होता है जहाँ अर्बुदांतरिक रेखा दाहिनी खड़ी रेखा को काटती है—) जहाँ यह जोड़ होता है वहाँ इन दोनों अंत्रों के बीच में दो किवाड़ों वाला एक कपाट होता है; ये किवाड़ श्लैष्मिक कला से निर्मित होते हैं । इस कपाट का काम यह है कि आहार रस वृहत् अंत्र में तो जा सके परन्तु जहाँ तक हो सके उलटा क्षुद्र अंत्र में न लौट सके ।

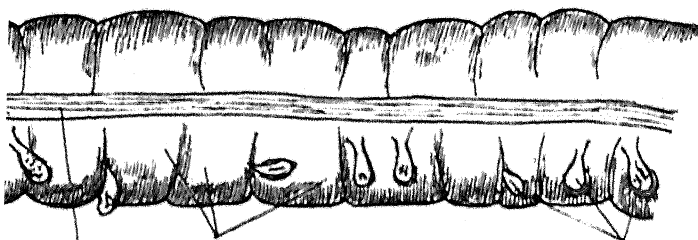
वृहत् अंत्र का आरंभिक भाग थैली जैसा होता है (चित्र १७९) और अंत्र पुट कहलाता है । इस थैली में दो तीन इंच लम्बी एक पतली नली लगी रहती है; इस नली की दीवार की बनावट क्षुद्र अंत्र की दीवार की बनावट जैसी होती है, बड़ा भेद यह होता है कि श्लैष्मिक कला और मांस के बीच में जो सौत्रिक तंतु है उस में बहुत से लसीकाणुओं जैसी सेलों के समूह होते हैं । श्लैष्मिक कला में ग्रन्थियाँ बहुत थोड़ी होती हैं । इस नली को उपांत्र या अंत्र परिशिष्ट कहते हैं । (चित्र १७९) । उपांत्र का क्या विशेष काम है यह अभी किसी को ठीक तौर से मालूम नहीं । सब मनुष्यों में इसकी लम्बाई एक ही जैसी नहीं होती; किसी में यह ½ इंच से अधिक लम्बी नहीं होती; किसी में ८ इंच लम्बी भी होती है । इस नली का कभी कभी प्रदाह हो जाता है; और फोड़ा भी बन जाता है तब इस को काट कर निकाल देने की आवश्यकता होती है ।

उपांत्र प्रदाह के विषय में यह बात याद रखने योग्य है कि प्रदाह अधिकतर मांसाहारियों में ही होता है विशेषकर उन



ों में जो कुछ समय तक रक्खा हुआ मांस खाते हैं जैसे
प और अमेरिका वाले। यूरोप और अमेरिका में इसके प्रदाह
कारण सहस्रों व्यक्तियों को पेट चाक कराना पड़ता है। इन
ों में आमाशय और पक्वाशय के ज़ख़म भी बहुत होते हैं और
ार पथ के विविध भागों में मारात्मक गुल्म जिसे कैन्सर*
ते हैं अधिक होता है।

चित्र १९६ वृहत् अंत्र



मांस की पट्टी　　थैली जैसे भाग　　　　वसा की गांठें

दाहिने श्रोणि प्रदेश में आरंभ होकर वृहत् अंत्र ऊपर को
त के अधोभाग तक जाती है, यह उद्गामी वृहत् अंत्र
(चित्र १७९)। यकृत तक पहुँच कर यह अंत्र बांई ओर को
ड़ खाती है और नाभि प्रदेश में होती हुई प्लीहा तक पहुँचती
यह भाग अनुप्रस्थ वृहत् अंत्र कहलाता है (चित्र १७९)। प्लीहा
पास से यह मुड़ कर नीचे को वाएं श्रोणि प्रदेश तक जाती है—
ह भाग अधोगामी वृहत् अंत्र है (चित्र १७९)। वाएं श्रोणि प्रदेश
मोड़ खाकर वृहत् अंत्र वस्तिगह्वर में चली जाती है; उस का
त्र मलद्वार पर होता है।

*Cancer

वस्तिगह्वर (या श्रोणि) में बृहत् अंत्र का जो भाग है उस की लम्बाई २० या २२ इंच होती है। ऊपर का १४-१५ इंच लम्बा भाग बहुत मुड़ा हुआ रहता है; शेष भाग कुछ सीधा होता है। ऊपर के मुड़े हुए भाग को श्रोणिगा बृहत् अंत्र कहते हैं। नीचे के पाँच छः इंच लम्बे भाग के दो हिस्से माने जाते हैं एक मलद्वार से ऊपर एक या डेढ़ इंच लम्बा भाग यह गुदा कहलाता है; दूसरा गुदा से ऊपर का चार या पाँच इंच लम्बा भाग, इस को मलाशय कहते हैं। मलाशय वस्तिगह्वर में रहने वाली बृहत् अंत्र के शेष भाग की अपेक्षा कुछ सीधा होता है, इस कारण उस को सरलांत्र भी कह देते हैं।

उपरोक्त से यह समझना कठिन नहीं है कि बृहदंत्र से एक अपूर्ण घेरा सा बन जाता है जिस के बीच में क्षुद्रांत्र की गेंडलियाँ पड़ी रहती हैं (देखो चित्र १७९)।

क्षुद्रांत्र की भाँति इस अंत्र की दीवारें भी मांस, सौत्रिक तंतु और श्लैष्मिक कला से निर्मित हैं। दीवार के संबंध में ये भेद याद रखने चाहियें :—

१—श्लैष्मिक कला में ग्राहकांकुर नहीं होते।

२—क्षुद्रांत्र की दीवार में मांस की दो तहें होती हैं एक भीतरी दूसरी बाहरी।

बृहदंत्र में भीतरी तह तो वैसी ही होती है जैसी क्षुद्रांत्र में परन्तु बाहरी तह में भेद होता है। यहाँ मांस की तीन लम्बी पट्टियाँ * बन जाती हैं। एक पट्टी सामने रहती है दूसरी

* मलाशय में ये पट्टियाँ नहीं होतीं, यहाँ मांस बहुधा चारों ओर एक तह में फैला रहता है।

तीसरी इन दोनों के बीच में (देखो चित्र १९९)
३—तीसरा भेद यह है कि मांस के बाहर जो उदरक कला है में बहुत सी छोटी छोटी वसा की गाँठें रहती हैं (चित्र १९९)।
४—दीवार इस प्रकार सुकड़ी रहती है कि ऐसा मालूम है कि वह बहुत सी थैलियों से बनी है (चित्र १९६)
५—विशेष "ग्रन्थि समूह" जो क्षुद्रांत्र में पाए जाते हैं बृहत् में नहीं होते।

बृहत् अंत्र का आकुंचन

क्षुद्रांत्र की भाँति बृहदंत्र में भी मांस के संकोच और प्रसार क्रमिवत् आकुंचन हुआ करता है। इस आकुंचन के प्रभाव क्षुद्रांत्र से आया हुआ रस पहिले ऊपर को यकृत की : चढ़ता है, फिर प्लीहा की ओर जाता है, फिर रे को वस्तिगह्वर की ओर जाता † है। गतियाँ उतनी शीघ्रता

† "केनन" नामक वैज्ञानिक का विचार है कि उद्गामी बृहत् अंत्र में अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र के कुछ भाग में दो प्रकार की गतियाँ होती हैं; ाक्तर गतियाँ कपाट की ओर होती हैं जिससे आहार रस अधोगामी ्र् अंत्र की ओर जाने के बजाय कपाट की ओर लौटता है परन्तु कपाट कारण क्षुद्रांत्र में नहीं जा सकता। दूसरी गतियाँ कपाट से ऊपर को ात् यकृत और प्लीहा की ओर होती हैं। उलटी और सीधी दोनों ार की गतियों से यह होता है कि आहार रस बृहत् अंत्र के इन भागों देर तक रहता है जिसकी वजह से जल वा अन्य चीज़ों का आचूषण वा त्मीकरण भली प्रकार हो जाता है। जल कम हो जाने के कारण अब वह ज़ जो क्षुद्रांत्र से यहाँ आई थी गाढ़ी हो जाती है। बृहत् अंत्र के शेष ग में गतियाँ नीचे को मलाशय की ओर ही होती हैं, उलटी नहीं होतीं।

चित्र १९७

१=यकृत-प्लीहा-आमाशय मूल धमनी

२=बाईं आमाशयिक-अंत्रच्छदा धमनी

३=प्लैही धमनी

४=क्षुद्र आमाशयिक धमनियाँ

५=प्लीहा-आमाशय बन्धन

६=प्लैहिक शाखाएँ

७=पक्काशय-उत्तर क्षुद्रांत्र जोड़

८=बृहदंत्र-मध्यस्थ पेशी बन्धन

९=महाधमनी की दो शाखा

१०=अंत्राधर धमनी

११=अंत्रोर्ध्व धमनी

१२=पक्काशय-क्लोम अधर धमनी

१३=दाहिनी वृक्किका धमनी

१४=पक्काशयिक शाखाएँ

१५=क्लोम शाखाएँ

१६=क्लोम-पक्काशय ऊर्ध्व धमनी

१७=पित्ताशयिक धमनी

१८=आमाशयिक-पक्काशयिक धमनी

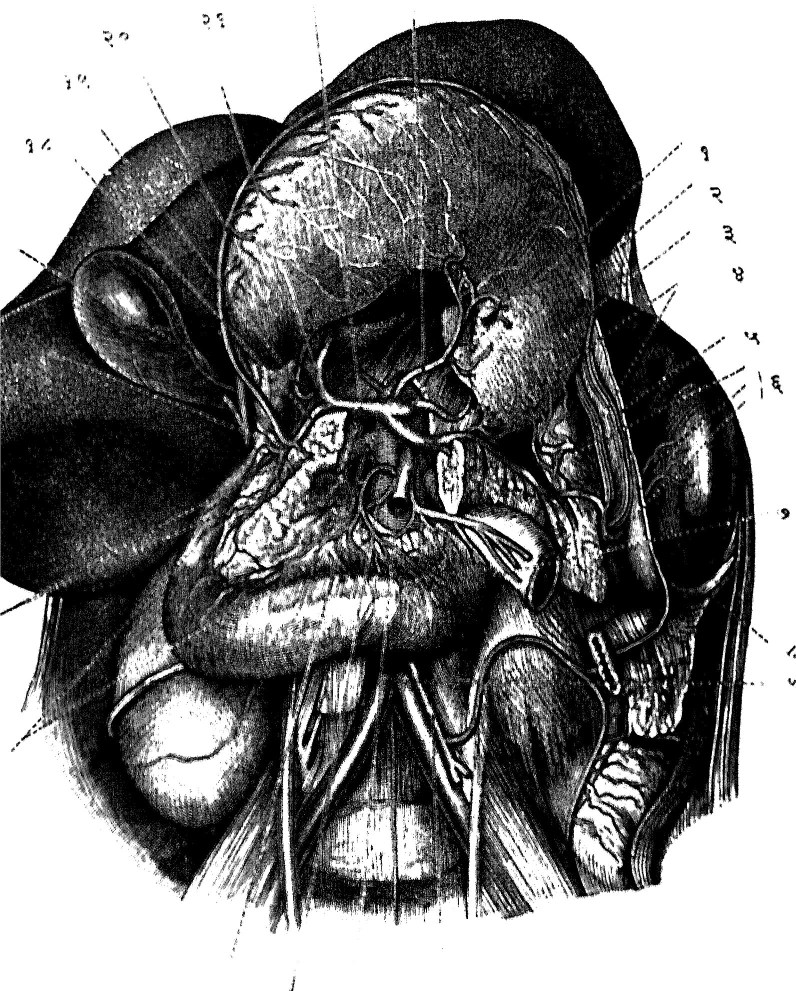
१९=दाहिनी आमाशयिकी धमनी

२०=दाहिनी आमाशयिकी-अंत्रच्छदा धमनी

२१,२२=याकृति धमनी

२३=बाईं आमाशयिकी धमनी

की रचना— प्लेट ९३ चित्र १५७



(Todd's Atlas of Anatomy)

पृष्ठ ४७० के सम्मुख

नहीं होतीं जितनी क्षुद्रांत्र में।

वृहत् अंत्र की दीवार में जो ग्रन्थियाँ हैं उनमें कोई विशेष क्रिया वाला पाचक रस नहीं बनता। वृहत् अंत्र की श्लैष्मिक कला में से होकर जल रक्त और लसीका में चला जाता है। जब बचा कुचा मसाला क्षुद्रांत्र से वृहत् अंत्र में आता है तब वह पतला द्रवरूप में होता है; ज्यों ज्यों यह वृहत् अंत्र में वस्तिगह्वर की ओर चलता है उसमें से जल का परिमाण कम होता जाता है और वह गाढ़ा हो जाता है। यह गाढ़ी चीज़ श्रोणिगा वृहत् अंत्र में पहुँचती है और वहाँ से धीरे धीरे मलाशय में जाती है; मलाशय से गुदा में होती हुई मलद्वार से बाहर निकल जाती है। यह चीज़ मल या विष्ठा है।

आहार पथ वा आहार पथ सम्बन्धी ग्रन्थियों की धमनियाँ वा शिराएँ

धमनियाँ—(चित्र १९७, १९८, १९९) उदर में पहुँच कर महाधमनी से बहुत सी शाखाएँ निकलती हैं जिनके द्वारा उदरस्थ अंगों का पोषण होता है। अन्नमार्ग सम्बन्धी मुख्य धमनियाँ ये हैं :—

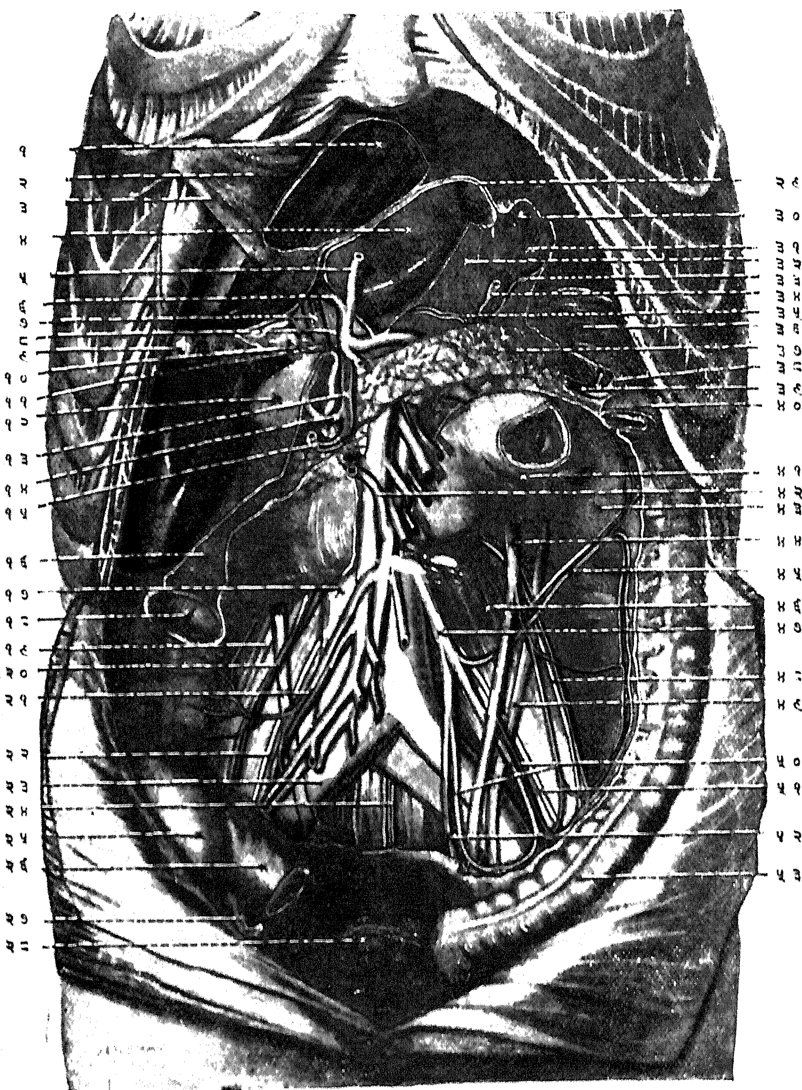
१—उदर में पहुँचते ही महाधमनी से एक बड़ी मोटी परन्तु बहुत छोटी (½ इं० लम्बी) शाखा निकलती है (चित्र १९७ में १)। इसकी तुरन्त ही तीन शाखाएँ हो जाती हैं। इनमें से एक यकृत को, दूसरी आमाशय के बाएँ भाग को तीसरी प्लीहा को जाती है। याकृती धमनी न केवल यकृत का ही पोषण

चित्र १९८ की व्याख्या

१—यकृत का बाँया भाग (कटा हुआ), २—दात्राकार बन्धन, ३—गोल बन्धन, ४—यकृत का आँगुलिया खण्ड, ५—बाईं याकृति धमनी, ६—दाहिनी याकृति धमनी, ७—संयुक्त पित्त स्रोत, ८—संयुक्ता-शिरा, ९—पित्ताशय, १०—पित्ताशयिक नली, ११—पित्त प्रणाली, १२—पक्वाशय (ऊर्ध्व भाग), १३—आम-पक्वाशयिक धमनी, १४—क्लोम-पक्वाशयिक उर्ध्व धमनी, १५—दाहिनी आम-अंत्रश्छदा धमनी, १६—दाहिना वृक्क, १७—अधोगा महाशिरा, १८—वृहत् अंत्र का दाहिना मोड़, १९—कटि लम्बिनी वृहती पे०, २०—आंडिकी रक्त वाहि-नियाँ मूत्र प्रणाली के सामने से जा रही हैं, २१—मूल धमनी जिससे दक्षिण अंत्र-वृहत् अंत्र धमनी और दाहिनी वृहत् अंत्र धमनी निकलती हैं, २२—जनन-ऊरु नाड़ी, २३—दाहिनी मूल श्रोणिगा धमनी, २४—माध्य-मिक त्रिक रक्त वाहिनियाँ, २५—अंत्र पुट, २६—दक्षिण क्षुद्रांत्र, २७—उपांत्र, २८—श्रोणिगा वृहत् अंत्र, २९—आमाशय-यकृत कला (कटा हुआ किनारा), ३०—अन्न प्रणाली, ३१—वक्षउदर मध्यस्था का बायाँ भाग, ३२—वक्षउदर मध्यस्था का दाहिना भाग, ३३—बाईं व० उ० मध्यस्था की अधर धमनी, ३४—बाईं आमाशयिकी धमनी, ३५—दाहिनी व० ऊ० मध्यस्था की अधर धमनी, ३६—प्लीहा, ३७—क्लोम, ३८—बाईं आम-अंत्रश्छदा धमनी, ३९—प्लैहीं धमनी, ४०—वृहत् अंत्र का बायाँ मोड़, ४१—पक्वाशय-उत्तर क्षुद्रांत्र जोड़, ४२—मध्य वृहत् आंत्रीय धमनी, ४३—बायाँ वृक्क, ४४—अंत्र अधोशिरा, ४५—बाईं वृहत् आंत्रिक धमनी, ४६—कटि लम्बिनी पेशी, ४७—अंत्र अधोधमनी, ४८—आंडिकी रक्त वाहिनियाँ, ४९—मूत्र प्रणाली, ५०—श्रोणिगा वृहत् अंत्र की धमनियाँ, ५१—जनन-ऊरु नाड़ी, ५२—सरलांत्रोर्ध्व धमनी, ५३—जघनीया वृहत् अंत्र।



चित्र १९८



(From Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ४७२ के सम्मुख

करती है प्रत्युत उससे तीन शाखाएँ और निकलती हैं। इनमें से एक पित्ताशय को जाती है, एक आमाशय के दाहिने भाग को, तीसरी शाखा पक्वाशय और क्लोम का पोषण करती है और कुछ शाखाएँ आमाशय के उन्नतोदर किनारे से लगी हुई अंत्रच्छदा कला को भी जाती हैं।

बाईं आमाशयिकी धमनी आमाशय के बाएँ भाग और अन्नप्रणाली के नीचे के भाग का पोषण करती है।

प्लैही धमनी से प्लीहा और क्लोम का पोषण होता है; कुछ छोटी छोटी शाखाएँ आमाशय को भी जाती हैं।

२—अंत्रोर्ध्व धमनी—(चित्र १९४) यह धमनी महा धमनी से क्लोम ग्रन्थि की ग्रीवा के पीछे निकलती है। इस धमनी की अनेक शाखाओं द्वारा इन अंगों का पोषण होता है:—(१) पक्वाशय के थोड़े से भाग को छोड़ कर समस्त क्षुद्रांत्र (२) उद्गामी बृहत् अंत्र (३) अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र का आधा भाग (४) क्लोम का शिर।

३—अंत्राधो धमनी—चित्र १९९ में २९, इसकी शाखाओं से इन अंगों का पोषण होता है:—

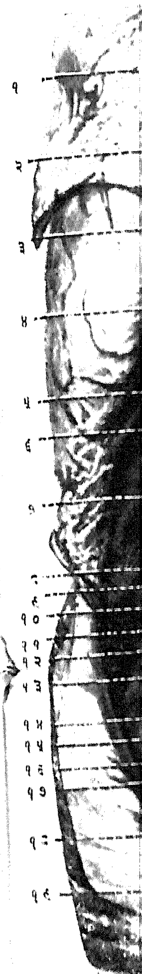
(१) अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र का बायाँ भाग।

(२) अधोगामी और वस्तिगह्वर में रहने वाली बृहत् अंत्र (मलाशय के कुछ भाग को छोड़ कर)।

अन्नप्रणाली का जो भाग वक्ष में रहता है उस का पोषण उन शाखाओं द्वारा होता है जो वक्ष में महाधमनी से निकलती हैं। ग्रीवा में रहने वाले भाग के लिये अन्य बड़ी धमनियों से शाखाएं आती हैं। मलाशय के नीचे के भाग का पोषण कुछ

चित्र ११९ की व्याख्या

१=अंत्रच्छदा कला
२=अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र
३=वसा की गांठें
४=अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र धारक कला
५=अंत्रोर्ध्व धमनी
६=मध्य बृहदंत्रीय धमनी
७=अंत्रोर्ध्व शिरा
८=अधोगा महाशिरा
९=महाधमनी
१०=बृहत् अंत्र का दाहिना मोड़
११=मूल धमनी जिस मे दक्षिण अंत्र-बृहत् अंत्र धमनी और दाहिनी बृहदांत्रीय धमनी निकलती हैं
१२=अंतरीय आंडिकी रक्त वाहिनियाँ
१३=मूत्र प्रणाली
१४=जनन-ऊरु नाड़ी
१५=दाहिनी मूल श्रोणिगा धमनी
१६=मध्य त्रिक रक्त वाहिनियाँ
१७=अंत्रपुट
१८=दक्षिण क्षुद्रांत्र
१९=उपांत्र
२०=श्रोणिगा बृहत् अंत्र
२१=जघनीया बृहत् अंत्र
२२=सरलांत्रोर्ध्व धमनी
२३=श्रोणिगा बृहत् अंत्र की धमनी
२४=बाईं मूल श्रोणिगा शिरा
२५=बाईं मूल श्रोणिगा धमनी
२६=मूत्र प्रणाली
२७=अधोगा बृहत् अंत्र
२८=अंतरीय आंडिकी रक्तवाहिनियाँ
२९=अंत्राधो धमनी
३०=बाईं बृहदांत्रीय धमनी
३१=कटि लम्बिनी बृहती
३२=अंत्राधो शिरा
३३=अंत्रधारक कला कटी हुई
३४=पक्वाशय-उत्तरक्षुद्रांत्र जोड़
३५=बृहत् अंत्र का बायाँ मोड़
३६=उत्तर क्षुद्रांत्र
३७=बायाँ वृक्क



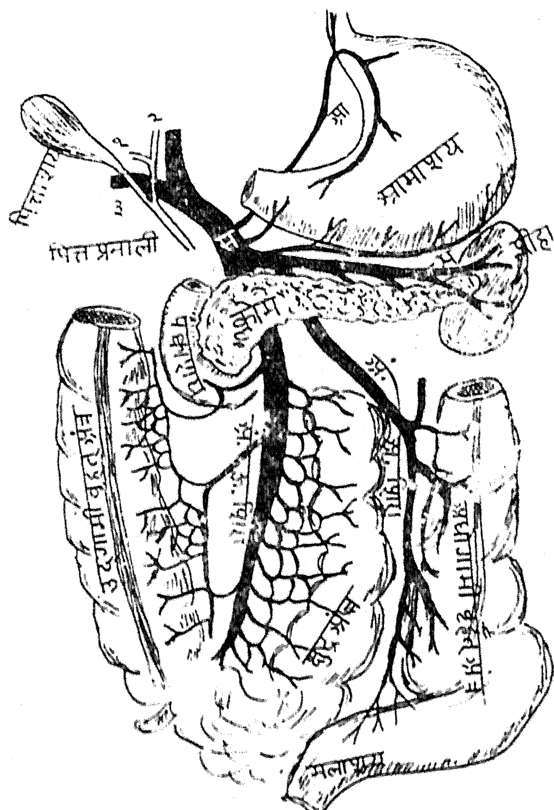
चित्र १२९



(From Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ४७४ के सम्मुख

चित्र २०० अन्नमार्ग की मुख्य शिराएं



चित्र व्याख्या :—

अं अ शिरा = अंत्र अधो शिरा

अं ऊ शिरा = अंत्र ऊर्ध्व शिरा

आ = आमाशयिकी शिरा

स = संयुक्ताशिरा

१, २ = दाहिना और बायाँ पित्तस्रोत

३ = पित्ताशय की नली

प = प्लीहा की शिरा

और धमनियों द्वारा होता है जो सीधी महाधमनी से नहीं निकलतीं; वे महाधमनी की और शाखाओं से निकलती हैं।

शिराएं—(चित्र २००) जो रक्त उपरोक्त धमनियों द्वारा अन्नमार्ग, यकृत और क्लोम ग्रन्थियों में पहुँचता है वह इन शिराओं द्वारा लौटता है :—

१—प्लैहीशिरा - यह प्लीहा से आरम्भ होती है। आमाशय की कुछ शिराएं और क्लोम की शिराएं इस की सहायक हैं (चित्र २०० में प)।

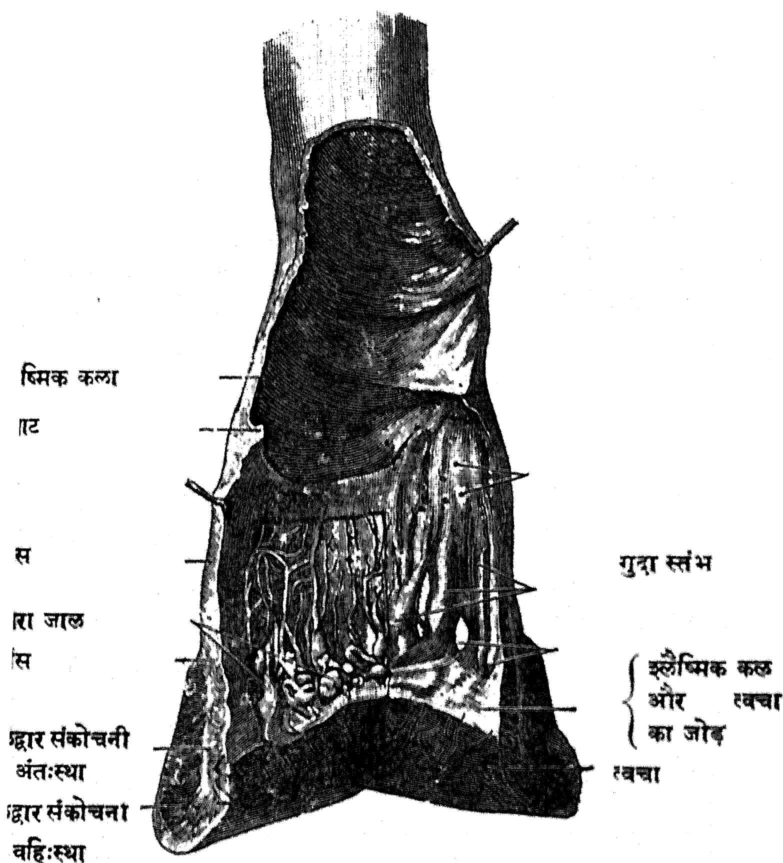
२—अंत्राधो शिरा चित्र १९९ में ३२—यह मलाशय, अधोगामी बृहत् अंत्र और वस्तिगह्वरस्थ बृहत् अंत्र से रक्त इकट्ठा करती है। क्लोम के पीछे जा कर यह 'प्लीहा-क्लोम' शिरा से मिल जाती है। 'प्लीहा-क्लोम' शिरा अब बड़ी हो जाती है। (चित्र २०० में अं अ शिरा)।

३—अंत्रोर्ध्व शिरा—इसमें क्षुद्रांत्र, उद्गामी और अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र से रक्त आता है। पक्वाशय और क्लोम की कई शिराएं भी इस में मिलती हैं। क्लोम के पीछे जाकर यह शिरा 'प्लीहा-क्लोम' शिरा से जा मिलती है। अब इन दोनों के संयोग से जो बड़ी शिरा बनती है उसको संयुक्ताशिरा कहते हैं (चित्र २०० में स) संयुक्ताशिरा यकृत की धमनी के साथ साथ यकृत को जाती है और यकृत द्वार में घुस कर भीतर घुस जाती है (चित्र १९२); यकृत में उस से बहुत सी शाखाएं निकलती हैं जो इस ग्रन्थि के विविध भागों में जाती हैं।

धमनी और संयुक्ताशिरा द्वारा पहुँचा हुआ रक्त यकृत में छोटी छोटी शिराओं में इकट्ठा होता है; इनके परस्पर संयोग से

श्लैष्मिक कला
कपाट
मांस
शिरा जाल
मांस
मलद्वार संकोचनी अंतःस्था
मलद्वार संकोचनी बहिःस्था

चित्र २०१ मलाशय और गुदा की रचना



(From Woolsey's Applied Surgical Anatomy)

यकृत की बड़ी शिराएं बनती हैं जो अधोगा महाशिरा में जा मिलती हैं। अधोगा महाशिरा द्वारा अन्नमार्ग से आया हुआ रक्त हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में पहुँच जाता है।

हम रक्तवाहक संस्थान (अध्याय १०) में लिख आये हैं कि धमनी से शाखाएं निकला करती हैं और शिरा सहायकों के मेल से बना करती हैं। संयुक्ताशिरा शिराओं की भाँति सहायकों के मेल से बनती हैं परन्तु वह धमनियों की भाँति (यकृत में पहुँच कर) शाखाएं भी देती है। संयुक्ता शिरा के विषय में एक और बात याद रखनी चाहिये वह यह कि उसमें पौष्टिक पदार्थ बहुत होते हैं; वसा को छोड़ कर जितनी प्रोटीन और शकर का आत्मीकरण होता है वे सब चीज़ें इस शिरा के रक्त में रहती हैं (देखो आत्मीकरण)।

भोजन का आत्मीकरण

मुख, कंठ और अन्नप्रणाली में किसी चीज़ का आत्मीकरण नहीं होता। आमाशय, क्षुद्रांत्र और बृहदंत्र के उद्गामी भाग में ही यह क्रिया होती है। इस क्रिया का मुख्य स्थान क्षुद्रांत्र को ही समझना चाहिये।

प्रोटीन—आमाशय में इसका आत्मीकरण किंचित् मात्र ही होता है। प्रोटीन का अधिक भाग क्षुद्रांत्र के ग्राहकांकुरों की रक्त केशिकाओं में चला जाता है। कुछ थोड़ा सा आत्मीकरण बृहत् अंत्र में भी होता है। भोजन की शेष प्रोटीन ज्यों की त्यों या कुछ परिवर्तित दशा में विष्ठा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाती है।

प्रोटीनों के आत्मीकरण के विषय में यह बात याद रखने

योग्य है कि जो प्रोटीनें हमको दूसरे प्राणियों से मांस या दुग्ध द्वारा प्राप्त होती हैं उनका अन्नवर्ग से प्राप्त होनेवाली प्रोटीनों की अपेक्षा अधिक आत्मीकरण होता है जैसा कि इस तालिका से विदित होगा :—*

भोज्य पदार्थ	प्रोटीन के आत्मीकरण का गुणक	कर्बोज के आत्मीकरण का गुणक
आटा ...	८० से ८८ %	९६,९७ %
अरहर की दाल	८२ से ८६ %	९२ से ९६ %
मूंग की दाल ...	८५·६ %	
चने की दाल ...	६४·९ %	९७·७ %
उड़द (माष) की दाल ...	६९·२ %	
जौ ...	५७·६ %	९६·० %
जुआर ...	५३·६ %	९७·८ %
बाजरा ...	४९·४ %	
शाक ...	७६·३ %	
मांस ...	लगभग सब	
दुग्ध ...	लगभग सब (८८-१००) %	

जितना आटा हम खाते हैं यदि उसमें १०० माशे प्रोटीन है तो उसमें से केवल ८० से ८८ माशे का आत्मीकरण होगा शेष प्रोटीन विष्टा द्वारा शरीर से बाहर निकल जायगी; मांस और

*Mc Cay's Protein element in Nutrition के आधार पर है।

दुग्ध की प्रोटीनें बहुत कम विष्ठा द्वारा निकलती हैं। यह बात स्वस्थ मनुष्य के विषय में समझनी चाहिये। जिन लोगों की पाचक क्रिया कमज़ोर है उनमें प्रोटीनों वा अन्य चीज़ों का आत्मीकरण बहुत कम होता है; भोजन का बहुत भाग विष्ठा बन कर निकल जाता है।

उपरोक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि दालों में मूंग की दाल से सब से ज़्यादा और चने की दाल से सब से कम प्रोटीन का आत्मीकरण होता है।

कर्बोज—केवल शर्करा का ही आत्मीकरण हो सकता है इसलिए सब कर्बोज पाचक रसों की क्रिया से अधिकतर द्राक्षौज*

* कुछ फलौज शर्करा भी बना करती है।

फूल मैदा में आटे की अपेक्षा प्रोटीन कम होती है परन्तु फूल मैदा की प्रोटीन का आत्मीकरण आटे की प्रोटीन के आत्मीकरण की अपेक्षा कुछ अधिक होता है :—

	प्रोटीन	प्रोटीन का आत्मीकरण	कर्बोज	कर्बोज आत्मीकरण
फूल मैदा	७·९%	८८·६%	७६·४%	९७·७
आटा	११·५ से १४·२% तक	८०-८२%	७०-७०·९%	९३·५ से ९५%

के रूप में आ जाते हैं। मुख, कंठ, अन्नप्रणाली और आमाशय में शकर का आत्मीकरण नहीं होता। क्षुद्रांत्र में पहुँच कर यह शकर सहज सहज शिराओं के रक्त में पहुँचती है। संयुक्ताशिरा द्वारा यह शकर यकृत में जाती है; यकृत से अधोगा महाशिरा में। जितनी शकर की शरीर को आवश्यकता होती है उतनी तो सहज सहज अधोगा महाशिरा द्वारा रक्त में पहुँचती रहती है; शेष शकर को यकृत रोक लेता है; यकृत की सेलें इस शकर से शर्कराजन (ग्लाइकोजन) नामक चीज़ बना लेती हैं। शर्कराजन के रूप में यह शकर यकृत की सेलों में जमा रहती है; जब शरीर को और शकर की आवश्यकता होती है तो यकृत की सेलें शर्करा-जन से फिर शर्करा बना देती हैं और यह शर्करा रक्त में पहुँच जाती है। *

कर्बोज का वह भाग जो शर्करा के रूप में नहीं आया या जिसका आत्मीकरण नहीं हुआ विष्ठा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है।

हमारे रक्त में शर्करा का परिमाण ०·१% † के लगभग (१००० भाग में १ भाग) होता है। यकृत केवल इतनी ही शर्करा महा-शिरा के रक्त में जाने देता है जिससे शर्करा का परिमाण ०·१% से अधिक न बढ़े। कभी कभी कुछ लोग इतनी शर्करा

* यकृत के ठीक काम न करने से भी मधुमेह रोग हो जाता है।

† भोजन से पहले रक्त शर्करा ०·०८% होती है; कर्बोज के भोजन के पश्चात् आधे घन्टे में उसकी मात्रा ०·१८% हो जाती है; फिर शीघ्र घट जाती है। संयुक्ताशिरा के रक्त में उसकी मात्रा ०·०५% (बहुत भूखे रहने में) से ०·४% (अधिक कर्बोज के भोजन के पश्चात्) तक होती है।

(या श्वेतसार) खाते हैं कि यकृत उसको रोक नहीं सकता। ऐसी दशा में रक्त में शर्करा का परिमाण अधिक हो जाता है। वृक्क इस अधिक शर्करा को मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकाल देते हैं। जब शर्करा और श्वेतसार के अधिक सेवन के कारण मूत्र में शर्करा निकलने लगती है तो इसको एक प्रकार का मधुमेह कहते हैं। इस प्रकार का मधुमेह भोजन में शर्करा या श्वेतसार का परिमाण कम करने और अधिक शारीरिक परिश्रम करने से अपने आप अच्छा हो जाता है।

वसा—(देखो चित्र २०२, १९५) वसा का आत्मीकरण क्षुद्रांत्र में लसीका द्वारा होता है*। ग्राहकांकुरों की लसीका केशिकाओं द्वारा वसा लसीका में पहुँच जाती है। क्षुद्रांत्र की लसीकावाहिनियाँ वृहत् लसीकावाहिनी से जा जुड़ती हैं। महा लसीकावाहिनी बाईं ओर की ग्रीवा और ऊर्ध्व शाखा की शिराओं के संगम में जा मिलती हैं (चित्र २०२) इस प्रकार वसा लसीका द्वारा रक्त में पहुँच जाती है। वसा के आत्मीकरण के लिये पित्त का होना ज़रूरी है; जब पित्त अच्छी तरह नहीं बनता (जैसे यकृत के कुछ रोगों में) तो वसा का अधिक भाग ज्यों का त्यों विष्ठा द्वारा शरीर से बाहर निकल जाता है। वसा के होने और पित्त के न होने के कारण विष्ठा का रङ्ग श्वेत सा हो जाता है।

जो लसीका वसा वाले भोजन खाने के पश्चात् क्षुद्रांत्र की लसीकावाहिनियों में रहता है उसका रङ्ग वसा के नन्हें ज़र्रों के कारण दूधिया सा होता है।

* कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि किंचित् मात्र वसा ग्राहकांकुरों की रक्त-केशिकाओं में भी चली जाती है।

चित्र २०२ लसीका संचार

चित्र व्याख्या :—

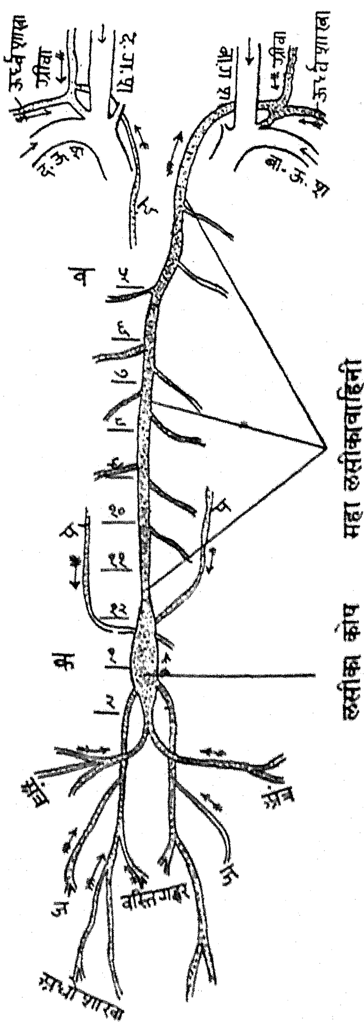
व=वक्ष ; क=कटी ; ५ से १२ तक=वक्ष के कशेरुका ; १,२ कटी कशेरुका ; बा ग श=ग्रीवा के बाएं भाग की बड़ी शिरा ; बा.ऊ.शा=बाईं ऊर्ध्व शाखा की शिरा ; द.ग.श=ग्रीवा के दाहिने भाग की शिरा; द.ऊ.श=दाहिनी ऊर्ध्व शाखा की शिरा ।

जिन नलियों में नन्हें नन्हें बिन्दु हैं वे लसीका वाहिनियाँ हैं ।

ज=जननेन्द्रियों की लसीका वाहिनियाँ ।

प=ये लसीका वाहिनियाँ वक्ष के नीचे के भागों की दीवार से लसीका को उदर में ले जाकर लसीका कोष में डालती हैं ।

अंत्र—ये अंत्र की लसीका वाहिनियाँ हैं ; इनके द्वारा वसा अंत्र से आकर लसीका कोष में पहुँचती है । लसीका कोष से महा लसीकावाहिनी का आरम्भ होता है । यह लसीका को ग्रीवा में ले जाकर शिराओं के रक्त में मिला देती है । लसीका और लसीकावाहिनियों का वर्णन अध्याय १० में किया गया है ।



लवण—भोजन के लवणों का आत्मीकरण विशेष कर तो क्षुद्रांत्र में होता है परन्तु थोड़ा बहुत मुख कंठ और अन्नप्रणाली को छोड़ कर अन्नमार्ग के शेष भागों (आमाशय और बृहत् अंत्र) में भी होता है।

जल—जो जल भोजन से अलग पिया जाता है उसका आत्मीकरण आमाशय में बिलकुल नहीं होता; आमाशय उसको शीघ्र क्षुद्रांत्र में ढकेल देता है। क्षुद्रांत्र और बृहत् अंत्र में यह जल श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त और लसीका में चला जाता है।

भोजन के साथ मिले हुए जल का आत्मीकरण अधिकतर बृहत् अंत्र में होता है; आमाशय और क्षुद्रांत्र में थोड़ा थोड़ा ही हो पाता है। जब आहार रस बृहत् अंत्र में पहुँचता है तब वह बहुत पतला होता है; अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र में पहुँचते पहुँचते कुछ गाढ़ा हो जाता है, ज्यों ज्यों मलाशय के निकट पहुँचता है त्यों त्यों विष्ठा सख्त होने लगता है। इस सबका कारण यही है कि उसका जल कम हो गया है।

अधिक शारीरिक परिश्रम के पश्चात् विशेषकर ग्रीष्मऋतु में जल पीने से पसीना खूब आता है। पसीना इतनी जल्दी निकलता है कि साधारण मनुष्य यह समझा करते हैं कि जो जल पिया गया उसी का पसीना बन गया। वास्तव में यह बात नहीं; उस जल को रक्त में पहुँचने में देर लगती है। जल पीते पीते ही पसीना आने का कारण और है; यह बात वात-संस्थान (नाड़ी संस्थान) से सम्बन्ध रखती है।

अन्नमार्ग के विविध भागों में भोजन कितनी कितनी देर ठहरता है (देखो चित्र २०३)

आमाशय—पूरा भोजन आमाशय में ४ से ५½ घन्टे तक ठहरता है। आमाशय में पहुँचने से थोड़ी देर पीछे भोजन सहज सहज पक्वाशय में जाने लगता है और जब तक आमाशय खाली न हो जावे (चार पाँच घन्टे तक) वह जाता रहता है।

क्षुद्रांत्र—क्षुद्रांत्र में भी भोजन चार पाँच घंटे ही ठहरता है। भोजन खाने के कोई ४½ घन्टे पीछे आहार रस क्षुद्रांत्र के अंतिम भाग से वृहत् अंत्र के प्रारंभिक भाग में आने लगता है। यदि भोजन दिन के बारह बजे किया जावे तो आहार रस वृहत् अंत्र में शाम के साढ़े चार बजे पहुँचना आरम्भ हो जावेगा। (चित्र २०३ में ४½) और नौ साढ़े नौ बजे तक आता रहेगा।

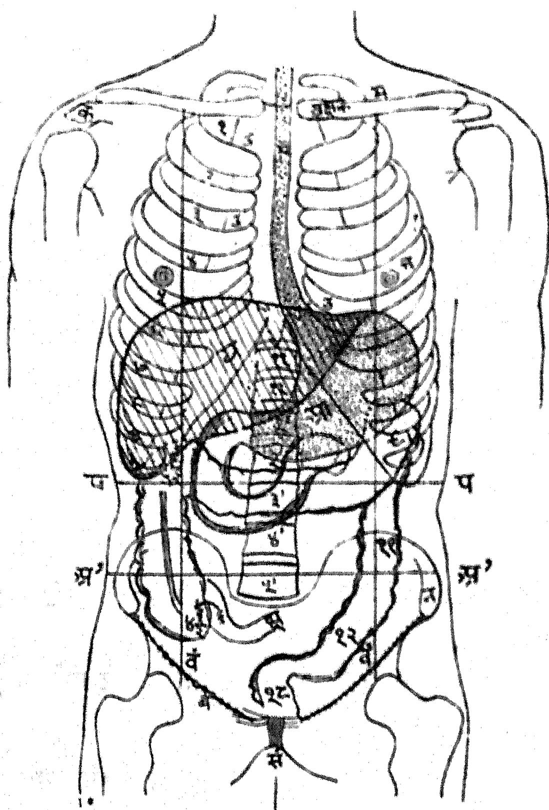
उद्गामी वृहत् अंत्र—उद्गामी वृहत् अंत्र के अंत तक पहुँचने में २ घंटे लगते हैं। (भोजन खाने के ६½ घंटे पश्चात् पहुँचना आरंभ होता है।)

अनुप्रस्थ वृहत् अंत्र—के अंत तक नौ घंटे पीछे पहुँचना आरम्भ होगा (चित्र २०३ में ९)।

अधोगामी वृहत् अंत्र—वस्तिगह्वर में रहने वाले भाग तक पहुँचने में कोई १२ घन्टे लगते हैं।

मलाशय—वस्तिगह्वरस्थ वृहत् अंत्र में विष्ठा बहुत धीरे धीरे नीचे को चलता है; मलाशय तक कोई १८ घन्टे में

चित्र २०२



व्याख्या :—इस चित्र में उदर के नौ प्रदेश दिखाये गये हैं यह भी दर्शाया गया है कि अन्नप्रणाली, आमाशय, यकृत, क्षुद्रांत्र, और बृहत् अंत्र शरीर में कहाँ रहते हैं। भोजन कितनी कितनी देर पीछे अन्नमार्ग

के किस भाग में पहुँचता है यह ४½, ६½, ९, ११, १२, और १८ अंकों से विदित होता है।

१ से १० तक=पसलियाँ ; उ=उपपर्शुका ; च=चूचुक या स्तन वृन्त ; ११, १२=वक्ष के कशेरुका ; १' से ५' तक=कटि कशेरुका ; क=अंस कूट ; म=अक्षक का मध्य ; अ=अन्नप्रणाली ; आ=आमाशय ; य=यकृत ; न=पुरोर्ध्व कूट ; क्ष=क्षुद्रांत्र का अंतिम भाग ; वं=वंक्षण रेखा या खड़ी रेखा ; यह रेखा यदि ऊपर को उरस्थल पर बढ़ाई जावे तो अक्षक के मध्य तक पहुँचेगी ; प प=पर्शुकाधो रेखा ; अ' अ'=अर्बुदांतरिक रेखा। चूचुक चौथे पर्शुकांतर में रहता है ; व=वंक्षण बंधन।

पहुँचता है। सब मनुष्य एक जैसे नहीं होते ; न तो सब के सब एक ही जैसा परिश्रम करते और भोजन खाते हैं। इसलिये जो समय ऊपर बतलाये गये हैं वे केवल एक अन्दाज़ा लगाने के लिये हैं ; यह न समझना चाहिये कि हर एक मनुष्य में भोजन (या आहार रस) इसी चाल से चलता है।

जब मल (या विष्ठा) मलाशय में पहुँच जाता है तब शौच की इच्छा मालूम होती है। जब तक हम मल त्यागना न चाहें मलद्वार का छिद्र मलद्वार संकोचनी पेशी के संकोच से बंद रहता है। मल त्यागने के समय पेशी के प्रसार से छिद्र खुल जाता है और मल बाहर निकल जाता है।

शौच

शौच के समय हम गहरा स्वांस लेते हैं जिससे वक्षउदर-मध्यस्थ पेशी संकोच कर के उदर की ओर उतरती है। वक्ष-उदरमध्यस्थ पेशी के साथ साथ उदर की सामने की दीवार

की दूसरी पेशियाँ संकोच करती हैं। इन सब पेशियों के संकोच से उदर की समाई घटती है और अंत्र पर दबाव पड़ता है। वृहत् अंत्र के अंतिम भाग में विशेषकर वस्तिगह्वर में रहने वाले भाग में बड़ी शीघ्रता और वेग से आकुञ्चन होता है और साथ साथ मलद्वार संकोचनी का प्रसार होता है। मलद्वार खुल जाता है और मल वेग के साथ बाहर निकलता है। अंत में गुदोत्थापिका पेशी का संकोच होता है जिससे बचा कुचा मल बाहर आ जाता है।

विष्ठा या मल

भोजन में सब चीज़ें पचने योग्य नहीं होतीं जैसे शाकों के रेशे (काष्ठौज); पचने योग्य चीजें भी सम्पूर्णतः पच नहीं जातीं उन का कुछ न कुछ भाग अधपचा रह ही जाया करता है। पचे हुए भाग में से कुछ का आत्मीकरण नहीं हो पाता। ये सब चीज़ें मल या विष्ठा रूप में शरीर से बाहर निकल जाया करती हैं।

मल की प्रतिक्रिया साधारणतः क्षारीय होती है। उसका रंग भोजन पर निर्भर होता है। शाकाहारियों के मल का रंग पीलाहट लिये होता है। मांसाहारियों के मल का रंग भूरा सा होता है। रोगों में काले, श्वेत, हरे या किसी और रंग का मल आने लगता है। मांसाहारियों के मल का परिमाण शाकाहारियों की अपेक्षा कम होता है। विष्ठा में ये ये चीज़ें रहती हैं:—

१—जल।

२—भोजन का बिना पचा (अपक्व और अनात्मीकृत) अंश।

३—भोजन का वह भाग जो पचने योग्य नहीं जैसे शाकों

के रेशे, फलों के छिलके और बीज और गुठलियाँ, मिर्चों के बीज, मांस की कंडरा का कुछ भाग, कच्चा (बिना उबाला हुआ) श्वेतसार, कई प्रकार के लवण।

४—वे पदार्थ जो अंत्र में सड़ाव के कारण उत्पन्न होते हैं जैसे इन्डोल, स्कटोल * इत्यादि; कई प्रकार के अम्ल।

५—अनेक प्रकार के बकटेरिया नामक सूक्ष्म जन्तु।

६—अन्नमार्ग की श्लैष्मिक कला की गिरी हुई सेलें।

७—पाचक रसों के कुछ भाग जैसे पित्त।

मल में बहुधा कुछ दुर्गन्ध आया करती है। इसका कारण यह है कि क्षुद्रांत्र के नीचे के भाग में और बृहत् अंत्र में अनेक प्रकार के बकटेरिया नामक सूक्ष्म जन्तु वास करते हैं। ये बचे कुचे भोजन पर जीवन निर्वाह करते हैं। ये कई प्रकार के हानिकारक पदार्थ (जैसे इन्डोल, स्कटोल) बनाते हैं जो बदबूदार होते हैं। इन्हीं के कारण विष्ठा में दुर्गन्ध आया करती है। जिन मनुष्यों को क़ब्ज़ और अजीर्ण रहता है उनकी अंत्र में सड़ाव अधिक होता है और उनका मल भी अधिक दुर्गन्धित होता है। सड़ाव के कारण अंत्र में कई प्रकार की गैसें† भी बनती हैं। गैसें समय समय पर मलद्वार से निकला करती हैं। कभी कभी ये गैसें बहुत बदबूदार होती हैं। जब अंत्र में अधिक सड़ाव होता है तब विषैले पदार्थ रक्त में भी पहुँच जाते हैं और अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। क़ब्ज़ बुरी चीज़ है इसको कभी पास न आने देना चाहिये।

---

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है। † गैस (Gas)=वायव्य।

पाक कर्म संक्षेप

१—भोजन सब से पहिले मुख में जाता है। यहाँ दो क्रियाएं होती हैं एक चर्वण जिससे वह पिस जाता है दूसरी लाला मिश्रण जिससे वह गीला और मुलायम हो जाता है। लाला के श्वेतसार परिवर्त्तक पदार्थ की क्रिया से भोजन के श्वेतसार से यवौज शर्करा बनने लगती है।

२—लाला मिश्रण के पश्चात् भोजन निगला जाता है। उसके छोटे छोटे भाग जिनको गस्से (या ग्रास) कहते हैं, मुख से कंठ में होकर अन्नप्रणाली में पहुँचते हैं। यह क्रिया गिलन कहलाती है।

३—आमाशय में कोई आध घन्टे तक लाला का असर श्वेतसार पर होता रहता है। जब आमाशयिक रस बन जाता है तो प्रोटीनों का विश्लेषण होने लगता है। वसा पिघल जाती है। दुग्ध जम जाता है। इक्षौज से द्राक्षौज वा फलौज बन जाती हैं। आमाशय में भोजन खूब मँथ जाता है और उसकी प्रतिक्रिया अम्ल हो जाती है। यह मँथा हुआ पतला भोजन आहार रस कहलाता है।

४—आहार रस धीरे धीरे क्षुद्रांत्र में जाता है। यहाँ पित्त, क्षुद्रांत्रीय रस और क्लोम रस उसपर अपना पाचक असर करते हैं। आहाररस की अम्लता जाती रहती है और अब उसकी प्रतिक्रिया क्षारीय हो जाती है। प्रोटीनों का विश्लेषण पूर्ण होता है ; श्वेतसार से द्राक्षौज बन जाती है। सब शर्कराएँ द्राक्षौज के रूप में आ जाती हैं। वसा से गिलीस्रीन और साबुन बन जाते हैं। सब मूल अवयव इस योग्य बन

जाते हैं कि अन्नमार्ग की श्लैष्मिक कला उनको ग्रहण कर सके। यह क्रिया पक्वीकरण कहलाती है।

५—पक्वीकरण के पश्चात् आहार रस में से आवश्यक पदार्थ श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त और लसीका में पहुँचते हैं और शरीर के भाग बन जाते हैं। यह क्रिया आत्मीकरण है। वसा का आत्मीकरण क्षुद्रांत्र के ग्राहकांकुरों की लसीका केशिकाओं द्वारा होता है। शेष चीज़ें रक्त में पहुँचती हैं। जल और लवण लसीका और रक्त दोनों प्रकार की केशिकाओं में पहुँचते हैं; प्रोटीन वसा और शर्करा का आत्मीकरण अधिकतर क्षुद्रांत्र में होता है वृहत् अंत्र में कम और आमाशय में बहुत ही कम। आहार रस के जल का आत्मीकरण अधिकतर वृहत् अंत्र में होता है।

६—क्षुद्रांत्र से बचा कुचा आहाररस वृहत् अंत्र में जाता है। जल के शोषण से वह गाढ़ा हो जाता है। अनात्मीकृत भोजन से विष्ठा बनता है जो नियत समय पर मलद्वार से बाहर निकलता है।

यकृत के कार्य

१—यकृत में पित्त बनता है।

२—यकृत अधिक शर्करा रक्त में नहीं जाने देता। शर्करा से शर्कराजन बना लेता है; यह चीज़ यकृत की सेलों में रहती है; जब शरीर को शर्करा की आवश्यकता होती है तब शर्कराजन से फिर शर्करा बन जाती है। यों समझिये कि यकृत शर्करा के आय और व्यय का हिसाब रखता है।

३—मूत्र में जो यूरिया और यूरिक अम्ल नामक यौगिक नकला करते हैं वे भी यकृत में बनते हैं।

४—समय समय पर हमारे शरीर में विशेष कर अन्नमार्ग में कुछ विषैले पदार्थ बनते रहते हैं। जब ये पदार्थ यकृत में पहुँचते हैं तो वह उनसे और ऐसे पदार्थ बना देता है जो शरीर को हानि न पहुँचा सकें।

उपरोक्त से विदित है कि यकृत एक परमावश्यक अंग है। अजीर्ण, क़ब्ज़, हृदय और फुप्फुस के रोगों से यकृत के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मद्यपान भी यकृत के लिये अत्यन्त हानिकारक है।

अध्याय १८

भोजन से रक्त की उत्पत्ति

१—रक्त में रक्त डिम्बज, रक्त ग्लोब्युलिन* और फ़ाइब्रिन-नक † नामक तीन प्रोटीनें होती हैं। ये सब उन प्रोटीनों से नती हैं जो भोजन में होती हैं और जो छोटे छोटे अणु वाले ौगिकों के रूप में क्षुद्रांत्र की श्लैष्मिक कला में से होकर रक्त-शिकाओं में पहुँचती हैं।

२—रक्त में वसा रहती है। रक्त में वसा लसीका द्वारा आती है। क्षुद्रांत्र से वसा लसीका केशिकाओं में चली जाती है। अंत्र की लसीका वाहिनियाँ लसीका कोष से जा जुड़ती हैं। (देखो चित्र २०२) लसीका कोष से महालसीका वाहिनी का आरम्भ होता है। महालसीका वाहिनी ग्रीवा में जाकर बाईं ग्रैवेयी और बाईं ऊर्ध्व शाखा की शिराओं के संगम में जा मिलती है। इस प्रकार अंत्र से ग्रहण की गई वसा रक्त में पहुँच जाती है।

३—रक्त में द्राक्षौज होती है। भोजन के कर्बोज से पक्वीकरण क्रिया द्वारा द्राक्षौज बन जाती है। यह द्राक्षौज संयुक्ता शिरा द्वारा यकृत में पहुँचती है। यकृत से द्राक्षौज धीरे धीरे याकृती शिराओं द्वारा महाशिरा में पहुँचती है।

४—रक्त लवणों और जल को भी भोजन से ही प्राप्त करता है।

*अङ्गरेज़ी भाषा के शब्द हैं। † अङ्गरेज़ी शब्द का हिन्दी रूप।

इतनी बात याद रखनी चाहिये कि शरीर में प्रोटीन से शर्करा और शर्करा से वसा बन सकती हैं। शर्करा और वसा से प्रोटीनें नहीं बन सकतीं।

संवर्तन-परिवर्तन-निवर्तन

जीवित शरीर में दो क्रियाएँ होती रहती हैं—एक ओर चीज़ों का आय होता है (भोजन और श्वास द्वारा); दूसरी ओर व्यय होता है (कार्य्य करने में और मूत्र, घर्म्म और श्वास द्वारा)। शरीर के पोषण और वृद्धि के लिये दोनों क्रियाओं की आवश्यकता है। वे सब भौतिक, रासायनिक और जैविक क्रियाएँ जिनके द्वारा शरीर में जीवित पदार्थ की वृद्धि, रक्षण और क्षय होता है **संवर्तन** कहलाती हैं। भोजन का पचना और फिर उसका आत्मीकृत होना, श्वास द्वारा ओषजन का ग्रहण होना; ओषजनीकरण जैसी रासायनिक क्रियाओं द्वारा आत्मीकृत पदार्थों से शक्ति उत्पन्न होना और यूरिया, अमोनिया, क ओ₂, जल इत्यादि भाँति भाँति के पदार्थों का बनना और फिर इन पदार्थों का श्वास, घर्म्म और मूत्र द्वारा त्यागा जाना—ये सब क्रियाएँ मिल कर **संवर्तन** कहलाती हैं।

संवर्तन में दो प्रकार की क्रियाएँ सम्मिलित हैं :—

१—इस प्रकार की क्रिया द्वारा पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं; भोजन द्वारा प्रोटीन, वसा, कर्बोज, जल और भाँति भाँति के लवण और खाद्योज; श्वास द्वारा ओषजन। इन पदार्थों से शरीर बनता है, उसकी रक्षा होती है और उसकी वृद्धि होती है। ये सब क्रियाएँ **परिवर्तन** कहलाती हैं। परिवर्तन संवर्तन का वह

अंश है जिसके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थ जीवित शरीर के भाग बन जाते हैं जैसे श्वेतसार और कर्बोज से अंगूरी शकर और फिर शर्कराजन का बनना और शर्कराजन का यकृत में इकट्ठा रहना; भोजन की प्रोटीनों से रक्त की प्रटीनों का बनना और फिर इन प्रोटीनों से विविध सेलों की वृद्धि होना; भोजन के खटिक, स्फुर इत्यादि लवणों का ग्रहण किया जाना और फिर इनसे अस्थि का बनना और भाँति भाँति के लवणों का सेलों में जमा रहना; वसा का शरीर के विविध भागों में इकट्ठा होना। यह समझना चाहिये कि परिवर्तन निर्माण की क्रिया है।

२—दूसरी क्रिया परिवर्तन के विरुद्ध है। हर समय रासायनिक क्रियाओं द्वारा जीवोज का क्षय होता रहता है। ओषजनीकरण से शक्ति उत्पन्न होती है और वसा और शर्करा से क ओ$_2$ और जल और प्रोटीनों के क्षय से यूरिया, अमोनिया इत्यादि पदार्थ बनते हैं। ये पदार्थ मूत्र, पसीने और श्वास द्वारा शरीर से बाहर निकलते हैं। संवर्तन के इस अंश को जिसके द्वारा परिवर्तन द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थों का नाश होता है **निवर्तन** कहते हैं।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि—

संवर्तन=परिवर्तन+निवर्तन

जब परिवर्तन और निवर्तन बराबर हो तो शरीर न घटता है और न बढ़ता है; भार ज्यों का त्यों रहता है जैसा कि ३०-४० वर्ष की आयु में बहुधा होता है। जब परिवर्तन निवर्तन से अधिक होता है अर्थात् आय अधिक हो और व्यय कम तो शरीर की वृद्धि होती है जैसे बालकाल में। जब निवर्तन परिवर्तन से कम हो तो शरीर का भार घटने लगता है; शरीर दुबला हो जाता है जैसे वृद्धावस्था और रोगों में।

प्रणाली विहीन ग्रन्थियों को (विशेष कर चुल्लिका ग्रन्थि, पिट्यूट्री, उपवृक्क, और थाइमस) संवर्तन से विशेष सम्बन्ध है। चुल्लिका ग्रन्थि के कम काम करने से शरीर स्थूल हो जाता है; पिट्यूट्री के कम काम करने से एक प्रकार का बौनापन और मोटापन हो जाता है; उसके अधिक काम करने से हाथ पैर लम्बे हो जाते हैं; और एक प्रकार का राक्षसपन उत्पन्न हो जाता है इत्यादि (देखो प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ)।

रक्त में पहुँचने के पश्चात् प्रोटीनों, वसा और शर्करा का क्या होता है

प्रोटीन का संवर्तन

प्रोटीन के कुछ भाग से शरीर में नयी सेलें बनती हैं इससे शरीर का वर्धन होता है; कुछ भाग पुरानी सेलों के क्षय हुए भाग को पूरा करने के काम में व्यय होता है; कुछ भाग शक्ति उत्पन्न करने में व्यय होता है। शेष भाग जिसकी शरीर में आवश्यकता नहीं बिना काम आये यूरिया, यूरिक अम्ल के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है (जब प्रोटीन ज़रूरत से ज़्यादा खाई जाती है तब अधिक यूरिया बनता है)।

वसा का संवर्तन

वसा का कुछ भाग शक्ति उत्पन्न करने के काम में आता है। शेष भाग शरीर में कई जगह (जैसे त्वचा के नीचे, वृक्कों के चारों ओर, अंत्रच्छदा कला में) इकट्ठा होता है। जो लोग अधिक वसा खाते हैं उनके शरीर अधिक वसा के इकट्ठे होने से

स्थूल हो जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर शरीर की यह वसा काम में आती है और उससे शक्ति उत्पन्न होती है (जैसा कि लंघन करने में होता है) इसी वजह से स्थूल मनुष्यों की स्थूलता कम भोजन करने और अधिक शारीरिक परिश्रम करने के कारण धीरे धीरे कम होने लगती है।

कर्बोज का संवर्तन

शर्करा का अधिक भाग शक्ति उत्पन्न करने में व्यय होता है; कुछ भाग यकृत वा अन्य कई स्थानों में शर्कराजन के रूप में जमा रहता है। कुछ भाग से वसा बन जाती है। जो लोग अधिक कर्बोज खाते हैं उनके शरीर स्थूल हो जाते हैं अधिक स्थूलता अस्वास्थ्य का एक चिह्न है।

भोजन का कार्य और शक्ति से सम्बन्ध

बिना शक्ति के कोई कार्य या क्रिया नहीं हो सकती। यह शक्ति पदार्थों के ओषजनीकरण * (धनद् प्रक्रिया) से उत्पन्न

* ओषजनीकरण एक रासायनिक क्रिया है जिसमें ओषजन गैस किसी और पदार्थ से संयोग करती है। इस पदार्थ और ओषजन के रासायनिक संयोग से नये पदार्थ बन जाते हैं।

उदाहरण :—

१—हवा में रक्खे रहने से लोहे पर ज़ंग लग जाता है। ज़ंग लोहे और ओषजन के रासायनिक संयोग से बना हुआ एक यौगिक है।

२—जस्त और ओषजन के रासायनिक संयोग से एक श्वेत यौगिक बन जाता है (इसी को आँखों में आंजा करते हैं)।

३—जब मिट्टी का तैल (या कोई और तैल) जलता है तो उसका

होती है। ओषजनीकरण के लिये ओषजन की आवश्यकता है; शरीर में ओषजन वायुमण्डल से फुप्फुसों द्वारा पहुँचती है। जिन पदार्थों का ओषजनीकरण होता है वे प्रोटीन, वसा और शर्करा हैं। संपूर्ण ओषजनीकरण से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे क ओ$_2$, जल, यूरिया, यूरिक अम्ल एमोनिया इत्यादि हैं। इन में से क ओ$_2$ और जल फुप्फुसों द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते हैं; अन्य पदार्थ मूत्र और पसीने द्वारा त्यागे जाते हैं।

ओषजनीकरण से जो शक्ति उत्पन्न होती है उसका कुछ भाग तो कार्य करने में व्यय हो जाता है, शेष भाग उष्णता के रूप में रहता है। इस उष्णता का व्यय यों होता है :—

(१) उच्छ्वास वायु बहुधा हमारे शरीर की अपेक्षा ठंढी

वायु की ओषजन के साथ संयोग होता है इस संयोग से कर्बनद्विओषित, कर्बन एक ओषित इत्यादि यौगिक उत्पन्न होते हैं; तैल का कुछ कर्बन आस पास की ठंढी चीज़ों पर काजल के रूप में जम जाता है। इस रासायनिक संयोग से शक्ति उत्पन्न होती है जो दो रूप धारण करती है अर्थात् इसका कुछ भाग उष्णता बन जाता है जो आस पास की चीज़ों को गरम करता है; कुछ से प्रकाश होता है (प्रकाश और उष्णता एक ही चीज़ के दो रूप हैं)।

४—लकड़ी, कोयला इत्यादि जब जलते हैं तब इन पदार्थों का ओषजनीकरण होता है; यदि ओषजन न हो तो ये चीज़ें नहीं जलतीं।

५—स्फुर हवा में फ़ौरन जलने लगता है। स्फुर और ओषजन के संयोग से नये यौगिक बन जाते हैं और उष्णता और प्रकाश उत्पन्न होते हैं।

हमारे शरीर में इसी प्रकार पदार्थों का ओषजनीकरण हुआ करता है। ओषजनीकरण कभी भी ऐसा नहीं होता जिससे प्रकाश या ज्वाला निकले।

ोती है। श्वास पथ में इस का तापक्रम वही हो जाता है जो
रीर का। उष्णता का कुछ भाग इस ठंढी वायु का तापक्रम
ढ़ाने में ख़र्च हो जाता है।

(२) प्रश्वास वायु में वाष्प रूप में जल रहता है। जल से
ाष्प उष्णता के प्रभाव से ही उत्पन्न होती है।

(३) थोड़ा बहुत पसीना हर समय हमारी त्वचा से उड़ता
हता है। इस क्रिया में भी उष्णता का व्यय होता है।

(४) हमारे आस पास की वस्तुएं हमारे शरीर से थोड़ी
हुत उष्णता सदा ग्रहण करती रहती हैं। जब दो चीज़ें जिन
ा ताप परिमाण भिन्न भिन्न हो पास पास रक्खी जाती हैं
ो उष्णता अधिक गरम चीज़ से कम गरम चीज़ में चली
ाती है; थोड़ी देर में दोनों का ताप परिमाण एक हो जाता
ै। हमारा शरीर बहुधा आस पास की चीज़ों से अधिक
रम होता है इस कारण कुछ उष्णता इन चीज़ों में हर समय
ाती रहती है। मृत्यु के पश्चात् शरीर का तापक्रम वही हो
ाता है जो आस पास की चीज़ों का क्योंकि ओषजनीकरण
न्द हो जाने से उष्णता का बनना तो बन्द हो जाता है परन्तु
उसका बाहर की चीज़ों में जाना जारी रहता है।

जब हम अधिक शारीरिक परिश्रम करते हैं तो उष्णता
अधिक बनने के कारण हमारा शरीर पहिले से ज्यादा गरम
हो जाता है। परिश्रम बन्द करने के थोड़ी ही देर पीछे तापक्रम
फिर ज्यों का त्यों हो जाता है।

उष्णता अधिकतर कहाँ बनती है

वैसे तो उष्णता थोड़ी बहुत हर एक अंग में बनती है परन्तु

कई अङ्ग ऐसे हैं जहाँ वह अधिक बनती है :—

१—मांस। शरीर में ४२% मांस है; मांस ही द्वारा सब गतियाँ होती हैं। मांस को ओषजनीकरण (धनद् प्रक्रिया) का मुख्य स्थान समझना चाहिये।

२—ग्रन्थियाँ। जितनी ग्रन्थियाँ हैं वे हर समय कुछ न कुछ काम करती ही रहती हैं।

कभी कभी रोगों में ज़रूरत से ज्यादा उष्णता बनती है और शरीर का तापक्रम १०५, १०७ और कभी कभी इस से भी अधिक हो जाता है। खूब पसीना और मूत्र आने से तापक्रम कम हो जाता है।

उष्णता का कम या अधिक बनना मस्तिष्क के आधीन है।

शरीर की रेल के अंजन से तुलना

शरीर अग्नि से चलने वाले अंजन के समान है। अंजन में ईंधन जलता है अर्थात् उसका ओषजनीकरण होता है; शरीर में भी पदार्थों का ओषजनीकरण होता है। ओषजनीकरण के लिये ओषजन की आवश्यकता है; दोनों में (शरीर और अंजन में) इस का प्रबन्ध है : ओषजनीकरण से दोनों में क ओ$_2$ इत्यादि पदार्थ बनते हैं ; इनके बाहर निकलने के लिये भी दोनों में प्रबन्ध होता है (अंजन में चिमनी होती है; शरीर में फुप्फुस, वृक्क और त्वचा हैं)। अंजन में ईंधन के जलने से राख बनती है, शरीर में जो पदार्थ पच नहीं सकते वे मल रूप में त्यागे जाते हैं। अंजन का काम बिना पानी और हवा के नहीं चलता शरीर में भी इन दोनों चीज़ों की अतीव आवश्यकता है।

दोनों में बड़ा भेद यह है कि अंजन निर्जीव है शरीर जीवित है।

भोजन सम्बन्धी कुछ फुटकर बातें

१—भोजन आत्मरक्षा का एक बड़ा साधन है। अच्छे शीघ्र पचनेवाले पौष्टिक भोजन को यथा परिमाण * प्राप्त करने का यथाशक्ति यत्न करना प्रत्येक मनुष्य का परम धर्म है।

२—भोजन स्वच्छ स्थान में स्वच्छ पात्रों में बहुत स्वच्छता के साथ रखना और तैयार करना चाहिये। मैला कपड़ा, मैले हाथ, धूल मिट्टी, गन्दा जल इत्यादि भोजन की वस्तुओं में कभी न लगें। दाल, शाक, दही इत्यादि जहाँ तक हो सके चम्मच द्वारा परोसे जावें।

३—बासी भोजन की अपेक्षा ताज़ा भोजन सब तरह से अच्छा होता है। यदि तैयार होते ही भोजन न खाया जावे और उसको कुछ देर तक रखना आवश्यक हो तो उसको ऐसी जगह और इस प्रकार रक्खें कि उसमें धूल मिट्टी न गिरे, गन्दी वायु उस पर असर न करे और मक्खी और चींटी वा कीड़े मकोड़े उस पर न बैठें और न उसको खावें; मक्खी को तो भोजन पर क्षण भर के लिये भी न बैठने देना चाहिये; यह जानवर

* जब मनुष्य आराम से लेटा हो और कोई काम न करता हो तो १$\frac{3}{8}$ मन भार वाले व्यक्ति को १६००-१७०० उष्णांक की आवश्यकता होती है। हलका शारीरिक परिश्रम के लिये २२००-२३०० उ०; मामूली परिश्रम के लिये २५००-२६००, सख़्त मेहनत के लिये ३०००-३१०० उष्णांक की आवश्यकता होती है।

हैज़ा, पेचिश, टायफॉयड, अतिसार (प्रवाहिका) क्षय रोग वा अन्य कई रोगों का फैलाने वाला है। हलवाइयों की दुकानों की वे मिठाइयाँ जो खुले बरतनों में रक्खी रहती हैं और जिन पर सड़क की धूल दिन भर गिरती है और जिन पर सैकड़ों मक्खियाँ और ततैये भिनका करते हैं भूल कर भी न खानी चाहियें।

४—भोजन देखने और सूंघने में प्रिय और खाने में स्वादिष्ट हो। ऐसा भोजन अच्छी तरह से पचता है। जिस भोजन को देखने और सूंघने से घृणा आवे वह कदापि न खाना चाहिये क्योंकि ऐसी दशा में आमाशयिक रस भली प्रकार नहीं बनता।

५—भोजन खाते समय या उसके ठीक पहिले और पीछे किसी प्रकार का रंज और फिकर करना अच्छा नहीं ऐसी दशा में पाचक रस भली प्रकार नहीं बनते हैं। भोजन ऐसे स्थान में खाना चाहिये कि जहाँ कूड़ा करकट और दुर्गंध वाली चीज़ें या धुआँ न हो।

६—भोजन के ठीक पीछे या ठीक पहिले अधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम भोजन के पचाव में बाधा डालते हैं। भोजन करते ही भागना, कूदना, तेज़ चाल से चलना या मन लगाकर अध्ययन करना बहुत हानिकारक हैं। पाठशालाओं तथा स्कूलों का समय ऐसा होना चाहिये कि जिसमें विद्यार्थियों को पूरा भोजन करते ही अध्ययन न करना पड़े। आजकल देरी से पहुँचने के कारण दंड पाने के भय से बहुत से विद्यार्थियों को जल्दी जल्दी अधचबा भोजन निगलकर दौड़ कर चलने या रास्ते में पुस्तक हाथ में लेकर पाठ याद करते हुए जाने की एक अत्यंत हानिकारक आदत पड़ जाती है। हमारी राय में इस आदत के लिये उत्तरदाता इन छोटे छोटे बे समझ विद्यार्थियों को कभी भी

न समझना चाहिये। इन बालकों के माता पिता, स्कूलों का पाठ समय नियत करनेवाले अध्यापक, स्कूलों के अधिष्ठाता और आज कल की शिक्षाप्रणाली इस बुरी आदत और उससे होनेवाली हानि के लिये अत्यंत निंदनीय हैं। भारतवर्ष जैसे गरम देश में पाठ का समय दोपहर से पहिले होना चाहिये; जाड़ों के एक दो महीनों में यदि आवश्यकता हो तो दोपहर से पहिले और पीछे दोनों समय थोड़ी थोड़ी पढ़ाई हो सकती है। भोजन खाते ही पाठशाला में जाने से विद्यार्थियों को आलस्य और निद्रा आया करती है, यही अनवधान का एक बड़ा कारण है।

अध्याय १९

रक्त के कार्य

१—रक्त से शरीर की सेलों को वे सब पदार्थ मिलते हैं, जो उनके बढ़ने और काम करने के लिये आवश्यक हैं। ये पदार्थ प्रोटीन, वसा, शकर, जल, कई प्रकार के लवण ओषजन और खाद्योज हैं। इनमें से ओषजन को छोड़ कर सब पदार्थों को रक्त अन्नमार्ग की दीवारों में से ग्रहण करता है। ओषजन फुप्फुसों से मिलता है।

२—रक्त शरीर के विविध भागों में भ्रमण करता हुआ सेलों के आस पास से उन मलिन और हानिकारक पदार्थों को ग्रहण करता है जो रासायनिक क्रियाओं के होने से हर समय बनते रहते हैं। वह इन पदार्थों को उन अंगों में ले जाता है जिनका काम यह है कि इन पदार्थों को उसमें से निकाल लें और फिर उनको या तो शरीर से बाहर पहुँचा दें या उनसे ऐसे नये पदार्थ बना लें जो शरीर को किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सकें। शरीर के मुख्य अंग जिनमें रक्त की शुद्धि होती है ये हैं:—फुप्फुस या फेफड़े, वृक्क या गुरदे, त्वचा या खाल, यकृत या जिगर आदि। फुप्फुसों द्वारा रक्त से कर्बनद्विओषित गैस और अन्य उड़नशील पदार्थ बाहर निकलते हैं। प्रश्वास वायु में निःश्वास वायु की अपेक्षा अधिक कर्बनद्विओषित गैस होती है। गुरदों में मूत्र बनता है; मूत्र द्वारा रक्त के यूरिया, यूरिक अम्ल और अन्य कई पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाते हैं। त्वचा

भी पसीने के द्वारा रक्त की कुछ शुद्धि करती है।

३—रक्त का तीसरा काम यह है कि वह बहुत से रोगों से शरीर की रक्षा करता है। अब यह बात निश्चित हो गई है कि बहुत से रोगों के कारण अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु हैं; जब ये जन्तु शरीर के भीतर पहुँचते हैं तो रोग पैदा हो जाते हैं।

हम पहले इन सूक्ष्म जन्तुओं के विषय में लिखेंगे, उसके पीछे यह बतलाएँगे कि रोग कैसे उत्पन्न होते हैं और रक्त किस प्रकार शरीर की रक्षा करता है।

सूक्ष्म जन्तु या जीवाणु

अध्याय १ में हम लिख चुके हैं कि कुल जीवित सृष्टि दो वर्गों में विभाज्य है:—

(१) प्राणिवर्ग (२) वनस्पतिवर्ग। दोनों वर्गों में बड़े से बड़े और छोटे से छोटे व्यक्ति होते हैं। प्राणिवर्ग के सब से छोटे व्यक्ति एकसेलयुक्त हैं अर्थात् उनके शरीर केवल एक ही सेल से बनते हैं; इन प्राणियों को आदि प्राणी कहते हैं आदि प्राणी इतने छोटे होते हैं कि वे बिना अणुवीक्षण की सहायता के दिखाई नहीं देते। अमीबा एक आदिप्राणी है। कुछ आदिप्राणी ऐसे हैं कि यदि वे शरीर के भीतर प्रवेश करें तो तरह तरह के रोग पैदा करते हैं (चित्र २०४)। उदाहरणार्थ :—

(१) मलेरिया ज्वर के (तिजारी, चौथिया या मौसमी बुख़ार) जन्तु (चित्र २०४ में म)।

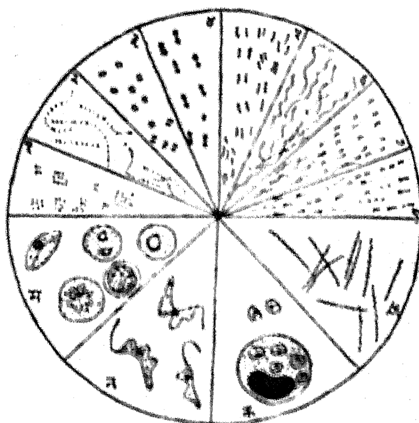
(२) कालाअज़ार ज्वर के जन्तु (चित्र २०४ में क)।

(३) सिलीपिंग सिकनेस अर्थात् अतिनिद्रा रोग के जन्तु (चित्र २०४ में न)।

(४) एक प्रकार के आमातिसार के जन्तु ।

(५) आतशक (फिरङ्ग) रोग के जन्तु (चित्र २०४ में फ़)

चित्र २०४ जीवाणु



म=मलेरिया ज्वर के आदि प्राणी
न=अति निद्रारोग ,,
क=काला अज़ार ज्वर ,,
फ़=आतशक ,,
१, २, फोड़े, फुन्सी, प्रसूत रोग के बिन्द्वाकार रोगाणु
३—सूज़ाक के रोगाणु ,,
४—फुप्फुस प्रदाह के ,,
५—क्षय रोग ,, ,,
६—हेर फेर के ज्वर के ,,
७—हैज़े ,, ,,
८—हनुस्थंभ या टिटेनस के रोगाणु

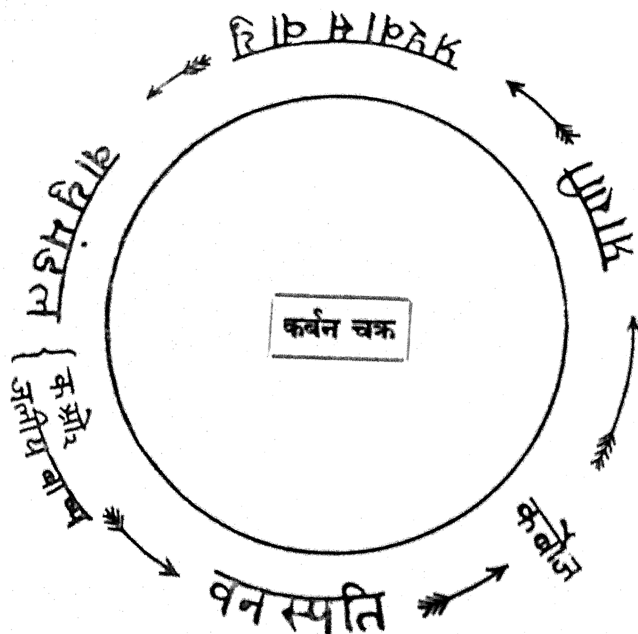
वनस्पतिवर्ग में भी एक सेलवाली वनस्पतियाँ बहुत हैं। सब से छोटी वनस्पतियाँ तो इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उनकी सेल के भीतर मींगी और जीवन मूल जुदा जुदा दिखायी नहीं देते। इन अति सूक्ष्म वनस्पतियों को जिनके भीतर मींगी दिखायी नहीं देती बकटीरिया या कीटाणु कहते हैं।

कीटाणु (बकटीरिया)

ये सूक्ष्म जन्तु हर जगह पाये जाते हैं। संसार में जो कोई

भी जीवित चीज़ों के रहने योग्य स्थान है वहाँ किसी न किसी प्रकार के कीटाणु बहुधा रहते ही हैं। वे जल, वायु, भूमि, भोजन के पदार्थ, कपड़े आदि चीज़ों पर वास करते हैं। वे हमारी त्वचा, मुख और आँतों में भी रहते हैं। एक तरह से उनको सर्वव्यापक कहना अनुचित न होगा। कीटाणुओं की बहुत सी जातियाँ हमारे लिये बहुत उपयोगी हैं, परन्तु कुछ जातियाँ हानिकारक भी हैं; इनके शरीर के भीतर घुसने से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत से कीटाणु संसार में बहुत बड़े और आवश्यक काम करते हैं। यदि वे सब के सब नष्ट कर दिये जायँ तो हमारा जीवन कठिन या असंभव हो जाय। मनुष्य का जीवन वनस्पतिवर्ग पर निर्भर है; यदि पल भर के लिये यह मान लिया जाय (जो एक असंभव बात है) कि मनुष्य केवल मांस खाकर ही जीवित रह सकता है तो भी उसके जीवन के लिये वनस्पतियों का होना आवश्यक होगा क्योंकि जिन जानवरों से वह मांस प्राप्त करता है वे वनस्पति खाकर जीते हैं (चित्र २०५, २०६)। विज्ञान ने यह बात सिद्ध की है कि पौदों के लिये कीटाणुओं का होना बहुत आवश्यक है। ये कीटाणु पौदों के लिये विशेष प्रकार के नत्रजनीय पदार्थ बनाते हैं जिनको पृथ्वी से ग्रहण करके वे बढ़ते हैं। जब कोई जानवर मर जाता है तो उसका शरीर सड़ने लगता है; सड़ाव की यह क्रिया भी एक प्रकार के कीटाणुओं के उस मृतक शरीर में उपजने से होती है; शरीर के सड़ने से कई प्रकार के पदार्थ बनते हैं जिनमें से एक चीज़ नत्रजन है; इस वायव्य के अतिरिक्त नत्रजनीय पदार्थ भी बनते हैं।

चित्र २०५ कर्बोज चक्र ; वनस्पतिवर्ग का प्राणिवर्ग से सम्बन्ध *



व्याख्या :—प्राणियों को कर्बोज (जैसे श्वेतसार, शर्करा, काष्ठौज) वनस्पति वर्ग से (गेहूँ, दाल, फल, शाक पात, भूसा, घास इत्यादि) प्राप्त होते हैं। प्राणियों के शरीर में कर्बोज का ओषजनीकरण होता है जिससे क ओ₂ और जल उत्पन्न होते हैं। ये चीज़ें प्रश्वास द्वारा वायुमंडल में मिल जाती हैं। वायुमंडल से क ओ₂ (कर्बनद्विओषित) और जलीय वाष्प ग्रहण करके वनस्पतियाँ फिर कर्बोज बना लेती हैं, यह कर्बोज फिर प्राणियों के शरीर में पहुँचता है और यह चक्र जारी रहता है। जो बात

* After Hutchison.

कर्बौज के विषय में लिखी है वह वनस्पतियों से प्राप्त होने वाले तैल के विषय में भी घटती है । इस चक्र को कर्बन चक्र भी कहते हैं ।

चित्र २०६ प्रोटीन चक्र । बकटीरिया (कीटाणुओं) का प्राणि वर्ग से सम्बन्ध ।*

नत्रजन चक्र

व्याख्या :—मनुष्य अपनी प्रोटीन वनस्पति वर्ग से (दाल, गेहूँ इत्यादि से) और अन्य प्राणियों से (मांस, दुग्ध द्वारा) प्राप्त करता है । जिन प्राणियों (गाय, बैल, भेड़, बकरा, मुर्गी) से मनुष्य और अन्य मांस खाने वाले प्राणी प्रोटीन प्राप्त करते हैं वे अपनी प्रोटीन घास, शाक, भूसा

इस चित्र में व=वानस्पतिक; प्र=जान्तविक; बकटीरिया=कीटाणु ।

* After Hutchison.

इत्यादि वनस्पतियों से प्राप्त करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि प्राणियों के शरीर में प्रोटीन वनस्पति वर्ग से आती है। वनस्पतियों में पाई जाने वाली प्रोटीन प्राणियों में पाई जाने वाली प्रोटीन से भिन्न होती है। वानस्पतिक प्रोटीन प्राणियों के शरीर में जाती है वह वहाँ जान्तविक प्रोटीन बन जाती है; फिर उसका ओषजनीकरण होता है और उससे यूरिया जैसे पदार्थ बनते हैं जो मूत्र द्वारा शरीर से बाहर आते हैं। एक प्रकार के कीटाणु (चित्र में बकटीरिया छपा है) इस पदार्थ का विश्लेषण करके उससे अमोनिया के संयोजित बना लेते हैं; दूसरे प्रकार के कीटाणु इन संयोजितों से नत्रित नामक संयोजित बनाते हैं जो उस भूमि में रहते हैं जहाँ वनस्पतियाँ उगती हैं; अमोनिया के संयोजित से नत्रजन गैस भी बनती है जो वायु में मिल जाती है; नत्रितजनक कीटाणु (जो भूमि में रहते हैं) इस नत्रजन की सहायता से नत्रित बनाते हैं। कई प्रकार बने हुए नत्रित भूमि (मिट्टी) में मिल जाते हैं। पौदे (वनस्पतियाँ) इनको ग्रहण करते हैं और इनसे प्रोटीनें बनाते हैं, जो फिर प्राणियों के काम आती हैं। इस प्रोटीन से फिर यूरिया, नत्रजन, नत्रित और वानस्पतिक प्रोटीन बनती हैं यही चक्र जारी रहता है। इस चक्र को नत्रजन चक्र कहते हैं।

नत्रजन गैस वायु में मिल जाती है। परन्तु एक और जाति के कीटाणु नत्रजनीय पदार्थों से ऐसे पदार्थ बनाते हैं जिनको पौद आसानी से ग्रहण कर सकें।

मल (विष्ठा) से खाद का बनना भी कीटाणुओं के ऊपर निर्भर है। यदि वे न हों तो मृत जानवरों के शरीर और मल, विष्ठा कभी न सड़ें और उनसे वे पदार्थ कदापि न बन सकें जिनकी पौदों को आवश्यकता है। जिस खेत में ये विशेष प्रकार के नत्रजनीय पदार्थ बनाने वाले कीटाणु कम होते हैं वहाँ पैदावार अच्छी नहीं होती; इस विशेष जाति के कीटाणुओं

को उस ज़मीन में बोने से पैदावार अच्छी की जा सकती है।

कीटाणु और भी बहुत से आवश्यक काम करते हैं जैसे दूध को जमाकर दही बनाना; गन्ने के रस से सिरका बनाना आदि।

दूसरी ओर दृष्टि डालने से हमको बहुत से हानिकारक कीटाणु भी दिखाई देते हैं।

उदाहरणार्थ:—

१—क्षयरोग (थाइसिस, तपेदिक) के कीटाणु (चित्र २०४ में ५)

२—न्यूमोनिया (फुफ्फुस प्रदाह) के कीटाणु (चित्र २०४ में ४)

३—टायफौयड; हैज़ा; पेचिश; प्लेग या महामारी रोगों के कीटाणु।

४—फोड़े फुन्सी और मुँहासों के कीटाणु (चित्र २०४ में १,२)

५—प्रसूत रोग (चित्र २०४ में १,२) नज़ला, ज़ुकाम, खाँसी आदि रोगों के कीटाणु

कीटाणुओं का आकार और परिमाण (चित्र २०७)

कीटाणुओं का आकार कई प्रकार का होता है। बहुत से तो बिन्दु की भाँति गोल गोल होते हैं (जैसे पीप पैदा करने वाले), कुछ शलाका की तरह लम्बे लम्बे होते हैं (जैसे टायफौयड, क्षयरोग के;) बहुत से मुड़े होते हैं; जैसे हैज़े के जो द्वितीया के चन्द्र की शकल के होते हैं; और हेर फेर के ज्वर के जो कर्षणी के सदृश पेचदार होते हैं। आकारानुसार कुल कीटाणुओं की तीन जातियाँ कही जा सकती हैं:—

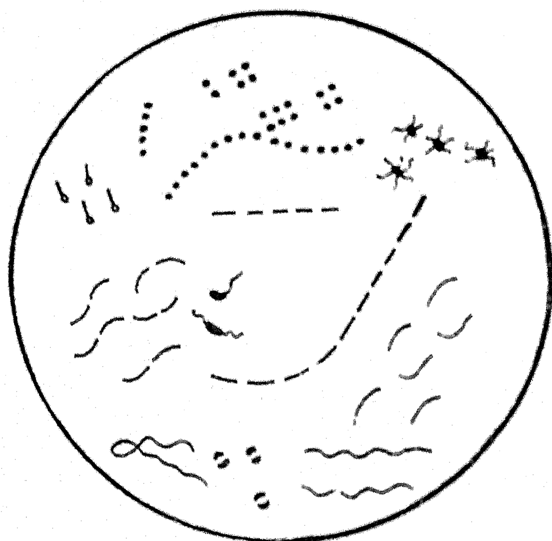
१—बिन्द्वाकार।

२—शलाकाकार—कभी कभी शलाका मुड़कर चन्द्राकार बन जाती है जैसे हैज़े की।

३—कर्षण्याकार या चक्राकार।

परिमाण में वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि साधारण अनुवीक्षणों से तो वे दिखाई भी नहीं देते। इनको देखने के लिये बहुत अच्छे यन्त्रों की आवश्यकता है। यही कारण है कि जब तक बड़े बड़े यन्त्र न बनें किसी को इस बात का ख़याल भी न हुआ

चित्र २०७ कई प्रकार के कीटाणु



कि बहुत से जन्तु ऐसे भी होते हैं जिनको हम देख न सकें परन्तु जो अनेक प्रकार के भयानक रोग उत्पन्न करने में समर्थ हैं।

उनकी मोटाई $\frac{१}{२५०००}$ इंच* से अधिक नहीं होती; लम्बाई $\frac{१}{५०००००}$ से $\frac{१}{५००}$ इंच तक होती है। इन अंकों से आप उनकी सूक्ष्मता का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। कुछ कीटाणु गति कर सकते हैं; कुछ नहीं कर सकते। जिस तरल में कीटाणु हैं यदि उसकी एक बूँद अणुवीक्षण से देखें तो गति करने वाले कीटाणु बड़ी तेज़ी से इधर उधर दौड़ते हुए दिखाई देंगे।

कीटाणु मृत पौदों और प्राणियों से जिन पर वे वास करते हैं अपना भोजन प्राप्त करते हैं, जब रोगोत्पादक जातियाँ हमारे शरीर में रहती हैं तो वे हमारे रक्त और शरीर के तंतुओं से भोजन ग्रहण करते हैं।

विशेष जाति के कीटाणु एक विशेष ताप परिमाण पर रहना पसंद करते हैं, यदि इससे अधिक या न्यून गरमी में रक्खे जायँ तो वे अच्छी तरह न बढ़ेंगे। रोग उत्पादक जन्तु

* u=यह ग्रीक (यूनानी) भाषा का एक अक्षर है; इस को म्यू कहते हैं। वैज्ञानिक परिभाषा में कीटाणु वा अन्य सूक्ष्म चीज़ों के नापने के लिये इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है। म्यु (u) बराबर होता है एक मीलीमीटर के हजारवें भाग के अर्थात् $u=\frac{१}{१०००}$ मीलीमीटर। यदि किसी वस्तु की लम्बाई या चौड़ाई $\frac{१}{१०००}$ मीलीमीटर हो तो कहा जाता है कि वह एक u लम्बी या चौड़ी है। यदि कोई चीज इससे भी छोटी है तो $\frac{१}{२}u$, $\frac{१}{३}u$ इत्यादि कह सकते हैं। एक इञ्च या एक मीलीमीटर बहुत बड़ी चीज़ है; इस कारण कीटाणुओं की नाप u द्वारा ही की जाती है। एक $u=\frac{१}{२५०००}$ इञ्च के लगभग।

३५° से ३९° शतांश के ताप को पसंद करते हैं। सड़ाव पैदा करने वाली जातियाँ इससे कम गरमी को पसंद करती हैं। कुछ कीटाणु ६०°-७०° शतांश की गरमी पर रहना चाहते हैं। साधारणतः बहुत से कीटाणु ५७° शतांश की गरमी में कुछ देर तक रक्खे जाने से मर जाते हैं। उबालने पर (१००° शतांश) कोई कीटाणु नहीं जी सकते। किसी चीज़ को कीटाणु रहित करने की सहल विधि यह है कि उसको कुछ देर तक १००° शतांश की गरमी पहुँचाई जावे यदि यह गरमी उस चीज़ को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाए।

सूर्य के प्रकाश को कीटाणु बहुत देर तक नहीं सह सकते। बहुत सी जातियों के कीटाणु १½ घन्टे तक धूप में रहने से मर जाते हैं। बिजली की तेज़ रोशनी से भी वे मर जाते हैं।

रोगोत्पादक जन्तु (रोगाणु) किस किस प्रकार शरीर में प्रवेश करते हैं

(१) वायु द्वारा—क्षयरोगी को खाँसी रहा करती है। खाँसते समय उसके मुँह से कफ (बलग़म) के अति सूक्ष्म ज़र्रे निकलकर वायु में मिल जाते हैं। इन ज़र्रों में क्षयरोग के जन्तु रहते हैं। जो मनुष्य उस रोगी के पास रहते हैं उनके फुफ्फुसों में ये जन्तु स्वांस के द्वारा जा सकते हैं। यही नहीं, यदि कोई भोजन की वस्तु (जैसे दूध) उस रोगी के पास रक्खी हो तो कफ के ज़र्रे उसमें मिल जायेंगे और जो मनुष्य उसका सेवन करेगा उसके शरीर में (अंत्र में) ये जन्तु पहुँच सकते हैं। फुफ्फुस प्रदाह, जुकाम, नज़ला चेचक, खसरा आदि

रोगों के जन्तु एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य के शरीर में बहुधा वायुद्वारा पहुँचा करते हैं।

(२) भोजन द्वारा—यदि किसी प्रकार रोग के जन्तु भोजन में मिल जायँ तो वे उस दूषित भोजन के सेवन से शरीर में पहुँच सकते हैं। हैज़ा, पेचिश, टायफौयड, प्रवाहिका के जीवाणु आम तौर से भोजन और जलद्वारा ही हमारे शरीर में पहुँचा करते हैं। एक मनुष्य से और मनुष्यों को हैज़ा कैसे हो सकता है? हैज़े के रोगी के मल और वमन में अनेक सहस्र हैज़े के द्वितीयाचन्द्राकार कीटाणु रहते हैं। यदि वमन या मल का कोई अंश किसी दूसरे मनुष्य के भोजन में मिल जाय तो यह जन्तु उसके शरीर में पहुँच कर हैज़े का रोग पैदा कर सकते हैं। रोगी के पास रक्खे हुए दूध, जल, फल आदि भक्ष्य पदार्थों पर वमन या मल की छींटें पड़ जाने से ये पदार्थ और मनुष्यों में रोग उत्पन्न करने योग्य बन जाते हैं।

रोगी के वमन और मल को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान को ले जानेवाले मनुष्य के हाथों और कपड़ों में जन्तु लग सकते हैं, यदि यह मनुष्य अपने हाथों को विशेष साधनों से शुद्ध किये बिना किसी पीने या खाने की वस्तु को छू ले तो वे विषैली हो जाती हैं और उनके सेवन से और मनुष्यों को हैज़ा हो सकता है। कभी कभी वमन और मल के छींटे आस पास रक्खे हुए बरतनों पर पड़ जाते हैं, यदि इन बरतनों से किसी कुएँ से जल निकाला जाय तो उस कुएँ का जल भी ख़राब हो सकता है और उस कुएँ के जल को पीने वालों को हैज़ा हो सकता है। हैज़े के रोगियों के मल और वमन के मिलने से छोटी नदियों का पानी भी ज़हरीला हो जाता है। जब

मक्खियाँ वमन और मल पर बैठती हैं तो उनके पैरों में इन चीज़ों का कुछ अंश लग जाता है; मक्खियाँ एक स्थान से उड़ कर दूसरे स्थान पर जा बैठा करती हैं, कभी मल पर बैठती हैं कभी दूध, मिठाई और भोजन की अन्य वस्तुओं पर; यदि हैज़े के वमन और मल पर बैठी हुई मक्खी भोजन पर जा बैठे तो उसके पैरों में लगे हुए मल का कुछ भाग भोजन में लग जाता है और उस दूषित भोजन को खाने वालों को हैज़ा हो सकता है। मक्खी एक घर से उड़कर दूसरे घर में भी चली जाती है और वहाँ रहने वालों के भोजन को भी ज़हरीला बना सकती है। जिस प्रकार हैज़ा एक मनुष्य से और मनुष्यों को भोजन द्वारा हो सकता है उसी प्रकार पेचिश, टायफोयड, प्रवाहिका (दस्त) रोग भी हो सकते हैं।

आजकल इस बात के प्रतिदिन नये नये प्रमाण मिल रहे हैं कि बहुत से रोगों के जन्तु मक्खियों की सहायता से हमारे भोजन में पहुँचते हैं। वास्तव में यह एक बहुत ही गन्दा जानवर है; इससे जहाँ तक बचा जाय उतना ही अच्छा है; जिस भोजन पर वह बैठे उसे त्यागना उचित है। मक्खी को गन्दगी से प्रेम होता है और सफ़ाई से चिढ़। भोजन के पदार्थों को साफ़ स्थान में ढक कर रखना चाहिए।

(३) जानवरों के काटने से—

कुछ जानवरों के मुख या पेट में रोग उत्पादक जंतु रहते हैं; जब यह जानवर रक्त चूसने के लिये मनुष्य को काटते हैं तो उनके मुख से थूक द्वारा ये जन्तु शरीर में प्रवेश करते हैं। मच्छरों की एक विषैली जाति है; इस जाति के मच्छरों के मुख और पेट में मलेरिया ज्वर (मौसमी बुख़ार) के जन्तु

(आदि प्राणो) रहते हैं, जब विषैले मच्छर काटते हैं ये जन्तु शरीर में पहुँच जाते हैं और वहाँ जाकर बढ़ते हैं और मलेरिया ज्वर पैदा करते हैं।

काला आज़ार नामक एक ज्वर होता है जो अधिकतर बंगाल, मद्रास प्रान्तों में होता है, संयुक्तप्रान्त में कम होता है। इसके विषय में वैज्ञानिकों का विचार है कि यह एक विशेष जाति की मक्खी जिसे सेंडफ्लाई Sandfly कहते हैं के काटने से होता है।

अफ़रीक़ा देश के अतिनिद्रा रोग के जन्तु एक विशेष जाति की मक्खियों के मुख में रहते हैं; जब यह मक्खी काटती है तो यह जन्तु मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं।

दक्षिण अमरीका और अफ़रीक़ा देशों का भयानक पीला ज्वर एक विषैली जाति के मच्छरों के काटने से होता है।

भारतवर्ष की महामारी (प्लेग) के विषय में यह माना जाता है कि इस रोग के जन्तु एक विषैली जाति के पिस्सुओं द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुँचते हैं।

पागल कुत्ते या गीदड़ के काटने से बहुत से मनुष्यों को एक रोग हो जाता है इस रोग के जन्तु पागल कुत्ते या गीदड़ के थूक में रहते हैं।

(४) ज़ख़्मों द्वारा—यदि त्वचा चोट लगने से कहीं से कट जाय या फट जाय और फिर उस पर गन्दा जल, गन्दी धूल, मिट्टी या गन्दी वायु लगे तो कई प्रकार के जन्तु शरीर में घुस सकते हैं। ज़ख़्मों में पीप पैदा करने वाले जंतु इसी प्रकार पहुँचते हैं।

अब थोड़ी देर के लिए मान लो कि रोग उत्पादक जन्तु

शरीर में किसी न किसी प्रकार पहुँच गये हैं ये जन्तु वहाँ पहुँच कर क्या करते हैं ? और शरीर में उनकी चढ़ाई को रोकने का क्या प्रबन्ध है ?

सृष्टि के दो बड़े नियम

सजीव सृष्टि में दो बड़े नियम काम करते हुए दिखाई देते हैं। सब को इन नियमों का पालन करना पड़ता है :—

१—आत्म-रक्षा।

२—स्वजाति-रक्षा।

प्रत्येक जीवधारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे। अपनी रक्षा का प्रबन्ध करने के बाद उसको अपनी जाति की रक्षा के लिए यत्न करना चाहिये। जिसमें (चाहे मनुष्य जाति हो और चाहे कीटाणु जाति) इन दोनों नियमों का पालन नहीं हो सकता वह जाति शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। आत्मरक्षा के मुख्य साधन भोजन करना, उसको भली प्रकार पचाना और मल त्यागना है, अपने शत्रुओं को मारने का यत्न करना भी बहुत आवश्यक है।

स्वजातीय रक्षा का मुख्य साधन अपनी मृत्यु के बाद अपना वंश चलाने के लिए स्वस्थ और बलवान् सन्तान को छोड़ जाना है।

कीटाणु और अन्य रोग उत्पादक जन्तु भी इन नियमों का पालन करते हैं। जो जो काम वे औरों के शरीर के भीतर करते हैं वे भी इन नियमों के पालन के लिए ही होते हैं।

शरीर में पहुँच कर पहले तो ये खूब खाते पीते हैं और ऐसी वस्तुएँ बनाते हैं जिनसे शरीर की सेलों को जो उनके शत्रु

हैं हानि पहुँचे। यह आत्म-रक्षा के लिए उन्हें करना पड़ता है। जब वे खा पीकर मोटे और बड़े होते हैं तो संतान उत्पन्न करते हैं जिससे जाति की रक्षा होती है अर्थात् यदि वे मर जायँ तो उनका वंश नष्ट न होने पाये।

कीटाणुओं में सन्तानोत्पत्ति

इनमें स्त्री पुरुष का कोई भेद नहीं होता। जब कोई व्यक्ति खा पीकर बड़ा हो जाता है तो वह बीच में से फटकर दो भागों में विभक्त हो जाता है। इस क्रिया से एक से दो बन जाते हैं। धीरे धीरे इनमें से हर एक बड़ा होता है और उसके फटने से दो व्यक्ति बन जाते हैं। यह बढ़ने और फटने का सिलसिला बड़ी शीघ्रता के साथ चलता है; एक ही जन्तु से थोड़े ही समय में अनेक जन्तु बन जाते हैं। जिस शीघ्रता से इनकी संख्या बढ़ती है, उसका अन्दाज़ा भी लगाना सामान्यतः मनुष्य के लिए बहुत कठिन है। बहुत से कीटाणु आध घन्टे में ही फटकर एक से दो बन जाते हैं। यह समझिये कि वह आध घन्टे की आयु में सन्तान उत्पन्न करने योग्य हो जाते हैं और बहुतेरे एक घन्टे में। यदि एक घन्टा ही समझें तो हिसाब लगाने से मालूम होगा कि २४ घन्टे में एक व्यक्ति से एक करोड़ साठ लाख व्यक्ति बन जायँगे, आध घन्टे के हिसाब से ३ पद्म के लगभग बन जायँगे।

कीटाणु तेज़ी से तभी बढ़ सकते हैं जब उनको अच्छा भोजन मिले और जहाँ ये हों वहाँ का ताप ऐसा हो कि जिसे वे न केवल सह ही सकते हों बल्कि अधिक पसन्द भी करते हों। रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं के लिए रक्त का ताप परिमाण

जो ३७-८° शतांश होता है, सब से अच्छा होता है।

शरीर में पहुँच कर कीटाणु केवल बढ़ते ही नहीं ; बढ़ते समय वे विषैली वस्तुएँ भी बनाते हैं। ये विष दो प्रकार के होते हैं :—

(१) वे विष जो कीटाणु के शरीर से बाहर निकल कर लसीका वा रक्त में घुल जाते हैं और इन द्रवों के साथ सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करते हैं, और फैल जाते हैं।

(२) वे विष जो उनके शरीर से बाहर नहीं निकलते। जब तक कीटाणु जीवित रहते हैं विष उनके शरीर में ही रहते हैं; परन्तु जब वे मरते हैं या मारे जाते हैं तो विष शरीर से निकल कर रक्त में मिल जाते हैं। जिस प्रकार साँप के शरीर में रहते हुए भी विष उसको कोई हानि नहीं पहुँचाता उसी प्रकार यह विष कीटाणु के शरीर में रहते हुए भी उन्हें हानि नहीं पहुँचाते।

कीटाणुओं के बनाए हुए ज़हर उस स्थान की सेलों को जहाँ वे रहते हैं बहुत हानि पहुँचाते हैं। इतना ही नहीं, ये ज़हर लसीका और रक्त में मिलकर शरीर के और स्थानों में भी जाते हैं और जहाँ जहाँ पहुँचते हैं अपना ज़हरीला प्रभाव डालते हैं।

शरीर की सेलों का इन जन्तुओं के साथ व्यवहार

शरीर की सेलें इन जन्तुओं का स्वागत नहीं करतीं। शत्रु का स्वागत कौन करता है ? शरीर की सेलें भी कीटाणु की भाँति नियमों से जकड़ी हुई हैं। आत्मरक्षा के निमित्त वे ऐसे काम करती हैं जिनसे जन्तुओं का नाश हो। सेलों और इन जन्तुओं में बड़ा भारी युद्ध होता है। यदि सेलें बलवान् हैं और उनके

पास विषों को हरने वाली वस्तुओं के पैदा करने के लिए पूरे सामान हैं तो वे अपने शत्रुओं पर विजयी होती हैं, शत्रु हारते हैं और शरीर रोग रहित हो जाता है। पर यदि शत्रु बलवान् हैं या उनकी संख्या अधिक है और उनके ज़हर इतने तेज़ हैं कि शरीर की सेलों को उनका नाश करने का अवसर ही नहीं मिलता, तो रोग बढ़ता जाता है और मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

युद्ध

शरीर एक बड़े राज्य के समान है। जैसे राज्य की रक्षा के लिए सेना होती है, इस शरीर रूपी राज्य की रक्षा के लिए भी सेना है। इस सेना के सिपाही श्वेत कण (श्वेताणु—देखो अध्याय ९) हैं जो अधिकतर तो रक्त और लसीका में रहते हैं, परन्तु थोड़े बहुत और जगह भी पाये जाते हैं। यह न समझना चाहिये कि शरीर की और सेलें अपनी रक्षा अपने आप नहीं कर सकतीं। नहीं, नहीं, वे थोड़ी बहुत आत्मरक्षा उसी तरह कर सकती हैं जैसे किसी राज्य के पुरवासी समय पड़ने पर अपनी रक्षा कुछ कर ही सकते हैं; अच्छी तरह इसलिए नहीं कर सकते कि उन्होंने युद्धशिक्षा नहीं पायी है और उनका काम और होता है।

इन शत्रुओं के पहुँचने पर शरीर की सेना उनके मुक़ाबले में आती है। बड़ा भारी संग्राम होता है, शरीर की सेलें इन पर विजय पाने के लिए अनेक प्रकार के यत्न करती हैं।

प्रत्येक संग्राम में विजय छः बातों पर अवलम्बित होती है:—

१—सेना की संख्या।

२—सैनिकों को आवश्यकता के अनुसार पौष्टिक भोजन और अन्य ज़रूरी चीज़ों का मिलना।

३—योधाओं की शारीरिक अवस्था (स्वास्थ्य) और उनकी और उनके माता-पिता की देशभक्ति और स्वार्थत्याग।

४—सेनापति की चतुराई और वीरता।

५—योधाओं की शिक्षा और युद्धाभ्यास।

६—योधाओं के अस्त्र-शस्त्र।

शरीर में जो युद्ध होता है उसमें विजय किस की होगी शरीर की सेलों की या रोगोत्पादक जन्तुओं की, यह भी इन्हीं छः बातों पर निर्भर है :—

(१) बहुत से जन्तुओं की अपेक्षा थोड़े जन्तुओं पर विजय पाना सहज है। जब जन्तु बहुत होते हैं और उनसे युद्ध करने-वाले श्वेतकण कम, तो श्वेतकणों के हारने की सम्भावना रहती है। जिन मनुष्यों के शरीर में किसी कारण रक्त कम हो जाता है वे रोगों का मुक़ाबला भली प्रकार नहीं कर सकते।

(२) जो मनुष्य पुष्टिदायक भोजन खाता है और उसको अच्छी तरह पचा लेता है, उसके श्वेतकण और अन्य सेलें इन जन्तुओं का मुक़ाबला अच्छी तरह कर सकती हैं। निर्बल और क्षुधापीड़ित मनुष्यों को रोग अधिक सताते हैं और वे इन रोगों का मुक़ाबला नहीं कर सकते और जल्दी मर जाते हैं। भारत-वासियों की अपेक्षा अंग्रेज़ों का स्वास्थ्य अच्छा रहने का यह एक मुख्य कारण है। भारतवर्ष में लाखों मनुष्य ऐसे हैं कि उन्हें दिन रात में एक बार भी भर पेट भोजन नहीं मिलता। कोई आश्चर्य नहीं कि जब ताऊन, हैज़ा, इन्फ्लुएंज़ा इत्यादि रोग फैलते हैं तो भारतवासी लाखों की तादाद में मरते हैं।

(३) कुछ जन्तु बड़े बलवान् होते हैं। कमज़ोर जन्तुओं को श्वेतकण शीघ्र ही मार खाते हैं, यदि श्वेतकण कमज़ोर हों या

किसी रोग के कारण कमज़ोर हो गये हों, तो वे शक्तिमान् जन्तुओं का मुक़ाबला अच्छी तरह न कर सकेंगे। जिस मनुष्य को भोजन कम मिलता है या जो मंद जठराग्नि के कारण उसको भली प्रकार नहीं पचा सकता या जो शुद्ध वायु का सेवन नहीं करता या जिसको चिन्ता घुलाती रहती है, उसके श्वेतकण निर्बल होते हैं। निर्बल माता-पिता की संतान के सब अंग निर्बल होते हैं ऐसे बालकों को सदा रोग सताया करते हैं। जिन लोगों का स्वास्थ्य पहले ही से अच्छा होता है, वे रोगों से शीघ्र छूट जाते हैं। यही कारण है कि मधुमेह रोगवालों में छोटी सी फुन्सी या घाव के अच्छे होने में भी बड़ी देर लगती है।

(४) हमारे आत्मिक बल का हमारे स्वास्थ्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार डरपोक सेनापति के सिपाही कोई बहादुरी का काम नहीं कर सकते और रणभूमि से मुँह फेर कर भागा करते हैं, उसी प्रकार तुच्छ आत्मिक बल और अदृढ़ संकल्प वाले मनुष्य के श्वेताणु और अन्य सेलें भी रोग के जन्तुओं का अच्छी तरह मुक़ाबला करने में असमर्थ रहती हैं। आत्मिक बल का असर हमारे श्वेतकणों और स्वास्थ्य पर कई तरह से पड़ सकता है।

(५) युद्ध का परिणाम योद्धाओं के अभ्यास पर भी निर्भर होता है। कई रोग ऐसे हैं कि यदि एक बार शरीर उन पर विजय पा ले तो वह रोग उस मनुष्य को फिर नहीं हो सकते, चाहे उस रोग के जन्तु उसके शरीर में कितने ही क्यों न प्रवेश कर जायँ। चेचक, खसरा, टायफ़ौयड आम तौर से एक बार हो कर दूसरी बार नहीं हुआ करते। और कारणों के सिवा इसका एक छोटा सा कारण यह भी है (मुख्य कारण और हैं)

कि जब रोग पहली बार हुआ था शरीर की सेलें इन विशेष जन्तुओं का मुक़ाबला करना जान गयी थीं। उनको पता लग गया था कि इनमें क्या त्रुटियाँ हैं, इसीलिए जब वे जन्तु फिर शरीर में पहुँचते हैं, झट मार डाले जाते हैं। जिस सिपाही ने पहले कभी रणभूमि नहीं देखी है, वह वैसी चतुराई से नहीं लड़ सकता, जैसी कुशलता से वह सिपाही लड़ेगा जिसने अनेक युद्ध देखे हैं और जय पाई है।

(६) जन्तु शरीर के भीतर विष बनाते हैं, ये विष रक्त में मिल कर शरीर के सब भागों में पहुँचते हैं। इन विषों को जन्तुओं के अस्त्र, शस्त्र, ढाल, तलवार, गोला, बारूद, तोप, टारपीडो समझना चाहिए। शरीर में इन विषों का नाश करने वाली और जन्तुओं को मारने वाली वस्तुएँ बनती हैं। ये वस्तुएँ शरीर की सेलों के अस्त्र शस्त्र हैं। यदि ये वस्तुएँ विषों को हरने में समर्थ हैं और जन्तुओं को शीघ्र मार सकती हैं तो शरीर की जय होगी, नहीं तो जन्तुओं की जीत की अधिक सम्भावना है।

जब हमारे शरीर में कहीं फुन्सी फोड़ा बनता है तो वही स्थान रणभूमि बन जाता है। उस जगह सहस्रों कीटाणु इकट्ठे रहते हैं। ये जन्तु उस स्थान की सेलों को मार कर और उनके भोजन को खा कर अपनी संख्या को अति शीघ्रता से बढ़ाते हैं। यह देखते ही सेलों की रक्षा के लिए रक्त के श्वेताणु उन पर चढ़ाई करते हैं। उस स्थान में रक्त पहले की अपेक्षा अधिक आता है और अधिक शीघ्रता से भ्रमण करता है। इस अधिक रक्त के कारण वह भाग कुछ फूल जाता है और उसका रंग लाल सा हो जाता है और छूने से वह आस पास के स्थानों से अधिक गरम मालूम होने लगता है। इस युद्ध में सहस्रों कीटाणु, शरीर

की सेलें और श्वेत कण मारे जाते हैं। राद या पीप का गाढ़ा भाग इन्हीं चीज़ों से बनता है। राद शरीर के किसी काम की नहीं है और ज़हरीली होने के कारण शरीर के लिए बहुत हानि-कारक है। अब शरीर इसको बाहर निकालना चाहता है। त्वचा में एक पीला सा स्थान दिखाई देने लगता है, यहाँ की त्वचा मुर्दा हो गई है। पीप इसे फोड़ कर बाहर आ जाती है। पीप में बहुत से जीवित जन्तु भी होते हैं। पीप के दबाव के कारण फोड़े में जो दर्द था वह अब नहीं रहता या कम हो जाता है। जब पीप गहरी होती है और डाक्टर समझता है कि त्वचा तक पहुँचने में अधिक समय लगेगा और शरीर को हानि पहुँचेगी, तो त्वचा में चीरा या नश्तर देकर उस पीप को बाहर निकालने का यत्न करता है। पीप निकलने पर सूजन कम होने लगती है। धीरे धीरे श्वेतकण सब जन्तुओं को मार डालते हैं और खा जाते हैं। रक्त में घुली हुई विषनाशक वस्तुएँ उनके ज़हरों को हर लेती हैं। पीप सहज सहज कम होती जाती है और फिर बन्द हो जाती है। घाव भरने लगता है, उस स्थान की सेलें रक्त से सामान लेकर नयी सेलें बनाती हैं। नयी सौत्रिक तन्तु भी बनती है। शरीर का जो भाग मुर्दा होकर निकल गया है वह अब फिर बन जाता है। त्वचा का छिद्र बन्द हो जाता है और मनुष्य अपने पूर्व स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। यह शरीर की सेलों की कीटाणुओं पर विजय पाने की कथा हुई।

यदि मनुष्य का स्वास्थ्य खराब है, अच्छा भोजन नहीं मिलता, तरह तरह की चिन्ताएँ सताती हैं, आत्मिक बल कम है और वह समझता है कि मैं कभी अच्छा नहीं हो सकता तो फोड़ा अच्छे होने के बदले बढ़ता जाता है। जन्तु आस पास

फैलते हैं और यह कोशिश करते हैं कि सारे शरीर पर अधिकार जमा लें। एक फोड़े से कई फोड़े बन जाते हैं बहुतेरे जन्तु केशिकाओं में घुस जाते हैं और रक्त में भ्रमण करते हुए शरीर के विविध भागों में पहुँचते हैं और जहाँ कहीं ठहर जाते हैं वहीं फोड़ा बनाते हैं। मनुष्य बहुत कमज़ोर होता जाता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। यहाँ जन्तुओं ने शरीर की सेलों पर विजय पाई है।

फुप्फुस प्रदाह रोग में रणभूमि फुप्फुस है। इन जन्तुओं के ज़हर शरीर के सब अंगों में पहुँचते हैं और उनको हानि पहुँचाते हैं। कुल शरीर की सेलें इन जन्तुओं को मारने का यत्न करती हैं। जब सेलें विजय पाती हैं, मनुष्य अच्छा हो जाता है। जन्तुओं के विजयी होने पर रोग बढ़ता है और मृत्यु हो जाती है।

आमातिसार में रणभूमि बृहदन्त्र की दीवारें हैं, टायफ़ौयड और हैज़े में क्षुद्रांत्र या छोटी आँत की दीवारें। जब आँखें दुखती हैं तो रणभूमि आँख की श्लैष्मिक कला है जो लाल हो जाती है।

युद्ध का परिणाम

सब रोगों का परिणाम एक सा नहीं होता। कभी शरीर की सेलें जीतती हैं और कभी रोग के जन्तु। जब शरीर विजयी होता है, मनुष्य धीरे धीरे अपने पहले स्वास्थ्य को प्राप्त करता है पर जब यह जन्तु जीतते हैं तो शरीर निर्बल होता जाता है, रोग दिन प्रति दिन बढ़ता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

इसमें सन्देह नहीं कि रक्त हमारे शरीर में एक अमूल्य वस्तु

है। इसके श्वेतकण विषनाशक वस्तुओं की सहायता से हमारे शरीर की भली भाँति रक्षा करते हैं।

कीटाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोग

अनुभव से मालूम होता है कि इस प्रकार के बहुत से रोगों में कीटाणु नाशक तथा कीटाणु विषनाशक वस्तुओं के बनने में बहुधा एक नियत समय लगा करता है और जब तक ये वस्तुएँ जितनी चाहिएँ उतनी न बन जायँ उस समय तक रोगी की दशा में कुछ फ़र्क़ नहीं दीखता अर्थात् रोग का कम होना आरम्भ नहीं होता। टायफ़ॉयड ज्वर आम तौर से २१, २२ दिन से पहले नहीं उतरता, कभी कभी इससे भी अधिक समय लगता है जैसे २८ से ४२ दिन तक। रक्त की परीक्षा से पता लगता है कि इस रोग में रोगनाशक वस्तुओं का नौ दिन से पहले अच्छी तरह बनना आरम्भ नहीं होता। फुप्फुस प्रदाह का ज्वर भी बहुधा आठ नौ दिन से पहले नहीं उतरता; यही हाल चेचक, खसरा आदि रोगों का है। ये विषनाशक वस्तुएँ यथोचित परिमाण में न बनें तो रोग बढ़ता ही जाता है और अन्तिम परिणाम मृत्यु होता है।

कीटाणुओं से उत्पन्न होने वाले रोगों के लिए अब तक कोई औषधि ऐसी नहीं मालूम हुई है कि जो रक्त में पहुँच कर उनका नाश कर सके। शरीर से बाहर उनको तुरंत मार डालने वाली औषधियाँ तो बहुत हैं। जिन औषधियों का ऐसे रोगों में प्रयोग होता है वे और विधियों से फ़ायदा करती हैं। कुछ औषधियाँ उत्तेजक होती हैं। जिस प्रकार वाह वाह! शाबाश शाबाश! पुकारने से योद्धाओं का उत्साह बढ़ जाता और वे पहले की अपेक्षा अच्छी तरह लड़ते हैं; उसी प्रकार कुछ औषधियाँ ऐसी

हैं जिनके सेवन से शरीर की सेलों का उत्साह बढ़ता है और वे शत्रुओं अर्थात् कीटाणुओं का सामना अच्छी तरह कर सकती हैं। कुछ औषधियाँ पाचक शक्ति को बढ़ाती हैं, जिससे भोजन भली प्रकार पचता है और सेलों को कीटाणु और उनके विषों का नाश करने वाली चीज़ों के बनाने के लिए सामान अच्छी तरह से मिलता है। कुछ औषधियाँ दर्द कम करती हैं और नींद लाती हैं; कुछ के सेवन से मूत्र अधिक आता है, और क़ब्ज़ दूर हो जाता है, शरीर में किसी प्रकार का मैल इकट्ठा नहीं होने पाता।

आदि प्राणियों से उत्पन्न होने वाले रोग

इन रोगों में से कुछ के लिए ऐसी औषधियाँ मालूम हैं कि जो रक्त में पहुँच कर इन रोगों के जंतुओं को मार डालती हैं*। यदि औषधि का यथा विधि प्रयोग किया जाय तो जन्तु मर जाते हैं और रोग घट जाता है या जाता रहता है और फिर रोगी धीरे धीरे अपने पहले स्वास्थ्य को प्राप्त करता है। मलेरिया ज्वर (मौसमी बुख़ार) के जन्तु रक्ताणुओं और रक्त के तरल भाग में रहते हैं। इस रोग के लिए कुइनीन अमृत समान है। यदि निदान ठीक है तो इस औषधि के प्रयोग से यह ज्वर अवश्य दूर हो जायगा। कुइनीन के सेवन से जन्तु मर जाते हैं और फिर रक्त में दिखाई नहीं देते। आतशक या फ़िरंग रोग का भी यही हाल है, पारे के यौगिक वा सालवर्सान (व नव-सालवर्सान) नामक औषधि जो संखिया का यौगिक है इस रोग में अत्यन्त उपयोगी हैं।

* ऐसी औषधि को "अमोघौषध" कहते हैं।

एक प्रकार के आमातिसार के लिये जिसका कारण एक विशेष जाति का अमीबा होता है इमेटीन नामक औषधि तीर का सा काम देती है। काला अज़ार ज्वर के लिए अभी हाल में ऐन्टीमनी टार्ट्रेट नामक औषधि मालूम हुई है। इस प्रकार सब रोगों के लिए अभी तक औषधियाँ मालूम नहीं हुई हैं, परन्तु आशा है कि धीरे धीरे उपयोगी औषधियाँ मिलेंगी।

रोगनाशक शक्ति वा रोग से मुक्ति (रोगक्षमता)

रोग उत्पादक जन्तुओं और उनके विषों को नष्ट करके रोग से छूट जाने की शक्ति को रोग नाशक शक्ति कहते हैं। यह शक्ति सब मनुष्यों में एक जैसी नहीं होती किसी मनुष्य में अधिक होती है किसी में बहुत कम। इस बात के प्रमाण प्रति दिन मिलते हैं। कुछ मनुष्यों को ज़ुकाम होता है और वे शीघ्र अच्छे हो जाते हैं, ज़्यादा दुःख नहीं भोगते। दूसरी ओर ऐसे भी बहुत से मनुष्य होते हैं जिनका ज़ुकाम बहुत दिनों में अच्छा होता है, ज़ुकाम से खाँसी हो जाती है और कभी कभी फुफ्फुस प्रदाह या क्षय रोग भी हो जाते हैं। टायफ़ौयड रोग से बहुत से लोग अच्छे हो जाते हैं, कुछ लोग जन्तुओं का सामना भली प्रकार नहीं कर सकते और अनेक प्रकार के प्रयत्न करने पर भी मर जाते हैं, ऐसा ही और रोगों का भी हाल है।

जब रोगी अपनी रोगनाशक शक्ति के प्रभाव से रोग से छूट जाता है तो कहा जाता है कि वह उस रोग से मुक्त (रोगक्षम) हो गया या उसको उस रोग से मुक्ति (रोग-क्षमता) मिल गई।

बहुधा यह देखा जाता है कि यदि रोगी किसी रोग से

एक बार मुक्त हो जाय तो वह रोग बहुत दिनों तक उस मनुष्य को फिर नहीं होता। टायफ़ौयड ज्वर आमतौर से दूसरी बार नहीं आता। चेचक एक बार निकलकर दूसरी बार बहुत ही कम निकलती है। इस बात का एक कारण यह है कि रोगनाशक वस्तुएँ अधिक परिमाण में बन जाती हैं, जिनकी वजह से रोग उत्पादक जन्तु शरीर में घुस कर पनपने नहीं पाते और शीघ्र ही मर जाते हैं।

किसी रोग से मुक्ति बहुत दिनों तक (कभी कभी उमर भर के लिए जैसे चेचक से) रहती है, किसी से थोड़े दिनों तक; ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनको कोई कोई रोग होते ही नहीं चाहे इन रोगों के जंतु उनके शरीर में हर रोज़ प्रवेश करते हों; कई जातियाँ ऐसी हैं जिनको कोई कोई रोग होते ही नहीं, चाहे इस रोग के जंतु कितने ही ज़हरीले क्यों न हों। इससे स्पष्ट है इन मनुष्यों या जातियों को विशेष रोग क्षमता स्वाभाविक तौर से मिली हुई है।

कई साधनों से रोगनाशक वस्तुएँ शरीर में पैदा की जा सकती हैं; यदि ये वस्तुएँ उचित परिमाण में बन जावें तो उस मनुष्य को थोड़े बहुत दिनों के लिए विशेष रोगक्षमता मिल जाती है। चेचक के टीके से आमतौर से १० या ११ वर्ष के लिए चेचक सम्बन्धी रोगक्षमता मिल जाती है। यदि एक बार बचपन में टीका लगवाकर दूसरी बार ११ या १२ वर्ष की आयु में टीका लगवा लिया जावे तो चेचक से उमर भर के लिए छुट्टी मिल जाती है आजकल भारतवर्ष में आम तौर से चेचक बड़ी उमर में निकलती है, बचपन में नहीं निकलती। कारण यही है कि बचपन का टीका उस व्यक्ति को दस बारह वर्ष तक तो अच्छी

तरह से बचा सकता है; इसके पश्चात् उसका असर कम होने लगता है। भारतवर्ष में टीके के रिवाज से पहले चेचक बहुधा बचपन में ही निकला करती थी; अब भी जिन लोगों में किसी कारण बचपन में टीका नहीं लगता उनके बच्चों को अकसर चेचक निकल आती है।

जिस प्रकार चेचक का टीका चेचक से बचाता है, उसी प्रकार टायफ़ोयड और प्लेग (ताऊन) के टीके भी इन रोगों से हमारी रक्षा करते हैं। केवल भेद इतना है कि इनका असर बहुत दिनों तक नहीं रहता; ताऊन के टीके का असर पूरे तौर से तो तीन या चार महीने तक ही रहता है, फिर बहुत कम हो जाता है।

इन टीकों से इतना अवश्य होता है कि यदि रोग होता भी है तो वह बहुत ज़ोर नहीं पकड़ता। चेचक के टीके के लगने के बाद यदि चेचक निकले तो वह हलकी निकलती है और अन्धे काने होने का डर कम रहता है। कीटाणुनाशक वा कीटाणु विष-नाशक वस्तुएँ शरीर में उस समय अधिक बनती हैं जब रोग होता है, परन्तु कुछ रोगों के लिए थोड़े से परिमाण में ये वस्तुएँ बहुत से लोगों के शरीरों में रहा ही करती हैं। मनुष्य का स्वास्थ्य वास्तव में उसकी रोगनाशक शक्ति पर ही निर्भर है। जिसके शरीर में यह शक्ति अधिक है उसका स्वास्थ्य अच्छा होता है, ऐसे मनुष्य को अव्वल तो रोग होते नहीं और जब होते हैं तो वह उनसे शीघ्र छूट जाता है। जिन मनुष्यों में यह शक्ति कम है वे अक्सर रोगों में फँसे रहते हैं और ये रोग शीघ्र अच्छे नहीं होते।

रंज और फिकर, अधिक शारीरिक वा मानसिक परि-

श्रम, भोजन का ठीक समय पर न मिलना या कम मिलना, अधिक भोजन खाना जो भली प्रकार पच न सके और आँतों में सड़कर भाँति भाँति के विषैले पदार्थ उत्पन्न करे जिनसे शारीरिक सेलों को अत्यन्त हानि पहुँचे, बाल विवाह जिससे निर्बल सन्तान उत्पन्न होती है और पुरुष वा स्त्री दोनों कमज़ोर हो जाते हैं; अधिक मैथुन और भाँति भाँति की बुरी क्रियाओं से वीर्य का नष्ट करना; शुद्ध और पवित्र वायु का सेवन न करना, बंद कमरे में मुँह ढाँककर सोना, गन्दे मकानों में रहना जहाँ वायु और सूर्य का प्रकाश भली प्रकार न पहुँचे; भंग, शराब, तम्बाकू, अफ़ीम इत्यादि नशों का करना; अधिक मानसिक परिश्रम के पश्चात् अधिक शारीरिक परिश्रम करना,—ये और अन्य ऐसी ऐसी बातें हमारी रोगनाशक शक्ति को घटाकर हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं।

रक्त रस चिकित्सा

हम पीछे लिख आये हैं कि कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाले रोगों के लिए ऐसी औषधियाँ नहीं हैं कि जो शरीर में पहुँच कर शारीरिक सेलों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाए बिना कीटाणुओं को मार डालें, और रोग को हटा दें या कम कर दें। हाल में ही ऐसे रोगों की चिकित्सा करने की एक नई विधि मालूम हुई है। इस चिकित्सा का वर्णन करने से पहले हम ये दो बातें बतलाना आवश्यक समझते हैं :—

१—कीटाणु रोग तब ही उत्पन्न कर सकते हैं कि जब वे बड़ी तादाद में शरीर में पहुँचें, यदि वे निर्बल हैं और उनकी संख्या भी अधिक नहीं है तो शरीर की सेलें उनका बढ़ने का

अवसर ही नहीं देतीं और शीघ्र उनका और उनके विषों का नाश कर देती हैं।

२—कोई वस्तु विष का काम उसी समय कर सकती है, कि जब उसका बड़ी मात्रा में सेवन किया जावे। संखिया विष है, परन्तु उसकी बहुत छोटी छोटी मात्राएँ विषैला असर नहीं रखतीं अर्थात् शरीर को न किसी प्रकार की हानि पहुँचाती हैं और न मृत्यु का कारण होती हैं, प्रत्युत नन्हीं नन्हीं मात्राएँ शरीर को पुष्ट बनाती हैं। यदि विष की मात्रा धीरे धीरे बढ़ाई जावे तो शरीर की सेलें बड़ी मात्रा को भी सहने लगती हैं, यहाँ तक कि कुछ समय पीछे वह मनुष्य संखिया की इतनी बड़ी मात्रा का भी सेवन कर सकता है, जो और मनुष्यों को अवश्य हानि पहुँचाए। जो बात संखिया के सम्बन्ध में कही है वह कीटाणुओं के विषों के सम्बन्ध में भी घटती है। यदि किसी व्यक्ति के शरीर में ये बिष बहुत थोड़ी मात्रा में पहुँचाए जावें तो इस विष का उस व्यक्ति पर ज़हरीला असर न होगा। यदि थोड़े थोड़े दिनों के अन्तर से यह मात्रा बढ़ाई जावे तो वह व्यक्ति इतनी बड़ी मात्रा को भी सह सकेगा कि जो यदि एक बारगी दी जाती तो उसको तुरंत मार डालती। यह बात परीक्षाओं से सिद्ध हो गई है।

अब हम बतलाते हैं कि कीटाणुनाशक या कीटाणुविषनाशक वस्तुएं किस प्रकार बनाई जाती हैं :—

कीटाणुओं को शरीर से बाहर उपजाने के लिए अनेक प्रकार के भोजन बनाये गये हैं जिनको खाकर वे न केवल जीवित रहते हैं प्रत्युत खूब बढ़ते भी हैं। ज्यों ज्यों उनकी संख्या अधिक होती है वे विष बनाते हैं, जो उस भोजन में घुल जाते हैं। यंत्रों द्वारा विष और कीटाणु एक दूसरे से अलग किये जा सकते हैं। कई

बार परीक्षा करके यह मालूम कर लिया जाता है कि इस विष की कितनी मात्रा किसी विशेष व्यक्ति की मृत्यु का कारण हो सकती है। जो मात्रा मनुष्य को मार सकती है वह एक बड़े घोड़े को न मार सकेगी, क्योंकि घोड़े का शरीर मनुष्य के शरीर से बड़ा होता है। इसी प्रकार जिस मात्रा से एक मनुष्य मरता है उससे कई कुत्ते या ख़रगोश मर सकेंगे। जो मात्रा एक व्यक्ति को मार सकती है वह उस विशेष व्यक्ति के लिए विनाशक मात्रा कहलाती है; इस मात्रा से कम को अविनाशक मात्रा कहते हैं। यदि हम किसी विष की एक छोटी अविनाशक मात्रा किसी जानवर के (जैसे घोड़ा) शरीर में पहुँचा दें तो उस व्यक्ति को अधिक हानि न पहुँचेगी। शरीर में पहुँचने पर इस विष को नाश करने वाली वस्तुएँ बनने लगेंगी। धीरे धीरे यह मात्रा बढ़ाई जाती है, कुछ समय पश्चात् यह मालूम होगा कि घोड़ा न केवल एक विनाशक मात्रा को सह सकता है प्रत्युत उससे भी अधिक मात्रा उसको कोई हानि नहीं पहुँचा सकती। जब देखते हैं कि घोड़ा अब विनाशक मात्रा से सैकड़ों गुनी बड़ी मात्रा को भी सह सकता है तो विष देना बंद कर देते हैं। अब घोड़े के रक्त में उस विशेष विष को नाश करने वाली वस्तुएँ अधिक परिमाण में हैं और ये वस्तुएँ उसके शरीर से इस प्रकार निकाली जा सकती हैं:—घोड़े की कोई बड़ी शिरा काटी जाती है और जितने रक्त की आवश्यकता होती है उतना एक शुद्ध बरतन में इकट्ठा कर लेते हैं और फिर कटी हुई शिरा के सिरों को बाँध देते हैं जिससे और रक्त न बहे। थोड़ी देर में रक्त जम जाता है। छिछड़े को जलीय भाग या रक्त रस से अलग कर लेते हैं इस सीरम में उस विशेष

विष को नाश करने वाली वस्तुएँ हैं। इस बात के दो बड़े प्रमाण हैं:—

(१) यदि हम किसी व्यक्ति के शरीर में इस विशेष विष और इस रक्त रस का मिश्रण पहुँचा दें तो वह व्यक्ति न मरेगा।

(२) यदि किसी व्यक्ति को वह विशेष रोग हो और इस सीरम की कुछ मात्रा उसके शरीर में पहुँचा दें तो वह व्यक्ति अच्छा होने लगता है।

अब इस सीरम को विषनाशक रक्त रस कहते हैं।

अभी तक तीन चार रोगों के लिए ही उपयोगी सीरम बने हैं; आशा है कि कुछ और रोगों के लिए विषनाशक रस बनेंगे।

डिफ़थीरिया—यह शीत प्रधान देशों का एक भयानक रोग है। इसमें नासिका, कंठ और स्वरयंत्र का प्रदाह (वरम) हो जाता है, यदि रोग ज़ोर पकड़े तो स्वाँस लेने का रास्ता बंद हो जाता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है। कोई औषधि ऐसी नहीं जो इस रोग को कम कर सके, परन्तु हाल में डिफ़थीरिया-विषनाशक सीरम बनाया गया है। रोगी के शरीर में पिचकारी द्वारा इस सीरम को पहुँचाने से रोग तुरन्त अच्छा होने लगता है।

सर्प-विषनाशक-रस भी बनाया गया है। यह रक्त रस सरकारी शफ़ाखानों में रखा जाता है। प्रसूत ज्वर के लिये भी एक बहुत उपयोगी रस बना है।

रक्त रस से रोगों का इलाज करने को रक्त रस चिकित्सा कहते हैं।

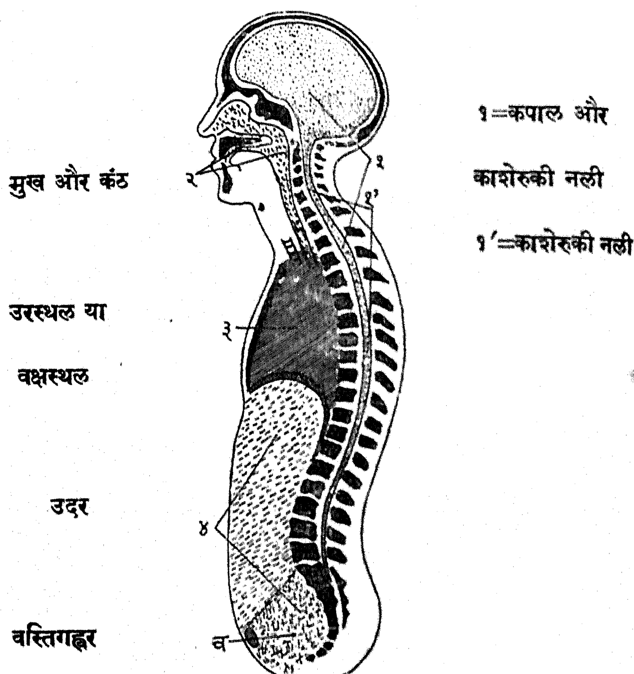
विशेष साधनों से कीटाणुनाशक रक्तरस भी बनाए जाते हैं।

अध्याय २०

वात संस्थान या नाड़ी* मंडल

अध्याय ४ में हम लिख आये हैं कि कपाल आठ अस्थियों

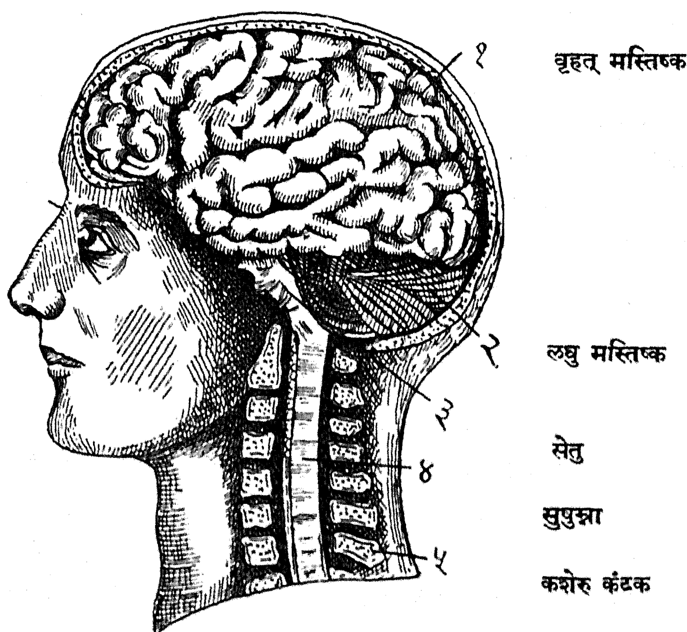
चित्र २०८ शरीर के कोष्ठ



* इस पुस्तक में वात और नाड़ी शब्दों का एक ही अर्थ माना गया है दोनों शब्द अँगरेज़ी भाषा के नर्व या नर्वस (Nerve or nervous) के तुल्यार्थ हैं ।

से निर्मित एक कोष्ठ है। इस कोष्ठ के भीतर जो अंग रहता है उसको मस्तिष्क कहते हैं। कपाल की तली के पिछले भाग में एक बड़ा छिद्र (महा छिद्र) होता है; काशेरुकी

चित्र २०९ मस्तिष्क और सुषुम्ना



नली इस स्थान पर कपाल के कोष्ठ से मिली रहती है (देखो चित्र २०८)।

काशेरुकी नली में जो अंग रहता है उस को सुषुम्ना कहते

हैं ; सुषुम्ना मस्तिष्क के नीचे के भाग से आरंभ होती है (देखो चित्र २०९) ।

अध्याय २ में बाहु की स्थूल रचना का वर्णन करते हुए हम बतला चुके हैं कि मांस तथा वसा में जाते हुए कुछ श्वेत सूत्र वा रज्जुएं जो काटने पर भीतर से ठोस मालूम होते हैं पाई जाती हैं। ये वात सूत्र और वात रज्जुएं या नाड़ियाँ हैं ; इनका मस्तिष्क और सुषुम्ना से सम्बन्ध होता है ।

ग्रीवा, वक्ष और उदर में पृष्ठवंश के इधर उधर या उस के सामने पिंगल वर्ण की छोटी छोटी गांठों के सदृश चीज़ें रहती हैं ; ये एक दूसरे से सूत्रों की डोरी द्वारा संबंध रखती हैं । ये वात या नाड़ी गंड हैं और वात संस्थान के भाग हैं ।

इस प्रकार वात संस्थान (नाड़ी मंडल) में ये चीज़ें होती हैं :—

१—मस्तिष्क जो कपाल में रहता है ।

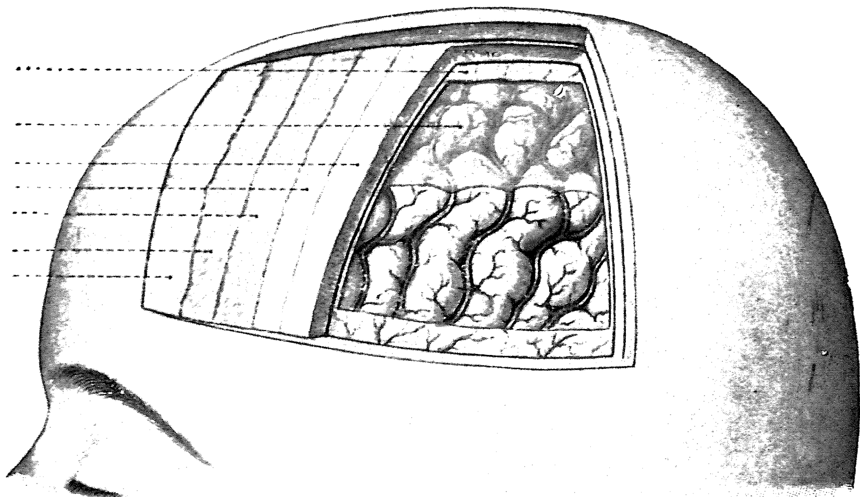
२—सुषुम्ना जो कशेरुकी नली में रहती है ।

३—मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से निकली हुई नाड़ियाँ जिनकी शाखाएं समस्त शरीर में फैली हुई हैं ।

४—वात गंड जो ग्रीवा, वक्ष और उदर में रहती हैं । व्यवच्छेदक समस्त वात मंडल के दो भाग मान लिया करते हैं :—

१—मध्यस्थ वात (नाड़ी) मंडल—इस में वात मंडल के वे अंग हैं जो शरीर के मध्य भाग में रहते हैं—मस्तिष्क और सुषुम्ना

चित्र २१०



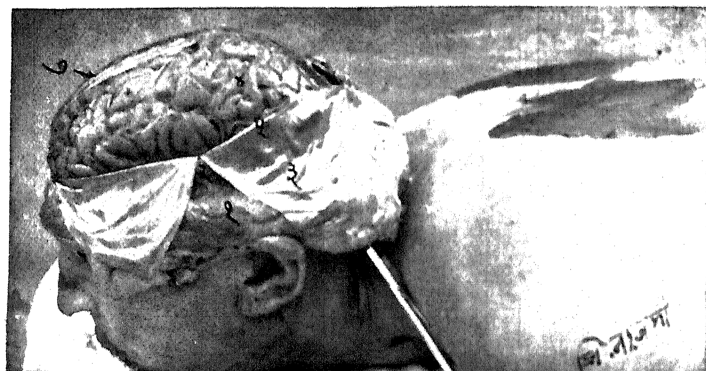
Schultze-Lubosch Topographischen Anatomic

पृष्ठ ५३८ के सम्मुख

चित्र २११



चित्र २१२



१=त्वचा; २=कपाल; ३=बाह्यावरण; ४=बृहत् मस्तिष्क; ५=धमनी; ६=बाह्यावरण; ७=ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या।

पृष्ठ ५३९ के सम्मुख

२—प्रान्तस्थ वात (नाड़ी) मंडल—इस में वात मंडल के शेष भाग हैं जो शरीर के विविध भागों में रहते हैं—नाड़ियाँ और वात गंड।

इस संस्थान के अंगों द्वारा हम विचार करते हैं; वे बुद्धि के स्थान हैं; उन्हीं के द्वारा हम को सुख, दुःख, गरमी, सर्दी का ज्ञान होता है; उन्हीं की सहायता से हम को प्रकाश, घ्राण, शब्द और रस का बोध होता है। ये अंग शरीर के शेष अंगों को अपने अधिकार में रखते हैं और उनकी निगरानी करते हैं। वात संस्थान को शरीर की राजधानी का राजा समझना चाहिये।

मस्तिष्क

चित्र २१०, में यह दर्शाया गया है कि यदि हम मस्तिष्क तक पहुँचना चाहें तो हम को शिर की कौन कौन सी चीज़ें काटनी पड़ेंगी। सब से पहले त्वचा कटेगी जो बहुत मोटी होती है; इस के नीचे त्वचा के नीचे वाली घनी सौत्रिक तंतु से निर्मित कला कटेगी। इस कला के नीचे एक पेशी और उसकी कंडरा रहती है। इस कंडरा के नीचे परिकपालिका नामक पतली कला रहती है। इन सब के कटने के पश्चात् हम कपाल की हड्डी पर पहुँचते हैं। इस हड्डी को काटने के पीछे मस्तिष्क का बाह्यावरण मिलता है फिर मध्य और अन्तरावरण मिलते हैं। इन आवरणों को हटाकर मस्तिष्क दिखाई देगा। चित्र २११,२१२ में शव की खोपड़ी काटी गई है और मस्तिष्क दिखाया गया है।

मस्तिष्क कुछ कुछ अंडाकार होता है उसका पिछला भाग

अगले भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा और मोटा होता है। उस की लम्बाई (सामने से पीछे तक का माप) ६–६½ इंच होती है; चौड़ाई एक कान से दूसरे कान तक) ५½ इंच और मोटाई (ऊपर से नीचे तक) कोई ५ इंच के लगभग होती है। १५ से ४९ वर्ष की आयु में मस्तिष्क का भार पुरुषों में २२ छटाँक और स्त्रियों में २० छटाँक के लगभग होता है।

जवान मनुष्य के मस्तिष्क का भार कुल शरीर के भार का $\frac{1}{50}$ वें अंश के लगभग होता है। नवजात बालक के मस्तिष्क का भार कोई ७ छटाँक होता है; पहिले वर्ष के अंत में यह दुगना हो जाता है; छठे वर्ष में तिगुना ; १८ वें वर्ष में क़रीब क़रीब उतना हो जाता है जितना जवानी में होता है (२०–२२ छटाँक)। मस्तिष्क का गुरुत्व १०३६ होता है। मस्तिष्क के दो बड़े भाग हैं :—

१—वह भाग जो मस्तिष्क को ऊपर से देखने से दिखाई देता है यह **वृहत् मस्तिष्क** है (चित्र २११,२१२)।

२—वह भाग जो मस्तिष्क की तली को देखने से दिखाई देता है यह वृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे रहता है और **लघु या अणु मस्तिष्क** कहलाता है (चित्र २०९ में २)।

वृहत् मस्तिष्क (चित्र २११, २१२, २१५, २१६)

कुल मस्तिष्क के भार का ८७·५% भाग वृहत् मस्तिष्क से बनता है। इसका रङ्ग बाहर से धूसर होता है। उसके पृष्ठों पर खाइयाँ पड़ी रहती हैं जिनके कारण कहीं उभार और कहीं गहराई दिखाई देती हैं। जिस प्रकार हल चलाने से खेत में नालियाँ बन जाती हैं जिनके बीच में मिट्टी की उभरी हुई मेंढ़ रहती हैं उसी

प्रकार वृहत् मस्तिष्क के पृष्ठों पर बहुत सी गहराइयाँ या नालियाँ होती हैं और इनके बीच में मस्तिष्क का भाग उभरा रहता है। मस्तिष्क की घाइ को सीती और दो सीताओं के बीच में रहने वाले उभरे हुए भाग को चक्राङ्ग कहते हैं (ये उभार टेढ़े मेढ़े होते हैं जैसा कि चित्र २१५ से विदित होता है)। मस्तिष्क के भार का तो बुद्धि से अधिक सम्बन्ध नहीं है परन्तु इन सीताओं की गहराई का बुद्धि से बड़ा सम्बन्ध है ; बुद्धिमानों में ये मूर्खों तथा पागलों की अपेक्षा अधिक गहरी होती हैं।

वृहत् मस्तिष्क के दो टुकड़े होते हैं ; इन दोनों के बीच में एक दरार या अंतर रहता है। यह अंतर वृहत् मस्तिष्क को ऊपर से देखने से दिखाई देता है (चित्र २१४ में द)। अंतर के इधर उधर वृहत् मस्तिष्क के जो भाग हैं वे दाहिने और बाएं गोलार्ध कहलाते हैं। यदि ये दोनों गोलार्ध एक दूसरे से अलग हटाये जावें तो इस अंतर की तली में इन दोनों गोलार्धों को जोड़ती हुई एक चौड़ी श्वेत चीज़ दिखाई देगी; इस चीज़ का नाम महा संयोजक है (चित्र २१६)।

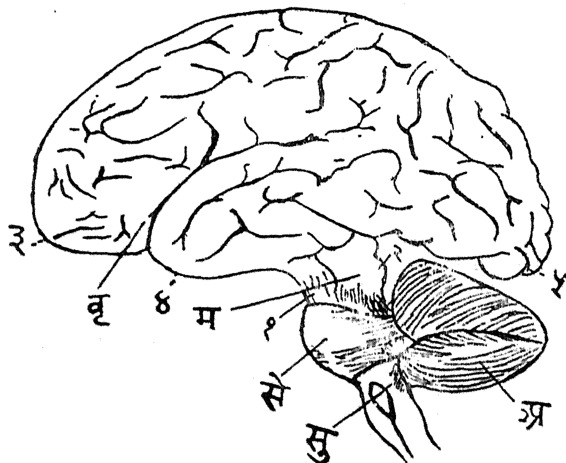
प्रत्येक गोलार्ध के तीन सिरे या ध्रुव हैं—एक अगला या ललाट ध्रुव जो ललाटास्थि के पास रहता है (चित्र २१५); दूसरा शंखध्रुव जो शंखास्थि के पास रहता है (चित्र २१५); तीसरा पाश्चात्यध्रुव कहलाता है, यह पीछे पश्चात् अस्थि पर रहता है (चित्र २१५)। इनमें से पाश्चात्य ध्रुव कुछ नोकीला होता है; ललाट ध्रुव सब से मोटा और चौड़ा होता है।

प्रत्येक गोलार्ध के तीन पृष्ठ होते हैं—एक जो बाहर से दिखाई देता है (चित्र २१५) यह बहिः पृष्ठ है; दूसरा जो नीचे रहता है—अधो पृष्ठ; तीसरा पृष्ठ मध्य रेखा की ओर रहता है और मध्य पृष्ठ कहलाता है (चित्र २१६); दोनों गोलार्धों के मध्य पृष्ठ एक दूसरे के सन्मुख रहते हैं इन पृष्ठों में से बहिः पृष्ठ सब से बड़ा और उन्नतोदर होता है; मध्य पृष्ठ कुछ कुछ सपाट होता है; अधो पृष्ठ का पिछला भाग कुछ नतोदर होता है और लघु मस्तिष्क के गोलार्ध पर रक्खा रहता है (देखो चित्र २१५,२१६)।

बृहत मस्तिष्क के खंड (चित्र २१५,२१६)

जिस प्रकार भूगोलज्ञ किसी बड़े देश के बहुत से प्रांत या खंड बना लिया करते हैं और इन प्रांतों या खंडों की सीमाएं पहाड़ों, नदियों या विशेष रेखाओं से बनी हुई मान लेते हैं; उसी प्रकार व्यवच्छेदक बृहत् मस्तिष्क को कई सीताओं और कल्पित रेखाओं द्वारा कई खंडों में विभक्त मान लेते हैं। खंडों और सीताओं तथा चक्रांगों का विस्तीर्ण वर्णन पढ़ने के लिये बड़े ग्रन्थ देखने चाहियें (देखो चित्र २१५, २१६ की व्याख्या)। बृहत् मस्तिष्क के बहिः पृष्ठ के मध्य में (ठीक मध्य तो नहीं है परन्तु इसको ऐसा मानने में कोई हानि नहीं) ऊपर से नीचे को जाती हुई एक गहरी सीता रहती है (चित्र २१५) यह माध्यमिक (मध्यम) सीता कहलाती है। इसी पृष्ठ पर शंखध्रुव के ऊपर एक लम्बी क्षितिज सीता पीछे की ओर जाती है (चित्र २१५ में प, ७); इस सीता का आरंभ अधो

चित्र २१२



व्याख्या :—

इस चित्र में मस्तिष्क के भाग अलग अलग करके दिखाये गये हैं। वृ=वृहत् मस्तिष्क; अ=अणु या लघु मस्तिष्क; से=सेतु; सु=सुषुम्ना शीर्षक; म=मध्य मस्तिष्क; १—मस्तिष्क स्तंभ; २—चतुष्पिण्ड; ३—ललाट ध्रुव, ४—शंख ध्रुव; ५—पाश्चात्य ध्रुव।

पृष्ठ पर होता है, इस को पार्श्विक सीता कहते हैं। माध्यमिक सीता के सामने और पार्श्विक सीता के ऊपर जो भाग है उस को ललाट खंड कहते हैं। पार्श्विक सीता के नीचे शंख खंड है। माध्यमिक सीता के पीछे पाश्चात्य ध्रुव तक जो भाग है उस के दो खंड माने जाते हैं—माध्यमिक सीता के पास का भाग

चित्र २१५ मस्तिष्क का बहिः पृष्ठ

च=चक्राङ्ग

१=ऊर्ध्व ललाट सीता, २=मध्य ललाट सीता, ३=अधः ललाट सीता, ४ और ५=मध्यमाग्र सीता के दो भाग; ६ (श्वेत चित्र के भीतर)=मध्यम सीता ; म=मध्यम सीता ; ७=पार्श्विक सीता का पिछला क्षितिज भाग, ८=ऊर्ध्व शंख सीता, ९=मध्य शंख सीता ; १०=पार्श्व पाश्चात्य सीता का अंतिम भाग; ११=१० और ११ के बीच एक रेखा खींची जावे तो मस्तिष्क का जितना भाग इस रेखा के पीछे रहेगा वह 'पाश्चात्य खंड' होगा। १२=इस सीता का कुछ भाग पार्श्विक खंड में रहता है और कुछ पाश्चात्य खंड में ; १३=सीता ; १४=चन्द्राकार सीता ; १५=सीता ; १६=लघु मस्तिष्क।

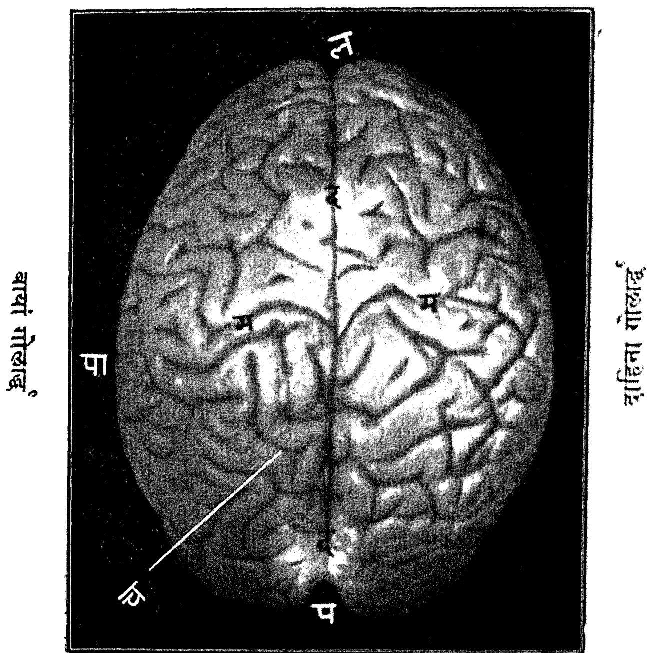
चित्र के भीतर :—

१ (श्वेत)=पार्श्विक सीता का आरंभिक भाग ; १ और २ के बीच में पार्श्विक सीता की 'उद्गामी शाखा' ; २ और ३ के बीच में अगली क्षितिज शाखा। पा पा=पाश्चात्य पार्श्विक चक्राङ्ग। ऊ. पा. च=ऊर्ध्व पार्श्विक चक्राङ्ग। ऊ. पा.=ऊर्ध्व पाश्चात्य चक्राङ्ग ; अ. पा=अधः पाश्चात्य चक्राङ्ग।

चित्र २१५

पृष्ठ ५४४ के सम्मुख

चित्र २१४ बृहत् मस्तिष्क



पृष्ठ ५४५ के सम्मुख

पार्श्विक खंड और पाश्चात्य ध्रुव के समीप का भाग पाश्चात्य खंड। ललाट, पार्श्विक, शंख और पाश्चात्य खंडों के शेष भाग मध्य और अधो पृष्ठों पर दिखाई देते हैं।

बृहत् मस्तिष्क की स्थूल रचना (चित्र २१७)*

बृहत् मस्तिष्क का रंग बाहर से धूसर होता है परन्तु जैसा वह बाहर से दिखाई देता है वैसा भीतर से नहीं होता। यदि हम चाकू से उसे काटें तो वह भीतर से श्वेत दिखाई देगा। धूसर भाग श्वेत भाग के चारों ओर इस प्रकार लगा है जैसे कि किसी फल में गूदे के ऊपर छिलका (चित्र २१७)। बहिःस्थ धूसर भाग वात सेलों से बनता है और भीतर का श्वेत भाग वात सूत्रों से। बहिःस्थ धूसर भाग को वल्क कहते हैं। वल्क की मोटाई बुद्धिमानों में मूर्खों की अपेक्षा अधिक होती है; साधारणतः उसकी मोटाई $\frac{1}{6}$ इंच से $\frac{1}{8}$ के लगभग होती है।

प्रत्येक गोलार्ध भीतर से खोखला होता है; इस प्रकार बृहत् मस्तिष्क में दो कोष्ठ होते हैं एक दाहिना दूसरा बायाँ। ये कोष्ठ

* बृहत् मस्तिष्क का ऊपर का भाग काट डाला गया है। बाहर धूसर भाग होता है और भीतर श्वेत यह इस चित्र से साफ़ मालूम होता है। महा संयोजक सूत्रों से बना होता है यह भी इस चित्र से साफ़ मालूम होता है। महा संयोजक के ऊपर के पृष्ठ पर मध्य रेखा के इधर उधर दो दो उभरी रेखाएं होती हैं (चित्र २१७ में ७)। २=महा संयोजक का जानु; ८=महा संयोजक की पुच्छ; १=ललाट खंड को जाने वाले वातसूत्र; ४=अनुप्रस्थ सूत्र। ६=पाश्चात्य खंड को जाने वाले सूत्र; ९, १४=सूत्रों का एक गट्ठा; ११, १२, १३=सूत्र।

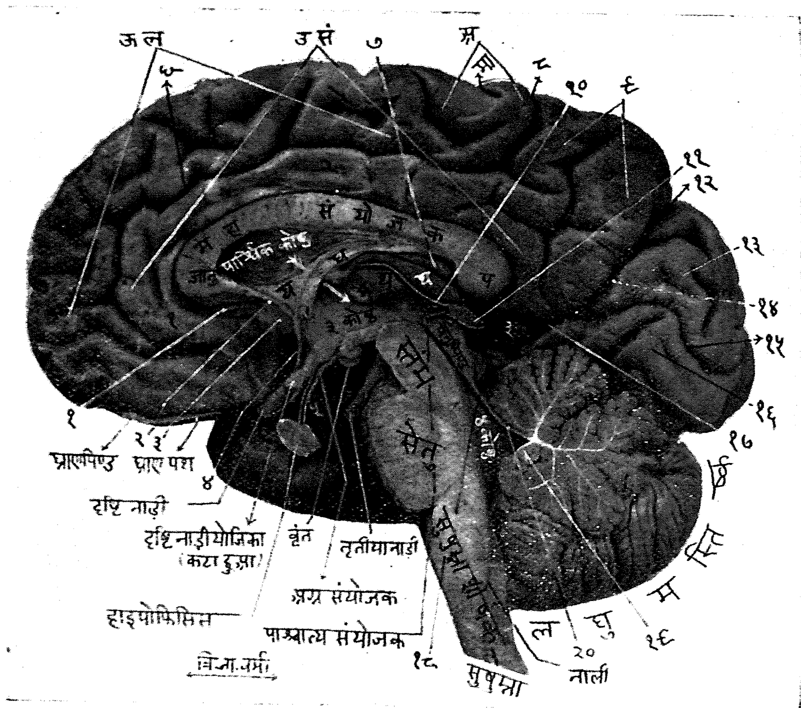
चित्र २१६ मस्तिष्क का मध्य पृष्ठ

१=महा संयोजक के जानु के नीचे रहने वाला एक चक्रांग (Gyrus subcallosus)
२=महा संयोजक नासा
३=एक विशेष भाग (Paraterminal body)
४=इस भाग से तीसरे कोष्ठ की अगली दीवार बनती है
५=(चित्र के भीतर) हाइपोफिसिस की डंठल
६=सीता ; ७=धनुराकार पिंड का दाहिना भाग ; ८=नं० ६ सीता का अन्तिम भाग
९=पार्श्विक खंड का मध्य पृष्ठगत भाग (चतुरस्र खंड)
१०=उभरी हुई रेखा ११=पीनियल ग्रन्थि १२=पार्श्विक पाश्चात्य सीता का अन्त
१३=पाश्चात्य खण्ड का भाग १४=पार्श्विक पाश्चात्य सीता
१५=सीता १६=चक्रांग १७=नं० १५ सीता का प्रारम्भिक भाग
१८=चौथे कोष्ठ की अगली छत १९=चौथे कोष्ठ की पिछली छत

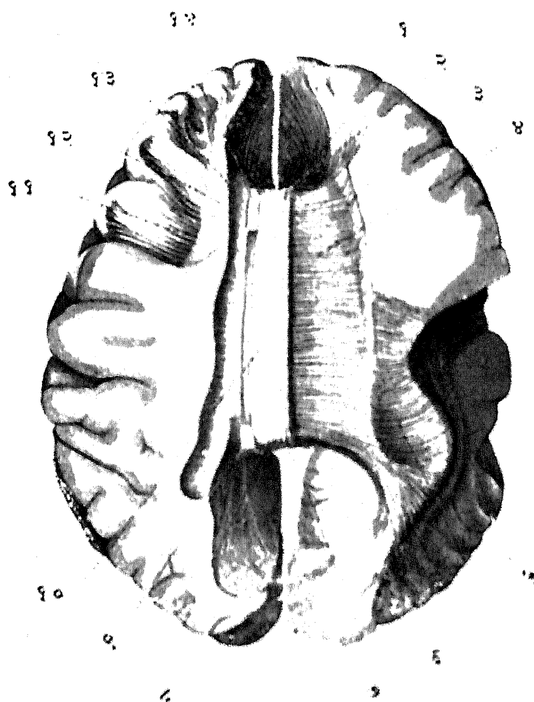
उ ल=ऊर्ध्व ललाट चक्रांग
उ सं=उप संयोजक चक्रांग
अ=मध्यम सीता के अन्तिम भाग के पास का चक्रांग
आ=मध्यम सीता का अन्त
ज=महा संयोजक का जानु
प= ,, ,, की पुच्छ
य=यवनिका का शेष भाग
ध=धनुराकार पिंड

थ (काला)=थैलेमस का वह भाग जो तीसरे कोष्ठ की पार्श्विक दीवार बनाता है

थ (श्वेत)=तीसरे कोष्ठ के बाहर रहने वाला थैलेमस का भाग। स्तम्भ और चतुष्पिण्ड से "मध्य मस्तिष्क" बनता है ; इन दोनों के बीच में जो नाली है उस को मध्य मस्तिष्क की सुरंग कहते हैं।


ऊ ल
उ सं
७
ऋ
८
१०
९
११
१२
१३
१४
१५
१६
१७
१
२ ३
घ्राणपिण्ड
घ्राण पथ
४
दृष्टि नाड़ी
दृष्टि नाड़ी योजिका (कटा हुआ)
वृंत
तृतीया नाड़ी
अग्र संयोजक
हाइपोफिसिस
पाश्चात्य संयोजक
१८
सुषुम्ना
नाली
२०
ल
घु
म
स्ति
१९
सेतु
सुषुम्ना शीर्षक
पार्श्विक कोष्ठ
नि.ना.वर्मा

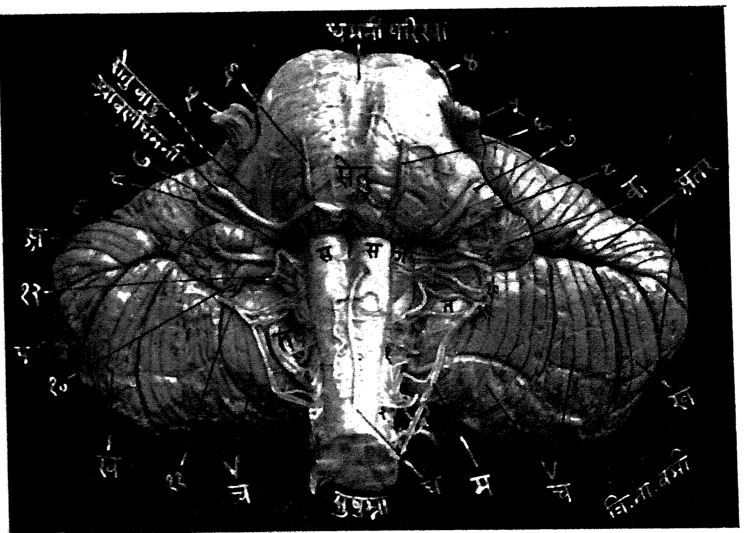
चित्र २१७



(From Cunningham's Practical Anatomy)

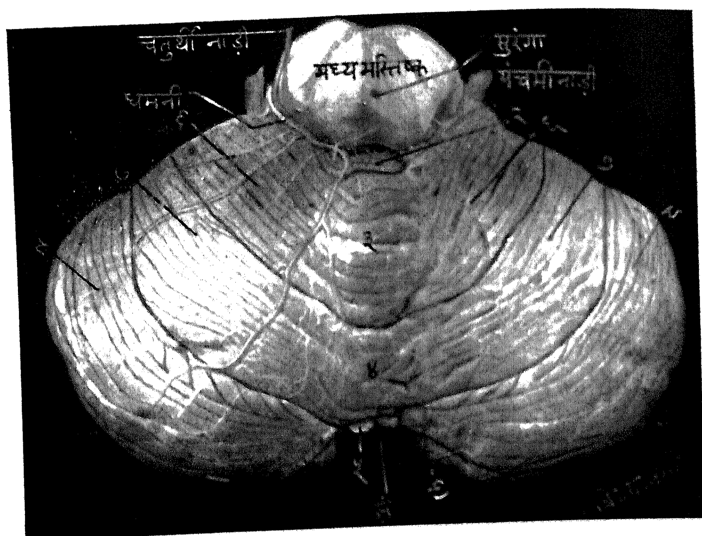
चित्र २१८ के सम्मुख

चित्र २१८ सेतु, लघुमस्तिष्क और सुषुम्ना शीर्षक



चित्र २१७ के सम्मुख

चित्र २१९ लघु मस्तिष्क (ऊपर का पृष्ठ)



चित्र २२० लघु मस्तिष्क (नीचे का पृष्ठ)



टेढ़े तिर्छे होते हैं; दोनों के बीच में मध्यरेखा में एक परदा लगा रहता है (चित्र २१५)। दोनों कोष्ठों में ज़रा सा तरल रहा करता है। कुछ रोगों में यह तरल अधिक बनता है; इस अधिक तरल के दबाव से कोष्ठ फैलकर बड़े हो जाते हैं। इस तरल से मस्तिष्क भी बड़ा हो जाता है परन्तु उस को अत्यंत हानि पहुँचती है। ऐसे रोगी महा मूढ़ और पागल होते हैं या हो जाते हैं।

लघु मस्तिष्क

(चित्र २१५, २१६)

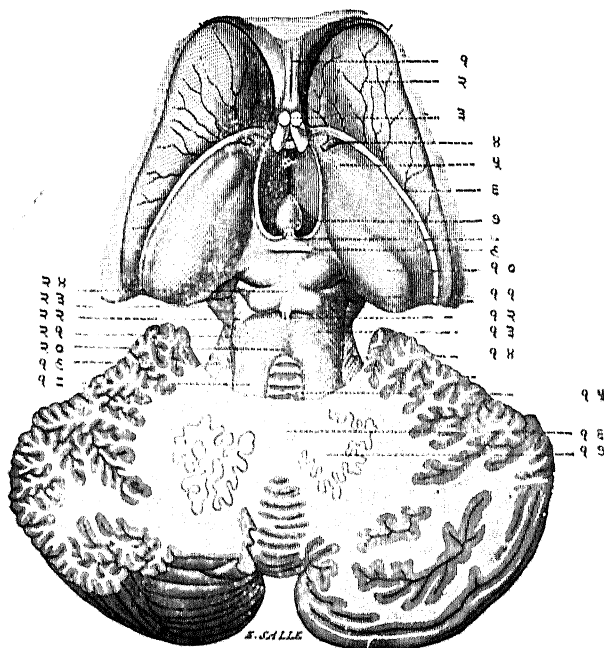
यह वृहत् मस्तिष्क से बहुत छोटा होता है। उसका आकार एक पिचके हुए गोले से बहुत कुछ मिलता है (वास्तव में लघु मस्तिष्क दीर्घ गोलाभाकार होता है)। लघु मस्तिष्क की चौड़ाई (दाहिनी ओर से बाईं ओर तक का माप) ४ इंच और मोटाई (ऊपर के पृष्ठ से नीचे के पृष्ठ तक) १ इंच होती है। अगले और पिछले किनारों के बीच में उस की मोटाई मध्यरेखा में १½ इंच और मध्यरेखा से हटकर २ इंच के लगभग होती है। उस का भार २ या २½ छटाँक के लगभग होता है। नीचे का पृष्ठ बीच में तो दबा रहता है परन्तु शेष भाग उभरा हुआ (उन्नतोदर) होता है; ऊपर का पृष्ठ बीच में शेष भाग की अपेक्षा उभरा हुआ होता है।

लघु मस्तिष्क के तीन भाग माने जाते हैं। बीच के भाग को जो ऊपर उभरा हुआ और नीचे दबा हुआ होता है मध्यांश कहते हैं; मध्यांश के इधर उधर के बड़े भाग लघु मस्तिष्क के गोलार्ध कहलाते हैं।

चित्र २२१ की व्याख्या

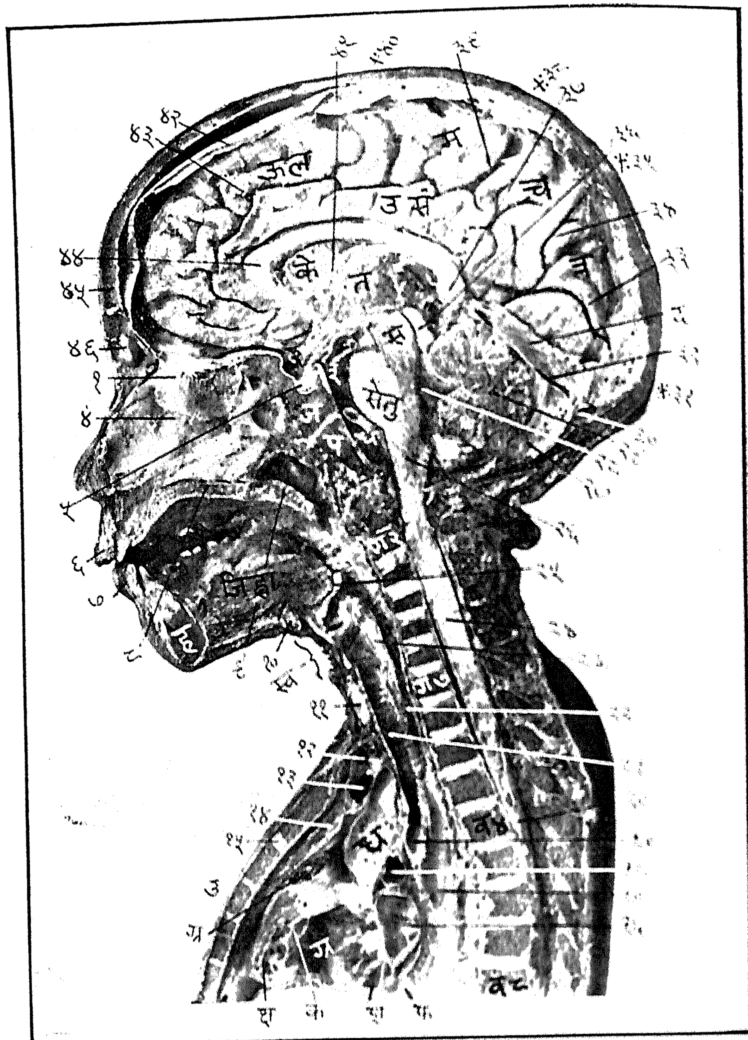
१=यवनिका
२=केतु शिर
३=धनुराकार पिंड के स्तंभ
४=शिरा
५=थैलेमस का अगला अर्बुद
६=शिरा का उभार
७=पीनियल पिंड
८=पीनियल नाल
९=पश्चात् संयोजक
१०=थैलेमस का पिछला भाग
११=अधर चतुष्पिंड बाहु
१२=रश्मि
१३=चतुष्पिंड-लघुमस्तिष्क योजक
१४=सेतु बाहु
१५=जिह्वा
१६=लघुमस्तिष्क का श्वेत भाग
१७=दंत केन्द्र
१८=चतुष्पिंड-लघु मस्तिष्क योजक
१९=सेतु बाहु
२०=अग्र अवगुण्ठन
२१=मध्य मस्तिष्क की पार्श्विक परिखा
२२=त्रिकोण
३२=मस्तिष्क स्तंभ
२४=चतुष्पिंड

चित्र २२१



पृष्ठ ५४८ के सम्मुख

चित्र २२२



त्रि० ना० वर्मा

पृष्ठ ५४५ के सम्मुख

चित्र २२२ की व्याख्या

१=घ्राण नाड़ियाँ
२=दृष्टि नाड़ी (चित्र के भीतर)
३=तृतीया नाड़ी (श्वेत)
४=नाक का पर्दा
५=हाइपोफिसिस पिण्ड
६=ऊर्ध्व ओष्ठ; ७=अधो ओष्ठ
८=कठिन तालु
ह (श्वेत)—अधोहन्वस्थि कटी हुई
९=कोमल तालु; स्व=स्वरयंत्र
१०=कंठिकास्थि (कटी हुई)
११=चुल्लिकाग्रन्थि
१२=चुल्लिकाग्रन्थि की शिरा
१३=ऊर्ध्व महाशिरा का आरंभ
१४=थाइमस ग्रन्थि (शेष भाग)
१५=कारटिलेज
उ=उरोस्थि के ६ टुकड़े हैं जो आपस में कार्टिलेज द्वारा जुड़े हैं। केवल ऊपर के कार्टिलेज को छोड़ कर शेष सब कार्टिलेज २५ वर्ष की आयु तक अस्थि में परिवृत्त हो जाते हैं। पहला टुकड़ा (उरोस्थि का ऊर्ध्व खंड) मध्य खंड से २५ वर्ष की आयु के पश्चात् भी बहुत समय तक कार्टिलेज द्वारा ही जुदा रहता है।
ग्र=दाहिने ग्राहक कोष्ठ की शिखर
ग्र (श्वेत)=दाहिना ग्राहक कोष्ठ
क्ष=दाहिने क्षेपक कोष्ठ का ज़रा सा भाग
क=कपाट का शेष भाग
श=अधोगा महाशिरा का मुख
फ=दाहिने फुप्फुस का अंश
ध=महाधमनी
१६=बायाँ ग्राहक कोष्ठ
१७=अन्न प्रणाली
१८=दाहिनी फुप्फुसीया धमनी
१९=बाईं वायु प्रणाली
२०=सुषुम्ना (जो कटी नहीं)
२१=टेंटुवा; २२=अन्न प्रणाली
२३=मुद्रा कार्टिलेज (पिछला भाग)
२४=सुषुम्ना (बीच से कटी हुई)
२५=स्वर यंत्रच्छद
२६=सुषुम्ना शीर्षक
२७=लघु दात्रिका; २८=चौथा कोष्ठ
२९=लघु मस्तिष्क
३०=शिरा कुल्याओं का संगम
३१=से ३५ तक=पाश्चात्य खंड
३२=सरल शिरा कुल्या
३३=सीता
३४=पार्श्व पाश्चात्य सीता
३५=से ३८ तक=पार्श्विक खंड
३६=चतुष्पिण्ड
३७=महासंयोजक पुच्छ
३९, ४३=सीता
४१=धनुराकारपिण्ड
४२=बाह्यावरण
४४=महासंयोजक जानु
४५=ललाटास्थि
४६=ललाट कोटर; के=केश्वाकार पिंड; त=थैलेमस पिंड; ज=जत्रुकास्थि; प=पाश्चात्य अस्थि

चित्र २२३ की व्याख्या

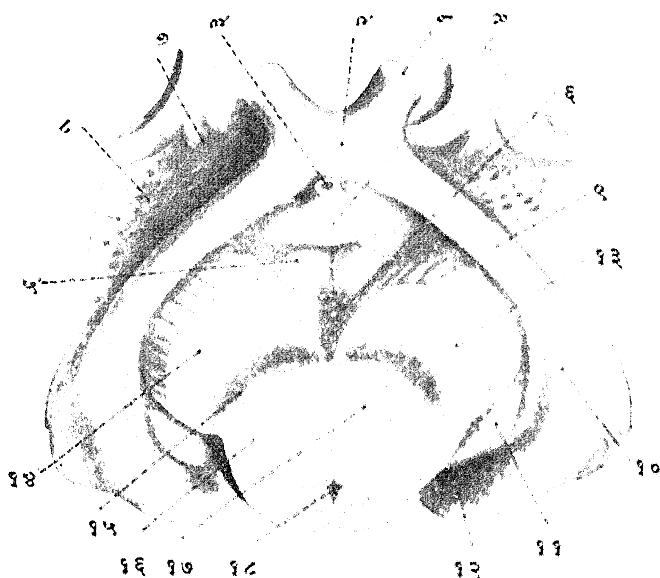
१=शिखर कण्टक
२=ललाट कोटर
३=नाक का कार्टिलेज
४=ऊर्ध्वौष्ठ
५=अधः ओष्ठ
६=कठिन तालु
७=हाइपोफिसिस
८=कंठकर्णी नाली का मुख
९=शुंडिका
१०=कंठिकास्थि
११=स्वरयंत्रच्छद
१२=चुल्लिका ग्रन्थि
१३=चुल्लिका ग्रन्थि की शिरा
१४=शिरा
१५=महाधमनी
१६=थाइमस ग्रन्थि
१७=दा० फुप्फुसीया धमनी
१८=महाधमनी
१९=वायु प्रणाली
२०=टेंटुवा
२१=अन्न प्रणाली
२२=कार्टिलेजकी चक्री
२३=छुरी के दबाव से कंठ और अन्न प्रणाली पृष्ठ वंश से अलग हो गये हैं इसी कारण यह अंतर दिखाई पड़ता है
२४=सुषुम्ना
२५=दूसरे कशेरुका का दंत प्रवर्द्धन
२६=मस्तिष्क का चौथा कोष्ठ
२७=लघु मस्तिष्क
२८=शिरा कुल्याओं का संगम
२९=पाश्चात्य अस्थि
३०=मध्य मस्तिष्क सुरंगा
३१=चतुष्पिण्ड
३२=पीनियल ग्रन्थि
३३=थैलेमस
३४=ऊर्ध्व अन्वायाम शिरा कुल्या
३५=धनुराकार पिंड के दो स्तंभ
३६=वृंत
३७=महासंयोजक
३८=केत्वाकार पिण्ड
३९=मस्तिष्काग्रधमनी
४०=यवनिका का शेष भाग
४१=ललाटास्थि
४२=सरल शिरा कुल्या
ग्र२=ग्रीवा के दूसरे कशेरुका का गात्र
व१=वक्ष का पहला कशेरुका
स=मस्तिष्क स्तंभ
ध=धमनी
त=पाश्चात्य अस्थि और जतूकास्थि की संधि का कार्टिलेज
स्व=स्वरयंत्र
क=जतूका कोटर
ऊ=ऊर्ध्व शुक्तिका
म=मध्य शुक्तिका
अ=अधः शुक्तिका
ता=तालु
ज=जिह्वा
ह=अधोहन्वस्थि कटी हुई

चित्र २२३

त्रि० ना० वर्मा

पृष्ठ ५५० के सम्मुख

चित्र २२४ मध्य मस्तिष्क



From Sobotta's Anatomie des Menschen

पृष्ठ ५५१ के सम्मुख

चित्र २२४ की व्याख्या

यह काट मध्य मस्तिष्क में से काटा गया है। देखो चित्र में आगे से पीछे को

१=दृष्टि नाड़ी

२=दृष्टि नाड़ी योजिका

३=पिच्यु्ट्री नाल

४=तीसरे कोष्ठ की भूमि

५=वृन्त पिंड

६=पाश्चात्य चालनी स्थान

७=घ्राण त्रिकोण

८=अग्र चालनी स्थान

९=दृष्टि पथ

१०=बाह्य जानु पिण्ड

११=मध्य जानु पिण्ड

१२=थैलेमस का भाग

१३=मस्तिष्क स्तंभ

१४=मस्तिष्क स्तंभ या श्वेत भाग

१५=कृष्ण स्थान

१६=मध्य मस्तिष्क

१७=लोहित केन्द्र

१८=मध्य मस्तिष्क सुरंगा

लघु मस्तिष्क वृहत् मस्तिष्क के नीचे रहता है; (चित्र २१५, २१६) यदि मस्तिष्क को ऊपर से देखें तो दिखाई न देगा। उस के पृष्ठ पर भी घाइयाँ होती हैं जो वृहत् मस्तिष्क की घाइयों (सीताओं) से कुछ भिन्न प्रकार की होती हैं। लघु मस्तिष्क की सीताएं वृहत् मस्तिष्क की सीताओं से अधिक गहरी होती हैं और पास पास और अधिकतर समांतर रहती हैं। सीताओं के गहरे और बहुत पास पास और समांतर होने के कारण लघु मस्तिष्क में पत्रों के समान पतले पतले भाग दिखाई देते हैं। हरएक पत्र के ऊपर भी छोटी छोटी घाइयाँ होती हैं।

वृहत् मस्तिष्क की भाँति लघुमस्तिष्क में भी बाहर धूसर भाग होता है और भीतर श्वेत। हर एक पत्र या दल के भीतर एक पतली तह श्वेत भाग की होती है (चित्र २१६) जिस के ऊपर धूसर भाग चढ़ा रहता है। धूसर भाग सेलों से और श्वेत भाग सूत्रों से बनता है।

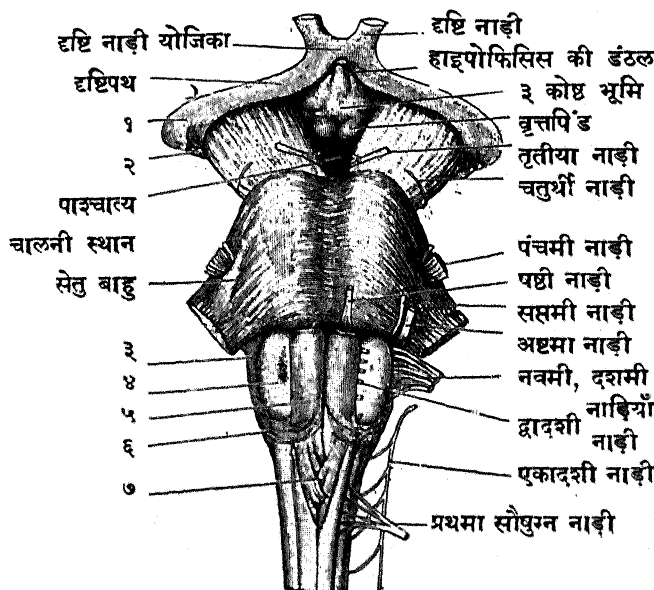
मस्तिष्क के और भाग (चित्र २२०,२२३ २२४)

यदि हम मस्तिष्क की तली (अधोभाग, को देखें तो वृहत् मस्तिष्क और लघु मस्तिष्क के अतिरिक्त और कई छोटे छोटे भाग दिखाई देंगे :—

१—लघु मस्तिष्क के सामने महराब की तरह मुड़ा हुआ श्वेत रंग का जो भाग है उसको सेतु कहते हैं (चित्र २२२,२२३)। सेतु अधिकतर वात सूत्रों से बनता है। वृहत् मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क और सुषुम्ना—इन तीनों अंगों को एक जगह से दूसरी जगह जाने वाले सूत्र सेतु में ही से होकर गुज़रते हैं।

२—सेतु के सामने श्वेत रङ्ग के दो दंडे दिखाई देते हैं (चित्र २२५ ; चित्र २१६) । सेतु से निकलकर इनमें से एक वृहत् मस्तिष्क के दाहिने दूसरा बाएं गोलार्ध में घुसकर छिप

चित्र २२५



सुषुम्ना

(From Cunningham's Practical Anatomy by permission)

१,२=दो उभार जो दृष्टिपथ से सम्बन्ध रखते हैं; ४=गुली पिंड; ५=सूची पिण्ड; ६=उपरितन सतोरण नाड़ी सूत्र; ७=नाड़ी सूत्र एक ओर से दूसरी ओर जा रहे हैं ।

जाता है (चित्र २४०)। ये दोनों दंडे वात सूत्रों के समूह हैं और नाड़ी स्तंभ या मस्तिष्क स्तंभ कहलाते हैं। जितने वात सूत्र नीचे से (सुषुम्ना और सेतु से) ऊपर को वृहत् मस्तिष्क में जाते हैं या जो ऊपर से नीचे को आते हैं वे इन्हीं स्तंभों में होकर गुज़रते हैं।

३—स्तंभों के बीच में और सेतु के मध्य भाग के सामने मटर के सदृश दो पिंड होते हैं ; ये वृंताकार पिंड (या वृंत्त-पिंड) कहलाते हैं। (चित्र २१६)।

४—वृंताकार पिंडों के सामने एक कुछ कुछ अंडाकार पिंड रहता है इसका नाम हाइपोफिसिस* है। यह एक परमावश्यक अंग है ; यह एक खोखली डण्ठल द्वारा तीसरे कोष्ठ के फ़र्श से लगा रहता है (चित्र २१६,२२४)। जतूकास्थि के गात्र के ऊपर के पृष्ठ पर एक गहरा गड्ढा होता है। यह अंग उसी गड्ढे में रहता है (देखो चित्र २२२,२२३)।

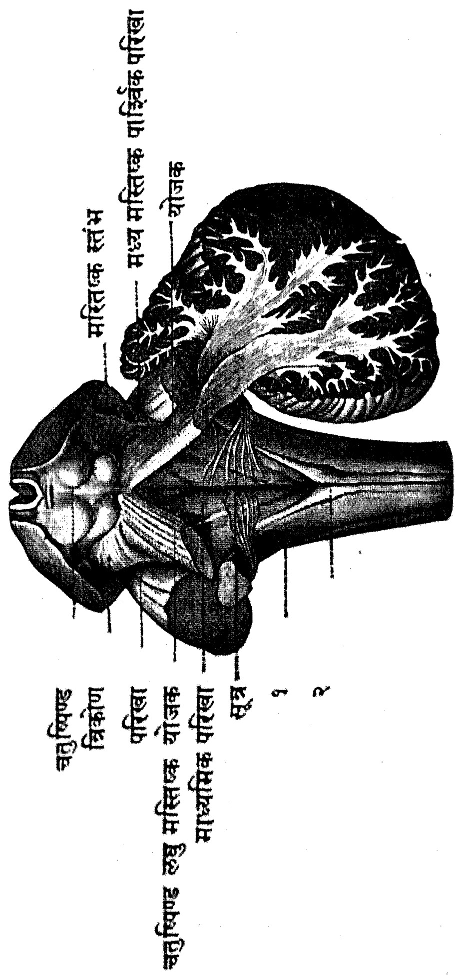
५—हाइपोफिसिस के सामने दृष्टिनाड़ी योजिका है (चित्र २२४; चित्र २२५); यहाँ दोनों दृष्टिनाड़ियों के कुछ तार एक ओर से दूसरी ओर मध्यरेखा को पार करके चले जाते हैं।

६—दृष्टिनाड़ी योजिका के सामने दरार है। इस दरार के इधर उधर एक घाई (सीता) में पड़े हुए मुद्गर जैसे भाग दिखाई देते हैं। इस भाग का अगला मोटा अंश (चित्र २४०

---

* अँगरेज़ी भाषा का शब्द है ; इसको पिच्युटरी बॉडी (Pituitary body) भी कहते हैं।

चित्र २२६ मध्य मस्तिष्क का लघु मस्तिष्क से सम्बन्ध



(Rauber-Kopsch after Sappey)

में घ) घ्राणखंड कहलाता है; शेष लम्बा और पतला भाग (चित्र २४० में घ') घ्राणपथ कहलाता है।

७—सेतु के पीछे और उससे लगा हुआ कपाल के भीतर रहनेवाला मस्तिष्क का जो भाग है (चित्र २१६; चित्र २२६) उसको सुषुम्ना शीर्षक कहते हैं; इस अंग के नीचे के भाग से सुषुम्ना का आरम्भ होता है। सुषुम्ना शीर्षक सेतु के पास अधिक मोटा और चौड़ा है और महाछिद्र के पास पतला। इस अंग की लम्बाई १$\frac{1}{8}$ इञ्च के लगभग होती है। सामने मध्यरेखा में इसमें एक अन्तर या घाई होती है; इस घाई के इधर उधर दो उभार होते हैं (चित्र २२५ में ५; चित्र २४० में सु); इन उभारों के पास एक और घाई होती है जिसके पीछे छोटा सा बेर जैसा उभार और होता है (चित्र २२५ में ४); पहले उभार और इस उभार के बीच में से द्वादशी नाड़ी निकलती है। दूसरे उभार के पीछे एक उभार और होता है (चित्र २२५ में ३)।

सेतु और सुषुम्नाशीर्षक के पीछे और लघु मस्तिष्क के सामने और नीचे जो कोष्ठ है उसको मस्तिष्क का चौथा कोष्ठ कहते हैं (चित्र २१६; चित्र २२३ में २६) इस कोष्ठ का फ़र्श चौंखुण्टा होता है जैसा कि चित्र २२६, २२७ से विदित है।

मस्तिष्क के कुछ भाग इस प्रकार ढँके रहते हैं कि वे बिना उसको काटे भली प्रकार दिखाई नहीं देते।

८—स्तम्भों के ऊपर वृहत् मस्तिष्क और महा संयोजक के पिछले भाग से ढँके हुए चार गोल गोल उभार होते हैं ये चतुष्पिण्ड कहलाते हैं (चित्र २२६, २२७)।

९—चतुष्पिण्ड के सामने एक छोटा सा अंग रहता है

(चित्र २२७) जिसको पीनियल* पिण्ड कहते हैं। चतुष्पिण्ड और स्तम्भों से मिलकर जो भाग बनता है उसको मध्य मस्तिष्क कहते हैं। मध्य मस्तिष्क में चतुष्पिण्ड के नीचे एक पतली नाली या सुरङ्ग होती है; इस नाली द्वारा मस्तिष्क के चौथे और तीसरे कोष्ठ एक दूसरे से मिले रहते हैं (चित्र २२३, २२४)।

मस्तिष्क के शेष भाग उसको काटकर देखे जाते हैं। इनका वर्णन इस पुस्तक में नहीं किया जायगा।

सुषुम्ना (चित्र २२८, २२९, २३०, २३१)

यह वात संस्थान का वह भाग है जो कपाल के महा छिद्र से आरम्भ होता है और कशेरुकी नली में पहले कटी कशेरुका के गात्र के नीचे के किनारे तक या दूसरे कटी कशेरुका के गात्र के ऊपर के किनारे तक रहता है; दूसरे कटी कशेरुका से नीचे कशेरुकी नली में सुषुम्ना नहीं रहती (चित्र २२८)।

सुषुम्ना की लम्बाई पुरुषों में १८ इंच के लगभग होती है; स्त्रियों में कोई १/२ इंच कम होती है। उसका भार १/२ छटाँक के लगभग होता है (कुल शरीर के भार का १/२००० वा अंश समझिये)। उसका गुरुत्व १०३५ के लगभग होता है।

सुषुम्ना कुछ कुछ बेलनाकार और रस्सी के समान होती है। दो स्थानों में शेष स्थानों की अपेक्षा अधिक मोटी होती है (देखो चित्र २२९ और २३०) :—

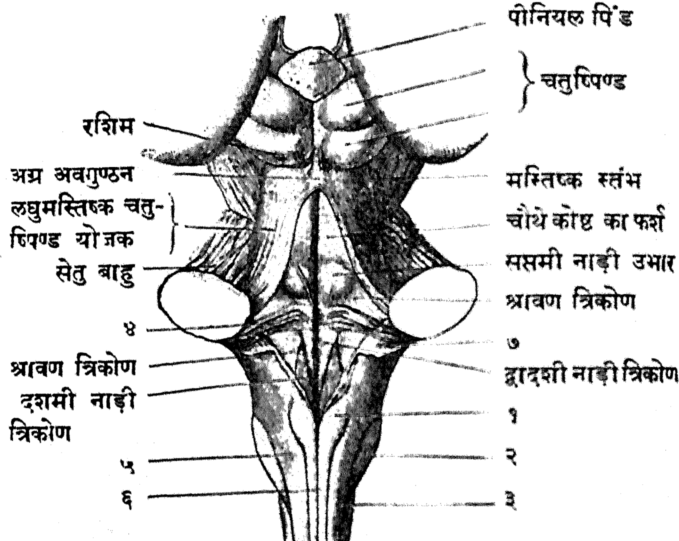
१—ग्रीवा में ग्रीवा के तीसरे कशेरुका से वक्ष के पहले

* अँगरेज़ी भाषा का शब्द है।

कशेरुका तक। यहाँ उस का परिधि (घेरा) ½ इंच और व्यत्यस्त व्यास (दाहिनी ओर से बाईं ओर तक) ½ इंच के लगभग होता है। इस भाग से ऊर्ध्व शाखा सम्बन्धी नाड़ियाँ निकलती हैं।

२—वक्ष के नौवें से १२ वें कशेरुकाओं के सामने। यहाँ

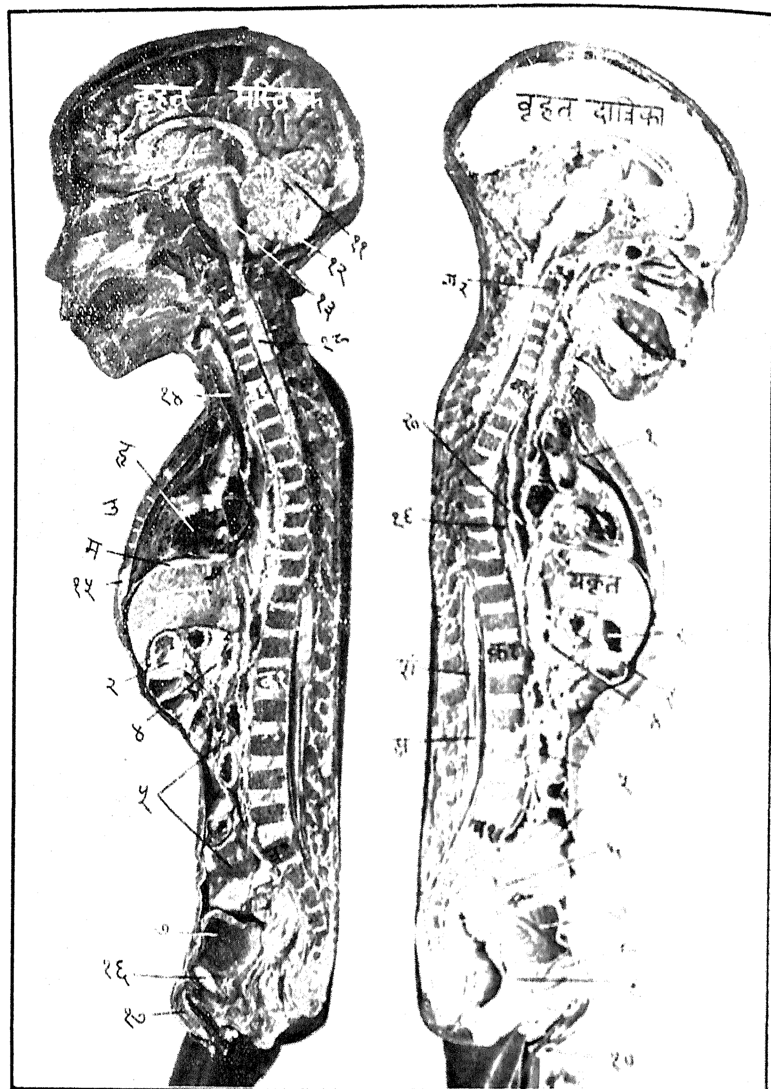
चित्र २२७ चतुष्पिण्ड, सेतु और सुपुम्नाशीर्षक के पिछले भाग



(From Cunningham's Practical Anatomy)

उसका परिधि १½ इंच के लगभग और व्यत्यस्त व्यास ½ इंच से कुछ कम होता है। इस भाग से अधो शाखा की नाड़ियाँ निकलती हैं। वक्ष के १२ वें कशेरुका के नीचे सुपुम्ना पतली और शंकाकार हो जाती है; शंकु की शिखर कटी के पहले या

चित्र २२८



त्रि० ना० वर्मा

पृष्ठ ५५५ के सम्मुख

चित्र २२८ की व्याख्या

इस बालक की उम्र ९ वर्ष के लगभग थी। बीच में से काटकर दो टुकड़े किये गये हैं। इस चित्र से यह साफ़ मालूम होता है कि कौन अंग कहाँ रहता है।

१=थाइमस ग्रन्थि का शेष भाग; २=अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र; ३=आमाशय का अन्त और पक्वाशय का आरम्भ; ४=क्लोम (अग्न्याशय); ५=क्षुद्रांत्र ६=वस्तिगह्वरस्थ बृहत् अन्त्र; ७=मूत्राशय; ८=विटप सन्धि; ९=प्रोस्टेट ग्रन्थि; १०=शिश्नाग्र त्वचा; ११=वितान और बृहत् दात्रिका का जोड़; १२=लघु मस्तिष्क; १३=सेतु; १४=टेंटुवा; १५=उरोस्थि का अग्र खंड; १६=विटप सन्धि; १७=शिश्न; १८=सुषुम्ना; १९=महा धमनी; २०=अन्नप्रणाली

ग२=ग्रीवा का दूसरा कशेरुका

व१=वक्ष का पहला कशेरुका (चित्र के भीतर)

क१=कटी का पहला कशेरुका

उ=उरोस्थि के कई टुकड़े अभी जुड़े नहीं हैं। उनके बीच में कार्टिलेज के टुकड़े हैं।

शं=सुषुम्ना शंकु—इसकी शिखर से सुषुम्ना का मध्यम बन्धन आरम्भ होता है। सुषुम्ना का अन्त कटी के दूसरे कशेरुका का गात्र के ऊपर के किनारे के सम्मुख होता है।

अ=अश्व पुच्छ

दूसरे कशेरुका के सामने रहती है ; यह सुषुम्ना का अन्तिम भाग है (चित्र २२८, २३०) ।

सुषुम्ना के अन्तिम भाग की शिखर से एक पतले श्वेत सूत्र का आरंभ होता है । यह सूत्र कोई ६ या ७ इंच लम्बा होता है और नीचे जाकर गुदास्थि से लग जाता है । यह सूत्र सुषुम्ना का मध्य बन्धन कहलाता है । मध्य बन्धन के प्रारंभिक भाग में ज़रा सा वात तंतु होता है; शेष भाग सौत्रिक तंतु से ही बनता है (चित्र २३०) ; सुषुम्ना के पार्श्वक बन्धन भी होते हैं ।

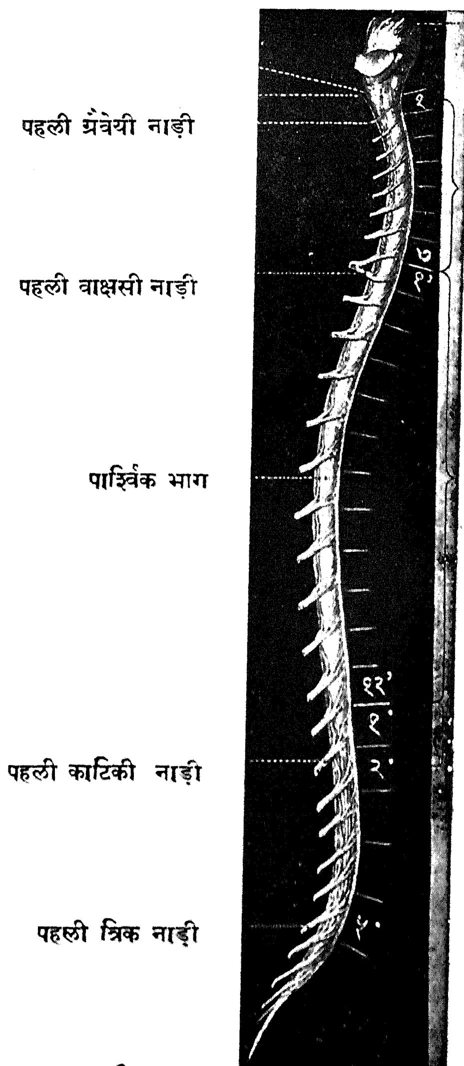
सुषुम्ना के अगले पृष्ठ पर मध्य रेखा में एक घाई होती है (चित्र २३०) जिस की गहराई $\frac{1}{6}$ इंच के लगभग होती है ; पिछला पृष्ठ भी मध्य रेखा में ज़रा दबा रहता है (चित्र २३१) इन दोनों घाइयों के इधर उधर सुषुम्ना के एक ही जैसे दो बराबर भाग (पार्श्वार्ध) होते हैं । सुषुम्ना के दोनों पार्श्वों से थोड़ी थोड़ी दूरी पर नाड़ियाँ निकलती हैं (चित्र २३१)

सुषुम्ना का रंग बाहर से श्वेत होता है । मस्तिष्क (वृहत् और लघु) में श्वेत पदार्थ भीतर था और धूसर बाहर ; सुषुम्ना में इसका उलटा होता है, श्वेत पदार्थ बाहर होता है और धूसर उसके भीतर । धूसर भाग में सेलें और श्वेत में सूत्र होते हैं ।

सुषुम्ना का व्यत्यस्त काट (चित्र २३२)

व्यत्यस्त काट में धूसर पदार्थ अंगरेज़ी भाषा के एच् (H) के आकार से बहुत कुछ मिलता है । धूसर पदार्थ के दो मुड़े हुए पार्श्विक भाग हैं जो एक दूसरे से एक व्यत्यस्त भाग द्वारा जुड़े रहते हैं । प्रत्येक पार्श्विक भाग मुड़ा रहता है ; उसका

हमारे शरीर की रचना—प्लेट ५३ चित्र २२९ सुषुम्ना (पार्श्व)



सेतु

ग्रीवा में रहनेवाला भाग
१ से ७ तक=ग्रीवा के
कशेरुका

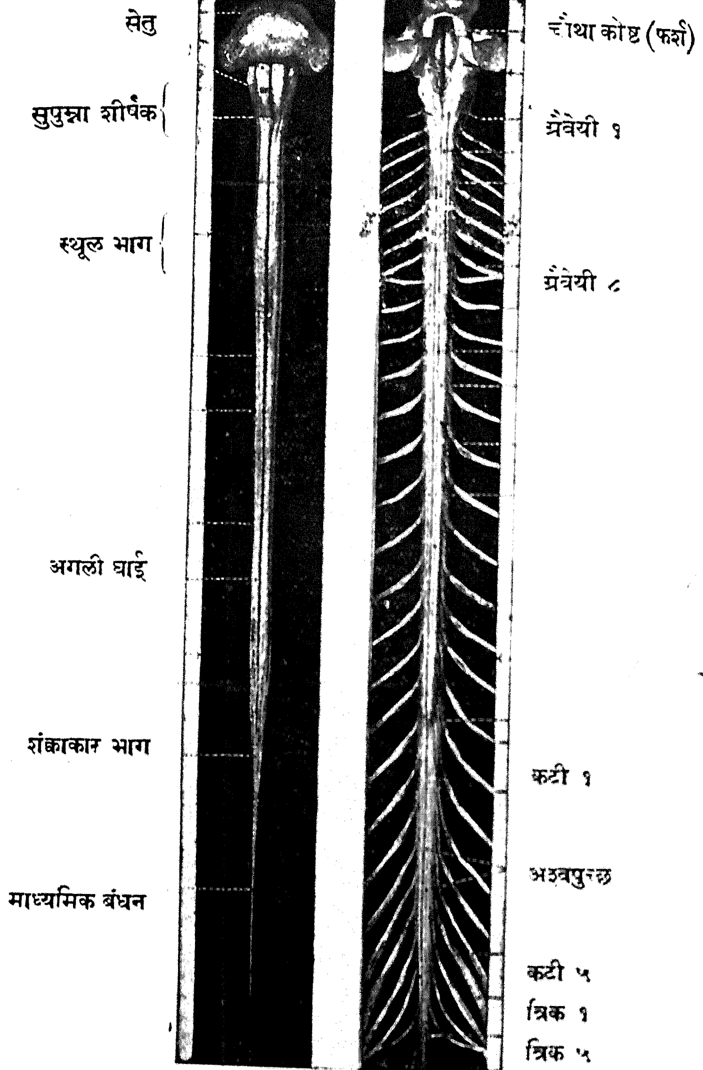
वक्ष में रहनेवाला भाग
१'से १२' तक=वक्ष के
कशेरुका

कटी में रहनेवाला भाग
१',२'=कटी कशेरुका

(Spalteholtz)

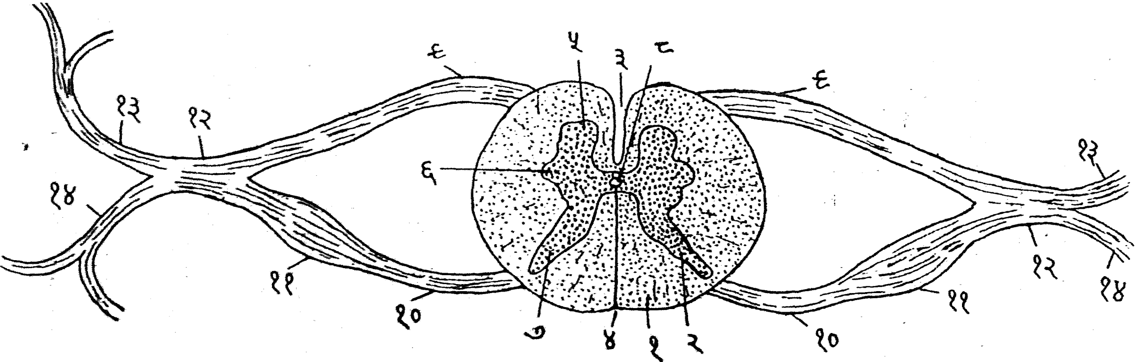
चित्र २३० सुषुम्ना चित्र २३१

अगला पृष्ठ पिछला पृष्ठ



(Spalteholtz)

पृष्ठ ५६१



१=श्वेत भाग	८=सौषुम्न नाली
२,७=धूसर भाग का पाश्चात्य शृङ्ग	९=पूर्व मूल
३=सामने की घाई	१०=पाश्चात्य मूल
४=पिछली घाई	११=पाश्चात्य गंड
५=अग्र शृङ्ग	१२=सौषुम्न नाड़ी
६=पार्श्विक शृङ्ग	१३=पूर्व शाखा
	१४=पाश्चात्य शाखा

चित्र २३२ सुषुम्ना का व्यत्यस्त काट

अगला सिरा मोटा और छोटा, और पिछला लम्बा और पतला होता है। अगला सिरा पूर्व श्रृङ्ग (चित्र २३२ में ५) पिछला पाश्चात्य श्रृङ्ग (चित्र २३२ में २) कहलाता है। सुषुम्ना के बीच के भाग में (उस भाग में जिस से वक्ष और पीठ की नाड़ियाँ निकलती हैं) एक पार्श्विक श्रृङ्ग (चित्र २३२ में ६) भी दिखाई देता है।

मध्य भाग में एक छिद्र दिखाई देता है; (चित्र २३२ में ८) यह उस नाली का मुख है जो सुषुम्ना के भीतर होती है। यह सौषुम्न नाली मस्तिष्क के चौथे कोष्ठ से मिली रहती है (चित्र २१६) और उसमें ज़रा सा तरल रहता है। जो तरल मस्तिष्क के कोष्ठों में रहता है वही सौषुम्न नाली में भी रहता है।

सुषुम्ना से नाड़ियों के ३१ जोड़े निकलते हैं; इन का वर्णन आगे किया जायगा।

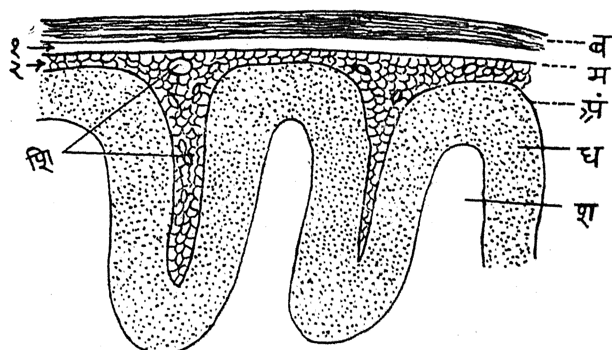
मस्तिष्क और सुषुम्ना के आवरण (चित्र २३३)

मस्तिष्क के ऊपर तीन झिल्लियाँ चढ़ी रहती हैं; ये उस के आवरण कहलाते हैं। सबसे बाहर का आवरण (बाह्या-वरण) मोटा और मज़बूत होता है। इसका वह पृष्ठ जो कपाल के भीतरी पृष्ठ से लगा रहता है खुरदरा होता है; जो पृष्ठ मस्तिष्क के सम्मुख होता है वह चिकना और चमकदार होता है।

बाह्यावरण के नीचे मध्य आवरण रहता है यह बहुत पतला ओर कोमल होता है। मध्य आवरण के नीचे अंतरावरण रहता

है ; यह सबसे पतला होता है और मस्तिष्क से इस प्रकार चिपटा रहता है कि उसको पृथक् करना बहुत कठिन है।

चित्र २३३ मस्तिष्क के आवरण



व्याख्या :—ब=बाह्यावरण; म=मध्यावरण; अं=अंतरावरण

ध=धूसर भाग; श=श्वेत भाग

१=बाह्य आवरण और मध्य आवरण के बीच का अंतर

२=मध्यावरण और अंतरावरण के बीच का अंतर

शि=शिराएं (कटी हुई)

तीनों आवरणों में से केवल अंतरावरण ही ऐसा है जो मस्तिष्क की सीताओं में भी घुसता है ; शेष दो आवरण सीताओं में नहीं घुसते, उनके ऊपर ही रहते हैं (चित्र २३३)।

बाह्यावरण और मध्यावरण के बीच में कुछ अंतर रहता है ; इसमें ज़रा सा तरल रहता है जिससे इन आवरणों के सम्मुख पृष्ठ भीगे रहते हैं। मध्य और अंतः आवरणों के बीच के अंतर

में भी तरल रहता है। सूक्ष्म सूत्रों द्वारा इस अंतर में एक जाल सा बन जाता है (चित्र २३३)।

बाह्यावरण मस्तिष्क की रक्षा करने के अतिरिक्त एक और काम करता है। उससे कई परदे बन जाते हैं जो मस्तिष्क के कई भागों को एक दूसरे से पृथक् करते हैं, उदाहरणार्थ:—एक दात्राकार परदा वृहत् मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों के बीच में रहनेवाले अंतर या दरार में रहता है, इस परदे को वृहत दात्रिका कहते हैं (चित्र २२३); दूसरा परदा वृहत् मस्तिष्क के पिछले भाग के नीचे और लघु मस्तिष्क के ऊपर रहता है, इस को मास्तिष्क वितान कहते हैं क्योंकि यह तंबू की तरह लघु मस्तिष्क को ऊपर से ढाँके रहता है; एक छोटा दात्राकार परदा लघु मस्तिष्क के गोलार्द्ध के पिछले अंतर में रहता है। यह लघु दात्रिका है। इनके अतिरिक्त एक परदा और होता है।

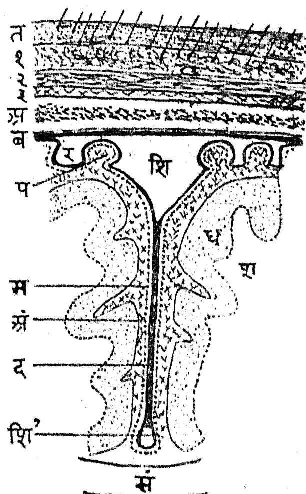
मस्तिष्क की भाँति सुषुम्ना के भी तीन आवरण होते हैं बाह्य, मध्य और अंतः; इन आवरणों के बीच में अंतर भी होते हैं। जो अंतर मध्य और अंतः आवरण के बीच में रहता है (मध्यावरणाधः प्रदेश) उसका एक छिद्र द्वारा मस्तिष्क के चौथे कोष्ठ से सम्बन्ध होता है। जो तरल मस्तिष्क के कोष्ठों और सौषुम्न नाली में रहता है वह इस प्रदेश में भी रहता है। बहिरावरणाधः प्रदेश का मध्यावरणाधः प्रदेश और मस्तिष्क के कोष्ठों तथा सौषुम्न नाली से कोई सम्बन्ध नहीं है।

जब मस्तिष्क और सौषुम्न नाड़ियाँ कपाल तथा पृष्ठ वंश से बाहर निकलती हैं तब वे इन आवरणों में से हो कर जाती हैं। बाह्यावरण इन नाड़ियों के ऊपर कुछ दूर तक ग़िलाफ़ के रूप में

चढ़ा रहता है। मस्तिष्क और सुषुम्ना का अंतरावरण बहुत रक्तमय होता है।

मस्तिष्क और सुषुम्ना की सूक्ष्म रचना (चित्र २१७, २३५) **वृहत् मस्तिष्क** (चित्र २३७)—धूसर भाग (वल्क) की सामान्य मोटाई $\frac{१}{८}$ इंच के लगभग होती है; कहीं कहीं $\frac{१}{१२}$ इंच से भी कम

चित्र २३४



व्याख्या :—

त से ३ तक=टटरी

त—त्वचा; १=त्वचा के नीचे रहने वाली वसामय कला; २=कंडरा; ३=सौत्रिक तंतु की तह; अ=कपाल की अस्थि जिस पर अस्थ्यावरक या अस्थि-जनक कला रहती है। ब=मस्तिष्क का बाह्यावरण, इस की दो तहें चित्र में दिखाई गई हैं ; ये दोनों तहें एक दूसरे से चिपटी रहती हैं और आसानी से अलग नहीं की जा सकतीं ; परन्तु जहाँ इस आवरण से पीछे बतलाए हुए परदे बनते हैं (जैसे दात्रिका) वहाँ भीतर की तह बाहर की तह से अलग हो जाती है और दुहरी हो जाती है ; इसी दुहरी तह से ये परदे बनते हैं। इस चित्र में यह दर्शाया गया है कि वृहत् दात्रिका कैसे बनता है। म=मध्य आवरण ; अं=अंतः आवरण; ध=धूसर भाग ; श=श्वेत भाग ; सं=महा संयोजक द=वृहत्; दात्रिका ; यह परदा

बाह्यावरण की भीतरी तह के दुहरे हो जाने से बनता है और कपाल के भीतरी पृष्ठ से संयोजक के ऊपरी पृष्ठ तक बृहत् मस्तिष्क के गोलार्द्धों के बीच में रहता है (चित्र २२३) कपाल के पास परदे की दोनों तहें एक दूसरे से पृथक् रहती हैं जिस से एक तीन पहलू वाली नाली बन जाती है; इसमें शिरा रक्त बहता है, इसी प्रकार संयोजक के समीप वाले किनारे में भी एक नाली रहती है ; इस में भी शिरा रक्त बहता है (देखो चित्र २३४ में शि, शी') । इस प्रकार की रक्तवाहिनियाँ जिनकी दीवारों की रचना शिरा की दीवार की रचना से भिन्न हो अर्थात् जिनकी दीवारें केवल सौत्रिक तंतु या सौत्रिक तंतु और अस्थि से बनें शिरा कुल्याएं कहलाती हैं । उपरोक्त दात्रिका में रहनेवाली दो शिरा कुल्याओं के अतिरिक्त कपाल में और भी कई छोटी छोटी कुल्याएं होती हैं । मस्तिष्क की शिराओं का रक्त बाह्यावरण मे या बाह्यावरण और अस्थि से निर्मित शिरा कुल्याओं में इकट्ठा होता है । कपाल की तली में महा छिद्र के पास दो छिद्र होते हैं ; यहाँ से ग्रीवा की दाहिनी और बाईं बड़ी शिराओं का आरंभ होता है और अनुप्रस्थ शिरा कुल्याओं का यहीं अंत होता है । इस प्रकार मस्तिष्क का रक्त ग्रीवा की शिराओं में चला जाता है । मस्तिष्क की शिराओं तथा शिरा कुल्याओं का विस्तीर्ण वर्णन इससे किसी बड़े ग्रन्थ में देखिये । शि=ऊर्ध्व अन्वायाम शिराकुल्या शि'=अधो अन्वायाम शिराकुल्य ।

होती है । कहीं $\frac{1}{4}$ इंच से भी अधिक होती है । धूसर भाग वात सेलों से बनता है जो कई प्रकार की होती हैं । अनुमान है कि मस्तिष्क में ३ अरब सेलें होती हैं ।

कुछ सेलें सूच्याकार या शंक्वाकार होती हैं और उन से बहुत से तार निकलते हैं (चित्र २३५ में २ ; चित्र २३७) । कुछ तार छोटे छोटे होते हैं और सेल से बहुत दूर नहीं जाते और सेल के पास

ही बहुत पतली पतली शाखाओं में विभक्त हो जाते हैं (चित्र २३५ के २ में त) ; इन छोटे तारों के अतिरिक्त प्रत्येक सेल से एक लम्बा तार निकलता है (चित्र २३५ में वा) जो और तारों की भाँति सेल के पास शाखाओं में विभक्त नहीं होता ; श्वेत भाग अधिकतर इन्हीं तारों से बनता है। सेलों के ये तार वृहत् मस्तिष्क के एक भाग से दूसरे भाग को, एक गोलार्द्ध से दूसरे गोलार्द्ध को, और लघु मस्तिष्क; सुषुम्नाशीर्षक और सुषुम्ना को जाते हैं (चित्र २३६)।

सूच्याकार सेलों की कई स्तरें (तह) होती हैं; किसी स्तर में छोटी सेलें होती हैं, किसी में मध्यम आकार की और किसी में बहुत बड़ी (चित्र २३७)।

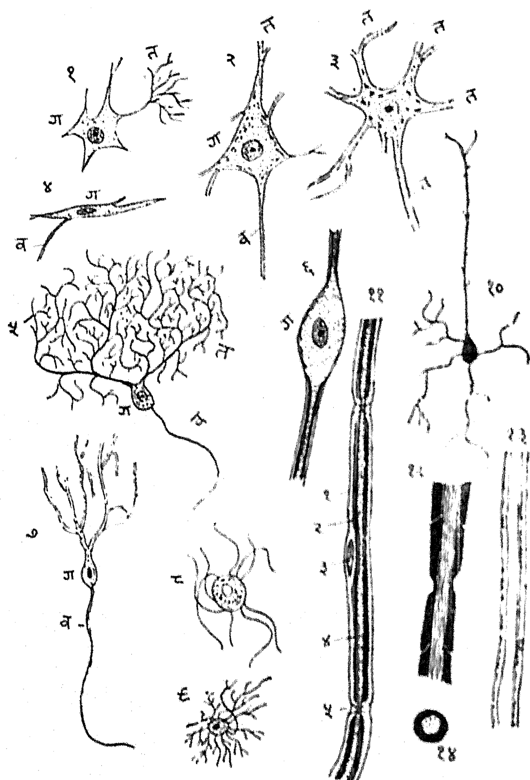
कुछ सेलें तर्क्वाकार होती हैं (चित्र २३५ में ४) इनमें भी छोटे और लम्बे दो प्रकार के तार होते हैं।

कुछ सेलें तारोपम होती हैं; सेल के कोनों से कई छोटे छोटे तार निकले रहते हैं (चित्र २३५ में १) और भी कई प्रकार की सेलें पाई जाती हैं।

उपरोक्त सेलें वात सेलें कहलाती हैं। वात सेलों (या नाड़ी सेलों) के अतिरिक्त कुछ सेलें और होती हैं, ये वात सेलों के बीच में पड़ी रहती हैं और उनको सहारा देती हैं (चित्र २३५ में ८,९)।

वृहत् मस्तिष्क का श्वेत भाग वात सूत्रों से बनता है जो या तो उसके धूसर भाग की सेलों से निकलते हैं या मस्तिष्क के किसी और भाग से या सुषुम्ना से आते हैं। बहुत से सूत्र वृहत् मस्तिष्क के एक भाग से निकलकर दूसरे भाग को जाते हैं, इस प्रकार उसके सब भाग एक दूसरे से सूत्रों द्वारा मिले रहते हैं (देखो चित्र २३६)।

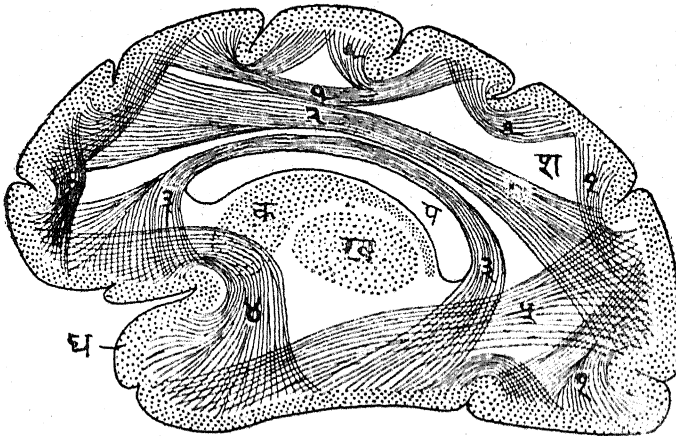
चित्र २३५ वात सेलें और वात सूत्र



व्याख्या :—ग=वात सेल का गात्र या शरीर; त=छोटे छोटे तार जो वात सेल के पास ही अंत हो जाते हैं; व=वात तार जो दूर तक जाता है; १=तारोपम वात सेल; २=सूच्याकार वात सेल; ३=बहुध्रुव वात सेल; ४=तर्क्वाकार वात सेल; ५=पुटग्रीवाकार वात सेल (कुछ कुछ सुराही

जैसे गात्र वाली); ६=द्विध्रुव वात सेल; ७=सेल; ८, ९=वात सेलों को सहारा देनेवाली सेलें; १०=वात सेल; ११=वात सूत्र (१=वाह्य कोष; २=मैदस पिधान; ३=वाह्य कोष की सेल का चैतन्य केन्द्र या मींगी; ४=सूत्र का अक्ष या केन्द्रीय बेलनाकार भाग, यह वात सेल का तार है; ५=भिचा हुआ भाग); १२=सूत्र का अक्ष अनेक सूक्ष्म तारों से बना है; १३=मैदस पिधान बिहीन वात सूत्र; १४=वात सूत्र चौड़ाई के रुख कटा हुआ है।

चित्र २३६



(From Halliburton's Handbook of Physiology)

इस चित्र में यह दर्शाया गया है कि बृहत् मस्तिष्क के विविध भाग किस प्रकार सूत्रों द्वारा एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। जिस भाग में बिंदु हैं वह धूसर पदार्थ है। श्वेत भाग के भीतर रहनेवाले दो धूसर समूह (क, ख) भी दिखाये गये हैं। प=महा संयोजक; क=केरवाकार पिण्ड। ख=थैलेमस

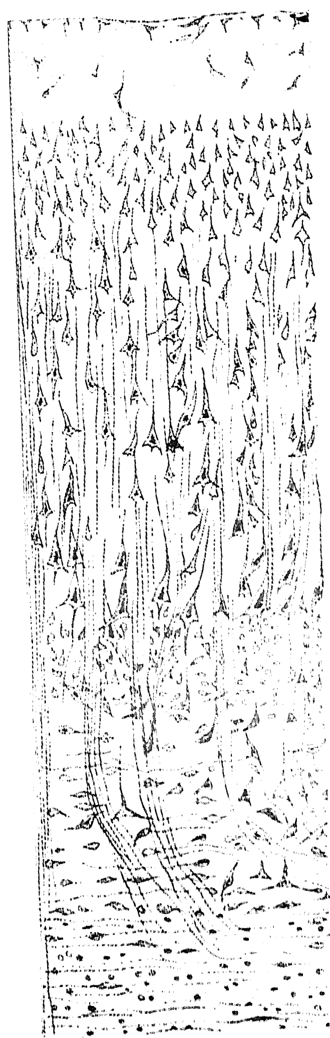
लघु मस्तिष्क—यदि लघु मस्तिष्क को मध्यरेखा में काटकर उसके दो टुकड़े कर लें तो कटे हुए भाग की वृक्ष जैसी शकल दिखाई देगी जैसा कि चित्र २१६ से विदित होता है। लघु मस्तिष्क का भीतरी भाग श्वेत होता है और बाहरी धूसर। धूसर भाग में सेलें होती हैं, श्वेत में सूत्र।

धूसर भाग में विचित्र सेलें होती हैं। (चित्र २३५ में ५, ७); ये पुटग्रीवाकार (सुराही जैसी) सेलें कहलाती हैं। सेल के पतले भाग से अनेक छोटे छोटे तार निकलते हैं जिनकी सहस्रों शाखाओं से एक झाड़ सा बन जाता है। सेल के स्थूल भाग से एक लम्बा वात तार निकलता है। लघु मस्तिष्क में और भी कई प्रकार की सेलें होती हैं (चित्र २३८)।

श्वेत भाग अधिकतर धूसर भाग की सेलों से निकले हुए लम्बे तारों से बनता है। ये वात सूत्र लघु मस्तिष्क के एक भाग से दूसरे भाग को और बृहत् मस्तिष्क और सुषुम्ना को जाते हैं; बृहत् मस्तिष्क और सुषुम्ना से भी वात सूत्र लघु मस्तिष्क में आते हैं।

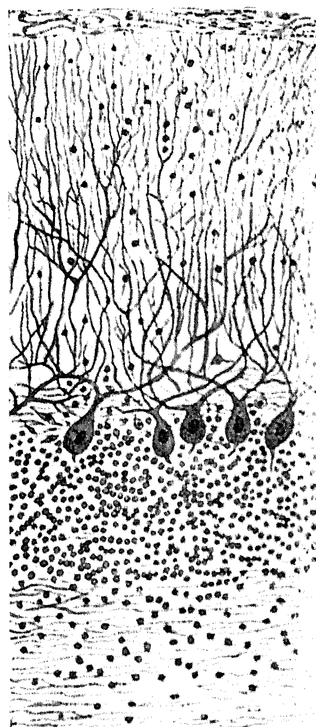
सुषुम्ना—धूसर भाग में सेलें होती हैं जो अधिकतर बहु-ध्रुव होती हैं (चित्र २३५ में ३); सेल का एक तार और सभों से लम्बा होता है। श्वेत भाग कुछ तो उन तारों से बनता है जो धूसर भाग की सेलों से निकलते हैं, शेष भाग उन तारों से बनता है जो बृहत् मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क और सुषुम्ना शीर्षक से आते हैं या जो ऊपर को लघु मस्तिष्क और बृहत् मस्तिष्क को जाते हैं।

चित्र २३७ बृहत् मस्तिष्क के चक्रांग की सूक्ष्म रचना (After Meynert)



पृष्ठ ५७० के सम्मुख

चित्र २३८ लघु मस्तिष्क के वल्क की सूक्ष्म रचना (After Sankey)



पृष्ठ ५७१ के सम्मुख

अध्याय २१

प्रान्तस्थ नाड़ी मंडल

इसमें ये चीज़ें शामिल हैं :—

१—मस्तिष्क से निकली हुई २४ नाड़ियाँ।

२—सुषुम्ना से निकली हुई ६२ नाड़ियाँ।

३—ग्रीवा, वक्ष और उदर में रहनेवाले वात गंड।

नाड़ी या वात रज्जु

नाड़ी का रंग कुछ कुछ श्वेत होता है। स्पर्श करने में डोरे के समान सख़्त मालूम होती है; काटने पर भीतर से ठोस निकलती है; खींचने से ये शीघ्र नहीं टूटतीं; चिमटी की सहायता से नाड़ी बहुत से सूत्रों में विभाज्य होती है।

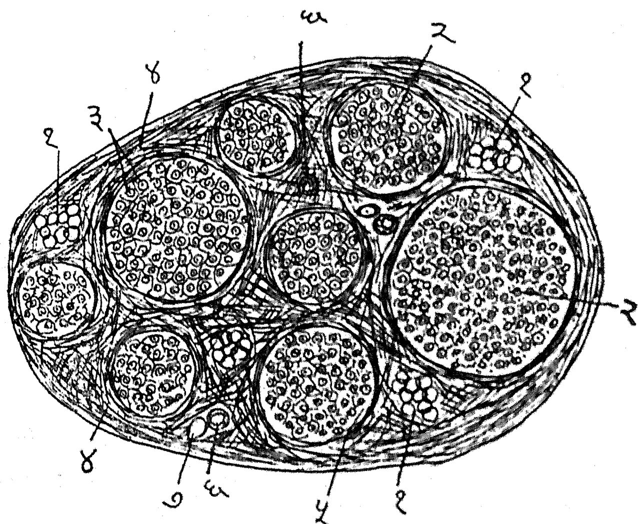
सब नाड़ियाँ एक ही जैसी मोटी और लम्बी नहीं होतीं। कुछ नाड़ियाँ कनिष्ठा अंगुली जैसी मोटी होती हैं; कुछ बाल जैसी बारीक। कुछ एक इंच से अधिक लम्बी नहीं होतीं; कुछ एक गज़ से भी अधिक लम्बी होती हैं।

प्रत्येक नाड़ी पतले पतले तारों या सूत्रों का एक समूह होती है; ये सूत्र या तार वात सेलों से निकलते हैं ये वात सेलें चाहे मस्तिष्क में हों चाहे सुषुम्ना में चाहे किसी और स्थान में। बहुत से सूत्रों से एक गट्ठा बन जाता है जिस के ऊपर सौत्रिक तंतु का एक गिलाफ़ चढ़ा रहता है जिस के कारण सूत्र इकट्ठे रहते हैं; ऐसे ऐसे कई गट्ठे आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा बंधे

रहते हैं और फिर इन सब के ऊपर सौत्रिक तंतु से निर्मित एक कोष होता है।

यदि हम किसी मोटी नाड़ी के मोटाई के रुख पत्ते काटें और उनको अणुवीक्षण से देखें तो उसकी रचना ऐसी दिखाई देगी जैसी चित्र २३९ में दिखाई है।

चित्र २३९ नाड़ी की रचना



१=वसा; २=नाड़ी सूत्र समूह या सूत्रों के गट्ठे; ३=नाड़ी सूत्र; ४=समस्त नाड़ी का सौत्रिक कोष; ५=एक गट्ठे का सौत्रिक कोष; ६, ७=धमनी और शिरा।

चाक़ू और चिमटी द्वारा सौत्रिक तंतु को हटाकर किसी मोटी नाड़ी के पतले पतले भाग किये जा सकते हैं; हर एक भाग में बहुत से वात सूत्र होते हैं।

वात सूत्र या नाड़ी सूत्र या तार

नाड़ी सूत्रों से बनती है। नाड़ी सूत्र की रचना चित्र २३५ में दिखाई गई है (देखो इस चित्र में ११, १२, १३, १४, १५)। सूत्र दो प्रकार के होते हैं :—

१—श्वेत या मैदस पिधान सहित (चित्र २३५ में ११, १२, १४)।

२—धूसर या मैदस पिधान विहीन (चित्र २३५ में १३)।

श्वेत सूत्र—मस्तिष्क और सुषुम्ना का श्वेत भाग और हर एक मस्तिष्क और सौषुम्न नाड़ी का अधिक भाग इसी प्रकार के सूत्रों से बनता है। हर एक सूत्र के तीन भाग होते हैं :—

१—माध्यमिक भाग जिसको सूत्राक्ष कहते हैं (चित्र २३५ के ११ में ४); सूत्राक्ष वह तार है जो वात सेल से निकलता है।

२—सूत्राक्ष के ऊपर एक स्नेह पदार्थ का ग़िलाफ़ चढ़ा रहता है; यह मैदस पिधान कहलाता है (चित्र २३५ के ११ में २)।

३—सब से बाहर एक पतली झिल्ली या कला रहती है (चित्र २३५ के ११ में १); इस कला की सेलों की मींगियाँ थोड़ी थोड़ी दूरी पर दिखाई दिया करती हैं (चित्र २३५ के ११ में ३)।

सूत्राक्ष अत्यंत सूक्ष्म तारों से बनता है जैसा कि उपरोक्त चित्र में १२, १४ के देखने से मालूम होता है।

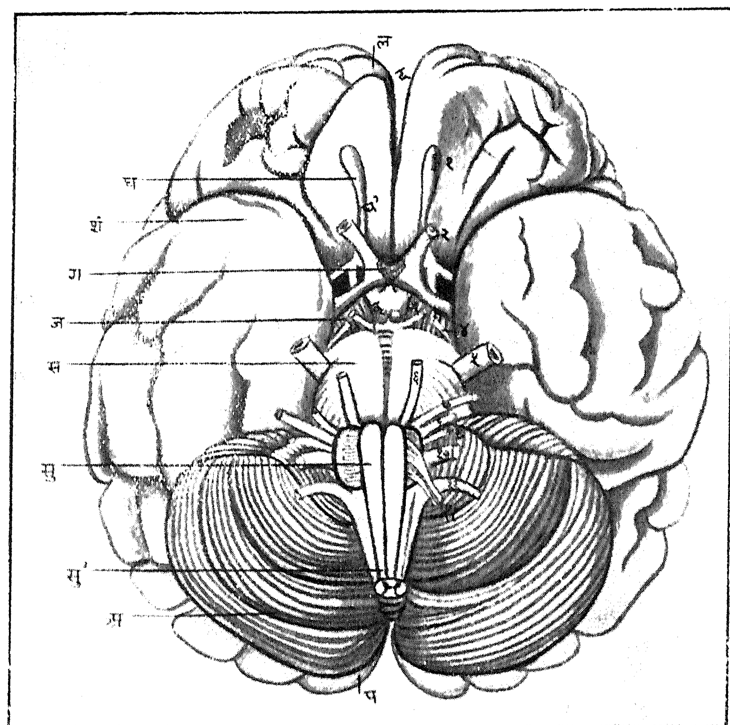
धूसर सूत्र—इन में मैदस पिधान नहीं होता (चित्र २३५ में १३)। इनकी मोटाई श्वेत सूत्रों से आधी होती है, श्वेत सूत्रों की अपेक्षा वे कुछ स्वच्छ होते हैं।

चित्र २४० की व्याख्या :—

१=घ्राण नाड़ियाँ
२=दृष्टि नाड़ी
३=नेत्रचालनी नाड़ी
४=चतुर्थी नाड़ी
५=त्रिशाखा नाड़ी
६=षष्ठी नाड़ी
७=सप्तमी या मौखिकी नाड़ी
८=अष्टमी या श्रावणी नाड़ी
९=नवमी या जिह्वाकंठ नाड़ी
१०=दशमी नाड़ी
११=एकादशी नाड़ी
१२=द्वादशी या जिह्वाधोवर्ती नाड़ी।

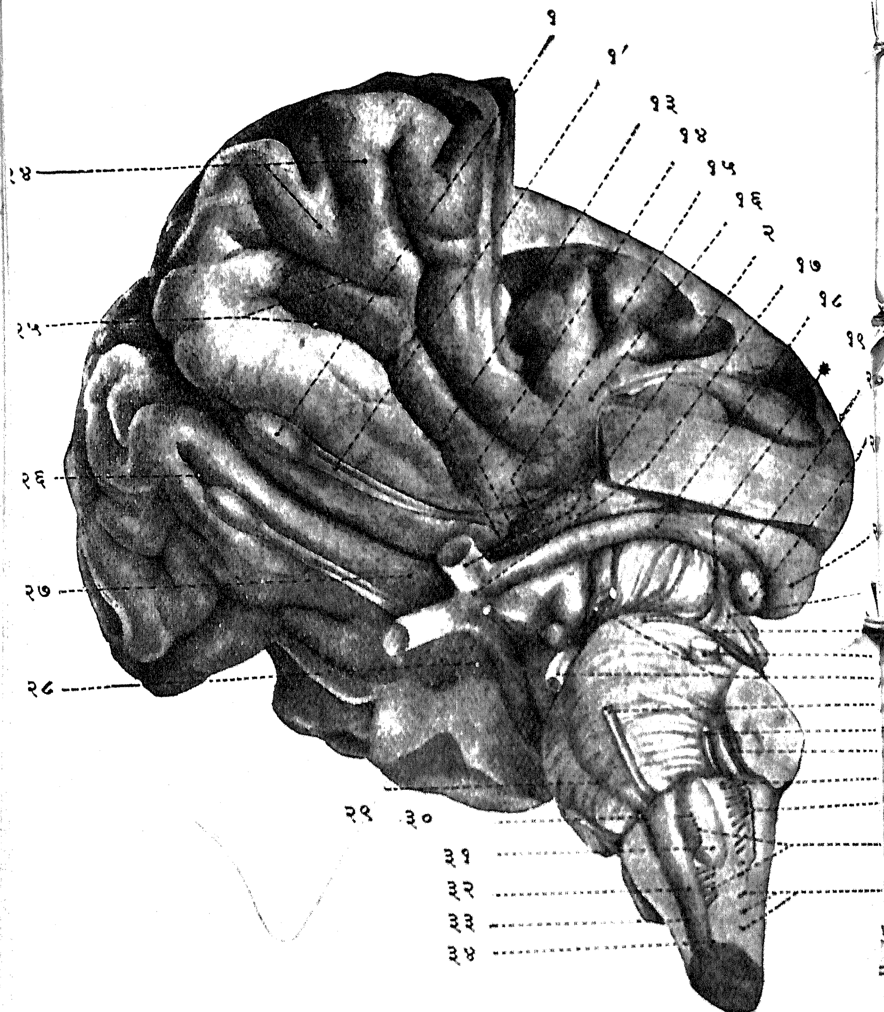
ल=ललाट ध्रुव
द=दरार या अन्तर
घ=घ्राण खण्ड
श=शङ्खध्रुव
ग=हाइपोफिसिस् ग्रन्थि
ज=मास्तिष्क स्तम्भ
स=सेतु
सु=सुषुम्नाशीर्षक का सूचिपिण्ड
सु'=सुषुम्ना का प्रारंभिक भाग
अ=लघु मस्तिष्क
प=पाश्चात्य ध्रुव।

चित्र २४० मस्तिष्क का अधोभाग



पृष्ठ ५७४ के सम्मुख

चित्र २४१ मस्तिष्क की नाड़ियाँ



Rauber—Kopsch's Anatomie des Menschen 1920

५७५ के सम्मुख

चित्र २४१ की व्याख्या

१=घ्राण खण्ड
१′=घ्राण पथ
२=द्वितीया नाड़ी
३=त्रितीया नाड़ी
४=चतुर्थी नाड़ी
५=पञ्चमी नाड़ी
६=षष्ठी नाड़ी
७=सप्तमी नाड़ी
८=अष्टमी नाड़ी
९=नवमी नाड़ी
१०=दशमी नाड़ी
११=एकादशी नाड़ी
१२=द्वादशी नाड़ी
१३=अन्तः शाखा (घ्राण पथ की)
१४=मध्य ,, ,,
१५=बाह्य ,, ,,
१६=
=दृष्टि नाड़ी योजिका
१८=दृष्टि पथ
१९=
२०=बाह्य पिण्ड
२१=अन्तः पिण्ड
२२=थैलेमस का पिछला भाग
२३=त्रिकोण
२४=एक चक्रांग
२५=एक सीता
२६=घ्राण सीता
२७=सरल चक्रांग
२८=अग्र चालनी स्थान
२९=धमनी परिखा
३०=गुप्त छिद्र
३१=गुलिका पिण्ड
३२=सूची
३३=सूत्रों का एक ओर से दूसरी ओर जाना
३४=अगली परिखा

मास्तिष्क नाड़ियाँ

(चित्र २४०, २१९)

मस्तिष्क से १२ जोड़े नाड़ियों के लगे रहते हैं; ये उस के अधो भाग को देखने से दिखाई देती हैं। इन नाड़ियों की गिनती सामने से पीछे को प्रथम, द्वितीया, तृतीया इत्यादि होती है:—

१—पहला (प्रथम) जोड़ा। इनका गन्ध से सम्बन्ध है। हर एक ओर बाल जैसी बारीक पतली कोई २० नाड़ियाँ होती हैं। ये घ्राण नाड़ियाँ कहलाती हैं। नासिका के घ्राण प्रदेश से आरम्भ होती हैं और बहुछिद्रास्थि (झर्झरास्थि) के चालनी पटल के छिद्रों में से होकर कपाल में पहुँचते ही घ्राण खंड से जा जुड़ती हैं (देखो चित्र २४० में १)। इन नाड़ियों के सूत्र मेदस पिधान विहीन होते हैं।

२—दूसरा (द्वितीय) जोड़ा। ये दृष्टि नाड़ियाँ कहलाती हैं (चित्र २४० में २)। दोनों नाड़ियाँ पीछे जाकर एक दूसरे से मिल जाती हैं; इन नाड़ियों के जोड़ को दृष्टि नाड़ी योजिका कहते हैं (चित्र २४० में इस पर हाइपोफिसिस नामक पिंड पड़ा है (देखो चित्र २१६)।

३—तीसरा (तृतीय) जोड़ा। ये नेत्र चालनी नाड़ियाँ कहलाती हैं (चित्र २४० में ३)।

४—चौथा (चतुर्थ) जोड़ा। इनका भी नेत्र की गति से सम्बन्ध है (चित्र २४० में ४)।

५—पाँचवाँ (पंचम) जोड़ा। (चित्र २४० में ५)। इसकी तीन

बड़ी बड़ी शाखाएँ होती हैं इस कारण इसको त्रिशाखा नाड़ी भी कहते हैं। ये मास्तिष्क नाड़ियों में सब से बड़ी है।

६— छठा (षष्ठ) जोड़ा। ये भी आँख की गति से सम्बन्ध रखतो हैं (चित्र २४०,२४१ में ६)।

७—सातवाँ (सप्तम) जोड़ा। इनका चेहरे की पेशियों की गति से सम्बन्ध है और इस कारण मौखिकी नाड़ियाँ कहाती हैं (चित्र २४०,२४१ में ७)।

८—आठवाँ (अष्टम) जोड़ा। इनका सुनने से सम्बन्ध है इस कारण इनको श्रावणी नाड़ियाँ कहते हैं (चित्र २४०,२४१ में ८)।

९—नवाँ (नवम) जोड़ा। इनका जिह्वा और कंठ से सम्बन्ध है और इस कारण वे जिह्वाकंठ नाड़ियाँ कहलाती हैं (चित्र २४०,२४१ में ९)।

१०—दसवाँ (दशम) जोड़ा। इनका स्वरयन्त्र, फुप्फुस, हृदय, आमाशय, यकृतादि अंगों से सम्बन्ध है (चित्र २४०,२४१ में १०)।

११—ग्यारहवाँ (एकादश) जोड़ा (चित्र २४०,२४१ में ११)।

१२—बारहवाँ (द्वादश) जोड़ा। यह जिह्वा के नीचे रहने के कारण जिह्वाधोवर्ती नाड़ी कहलाती है (चित्र २४०,२४१ में १२)।

दो प्रकार की नाड़िया

नाड़ियाँ मुख्यतः दो प्रकार को होती हैं :—

१—वे जिनका पेशियों की गति से सम्बन्ध होता है ये

गति सम्बन्धी या चालक नाड़ियाँ* कहलाती हैं। जब हम आँख इधर उधर घूमाते हैं तो जिन नाड़ियों द्वारा आँख की पेशियों को गति करने की आज्ञा मिलती है वे चालक नाड़ियाँ हैं।

२—वे जिनका चेतना या संवेदन से सम्बन्ध है; ये **सांवेदनिक नाड़ियाँ** कहलाती हैं। जब हम कोई चीज़ देखते हैं तो जिस नाड़ी द्वारा प्रकाश का असर मस्तिष्क को पहुँचता है वह सांवेदिनिक नाड़ी है।

मास्तिष्क नाड़ियों में से कुछ केवल सांवेदनिक हैं उनका गति से कोई सम्बन्ध नहीं जैसे घ्राण, दृष्टि, श्रवण; कुछ केवल गति सम्बन्धी या चालनी ही हैं जैसे तीसरी, चौथी, छठी, ग्यारहवीं और बारहवीं; शेष ४ नाड़ियाँ मिश्रित कहलाती हैं क्योंकि वे सांवेदनिक भी हैं और चालनी भी।

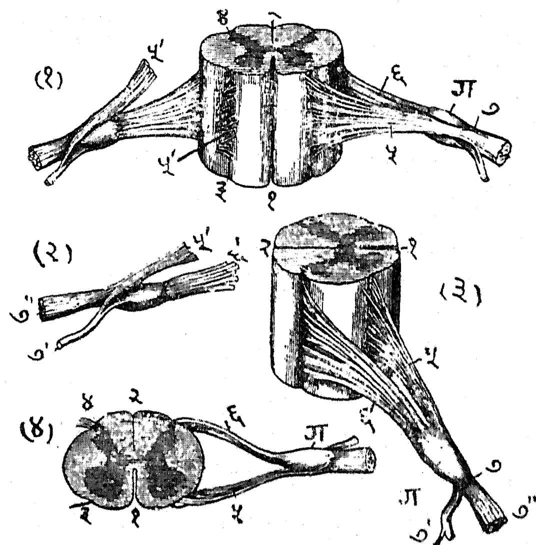
सौषुम्न नाड़ियाँ (चित्र २४२,२४३)

सौषुम्न नाड़ियों के ३१ जोड़े होते हैं। प्रत्येक नाड़ी सुषुम्ना से दो भागों द्वारा जुड़ी रहती है, अगले भाग को **पूर्व मूल** (चित्र २४२ में ५) और पिछले को **पाश्चात्य मूल** (चित्र २४२ में ६) कहते हैं। दोनों मूलें सुषुम्ना के पास ही एक दूसरे से मिल जाती हैं; बहुधा यह मेल कशेरुकांतर में (ऊपर नीचे के दो कशेरुकाओं का अंतर) हुआ करता है। दोनों के मेल से पूरी नाड़ी बनती है। पाश्चात्य मूल पर एक छोटा सा लाली मायल

*चेष्टावहा भी इन्हीं का नाम रक्खा गया है।

श्वेत रंग का उभार होता है; यह नाड़ी गंड है। नाड़ी गंड वात सेलों और सूत्रों का समूह होता है; ये सेलें एक ध्रुव होती हैं। प्रत्येक सेल की ध्रुव से एक तार निकलता है जिसके तुरन्त ही दो भाग हो जाते हैं (देखो चित्र २४७)।

चित्र २४२ सुषुम्ना के काट



(From Halliburton's Handbook of Physiology)

१=पूर्व घाई (परिखा); २=पाश्चात्य घाई (परिखा); ३=पूर्व पार्श्विक घाई; ४=पाश्चात्य पार्श्विक घाई; ५=पूर्व मूल; ६=पाश्चात्य मूल; ७''=मिश्रित नाड़ी; ७'=पूर्व शाखा; ७=पाश्चात्य शाखा; ग=नाड़ी गंड; ५'=कटी हुई पूर्व मूल; ६'=कटी हुई पाश्चात्य मूल।

एक तार सुषुम्ना की ओर जाता है, दूसरा सुषुम्ना से परे। सुषुम्ना की ओर जाने वाले तारों से ही पाश्चात्य मूल बनती है; जो तार सुषुम्ना से परे जाते हैं उनसे पूरी नाडी का आधो भाग बनता है। पाश्चात्य मूल के तार सुषुम्ना के भीतर घुस जाते हैं और फिर ऊपर को चढ़ते हैं ; इन से सुषुम्ना के श्वेत भाग का कुछ अंश बनता है।

पूर्व मूल के तार सुषुम्ना के भीतर से आते हैं ; ये पूर्व शृङ्ग की बहुध्रुव सेलों से निकलते हैं। पूर्व मूल के तारों का पेशियों की गति से सम्बन्ध है ; पाश्चात्य मूल सांविदनिक है। दोनों मूलों से बनी हुई नाड़ी मिश्रित नाड़ी है ; उसमें दोनों प्रकार के तार हैं।

कशेरुकांतर के पास ही प्रत्येक सौषुम्न नाड़ी से एक छोटी शाखा निकलती है जो पृष्ठवंश में घुस जाती है, यह शाखा कशेरुका, कशेरुका बंधन, सौषुम्नावरण इत्यादि को जाती है। इस शाखा के निकलने के पीछे प्रत्येक नाड़ी की दो बड़ी शाखाएं हो जाती हैं एक पूर्व दूसरी पाश्चात्य (चित्र २४२ में ७=पूर्व शाखा; ७''=पाश्चात्य शाखा)। पूर्व शाखाएं अधिकतर ग्रीवा, वक्ष और उदर के अगले भागों और ऊर्ध्व और अधो शाखाओं को जाती हैं। पाश्चात्य शाखाएं पूर्व की अपेक्षा पतली होती हैं वे शिर, ग्रीवा, वक्ष और उदर के पिछले भागों में रहती हैं।

सौषुम्न नाड़ियों का संक्षिप्त वर्णन

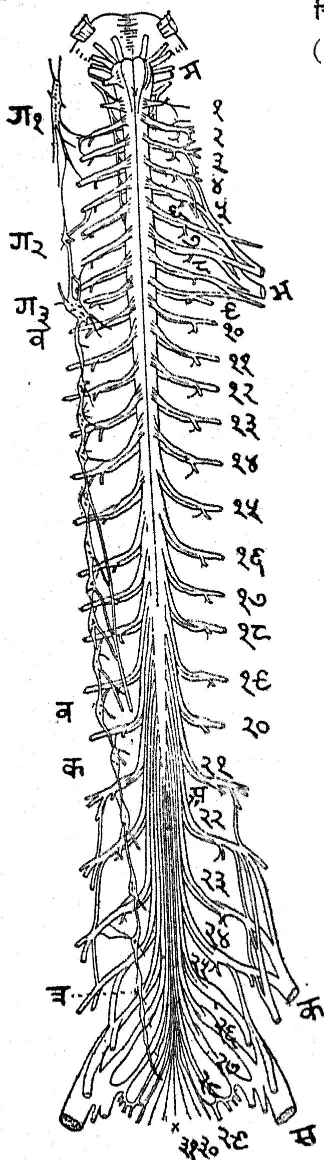
हम पीछे बतला चुके हैं कि सुषुम्ना का अंत पहले या दूसरे कटी कशेरुका के सामने हो जाता है (चित्र २४३ में अ=अंत;

चित्र २२८); यह भी लिख आये हैं कि एक कशेरुकांतर से केवल एक नाड़ी बाहर आती है। पहली सौषुम्न नाड़ी पश्चात् अस्थि और ग्रीवा के पहले कशेरुका के बीच में होकर निकलती है; इसलिये पहले कटि कशेरुका और दूसरे कटि कशेरुका के बीच में होकर २१ वीं नाड़ी निकलती है; शेष १० नाड़ियाँ सुषुम्ना से तो निकल चुकी हैं परन्तु अभी काशेरुकी नाली के भीतर ही हैं; इन सब के इकट्ठे रहने से घोड़े की पूंछ जैसी चीज़ दिखाई देती है (देखो चित्र २४३)। इस कारण इस नाड़ी समूह को अश्वपुच्छ कहते हैं। धीरे धीरे नाड़ियों के बाहर निकल जाने से यह अश्वपुच्छ पतली होती जाती है। कटि देश में तो नाड़ियों की पूर्व और पाश्चात्य शाखाएँ कटि कशेरुकांतरों में से बाहर आती हैं; त्रिक देश की नाड़ियाँ त्रिक अस्थि के भीतर पूर्व और पाश्चात्य शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं; पूर्व शाखाएँ त्रिक के अगले छिद्रों में से होकर वस्तिगह्वर में आ जाती हैं; पाश्चात्य शाखाएँ पिछले छिद्रों में से निकल कर त्रिक देश में चली जाती हैं। देशानुसार नाड़ियों की गिनती इस प्रकार की जाती है:—

ग्रीवा	८
वक्ष	१२
कटि	५
त्रिक	५
चंचु	१
	३१

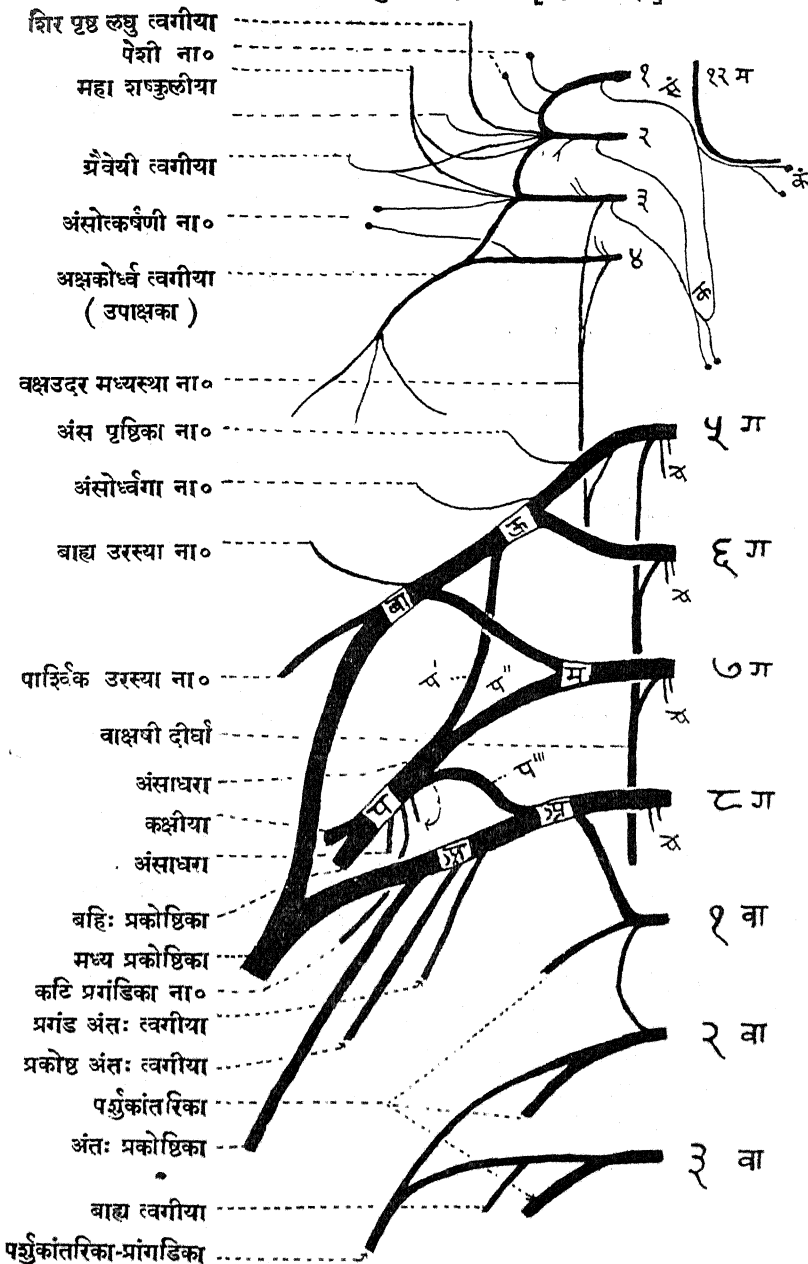
नाड़ियों के नाम भी देशानुसार रक्खे जाते हैं जैसे ग्रीवा

चित्र २४३ सुषुम्ना और गंड शृङ्खला (Allen Thomson) from Huxley's Physiology.

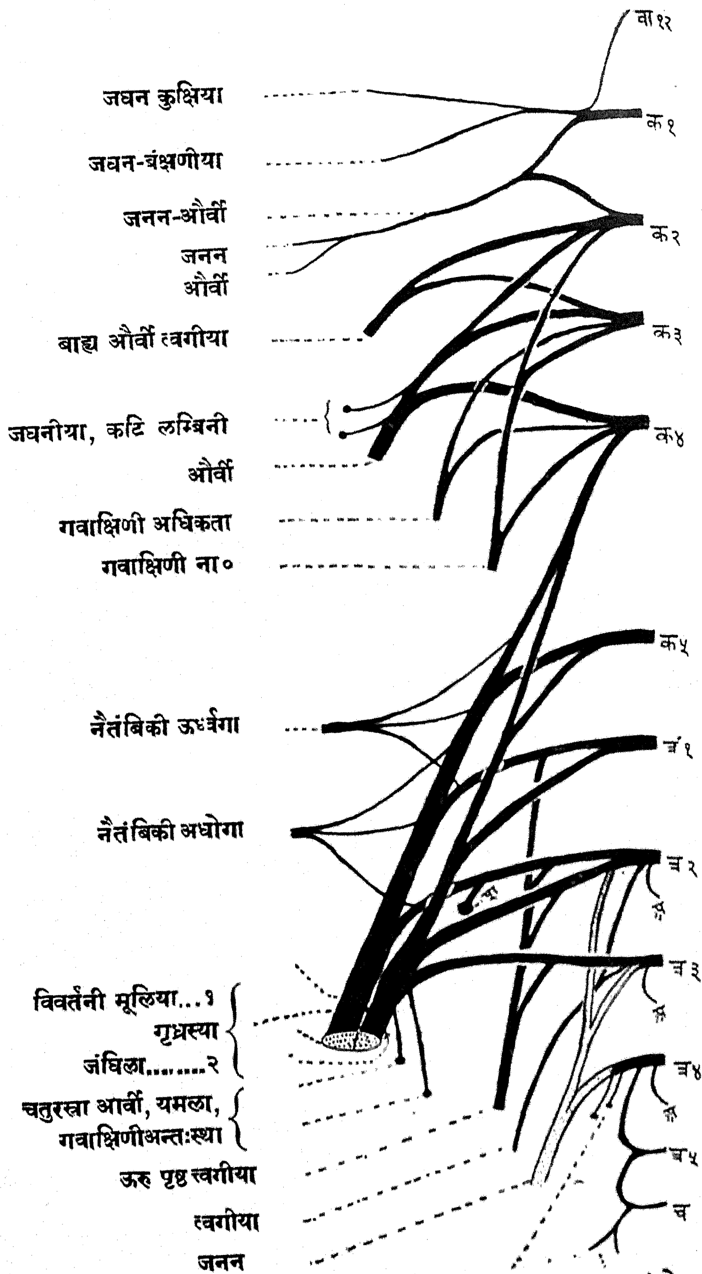


व्याख्या :—इस चित्र में सुषुम्ना और दाहिनी ओर की गंड शृङ्खला दिखाई गई हैं। म=मस्तिष्क नाड़ियाँ। १ से ३१ तक=सौषुम्न नाड़ियाँ। १, २, ३, ४ से ग्रैव नाड़ी जाल बनता है। भ=भुजा नाड़ी जाल (जो चित्र में दाहिनी ओर है); क (दाहिनी ओर)=कटि नाड़ी जाली; स=स्कथि नाड़ी जाल; अ=सुषुम्ना का अन्त; ×=सुषुम्ना के माध्यमिक बन्धन का सिरा; ग१=ग्रीवा की पहली गण्ड; ग२=ग्रीवा की दूसरी गण्ड; ग३=ग्रीवा की तीसरी गण्ड; व=वक्ष की गण्ड; क (चित्र में बाईं ओर)=कटि की गण्ड; त्र=त्रिक देश की गण्ड।

चित्र २४४ ग्रैवेयी और भुजा नाड़ी जाल [पृष्ठ ५८३]



चित्र २४५ कटि स्कन्ध और



की पहली नाड़ी, वक्ष की चौथी नाड़ी, कटि की दूसरी नाड़ी इत्यादि।

सौषुम्न नाड़ियों की पूर्व शाखाएँ कई स्थानों में एक दूसरे से मिल जाती हैं ; कुछ तार एक नाड़ी से दूसरी में चले जाते हैं या दो या दो से अधिक शाखाओं से एक नाड़ी बन जाती है और फिर इस संयुक्त नाड़ी से नयी शाखाएँ निकलती हैं। इस प्रकार नाड़ियों के जाल बन जाते हैं। हमारे शरीर में इस तरह के पाँच नाड़ी जाल हैं। एक ग्रीवा के ऊपर के भाग में, दूसरा ग्रीवा के नीचे के भाग में और कक्ष में, तीसरा कटि देश में (उदर में), चौथे और पाँचवें वस्तिगह्वर में त्रिकास्थि के सामने।

ग्रीवा की पहली चार नाड़ियों की पूर्व शाखाओं से ग्रैव जाल बनता है; जो शाखाएं इस जाल से निकलती हैं वे ग्रीवा और ग्रीवा के आस पास की त्वचा और पेशियों से सम्बन्ध रखती हैं (चित्र २४४)।

ग्रीवा के शेष चार नाड़ियों की पूर्व शाखाओं तथा वक्ष की पहली नाड़ी की पूर्व शाखा से दूसरा जाल बनता है। यह भुजा जाल है; इस जाल के बनाने में ग्रीवा की चौथी और वक्ष की दूसरी नाड़ियाँ भी कुछ सहायता दिया करती हैं। भुजा जाल से निकली हुई शाखाएं भुजा के विविध भागों को जाती हैं (चित्र २४३; चित्र २४४); तीसरा जाल कटि जाल कहलाता है; इसके बनाने में वक्ष की १२ वीं और कटि की पहली चार नाड़ियों की पूर्व शाखाएं भाग लेती हैं। इस जाल से निकली हुई नाड़ियाँ कटि और ऊरु को जाती हैं (चित्र २४३ में क

दाहिनी ओर चित्र २४५) चौथा जाल त्रिक जाल या स्कधि जाल कहलाता है; यह वस्तिगह्वर में होता है; चौथी, पाँचवीं कटि नाड़ियों की पूर्व शाखाएं और पहली तीन त्रिक नाड़ियों की पूर्व शाखाएं इस के बनाने में भाग लेती हैं। इस जाल से निकली हुई नाड़ियाँ अधो शाखा को जाती हैं (चित्र २४३ में स चित्र २४५)।

दूसरी और तीसरी त्रिक नाड़ियों की पूर्व शाखाओं के कुछ अंश और चौथी और पाँचवीं त्रिक नाड़ियों की पूर्व शाखाएं और चंचु नाड़ी के मिलने से एक छोटा सा जाल बनता है। यह जननेन्द्रिय सम्बन्धी जाल है। इस जाल से शिश्न, भग, मूत्राशय, योनि, गुदा इत्यादि के लिये नाड़ियां निकलती हैं (चित्र २४५)।

वक्ष की ऊपर की ग्यारह नाड़ियों की पूर्व शाखाएं पसलियों के बीच में रहती हैं; इस कारण वे पर्शुकांतरिक नाड़ियाँ कहलाती हैं। इन की शाखाएं वक्ष की त्वचा और पर्शुकांतरिक पेशियों को जाती हैं; वक्ष के नीचे की सात नाड़ियों की शाखाएं उदर की दीवार की त्वचा और पेशियों को भी जाती हैं।

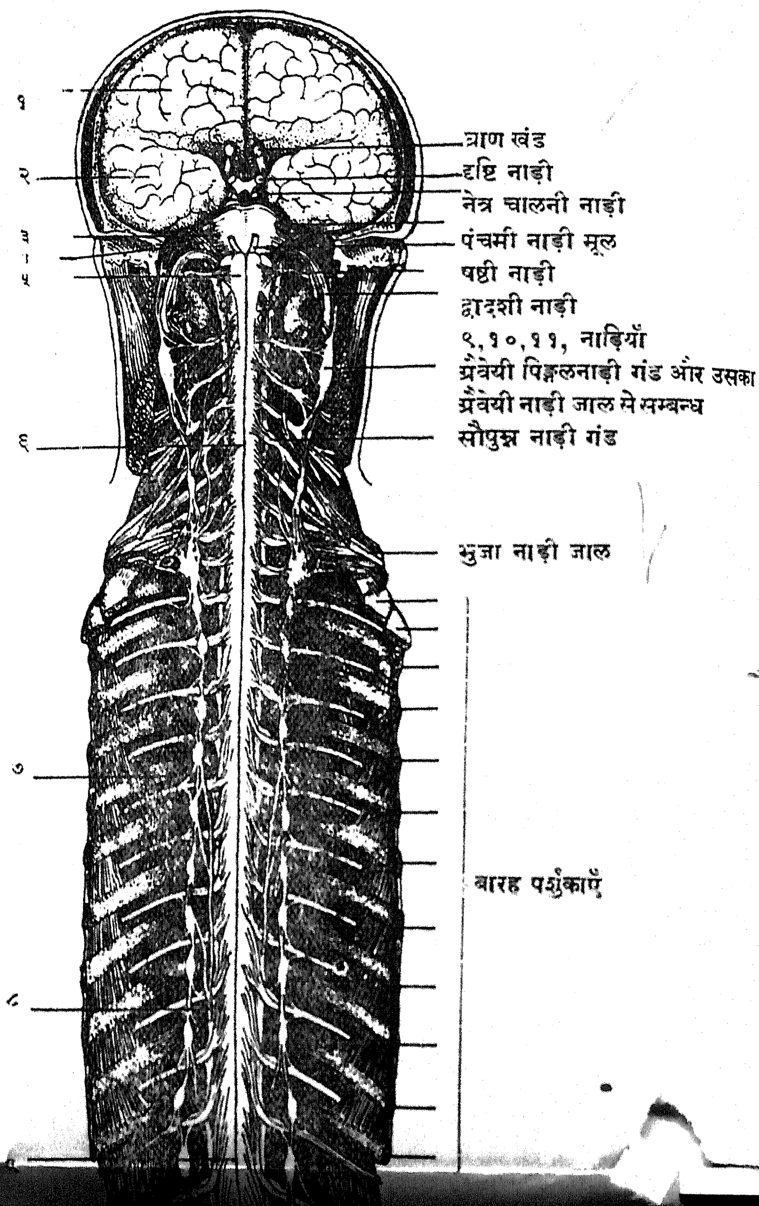
पाश्चात्य शाखाओं के विषय में हम कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं समझते।

प्रत्येक सौषुम्न नाड़ी का पिंगल नाड़ी मंडल से सम्बन्ध रहता है जैसा कि आगे जाकर बतलाया जायगा (चित्र २४३ और २४६, २४७)।

पिङ्गल नाड़ी मंडल (चित्र २४३, २४६, २४७)

ग्रीवा, वक्ष और उदर में पृष्ठवंश के सामने या उस के इधर

चित्र २४६ पिङ्गल नाड़ी मंडल



चित्र २४६ की व्याख्या

१=ललाट खंड

२=शंख खंड

३=सेतु

४=सप्तमी और अष्टमी नाड़ियाँ

५=सुषुम्नाशीर्षक

६=सुषुम्ना अगला पृष्ठ; अगली घाई (परिखा)

७=पिङ्गला गंड और वाक्षषी नाड़ी का मेल

८=इडा नाड़ियाँ

९=सुषुम्ना की अगली घाई (परिखा)

१०=मिश्रित नाड़ी

११=कटि गंड का काटिकी और त्रिक नाड़ियों से सम्बन्ध

१२=कटि नाड़ी जाल

१३=त्रिक नाड़ी जाल

१४=चंचु नाड़ी जाल

उधर दो डोरियाँ पड़ी रहती हैं; प्रत्येक डोरी में थोड़ी थोड़ी दूरी पर छोटे या बड़े गाँठों जैसे उभार होते हैं; इन गांठों के कारण डोरी एक माला के सदृश दिखाई देती है और ये उभार माला के दाने हैं। ये गाँठें नाड़ी गंड हैं; हर एक माला गंड शृङ्खला कहलाती है। गंड कुछ कुछ पिंगल वर्ण (लाली मायल भूरे रंग की) की होती हैं, इस कारण नाड़ी मंडल के इस भाग को पिङ्गल नाड़ी मंडल कहते हैं; जो नाड़ियाँ इस नाड़ी मंडल से निकलती हैं उनको मस्तिष्क और सुषुम्ना से निकली हुई नाड़ियों से भिन्न करने के लिये पिङ्गला नाड़ियाँ कहते हैं।

गंड शृंखला से निकली हुई वे नाड़ियाँ जो विशेषकर अन्न-मार्ग को या अन्नमार्गसम्बन्धी ग्रन्थियों को जाती हैं इडा नाड़ियाँ कहलाती हैं।

पिंगल नाड़ी मंडल में वे नाड़ी गंड भी अंतर्गत हैं जो गंड शृंखलाओं से पृथक् और उदर में पृष्ठवंश के सामने या वक्षःस्थ और उदरस्थ अंगों की दीवारों में रहती हैं या जो मास्तिष्क नाड़ियों के संबन्ध में शिर में रहती हैं।

प्रत्येक शृंखला में २४ या २५ गंड होती हैं :—

ग्रीवा में	३	(चित्र २४३ में $ग_१$, $ग_२$, $ग_३$)
वक्ष में	१२	(चित्र २४३ में व से व तक)
कटि में	४	(चित्र २४३ में क)
वस्तिगह्वर में ४ या	५	(चित्र २४३ में त्र)
गुदास्थि के सामने	१	
	२४-२५	

नीचे जाकर दोनों की श्रृंखलाएं गुदास्थि के सामने रहने वाली गंड से मिल जाती हैं।

पिङ्गल नाड़ी मंडल का मास्तिष्क और सौषुम्न नाड़ियों से सम्बन्ध (चित्र २४६, २४७, २४८)

नाड़ी गंड सेलों तथा नाड़ी सूत्रों का समूह होता है; सेलें बहुध्रुव होती हैं। ये गंड सौषुम्न (या मास्तिष्क) नाड़ियों से नाड़ी सूत्रों द्वारा सम्बन्ध रखती हैं जैसा कि चित्र २४३ से विदित है। इन सूत्रों को **सम्बन्धक** कहते हैं (चित्र २४७ में श्व, ध)।

ये सम्बन्धक दो प्रकार के होते हैं—श्वेत और धूसर। श्वेत संबंधक में मैदस-पिधान-सहित सूत्र होते हैं (चित्र २४७ में श्व) और धूसर संबंधक में मैदस पिधान रहित सूत्र। धूसर संबंधक के तार पिंगल गंड की बहुध्रुव सेलों से निकलते हैं; ये तार या तो नाड़ी की शाखाओं द्वारा आगे को चले जाते हैं अर्थात् जहाँ नाड़ी की शाखाएं जाती हैं वहाँ चले जाते हैं या पाश्चात्य मूल द्वारा सुषुम्ना को चले जाते हैं। श्वेत संबंधक के तार नाड़ी से निकलकर गंड में जाते हैं; या तो उनका उसी गंड में या किसी अन्य ऊपर वाली या नीचे वाली गंड में सेलों के पास अंत हो जाता है; इन सेलों से निकले हुए नये तार आगे को जाते हैं (चित्र २४७)।

श्रृंखला की गंडें एक दूसरे से भी तारों द्वारा संबंध रखती हैं; ये तार गंडों के बीच की कड़ियों (चित्र २४७ में म) में से होकर गुज़रते हैं।

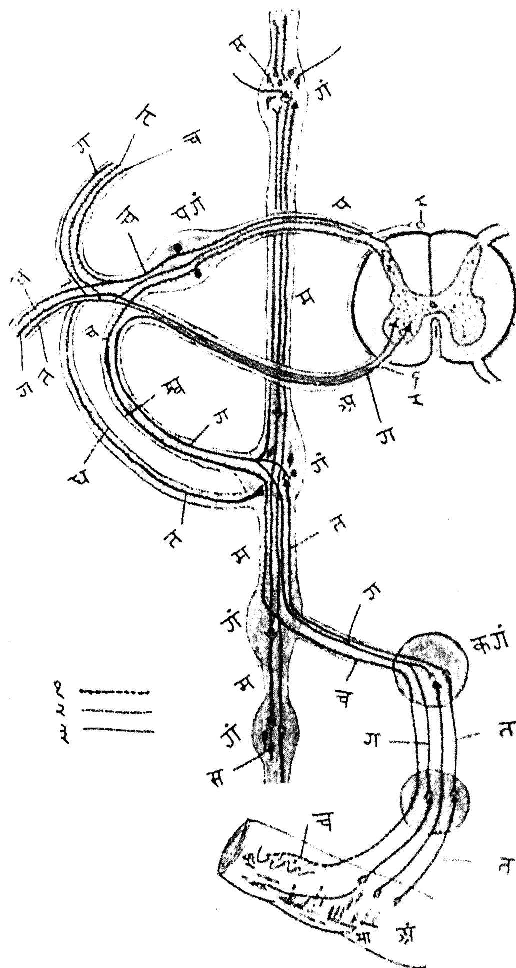
इन गंडों से और तार भी निकलते हैं जो श्रृंखला से

पृथक् रहने वाली गंडों में जाते हैं; इन गंडों से तार शृंखला के गंडों में आते भी हैं (२४७)। इन तारों और गंडों से जाल बन जाते हैं जिन से निकली हुई नाड़ियाँ वक्षस्थ और उदरस्थ अंगों को जाती हैं। शरीर में तीन बड़े पिङ्गल नाड़ी जाल हैं—एक वक्ष में जिस से निकली हुई नाड़ियाँ फुफ्फुस, हृदय, महाधमनी इत्यादि को जाती हैं; दूसरा उदर के ऊपर के भाग में (कौड़ी प्रदेश में) पहले कटिकशेरुका के सामने इस की शाखाएं आमाशय, अंत्र, यकृत, क्लोम महा धमनी इत्यादि को जाती हैं; तीसरी उदर के नीचे के भाग में पाँचवें कटिकशेरुका के सामने महा धमनी की अंतिम शाखाओं के बीच में रहता है इस की शाखाएं वस्तिगह्वरस्थ अंगों को (मूत्राशय, गर्भाशय इत्यादि) जाती हैं।

शरीर में जितनी ग्रन्थियाँ हैं (जैसे लाला ग्रन्थि, यकृत, क्लोम, घर्म ग्रन्थि, अंत्र की दीवारों की ग्रन्थियाँ इत्यादि) या जहाँ जहाँ अनैच्छिक मांस है (जैसे त्वचा में लोम कूपों से लगा हुआ, रक्त बाहिनियों की दीवारों में, अंत्र की दीवार में) वहाँ सब जगह मास्तिष्क और सौषुम्न नाड़ियों के तार किसी न किसी प्रकार पिंगल नाड़ी मंडल में से होकर जाते हैं। ये तार धूसर होते हैं ऐच्छिक मांस को जाने वाले तार श्वेत होते हैं। ये सब गति संबंधी तार हैं। फुफ्फुस, हृदय, अंत्र इत्यादि अंगों से जो नाड़ी सूत्र मस्तिष्क या सुषुम्ना को जाते हैं वे भी इसी पिङ्गल नाड़ी मंडल में से होकर जाते हैं, ये सांवेदनिक हैं।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि मास्तिष्क और सौषुम्न नाड़ियों

चित्र २४७ पिङ्गल नाड़ी मंडल



पृष्ठ ५९१ के सम्मुख

के तारों को ग्रन्थियों तथा अनैच्छिक मांस वाले अंगों में पहुँचने के लिये इन नाड़ी गंडों में से चक्कर खाकर जाना पड़ता है, वे इन स्थानों में ऐच्छिक मांस की भाँति सीधे नहीं पहुँच सकते।

चित्र २४७ की व्याख्या

सौषुम्न नाड़ी का पिंगल नाड़ी मंडल से क्या सम्बन्ध है यह इस चित्र में दर्शाया गया है।

गं=पिंगल गंड; स=सेल; म=दो गंडों के बीच में रहने वाले नाड़ीसूत्र या कड़ी; प=पाश्चात्य मूल; प गं=पाश्चात्य मूल की गंड; अ=पूर्व मूल; र=रक्त वाहिनियां; श्वेत सम्बन्धक; ध=धूसर सम्बन्धक; क गं=गंड श्रृंखला से पृथक् एक नाड़ी गंड; अं=अंत्रश=श्लैष्मिक कला; मा=मांस।

इस चित्र में तीन प्रकार के तार हैं (१, २, ३)। जिन तारों में मोटे बिन्दुक दिखाए गये हैं (१) वे चेतना सम्बन्धी या सांवेदनिक तार हैं जैसे (च) ये तार सौषुम्न नाड़ी के पाश्चात्य मूल की गंड को सेलों से निकलते हैं। जिन तारों में नन्हें नन्हें बिन्दुक हैं (२) वे धूसर तार हैं और पिंगल गंडों को सेलों से निकलते हैं जैसे (ध) जिन तारों में बिन्दुक नहीं (३) वे गति सम्बन्धी हैं और सुषुम्ना के धूसर भाग के अगले श्रृङ्ग की सेलों से निकलते हैं जैसे (ग)

सौषुम्न नाड़ियों के गति सम्बन्धी तार अंत तक इस प्रकार पहुँचते हैं:—सुषुम्ना से ये पूर्व मूल में आते हैं (ग) यहाँ से मिश्रित नाड़ी में जाते हैं; नाड़ी से श्वेत सम्बन्धक में; इस के द्वारा श्रृंखला की किसी गंड में यहाँ से या तो सीधे या इस श्रृंखला

की किसी और गंड में होकर पिंगल जाल में पहुँचते हैं, पिंगल जाल की एक दो गंडों में होकर वे अंत्र की दीवार में जा पहुँचते हैं।

चेतना सम्बन्धी या सांवेदनिक तार अंत्र से आरम्भ होकर (चित्र २४७ में अंत्र के पास च) पिंगल जाल में होते हुए शृङ्खला में पहुँचते हैं; वहाँ से श्वेत सम्बन्धक द्वारा नाड़ी में पहुँचते हैं; नाड़ी की पाश्चात्य मूल में होकर सुषुम्ना को जाते हैं। यह याद रखना चाहिये कि यह वास्तव में पाश्चात्य मूल की एक ध्रुव सेल का ही तार है।

त्वचा तथा धड़ और शाखाओं की रक्तवाहिनियों के अनैच्छिक मांस में गति सम्बन्धी तार इस प्रकार पहुँचते हैं:—ये तार पहिले पूर्व मूल में आते हैं, फिर श्वेत सम्बन्धक द्वारा शृंखला में पहुँचते हैं और वहाँ सेलों के पास इनका अन्त हो जाता है; सेलों से नये तार निकलते हैं जो धूसर सम्बन्धक द्वारा फिर नाड़ी में जा मिलते हैं, ये धूसर तार फिर नाड़ी की शाखाओं द्वारा त्वचा तथा रक्तवाहिनियों और घर्म ग्रन्थियों में पहुँचते हैं।

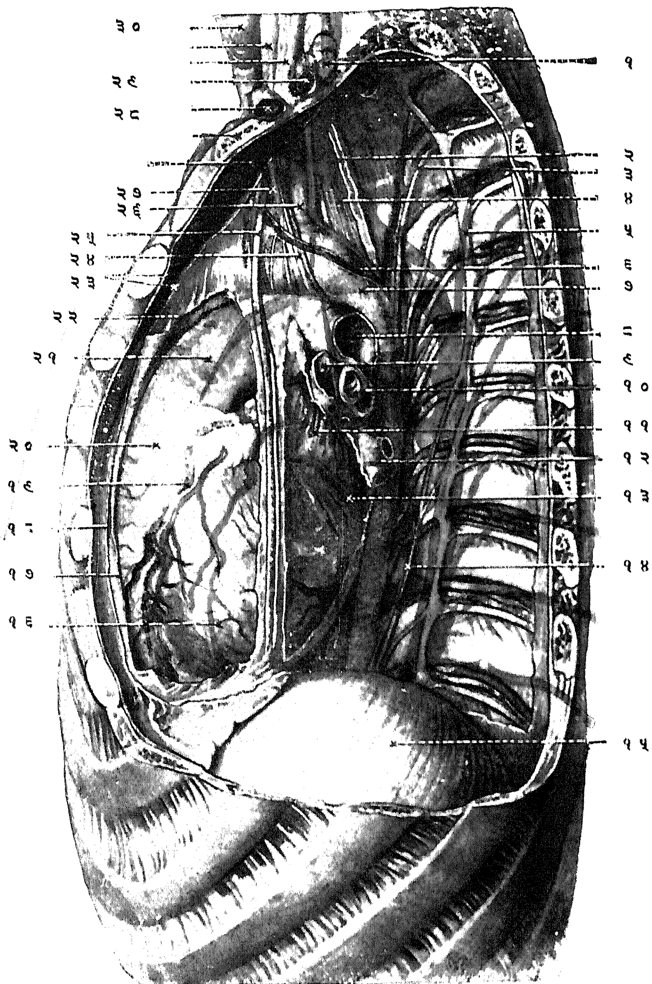
धूसर और श्वेत सम्बन्धकों से मिलने के पीछे नाड़ी में तीन प्रकार के तार रहते हैं (च, ग, त)।

१—ऐच्छिक मांस के लिये गति सम्बन्धी तार जो मैदस पिधान सहित होते हैं (ग)।

२—सांवेदनिक तार (च), इनमें भी मैदस पिधान होता है।

३—अनैच्छिक मांस के लिये धूसर तार जो पिधान रहित होते हैं (त)।

चित्र २४८



(From Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ५९२ के सम्मुख

चित्र २४८ की व्याख्या

वक्ष के बाएं भाग में जो अंग रहते हैं वे इस चित्र में दिखाए गये हैं। बायाँ फुप्फुस निकाल डाला गया है।

१=भुजानाड़ी जाल
२=बृहत् लसीकावाहिनी
३=बाईं ओर की महा धमनी से निकली हुई पहली पर्शुकांतरिका धमनी
४=अन्नप्रणाली
५=पिंगला गंड श्रृंखला
६=बाईं ऊर्ध्व पर्शुकांतरिका शिरा
७=महा धमनी की महाराब
८=बाईं फुप्फुसीया धमनी
९=बाईं ऊपर की फुप्फुसीया शिर
१०=बाईं वायु प्रणाली
११=बाएं ग्राहक कोष्ठ की शिखर
१२=नीचे की बाईं फुप्फुसीया शिरा
१३=बाईं हार्दिकी धमनी की शाखा
१४=बृहत् इड़ा नाड़ी
१५=वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी
१६=बायां क्षेपक कोष्ठ
१७=हृदावरण (कटा हुआ)
१८=परिफुप्फुसीया कला का कटा हुआ किनारा
१९=बाईं हार्दिकी धमनी की शाखा
२०=दाहिने क्षेपक कोष्ठ का ऊपर का भाग
२१=फुप्फुसीया धमनी
२२=हृदावरण और फुप्फुसावरण के कटे हुए किनारे
२३=फुप्फुसावरण के कटे हुए किनारे
२४=बाईं दशमी नाड़ी
२५=वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी की बाईं नाड़ी
२६=बाईं अक्षकाधोवर्ती धमनी
२७=बाईं शिरोधीया धमनी
२८=बाईं अक्षकाधोवर्ती शिरा
२९=" " " धमनी
३०=चुल्लिका ग्रन्थि

चित्र २४९ की व्याख्या

१=पेशियाँ

२=भुजा नाड़ी जाल

३=पार्श्विक परिफुप्फुसीया कला कटी हुई

४=वृहत् धमनी से निकली हुई दूसरी दाहिनी अस्थ्यांतरिका धमनी

५=अज़ाईगोस* शिरा

६=पिङ्गला श्रृङ्खला

७=दाहिनी श्वास प्रणाली की धमनी का अन्त

८=फुप्फुसीया धमनी की शाखा

०=श्वास प्रणाली की शाखा जो धमनी के ऊपर रहती है।

९=फुप्फुसीय पाश्चात्य नाड़ी जाल

१०=श्वास प्रणाली की शाखा जो धमनी के नीचे रहती है

११=दाहिनी नीचे की फुप्फुसीया शिरा

१२=दाहिने ग्राहक कोष्ठ की परिखा

१३=बड़ी इडा नाड़ी

१४=अधोगा महा शिरा

१५=छोटी इडा नाड़ी

१६=वक्ष उदर मध्यस्था पे०

१७=दाहिना ग्राहक कोष्ठ

१८=परि हार्दिक कला का कटा हुआ किनारा

१९=परिफुप्फुसीया कला का कटा हुआ किनारा

२०=अंतरीय स्तनीया धमनी

२१=ऊर्ध्वगा महा शिरा

२२=पार्श्विक परिफुप्फुसीया कला

२३=दाहिनी वक्ष उदर मध्यस्था नाड़ी

२४=दाहिनी दशमी नाड़ी

२५=टेंटुआ

२६=अन्न प्रणाली

२७=पहली पर्शुका

२८=दाहिनी अक्षकाधो शिरा

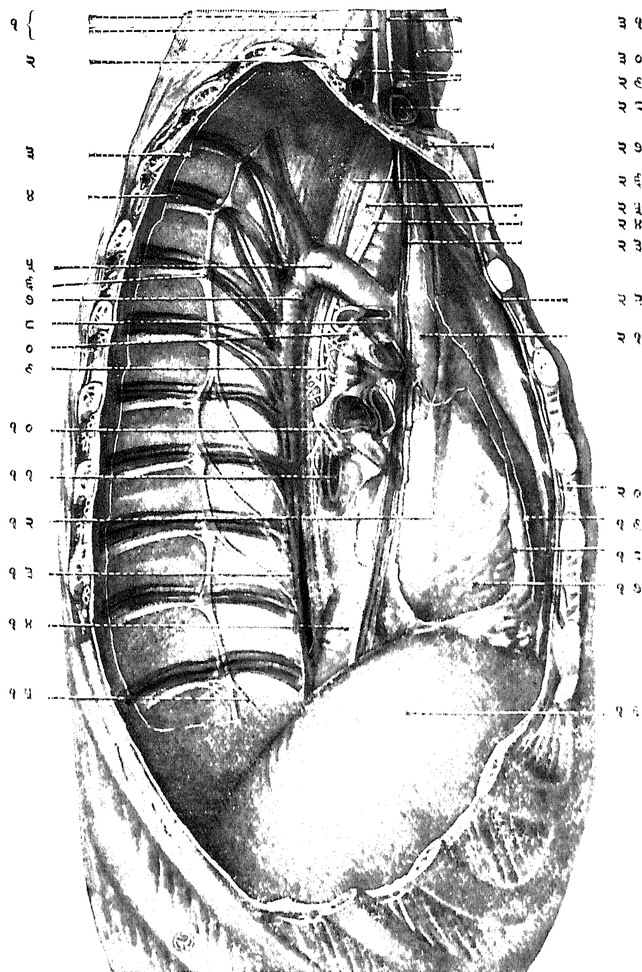
२९=दाहिनी अक्षकाधो धमनी

३०=दाहिनी मूल श्रोधीया धमनी

३१=दाहिनी वक्ष उदर मध्यस्था नाड़ी

* अँग्रेज़ी भाषा

चित्र २४९



(From Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ५९३ के सम्मुख

अध्याय २२

नाड़ी सूत्रों का कार्य

नाड़ी सूत्र (या तार) बिजली (विद्युत्) के तारों के समान काम करते हैं। जिस प्रकार वैद्युत तारों द्वारा समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं वैसे ही इन जीवित तारों द्वारा शरीर में समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं। मस्तिष्क शरीर पर राज्य करता है, नाड़ी तार उसके दूत हैं। मस्तिष्क की आज्ञा शेष अंगों को इन्हीं तारों द्वारा पहुँचती है। जब ये अंग कोई संदेशा या सूचना मस्तिष्क को पहुँचाना चाहते हैं तब यही तार इस सूचना या संदेशे को ले जाते हैं।

वे तार जिनके द्वारा समाचार मस्तिष्क की ओर जाते हैं उन तारों से जो मस्तिष्क की आज्ञा शेष अंगों को पहुँचाते हैं भिन्न होते हैं। इस प्रकार नाड़ी मंडल में दो भाँति के तार होते हैं :—

१—केन्द्रत्यागी तार—ये मस्तिष्क और सुषुम्ना से आरंभ होकर और अंगों को जाते हैं।

२—केन्द्रगामी तार ये अंगों से आरम्भ होकर मस्तिष्क और सुषुम्ना को जाते हैं।

सब नाड़ियाँ इन्हीं दो प्रकार के तारों से बनती हैं। कुछ नाड़ियों में एक ही प्रकार के तार होते हैं केन्द्रगामी या केन्द्रत्यागी, कुछ में दोनों प्रकार के तार मिले रहते हैं। सौषुम्न नाड़ियों में दोनों प्रकार के तार होते हैं। मास्तिष्क नाड़ियों

में से कुछ में केवल केन्द्रगामी तार होते हैं (जैसे घ्राण नाड़ियाँ, दृष्टि नाड़ी) ; कुछ में केवल केन्द्रत्यागी तार होते हैं जैसे (तीसरी, चौथी और छठी नाड़ियाँ) ; कुछ में दोनों प्रकार के तार मिले रहते हैं जैसे (त्रिशाखा नाड़ी, मौखिकी नाड़ी) । केन्द्रगामी तार सांवेदनिक होते हैं ; केन्द्रत्यागी तार गत्युत्पादक ।

केन्द्रत्यागी नाड़ी तारों का इष्टप्रदेश

केन्द्रत्यागी तारों के इष्टप्रदेश मांस और ग्रन्थियाँ हैं। वे तार या तो सीधे या पिंगल नाड़ी मंडल के गंडों में से हो कर अपने अपने इष्टप्रदेशों में पहुँचते हैं। ऐच्छिक मांस में (पेशियों में) वे सीधे बिना पिंगल गंडों में घुसे नाड़ियों द्वारा पहुँच जाते हैं ; अनैच्छिक मांस में (धमनियों, हृदय तथा अन्नमार्ग की दीवारों में) और ग्रन्थियों (घर्म ग्रन्थि ; लाला ग्रन्थि, यकृत इत्यादि) में ये तार किसी न किसी प्रकार पिंगल नाड़ी मंडल में से हो कर जाते हैं (देखो पिंगल नाड़ी मंडल) ।

जब नाड़ी मांस में पहुँचती है तो उसके तार अलग अलग हो जाते हैं ; प्रत्येक मांस सेल को एक सूक्ष्म तार जाता है।

जब हम हाथ उठाना चाहते हैं तो हमारा मस्तिष्क नाड़ियों द्वारा हाथ की विशेष पेशियों को (जिन का उस गति से संबंध है) संकोच और प्रसार करने की आज्ञा देता है तारों की सूक्ष्म शाखाओं द्वारा यह आज्ञा प्रत्येक सेल को मिलती है ; सब सेलें उस आज्ञा का पालन करके संकोच या प्रसार करती हैं और इससे इष्ट गति उत्पन्न होती है।

अनैच्छिक मांस की गति का न तो हम को कोई ज्ञान रहता है न हम इच्छानुसार उस में कोई गति उत्पन्न कर सकते हैं। आवश्यकतानुसार मस्तिष्क से इस मांस को आज्ञा आती रहती है, जिससे यह अपना काम ठीक ठीक किया करता है। हृदय का धड़कना, धमनी का फड़कना, अंत्र में कृमिवत् आकुंचन का होना, शीत के प्रभाव से बालों का खड़ा हो जाना—ये सब अनैच्छिक गतियां हैं। ग्रन्थियाँ भी अपना काम मस्तिष्क की आज्ञानुसार बिना हमारे जाने किया करती हैं।

सौषुम्न नाड़ियों के केन्द्रत्यागी तार सुषुम्ना की सेलों से निकलते हैं। मास्तिष्क नाड़ियों के केन्द्रत्यागी तार धूसर वल्क की सेलों से नहीं निकलते ; वे या तो सुषुम्नाशीर्षक की सेलों से निकलते हैं या उन सेल समूहों से जो मध्य मस्तिष्क और सेतु में रहते हैं। जिस स्थान या सेलसमूह से ये तार निकलते हैं वह उस नाड़ी का उत्पत्तिस्थान या उत्पत्तिकेन्द्र कहलाता है। इस उत्पत्तिस्थान का मस्तिष्क के वल्क की सेलों से संबंध रहता है जैसा कि हम आगे चलकर बतलायँगे।

केन्द्रगामी तार

इन तारों द्वारा शरीर के विविध भागों से सूचनाएँ मस्तिष्क तक पहुँचती हैं। जब आप के हाथ में काँटा चुभता है तो इस बात की सूचना मस्तिष्क को इन्हीं तारों द्वारा मिलती है। ऐसे ही जब प्रकाश की किरणें चक्षु के अंतरीय पटल या परदे पर पड़ती हैं तो इन किरणों से इस परदे पर जो प्रभाव पड़ता है उसकी सूचना मस्तिष्क को इन तारों द्वारा ही मिलती है। जिस तरह वैद्युत तार ख़राब हो जाने या कट जाने से समाचार एक स्थान से दूसरे

स्थान तक नहीं पहुँचा सकते उसी तरह जब किसी अंग के केन्द्र-गामी तारों में कोई विकार हो जाता है (जैसे फिरंग रोग और एक प्रकार के कुष्ठ या कोढ़ में) या वे कट जाते हैं तब उस अंग से सूचना मस्तिष्क तक नहीं पहुँच सकती।

शिर के अगले भाग और मुख को छोड़कर शेष सब शरीर की त्वचा में सौषुम्न नाड़ियों के तार फैले रहते हैं। शिर के अगले भाग की त्वचा में और दाँतों में केन्द्रगामी तार मस्तिष्क की त्रिशाखा नाड़ियों द्वारा आते हैं। दृष्टि के लिये मस्तिष्क की दूसरी नाड़ी है, घ्राण के लिये पहली नाड़ियाँ, रस या स्वाद के लिये सातवीं और नौवीं नाड़ियाँ और शब्द के ज्ञान के लिये आठवीं नाड़ियाँ हैं।

केन्द्रगामी तारों के उत्पत्तिस्थान

सौषुम्न नाड़ियों की पाश्चात्य मूल सम्बन्धी गंडों में बहुत सी एक-ध्रुव सेलें होती हैं। प्रत्येक सेल से एक छोटा तार निकलता है जो शीघ्र ही दो तारों में विभक्त हो जाता है (देखो चित्र २४७ में प गं) इन में से एक तार सुषुम्ना की ओर जाता है (इन तारों से नाड़ी की पाश्चात्य मूल बनती है) और सुषुम्ना के भीतर घुस जाता है; दूसरा तार नाड़ी द्वारा त्वचा को जाता है। त्वचा में बहुत सी छोटी छोटी विशेष कार्य करनेवाली चीज़ें होती हैं जिन को सांवेदनिक कण कहते हैं। इन कणों में उष्णता, शीत, दबाव इत्यादि से विशेष प्रकार का परिवर्तन होता है; इस प्रभाव की सूचना मस्तिष्क को सांवेदनिक तारों द्वारा पहुँचा करती है। यह सूचना सुषुम्ना में से होकर जाती है; यदि सुषुम्ना उस स्थान से ऊपर जहाँ ये तार उस में घुसें कट जावे तो यह सूचना

ऊपर को न जा सकेगी। पाश्चात्य मूल की गंडें सौषुम्न नाड़ियों के केन्द्रगामी तारों के उत्पत्तिस्थान या केन्द्र हैं। यह स्पष्ट है कि ये केन्द्र सुषुम्ना के बाहर हैं।

मास्तिष्क नाड़ियों के केन्द्रगामी तारों का आरंभ भी मस्तिष्क से बाहर ही होता है। जिन सेलों से ये तार निकलते हैं वे या तो इन नाड़ियों से सम्बन्ध रखने वाली गंडों में रहते हैं या उन स्थानों में रहते हैं जहाँ से इन नाड़ियों का आरंभ होता है। दृष्टि नाड़ी के तार चक्षु के अंतरीय पटल (सांवेदनिक पटल) में रहने वाली सेलों से निकलते हैं और नाड़ी द्वारा मस्तिष्क के दृष्टि केन्द्र को जाते हैं; श्रावणी नाड़ी के तार अंतस्थ कर्ण के कोकला नामक भाग में रहने वाली छोटी छोटी गंडों की सेलों से निकलते हैं और मस्तिष्क के श्रावण केन्द्रों को जाते हैं; ऐसे ही घ्राण और स्वाद तारों के विषय में समझिये।

उपरोक्त से विदित है कि केन्द्रत्यागी तारों के उत्पत्तिस्थान (चाहे ये तार मास्तिष्क नाड़ियों में हों और चाहे सौषुम्न नाड़ियों में) मस्तिष्क या सुषुम्ना के भीतर होते हैं परंतु केन्द्रगामी तारों के उत्पत्तिस्थान सुषुम्ना और मस्तिष्क से बाहर रहते हैं।

अब हम यह बतलायेंगे कि मस्तिष्क के धूसर भाग (वल्क) का केन्द्रत्यागी तारों के उत्पत्तिस्थानों से क्या सम्बन्ध है और केन्द्रगामी तारों का मस्तिष्क में जाकर कहाँ अंत होता है।

मस्तिष्क की सेलों का सुषुम्ना की सेलों से संबंध

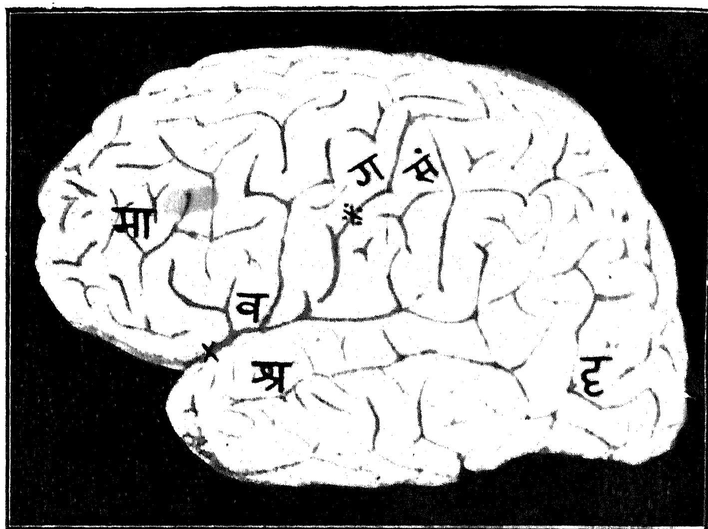
वृहत् मस्तिष्क के वल्क (वहिःस्थ धूसर भाग) के विविध भागों के जुदा जुदा काम हैं। किसी भाग का शरीर की गतियों से सम्बन्ध है, किसी का पीड़ा, उष्णता, शीत के ज्ञान से सम्बन्ध

है; कोई भाग मनन शक्ति से सम्बन्ध रखता है और कोई दृष्टि, स्वाद, घ्राण इत्यादि से। ये भाग वैसे तो पृथक् पृथक् हैं परन्तु इन सब का आपस में तारों द्वारा सम्बन्ध रहता है (देखो चित्र २३६) जैसे दृष्टि सम्बन्धी भाग से कुछ तार गति या स्पर्श सम्बन्धी भाग को जाते हैं और गति या स्पर्श सम्बन्धी भागों के कुछ तार दृष्टि सम्बन्धी भागों में आते हैं।

मस्तिष्क का उतना भाग जो एक विशेष काम के लिये नियत है एक केन्द्र कहलाता है। केन्द्रों के नाम उनके कार्यानुसार रक्खे जाते हैं। जिस भाग का दृष्टि से सम्बन्ध है वह दृष्टि केन्द्र कहलाता है, जिसका सुनने या श्रवण से सम्बन्ध है वह श्रावण केन्द्र कहलाता है इसी प्रकार घ्राण, स्वाद, श्वासोच्छ्वास, हृदय केन्द्र हैं (देखो चित्र २५०)। जब कोई केन्द्र बड़ा होता है या दूर में फैला रहता है तो उसको क्षेत्र कहते हैं जैसे गति क्षेत्र, संवेदना क्षेत्र।

वृहत् मस्तिष्क का श्वेत भाग तारों से बनता है जो अधिकतर धूसर भाग की सेलों से निकलते हैं। ये तार एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं (चित्र २३६)। बहुत से तार एक गोलार्द्ध से निकलकर महा संयोजक में से होकर दूसरे गोलार्द्ध में चले जाते हैं और वहाँ की सेलों के पास उनका अंत होता है। कुछ तार नीचे उतरते हैं और मध्य मस्तिष्क, सेतु या सुषुम्नाशीर्षक में रहनेवाले मास्तिष्क नाड़ियों के उत्पत्तिस्थानों की सेलों के पास पहुँचते हैं; कुछ तार सेतु बाहु में से होकर लघुमस्तिष्क में जाते हैं; शेष तार सुषुम्ना में नीचे उतरते हैं, और जगह जगह धूसर भाग में सेलों के

चित्र २५० वृहत् मस्तिष्क का बहिः पृष्ठ



मा=मानस क्षेत्र ; ग=गति क्षेत्र ; सं=सांवेदनिक क्षेत्र ; व=वाणी केन्द्र ; श्र=श्रावण केन्द्र ; दृ=दृष्टि केन्द्र ।

(पृष्ठ ६०१ के सम्मुख)

पास रह जाते हैं, इन में से कुछ तारों को थोड़ी ही दूर जाना पड़ता है, कुछ को सुषुम्ना के अंत तक।

इसी प्रकार लघुमस्तिष्क की सेलों से निकले हुए तारों का हाल है; इन में से कुछ तो सेतु में होकर वृहत् मस्तिष्क की सेलों के पास पहुँचते हैं; कुछ नीचे को सुषुम्ना में चले जाते हैं।

सुषुम्ना, सुषुम्नाशीर्षक, सेतु इत्यादि से तार लघुमस्तिष्क और वृहत् मस्तिष्क को जाया करते हैं।

जब एक तार किसी सेल के निकट पहुँचता है तब उसकी अनेक पतली पतली शाखाएं हो जाती हैं जिन से एक झाड़ सा बन जाता है। इस झाड़ के तार सेल के छोटे छोटे तारों से मिले रहते हैं। ये तार आपस में उसी प्रकार मिले रहते हैं जिस प्रकार पास पास उगी हुई झाड़ियों की शाखाएं। इस मेल का अभिप्राय यह है कि जो सूचना या आज्ञा तार द्वारा आवे वह सेल को मिल जावे ; यदि आवश्यकता हो तो सेल से यह आज्ञा सेल के तार द्वारा आगे को जा सकती है।

मस्तिष्क के केन्द्र (चित्र २५०, २५३)

जिस प्रकार नाड़ियाँ दो दो होती हैं एक दाहिनी दूसरी बाईं उसी प्रकार वृहत् मस्तिष्क के केन्द्र भी दो दो होते हैं एक दाहिनी ओर दूसरा बाईं ओर। वृहत् मस्तिष्क का दाहिना भाग शरीर के बाएं भाग पर और बायाँ भाग शरीर के दाहिने भाग पर शासन करता है। किसी राज्य के विभागों की तरह या किसी ज़िले के अफ़सरों की तरह ये केन्द्र अपने अपने कामों के लिये ज़िम्मेदार हैं ; आवश्यकतानुसार ये केन्द्र एक दूसरे से मिलकर काम करते हैं।

बृहत् मस्तिष्क के बाहरी पृष्ठ पर माध्यमिक (मध्यम) सीता (चित्र २५० में *) के सामने जो चक्रांग है (चित्र २५० में ग) वह गति क्षेत्र है ; इस का शरीर की गतियों से सम्बन्ध है। माध्यमिक सीता के पीछे जो चक्रांग है वह संवेदन क्षेत्र कहलाता है; इस का स्पर्श, शीत, उष्णता के ज्ञान से सम्बन्ध है (चित्र २५० में सं) । गति क्षेत्र के सामने जो भाग है उस का बुद्धि, ज्ञान और मनन शक्ति से सम्बन्ध माना जाता है (चित्र २५० में मा) ; यह मानस क्षेत्र है। संवेदन क्षेत्र के पीछे ऊपर के किनारे के पास रूप और आकार के केंद्र हैं (चित्र २५३) शंख खंड में पार्श्विक सीता के नीचे श्रावण केन्द्र है (चित्र २५० में श्र, चित्र २५३ में श्रावण) । गति क्षेत्र के नीचे के भाग के पास और पार्श्विक सीता के ऊपर वाणी केन्द्र है (चित्र २५३ में वाद ; २५० में व) ; इसका सम्बन्ध बोलने से है। वाणी केन्द्र एक ही होता है: जो लोग दाहिने हाथ से अधिक काम करते हैं उनमें वाणी केन्द्र बाईं ओर होता है ; जो लोग खब्बे होते हैं उन में यह केन्द्र दाहिनी ओर होता है। पाश्चात्य खंड में दृष्टि केन्द्र होता है, (चित्र २५३) आकार केन्द्र के नीचे पार्श्विक खंड में पढ़ने का केन्द्र है, यह पाठ केन्द्र है (चित्र २५३) । घ्राण और स्वाद केन्द्र के स्थान शंखध्रुव के मुड़े हुए भाग में (जो मध्य पृष्ठ पर दिखाई देता है) समझे जाते हैं ; सुभीते के लिये चित्र २५३ में ये स्थान बाह्य पृष्ठ पर दिखा दिये गये हैं।

उपरोक्त क्षेत्रों और केन्द्रों में से कुछ के थोड़े थोड़े भाग मध्य पृष्ठ पर भी रहते हैं।

बृहत् मस्तिष्क के कोष्ठों की तलों में धूसर पदार्थ से निर्मित तीन बड़े पिंड होते हैं ; इनमें से एक को केत्वाकार पिंड कहते हैं क्योंकि यह कुछ पुच्छल तारे जैसा होता है ; दूसरा पिंड अंडाकार होता है और केत्वाकार पिंड के पीछे रहता है ; इस को थैलेमस * कहते हैं (चित्र २५१, २५२) तीसरा पिंड तालूपम पिंड कहलाता है। ये पिंड अधिकतर सेलों से बनते हैं ; इन में मस्तिष्क के कई भागों से तार आते हैं और यहाँ से नये तार निकलकर और जगह भी जाते हैं कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि इन पिंडों का चित्तवृत्तियों से और तापक्रम स्थिर रखने से सम्बन्ध है।

गतिक्षेत्र के केन्द्र (चित्र २५३)

गतिक्षेत्र के ऊपर के भाग में अधो शाखा के विविध भागों की गति से सम्बन्ध रखने वाले केन्द्र हैं ; सब से ऊपर पादांगुली केन्द्र है, उसके नीचे गुल्फ, जानु, नितंब केन्द्र हैं। अधोशाखा के केन्द्रों के नीचे उदर और उदर के नीचे वक्ष की गतियों के केन्द्र हैं; फिर ऊर्ध्व शाखा के जैसे अंस (स्कन्ध) कूर्पर, कलाई, हस्तांगुली। ऊर्ध्व शाखा के सामने शिर और चक्षु के केन्द्र हैं। ऊर्ध्व शाखा के नीचे चेहरा, जिह्वा इत्यादि हैं।

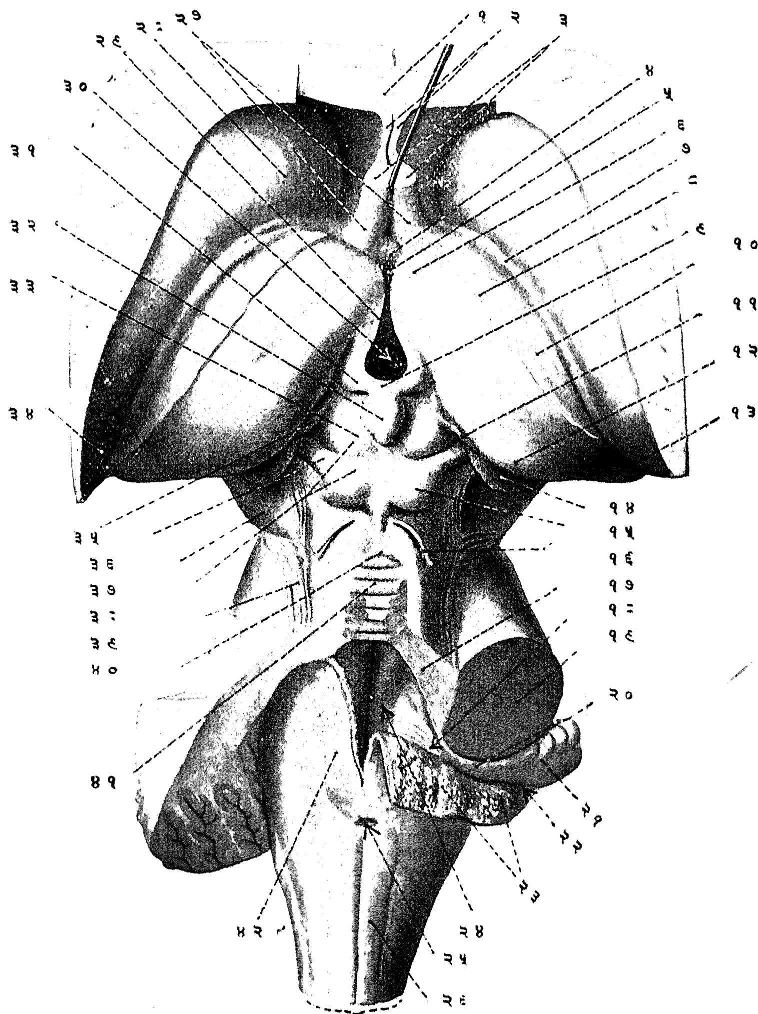
---

* अंग्रेज़ी भाषा का शब्द है

चित्र २५१ की व्याख्या

१=महा संयोजक
२=यवनिका
३=धनुष स्तंभ
४=अग्र संयोजक
५=तीसरे कोष्ठ का कोना
६=थैलेमस का अगला उभार
७=शिरा का उभार
८=रक्त जाल का किनारा
९=संयोजक
१०=
११=ऊर्ध्व चतुष्पिंड बाहु
१२=थैलेमस का पिछला भाग
१३=बाह्य कुटिल पिण्ड
१४=अंतः कुटिल पिण्ड
१५=अधर चतुष्पिंड
१६=चतुर्थी नाड़ी
१७=लघु मस्तिष्क चतुष्पिंड योजक
१८=चौथे कोष्ठ का कोना
१९=सेतु बाहु
२०=
२१=
२२=चौथे कोष्ठ का बाह्य छिद्र
२३=चौथे कोष्ठ का रक्त जाल
२४=चौथे कोष्ठ का फर्श
२५=चौथे कोष्ठ का माध्यमिक छिद्र
२६=
२७=धनुष स्तंभ
२८=केतु शिर
२९=
३०=तीसरा कोष्ठ
३१=योजक
३२=पीनियल
३३=ऊर्ध्व चतुष्पिंड
३४=केतु पुच्छ
३५=ऊर्ध्व चुतुष्पिंड बाहु
३६=अधर चतुष्पिंड बाहु
३७=मस्तिष्क स्तंभ
३८=चतुष्पिंड
३९=
४०=अग्र अवगुण्ठन
४१=लघु मस्तिष्क जिह्वा
४२=
४३=सुषुम्ना शीर्षक

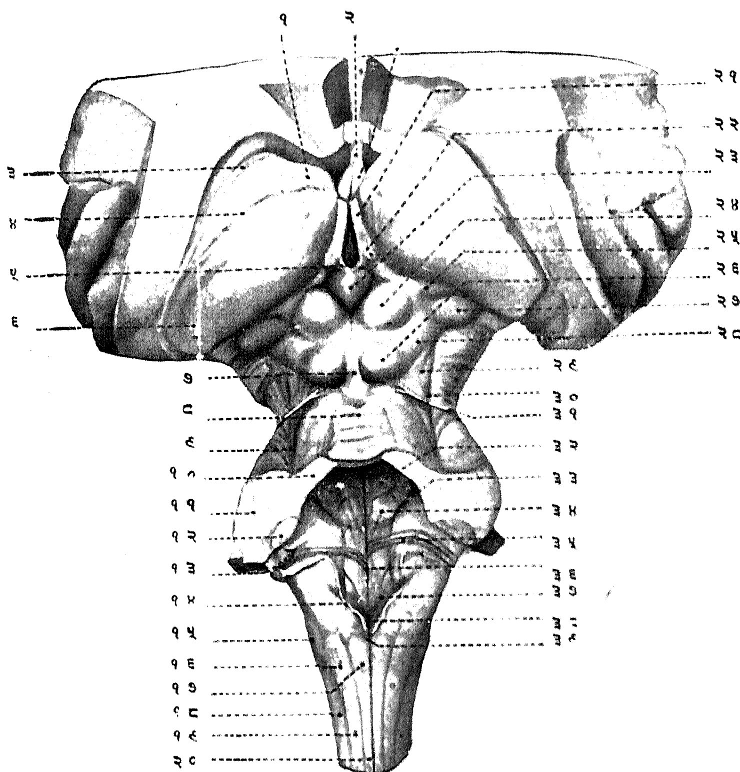
चित्र २५१



(Sobotta's Anatomie des Menschen)

पृष्ठ ६०४ के सम्मुख

चित्र २५२



(From Rauber Kopsch Anatomie des Menschen)

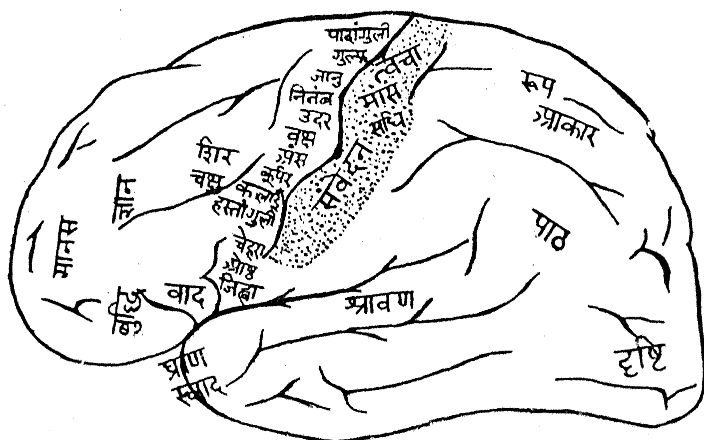
१=यवनिका; २=धनुप स्तंभ; ५=थैलेमस का पिछला भाग; १०=सेतु बाहु; १३=चौथे कोष्ठ का कोना; २३=पीनियल; २४=ऊर्ध्व चतुषपिण्ड; २५=ऊर्ध्व चतुषपिण्ड बाहु; २६=अधर चतुषपिण्ड; २८=अधर चतुषपिण्ड बाहु

पृष्ठ ६०५ के सम्मुख

गति केन्द्रों का चालक नाड़ियों के उत्पत्ति स्थानों से सम्बन्ध

गति केन्द्रों की सेलों से जो तार निकलते हैं वे चालक नाड़ियों के उत्पत्ति स्थानों तक जाते हैं जहाँ कहीं भी ये स्थान हों। मास्तिष्क चालक नाड़ियों के उत्पत्तिस्थान मध्य मस्तिष्क सेतु और सुषुम्ना शीर्षक में रहते हैं ; सौषुम्न चालक नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान धूसर भाग के पूर्व श्रृंग ही हैं। इसलिये गति केन्द्रों के कुछ तारों का मध्य मस्तिष्क, सेतु और सुषुम्ना शीर्षक में अंत होता है और कुछ का सुषुम्ना में।

चित्र २५३ बृहत् मस्तिष्क के केन्द्र



मस्तिष्क के अधो भाग में जो दो स्तंभ देखे थे (चित्र २४०)

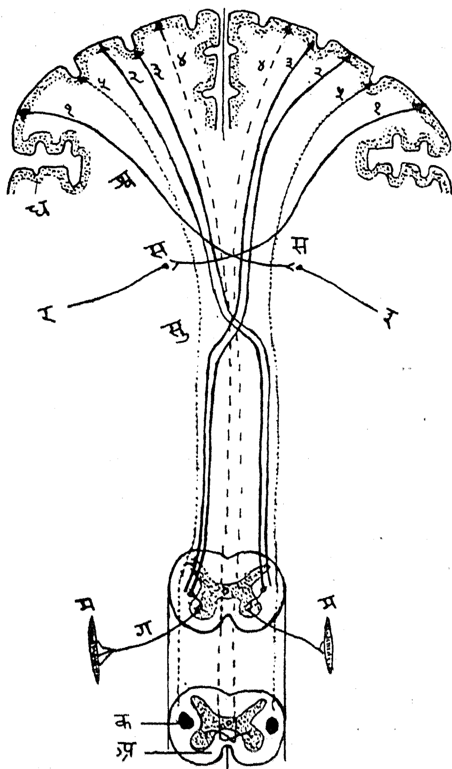
उनका अधिक भाग इन तारों से बनता है; इन स्तंभों के कुछ तार सेतु में, कुछ सुषुम्नाशीर्षक में रह जाते हैं; शेष सुषुम्ना में चले जाते हैं।

दाहिने गति क्षेत्र का शरीर के बाएं भाग की गति से और बाएं का दाहिने भाग की गति से सम्बन्ध है। इसलिये जो तार दाहिने गति क्षेत्र से निकलते हैं वे मध्यरेखा को पार करके बाईं ओर के उत्पत्ति स्थानों में पहुँचते हैं; बाएं गति क्षेत्र के तारों को दाहिनी ओर जाना पड़ता है। सुषुम्नाशीर्षक के अगले भाग में दो सूच्याकार पिंड होते हैं, (चित्र २२५) ये गति क्षेत्र के उन तारों के समूह हैं जो सुषुम्ना को जानेवाले हैं; इन में से बहुत से तार एक ओर से दूसरी ओर हो जाते हैं और फिर सुषुम्ना के पार्श्विक भाग में रहते हैं, इन तारों का एक ओर से दूसरी ओर जाना नंगी आँखों से भी दिखाई देता है (चित्र २२५ में ५)। ज्यों ज्यों ये तार नीचे को जाते हैं उन की संख्या कम होती जाती है क्योंकि जगह जगह कुछ तारों का अंत होता रहता है (चित्र २५२ में २,३)।

गति क्षेत्र से आये हुए तारों में से कुछ तार सुषुम्ना शीर्षक में मध्य रेखा को पार नहीं करते; वे (जिस ओर से आये हैं उसी ओर) सुषुम्ना में सीधे जाते हैं। इनमें से बहुत से तार तो सुषुम्ना के भीतर मध्यरेखा को काटकर एक ओर से दूसरी ओर हो जाते हैं (चित्र २५४ में ४, २); कुछ ऐसे हैं कि मध्य रेखा को कभी भी नहीं काटते, जिस ओर से आये हैं उसी ओर उन का अंत होता है(चित्र २५४ में ५)।

तारों का उपरोक्त वर्णन चित्र २५४ से स्पष्ट हो जायगा।

चित्र २५४ गति पथ



ध=बृहत् मस्तिष्क का धूसर भाग; श्व=श्वेत भाग

१=ये तार गति क्षेत्र से मास्तिष्क नाड़ियों के उत्पत्ति स्थानों तक (स) जाते हैं जो मध्य मस्तिष्क, सेतु और सुषुम्ना शीर्षक में रहते हैं। यहाँ की सेलों के नये तारों से चालक नाड़ियाँ बनती हैं (र)

२ और ३=ये तार सुषुम्ना शीर्षक में मध्य रेखा को पार करके एक ओर से दूसरी ओर हो जाते हैं। सुषुम्ना में जगह जगह सेलों के पास इनका अंत हो जाता है; पूर्व शृंगों से नये तार निकलते हैं; इन्हीं से चालक मूलें बनती हैं (ग) जो मांस पेशियां (म) को जाती हैं।

४=वे तार जो सुषुम्ना शीर्षक में मध्य रेखा को पार नहीं करते परन्तु सुषुम्ना में जाकर जगह जगह मध्य रेखा को पार करके एक ओर से दूसरी ओर हो जाते हैं।

५=वे तार जो कभी भी मध्य रेखा को पार नहीं करते। जिस ओर से आये हैं उसी ओर के धूसर भाग में उनका अंत होता है।

मध्य मस्तिष्क, सेतु, सुषुम्ना शीर्षक वा सुषुम्ना से अब नये तार निकलते हैं। यही नाड़ियों के केन्द्रत्यागी तार हैं; सौषुम्न नाड़ियों की चालक मूलें इन्हीं केन्द्रत्यागी तारों से बनती हैं।

अब हम उदाहरण द्वारा इन तारों के कार्य बतलाते हैं:—

१—मानो आप अपना मुँह खोलना चाहते हैं; तारों का मुँह खोलने से क्या सम्बन्ध है? मुँह खोलने में दोनों ओर की पेशियाँ (जो हनुओं में लगी हैं) काम में आती हैं; जिन पेशियों के संकोच और प्रसार से मुँह खुलता है उनको मस्तिष्क की कई नाड़ियों की शाखाएं जाती हैं। इन नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान सुषुम्ना शीर्षक और सेतु में हैं।

जब मुँह खोलने की इच्छा होती है तो मानस क्षेत्र की सेलें दोनों ओर के गतिक्षेत्रों के मुख केन्द्रों (जो ऊर्ध्व शाखा सम्बन्धी केन्द्रों के नीचे हैं) की सेलों को अपने तारों द्वारा आज्ञा देती हैं कि मुँह खोलो। इन केन्द्रों की सेलें इस आज्ञा को एक दम विशेष नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान की सेलों को पहुँचाती हैं; आज्ञा ले जाने वाले तार मध्य रेखा को काट कर एक ओर

से दूसरी ओर हो जाते हैं। उत्पत्ति स्थान की सेलें आज्ञा का तुरंत पालन करती हैं और अपने तारों द्वारा पेशियों को संकोच और प्रसार करने की आज्ञा देती हैं; पेशियाँ गति करती हैं और मुँह खुल जाता है।

२—आप अपने दाहिने पैर के अंगुष्ठ को मोड़ना चाहते हैं। मानस क्षेत्र से बाईं ओर के गति क्षेत्र के पादांगुष्ठ केन्द्र की सेलों को अंगुष्ठ मोड़ने की आज्ञा मिलती है। ये सेलें अपने तारों द्वारा इस आज्ञा को सुषुम्ना के उस भाग में पहुँचाती हैं जहाँ से अंगुष्ठ को जाने वाले तार निकलते हैं। सुषुम्ना शीर्षक में मस्तिष्क की सेलों के तार बाईं ओर से दाहिनी ओर आ जाते हैं; ये तार सुषुम्ना के पार्श्विक भाग में नीचे उतरते हैं और उसके नीचे के भाग में जहाँ से त्रिक या सक्थि जाल की नाड़ियाँ निकलती हैं उनका अंत हो जाता है। अब सुषुम्ना के धूसर भाग के पूर्व श्रृंगों से नये तार निकलते हैं; इन तारों द्वारा पादांगुष्ठ प्रसारणी और पादांगुष्ठ संकोचनी पेशियों को संकोच करने की आज्ञा मिलती है और अंगुष्ठ हिलने लगता है।

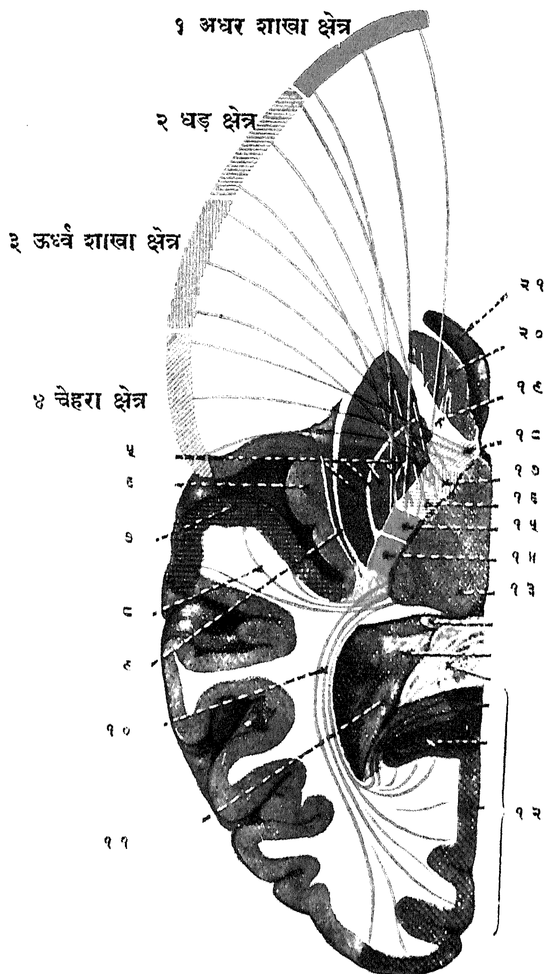
गति पथ

गति केन्द्र से लेकर मांस सेलों तक जो गतिसम्बन्धी आज्ञा के जाने का मार्ग है उस को गति पथ कहते हैं। जो कुछ पीछे लिखा जा चुका है उस से स्पष्ट है कि शरीर के उस भाग के लिये जहाँ गति सौषुम्न नाड़ियों द्वारा होती है इस गति पथ का कुछ भाग मस्तिष्क में रहता है और कुछ सुषुम्ना और सौषुम्न नाड़ियों में; जहाँ केवल मास्तिष्क नाड़ियाँ जाती हैं वहाँ गति

चित्र २५५ की व्याख्या

१=अधो शाखा क्षेत्र
२=धड़ क्षेत्र
३=ऊर्ध्व शाखा क्षेत्र
४=मुख (चेहरा) क्षेत्र
५=तालाकार केन्द्र (तालूपमपिण्ड)
६=द्वीप
७=श्रावण क्षेत्र
८=श्रावण किरणें
९=
१०=दृष्टि किरणें
११=
१२=दृष्टि क्षेत्र
१३=थैलेमस
१४=सांवेदनिक तार
१५=अधो शाखा तार
१६=धड़ के तार
१७=ऊर्ध्व शाखा के तार
१८=चेहरे के तार
१९=अंतरीय कोष का अगला भाग
२०=केरवाकार पिण्ड
२१=पार्श्विक कोष्ठ का अग्र शृङ्ग

चित्र २५५ गति, श्रावण और दृष्टि क्षेत्र



(From Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ६१० के सम्मुख

पथ मस्तिष्क और मास्तिष्क नाड़ियों से ही बनता है। सुषुम्ना से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

किसी इष्ट गति के लिये किन किन चीज़ों की आवश्यकता है

१—मानस क्षेत्र की सेलें।

२—विशिष्ट गति केन्द्र की सेलें।

३—गति केन्द्र की सेलों के तार।

४—नाड़ी या नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान की सेलें।

५—उत्पत्ति स्थान की सेलों के तार जिन से नाड़ी बनती है।

६—मांस सेलें।

इन छः चीज़ों से पूरी मशीन बनती है; यदि इस मशीन का कोई पुर्ज़ा भी ख़राब हो जावे तो गतियाँ ठीक ठीक या बिलकुल न होंगी।

हिस्टीरिया इत्यादि रोगों में मानस क्षेत्रों के ठीक ठीक काम न करने से गतियों में फ़र्क़ आ जाता है; कभी कभी रोगी बोल नहीं सकता या चल नहीं सकता। गति क्षेत्र की धमनी में रक्त के जम जाने के कारण या रक्त का बहाव रुक जाने से या धमनी के फट जाने से इस स्थान की सेलें ठीक ठीक काम नहीं कर सकतीं या बिलकुल बेकार हो जाती हैं; इस से दूसरी ओर का चेहरा, हाथ या पैर शिथिल हो जाते हैं। मस्तिष्क के भीतर धमनी कभी कभी फट जाती है; इस रक्त के दबाव से नीचे को जाने वाले तार टूट जाते

हैं ; तारों के टूट जाने से शरीर का आधा भाग शिथिल हो जाता है ; इसी को पक्षाघात (या फ़ालिज) कहते हैं ; यदि रक्तक्षरण दाहिनी ओर हो तो पक्षाघात बाईं आर होगा अर्थात् चेहरे के बाएं भाग में गति न हो सकेगी, बायाँ हाथ और बायाँ पैर न उठेगा। कभी कभी रक्तक्षरण मस्तिष्क में ऐसे स्थान पर होता है (जैसे सेतु में) कि जहाँ चेहरे के तार तो मध्य रेखा को पार कर चुके हैं ; परन्तु शाखाओं के तार उसी ओर हैं ; ऐसे रक्तक्षरण से एक ओर के चेहरे और दूसरी ओर के हाथ पावों पर असर पड़ता है। ज़ोर से बोलने या अधिक क्रोध करने या अधिक शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने से कुछ लोग (विशेष कर वृद्ध) अकस्मात् बेहोश हो जाते हैं और उनका आधा शरीर निश्चेष्ट हो जाता है ; इसका कारण बहुधा मस्तिष्क की धमनी का फटना या धमनी में रक्त का जमना या रक्त के बहाव का रुक जाना होता है।

सुषुम्ना के प्रदाह से या रक्तक्षरण से या उसके कट जाने से भी पक्षाघात हो जाता है। यह पक्षाघात अपूर्ण होता है ; इसमें चेहरा बच जाता है। जिस ओर अपकार होता है या चोट लगती है उसी ओर पक्षाघात भी होता है। एक हाथ, या दोनों हाथ, एक पैर या दोनों पैर ; दोनों हाथ और दोनों पैर या केवल दोनों पैर पक्षाघातग्रस्त हो सकते हैं।

नाड़ियों के रोगों के कारण या चोट के कारण उनके कट जाने से भी निश्चेष्टता उत्पन्न हो सकती है जैसे मौखिकी नाड़ी के वातग्रस्त होने से चेहरे की एक ओर की बहुत सी पेशियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं (इसी को लक़वा मारना कहते हैं)।

पेशियाँ अपने रोगों के कारण भी निश्चेष्ट हो जाती हैं।

मास्तिष्क वा सौषुम्न नाड़ियों के केन्द्रगामी तारों का मस्तिष्क के संवेदना क्षेत्र और विशेष ज्ञान केन्द्रों से सम्बन्ध

हमारी मुख्य* ज्ञानेन्द्रियाँ ये हैं:—त्वचा, चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वा। केन्द्रगामी तार इन इन्द्रियों से आरंभ होकर मास्तिष्क या सौषुम्न नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क में पहुँचते हैं। चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वा के केन्द्रगामी तार विशेष नाड़ियों द्वारा वृहत् मस्तिष्क के विशेष ज्ञानकेन्द्रों में जाते हैं; इन ज्ञान केन्द्रों में पहुँचने से पहले वे मध्य रेखा को काटकर एक ओर से दूसरी ओर हो जाते हैं।

त्वचा के सांवेदनिक तार तीन प्रकार की सूचनाएं मस्तिष्क को ले जाते हैं—(१) स्पर्श की, (२) शीत या उष्णता की, (३) पीड़ा की। पेशियों के सांवेदनिक तारों द्वारा उन के संकोच करने की सूचना मस्तिष्क को पहुँचती है; संधियों और अस्थियों के सांवेदनिक तारों द्वारा पीड़ा इत्यादि की सूचना और इस बात की सूचना कि गति हो रही है मस्तिष्क को मिलती है।

त्वचा, मांस, संधियों तथा अस्थियों से आरंभ होकर ये सांवेदनिक तार सौषुम्न नाड़ियों की पाश्चात्य मूलों द्वारा सुषुम्ना में घुसते हैं (शिर के अधिक भाग की त्वचा, और पेशियों इत्यादि के तार मस्तिष्क में सीधे घुस जाते हैं)।

* पेशियाँ और संधियाँ भी ज्ञानेन्द्रियों का काम करती हैं। पेशियों में दोनों प्रकार के तार होते हैं—केन्द्रगामी और केन्द्रत्यागी। पहले तारों द्वारा यह सूचना कि पेशी संकोच कर रही है मस्तिष्क को पहुँचा करती है।

सुषुम्ना में पहुँचकर तापक्रम और पीड़ा सम्बन्धी तार और स्पर्श सम्बन्धी तारों में से अधिक तार मध्य रेखा को पार करके एक ओर से दूसरी ओर हो जाते हैं और फिर सुषुम्ना-शीर्षक, सेतु और मस्तिष्क स्तंभ में से होकर थैलेमस नामक धूसर पिंड में पहुँचते हैं; यहाँ बहुत से तारों का अंत हो जाता है और नये तार आरंभ होकर माध्यमिक सीता के पीछे रहने वाले संवेदना क्षेत्र में पहुँचते हैं (चित्र २५३)।

शेष सांवेदनिक तार (पेशी, अस्थि तथा संधि सम्बन्धी और मध्य रेखा को पार करने वाले स्पर्श सम्बन्धी) सुषुम्ना में चढ़कर सुषुम्नाशीर्षक के पिछले भाग में रहने वाले सेल समूहों (चित्र २२७ में १,६) में पहुँचते हैं; यहाँ उनका अंत हो जाता है और सेलों से नये तार निकलते हैं जो शीघ्र ही एक ओर से दूसरी ओर चले जाते हैं और फिर ऊपर चढ़कर थैलेमस में पहुँचते हैं; यहाँ से नये तार निकलकर संवेदना क्षेत्र में पहुँचते हैं।

सुषुम्ना के पाश्चात्य शृंगों की कुछ सेलों के तार ऊपर चढ़कर लघुमस्तिष्क में जाया करते हैं; इन तारों का साम्य-स्थिति से सम्बन्ध है जैसा कि हम आगे चलकर समझावेंगे। ये तार जिस ओर आरंभ होते हैं लघुमस्तिष्क के उसी ओर के भाग में उनका अंत होता है।

विशेष ज्ञानेन्द्रियों के सम्बन्ध में हम इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि उनके तार मस्तिष्क में पहुँचकर दूसरी ओर के विशेष ज्ञान केन्द्रों में पहुँचते हैं।

संवेदना क्षेत्र का गति क्षेत्र से और विशेष ज्ञान केन्द्रों

(दृष्टि, घ्राणादि) का आपस में एक दूसरे से और संवेदना क्षेत्र से और इन में से प्रत्येक का गति क्षेत्र से तारों द्वारा सम्बन्ध रहता है। इन सब का मानस क्षेत्र से भी सम्बन्ध रहता है। अब हम केन्द्रगामी तारों का कार्य समझाते हैं।

मानो आप के दाहिने हाथ पर गरम जल गिर पड़ा; इस गरम जल की गरमी से हाथ की त्वचा के सांवेदनिक कणों पर एक विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ा या परिर्तवन हुआ। इस परिर्तवन की सूचना त्वगीया तारों द्वारा सुषुम्ना को तुरन्त जाती है; ऊर्ध्व शाखा की नाड़ियाँ सुषुम्ना के ऊपर के भाग से निकलती हैं; ये तार पाश्चात्य मूलों द्वारा सुषुम्ना में घुसते हैं। सुषुम्ना में इन तारों की छोटी छोटी शाखाएँ तो सेलों के पास रह जाती हैं परन्तु वे स्वयं शीघ्र ही सुषुम्ना के बाएँ भाग में पहुँचकर सुषुम्नाशीर्षक और सेतु में होते हुए स्तंभ में पहुँचते हैं। स्तम्भ द्वारा बाएँ थैलेमस में पहुँचते हैं और यहीं रह जाते हैं; यहाँ से फिर नये तार निकलते हैं जो ऊपर चढ़कर बाएँ संवेदना क्षेत्र में पहुँचते हैं। इस क्षेत्र की सेलों का गति क्षेत्र की सेलों से और मानस क्षेत्र से सम्बन्ध है; यदि हम गरम जल को पसन्द नहीं करते तो मानस क्षेत्र गति क्षेत्र को आज्ञा देता है कि हाथ उस स्थान से हट जावे और हाथ वहाँ से हट जाता है।

ज्ञानपथ

त्वचा, चक्षु इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों से मस्तिष्क के संवेदना वा विशेष ज्ञानकेन्द्रों तथा मानस क्षेत्र तक ज्ञान या संवेदना के जाने का जो रास्ता है उसको **ज्ञानपथ** कहते हैं। किसी विशेष ज्ञान के लिये इन इन चीजों की आवश्यकता है :—

व्याख्याः—इन चित्रों में ऊर्ध्व शाखा की त्वगीया नाड़ियाँ दिखाई गई हैं ।

चित्र २५६ में:—१,२=पाश्चात्य और मध्य उपाक्षिका त्वगीया नाड़ियाँ ।

३=कक्षीया नाड़ी की त्वगीया शाखा ।

५, ५, ९, १०=प्रकोष्ठ की अंतः त्वगीया ।

४, ६=प्रगंड की अंतः त्वगीया ।

७=प्रगंड की बाह्य त्वगीया ।

८=प्रकोष्ठ की बाह्य त्वगीया ।

११, १२=हस्त तल की त्वगीया नाड़ियां ।

१३, १४=अंगुष्ठ तथा अंगुलियों की त्वगीया नाड़ियाँ ।

चित्र २५७ में :—१=पाश्चात्य उपाक्षिका त्वगीया ।

२=कक्षीया नाड़ी की त्वगीया शाखा ।

३=दूसरी पर्शुकांतरिका नाड़ी की प्रगंड को जाने वाली त्वगीया शाखा ।

४=प्रगंड की अंतः त्वगीया ।

५=प्रकोष्ठ की पाश्चात्य त्वगीया ।

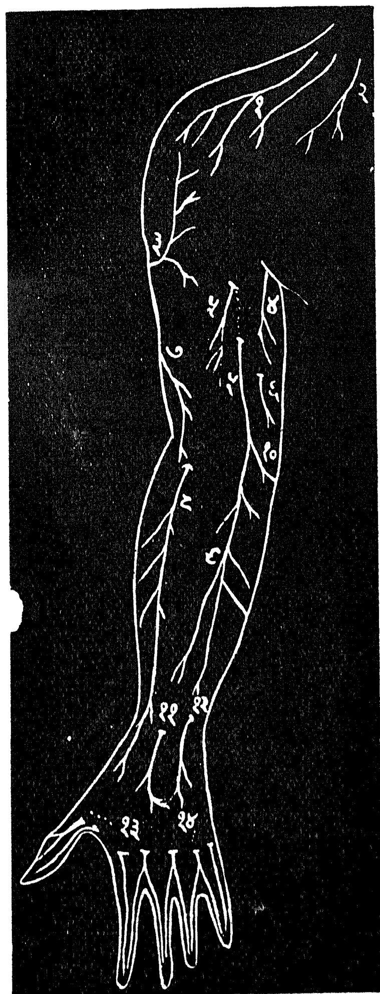
६,७=प्रकोष्ठ की अंतः त्वगीया की शाखाएं ।

८=प्रकोष्ठ की बाह्य त्वगीया ।

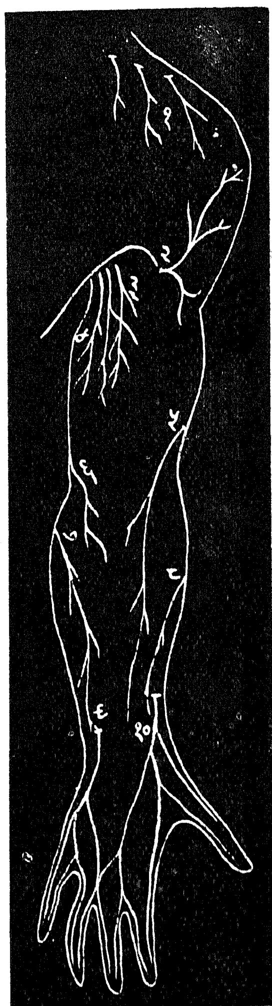
९=करभ तथा अंगुलियों की अंतः त्वगीया ।

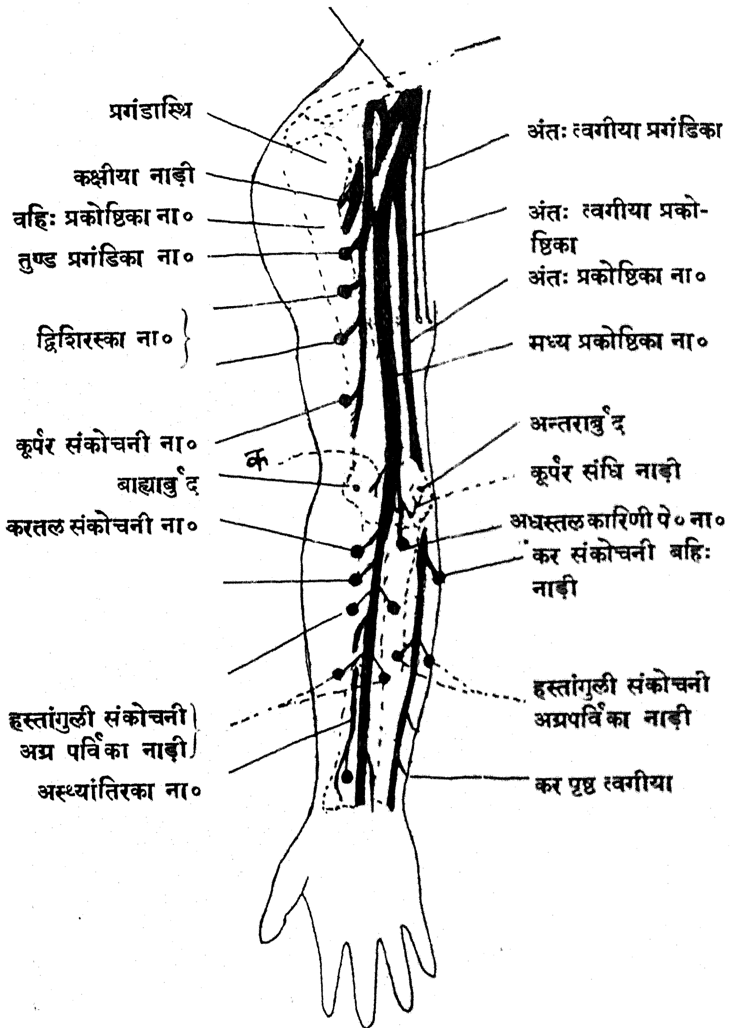
१०=करभ तथा अंगुलियों की बाह्य त्वगीया ।

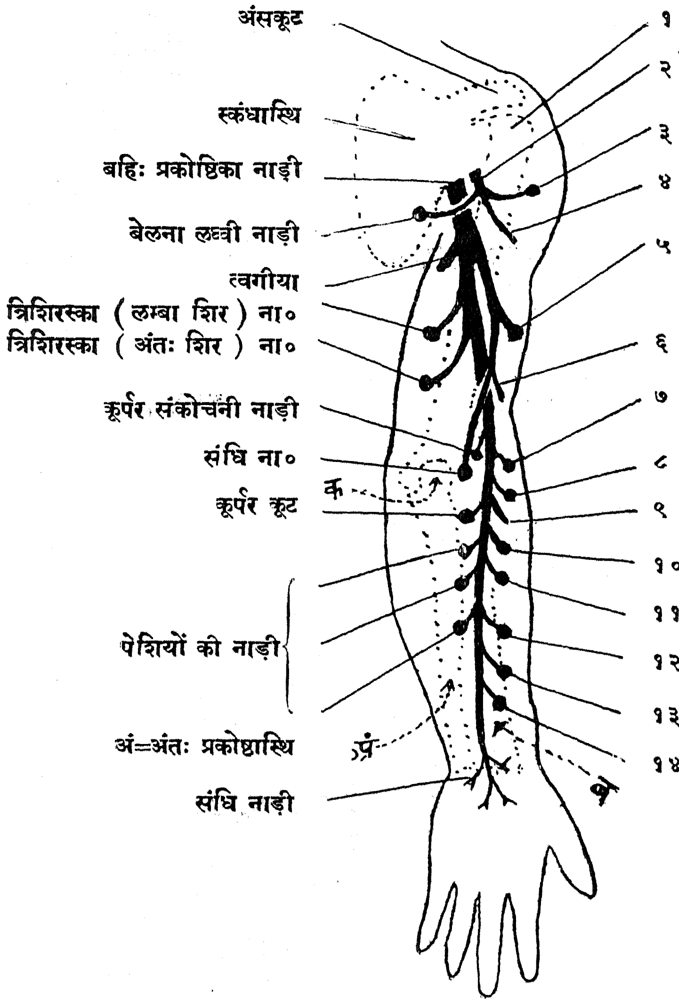
चित्र २५६ ऊर्ध्वशाखा का सामने का भाग



चित्र २५७ ऊर्ध्वशाखा का पिछला भाग

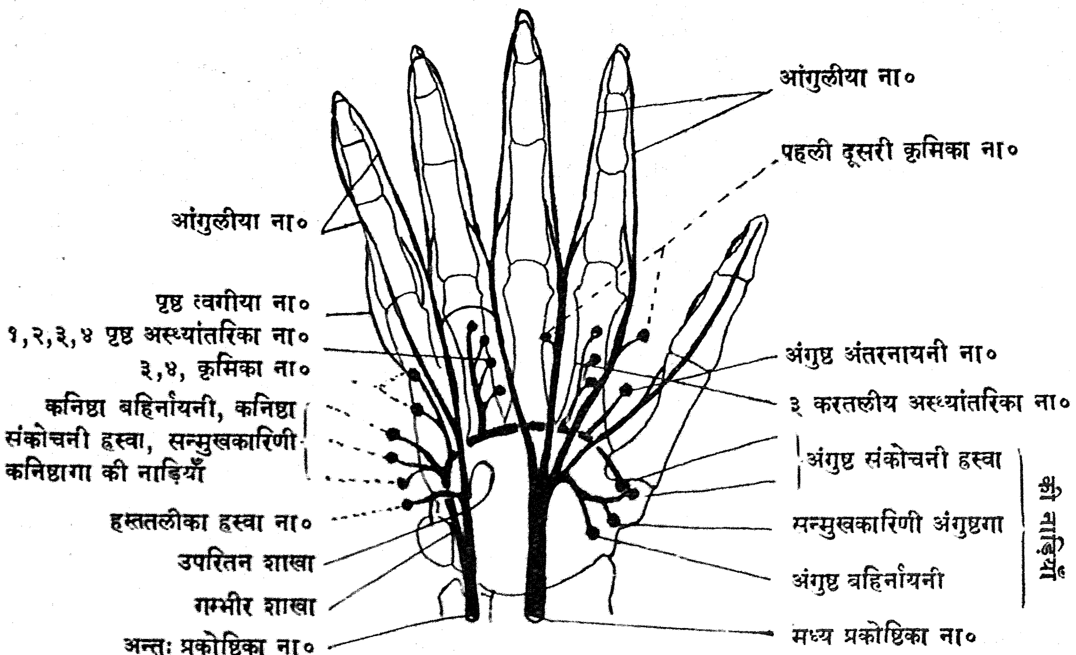


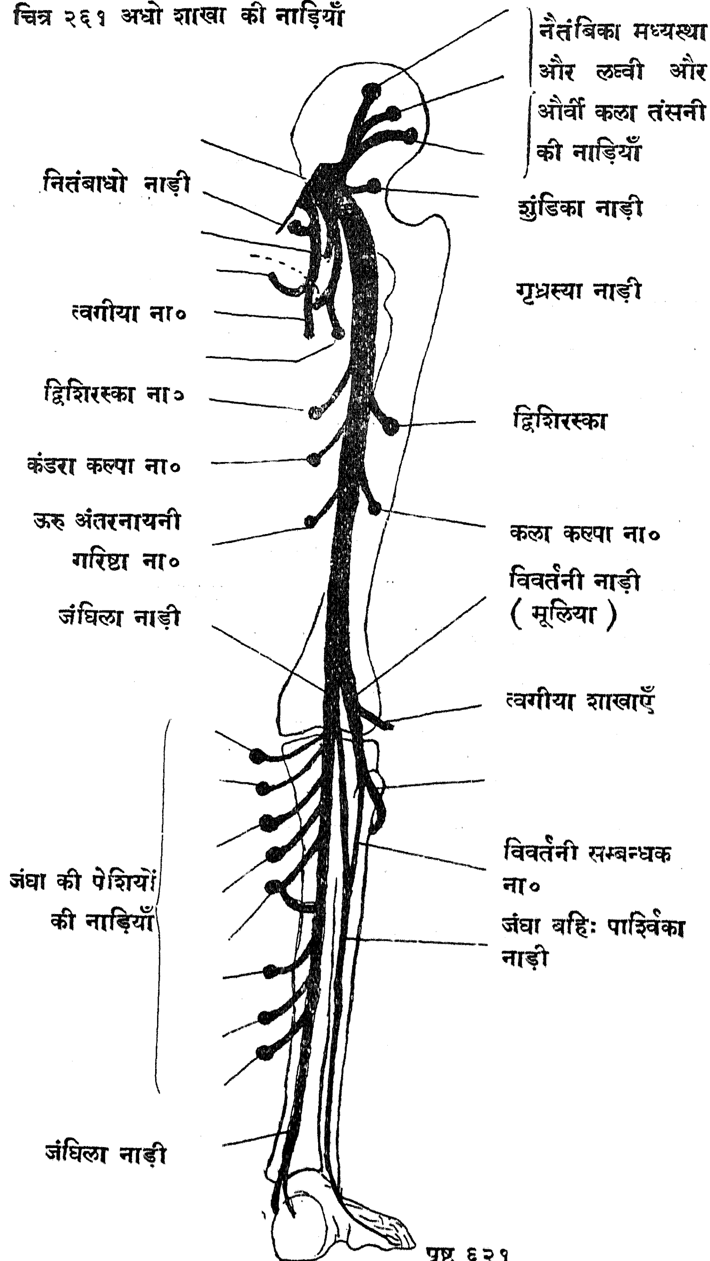

अक्षकास्थि
प्रगंडास्थि
कक्षीया नाड़ी
वहिः प्रकोष्ठिका ना०
तुण्ड प्रगंडिका ना०
द्विशिरस्का ना०
कूर्पर संकोचनी ना०
क
बाह्यार्बुद
करतल संकोचनी ना०
हस्तांगुली संकोचनी अग्र पर्विका नाड़ी
अस्थ्यांतिरका ना०
अंतः त्वगीया प्रगंडिका
अंतः त्वगीया प्रकोष्ठिका
अंतः प्रकोष्ठिका ना०
मध्य प्रकोष्ठिका ना०
अन्तरार्बुद
कूर्पर संधि नाड़ी
अधस्तलकारिणी पे० ना०
कर संकोचनी बहिः नाड़ी
हस्तांगुली संकोचनी अग्रपर्विका नाड़ी
कर पृष्ठ त्वगीया



१=प्रगंडास्थि; २=कक्षीया नाड़ी ३=अंसाच्छादनी ना०; ४=त्वगीया ना०; ५=(बहिः) त्रिशिरस्का नाड़ी; ६=त्वगीया; ७=प्रगंड बहिः प्रकोष्ठिका ना० ८,९,१०,११,१२,१३,१४=पेशियों की नाड़ियाँ ।

चित्र २६७


आंगुलीया ना०
पहली दूसरी कृमिका ना०
आंगुलीया ना०
पृष्ठ त्वगीया ना०
१,२,३,४ पृष्ठ अस्थ्यांतरिका ना०
३,४, कृमिका ना०
कनिष्ठा बहिर्नायनी, कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा, सन्मुखकारिणी कनिष्ठागा की नाड़ियाँ
हस्ततलीका ह्रस्वा ना०
उपरितन शाखा
गम्भीर शाखा
अन्तः प्रकोष्ठिका ना०
अंगुष्ठ अंतरनायनी ना०
३ करतलीय अस्थ्यांतरिका ना०
अंगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा
सन्मुखकारिणी अंगुष्ठगा
अंगुष्ठ बहिर्नायनी
की नाड़ियाँ
मध्य प्रकोष्ठिका ना०



चित्र २६१ अधो शाखा की नाड़ियाँ

व्याख्याः—इन चित्रों में अधोशाखा की त्वगीया नाड़ियाँ दिखाई गई हैं।

चित्र २६२ में :—व=वंक्षण की त्वगीया।

ब=ऊरू की बाह्य त्वगीया।

म=ऊरू की मध्य त्वगीया।

अं=ऊरू की अन्तः त्वगीया।

ज=जानु।

पि=जङ्घा की अन्तः त्वगीया।

१,२,३=जङ्घा पुरोगा नाड़ी की त्वगीया शाखाएँ।

चित्र २६३ में :—१२ वीं वाक्षसी नाड़ी की त्वगीया शाखा।

न=पहली कटी नाड़ी की नितंब में रहने वाली त्वगीया।

त्र=त्रिक नाड़ियों की त्वगीया शाखाएँ।

ब=ऊरू की बाह्य त्वगीया नाड़ी की शाखाएँ।

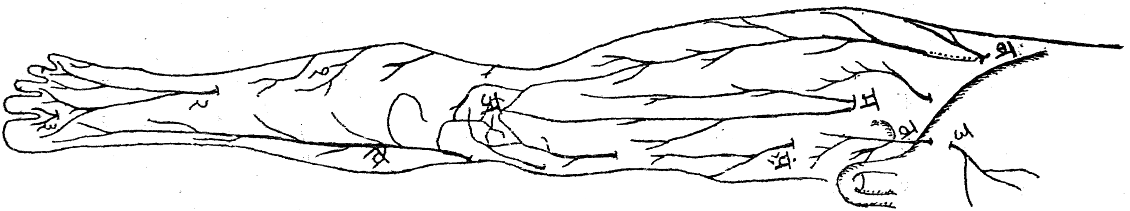
प=ऊरू की पाश्चात्य त्वगीया नाड़ी की शाखाएँ।

अं=ऊरू की अन्तः त्वगीया नाड़ी की शाखा।

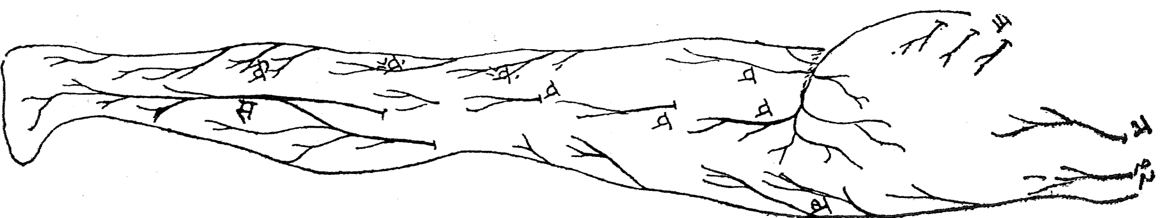
पि=जङ्घा की अन्तः त्वगीया।

स=जङ्घा की संयुक्ता त्वगीया नाड़ी।

चित्र २६२ अधोशाखा का सामने का भाग



चित्र २६३ अधोशाखा का पिछला भाग



चित्र २६४ की व्याख्या

१=बहि : -- लालाटिक धमनी और नाड़ी
२=अन्तः लालाटिक धमनी और नाड़ी
३=मौखिकी धमनी की नासा पार्श्व शाखा
४=मौखिकी धमनी की ऊर्ध्वोष्ठ-गत शाखा।
५=मौखिकी धमनी की निम्नोष्ठ-गत शाखा
६=अग्र मौखिकी शिरा
७=मौखिकी धमनी
८=सप्तमी नाड़ी की ग्रैवेयी शाखा
९=बहिः श्रोधीया धमनी
१०=मूल मौखिकी शिरा
११=चुल्लिकोर्ध्व धमनी
१२=अग्र श्रोधीया शिरा
१३=अंस कंठिका (अगला भाग)
१४=उपरितन (बहिः) श्रोधीया शिरा
१५=व्यत्यस्त ग्रैवेयी शिरा
१६=उरः कर्ण मूलिका पे०
१७=अक्षकाधोवर्ती धमनी
१८=अक्षकाधरा पेशी और नाड़ी
१९=बहिः प्रगंडीया शिरा
२०=बहिः अग्र वाक्षपी नाड़ी
२१=कक्षीया शिरा
२३=व्यत्यस्त अंसगा रक्त वाहिनियाँ
२५=अंस कण्ठिका (पिछला भाग)
२६=अंसोर्ध्वगा नाड़ी
२७=कशेरु अंस अक्षका पे०
३१=एकादशी नाड़ी
३२=अंसोत्कर्षणी पे०
३३=अंतः श्रोधीया धमनी
३४=बृहत् शष्कुलीया नाड़ी
३५=बहिः (उपरितन) श्रोधीया शिरा का आरम्भ
३६=शिर पाश्चात्य त्वगीया लब्वी
३८=शिर पश्चात् त्वगीया बृहती
३९=कर्ण मूल लाला ग्रन्थि
४०=व्यत्यस्त मौखिकी रक्त वाहिनिया।
४१=पश्चात् शष्कुलीया शिरा
४२=उपरितन कर्ण पुटीया रक्त वाहिनियाँ और शष्कुली कर्ण पुटीया नाड़ी

चित्र २६४ शिर की नाड़िया

(From Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ६२४ के सम्मुख

१—ज्ञानेन्द्रिय—त्वचा, नासिका इत्यादि।

२—सांवेदनिक या ज्ञानवाही (केन्द्रगामी) तार जो नाड़ियों द्वारा सुषुम्ना या मस्तिष्क में पहुँचते हैं।

३—ज्ञान केन्द्र।

४—मानस क्षेत्र।

ज्ञानेन्द्रिय न हो या रोगों के कारण ख़राब हो जावे तो हम को वह विशेष ज्ञान न होगा; चक्षु के न होने से प्रकाश का ज्ञान नहीं होता। जब त्वगीया नाड़ियाँ रोगों के कारण ख़राब हो जाती हैं तब स्पर्श, तापक्रम इत्यादि की सूचना मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाती; एक प्रकार के कुष्ठ में त्वगीया नाड़ियाँ ख़राब हो जाती हैं, आप त्वचा में सुई चुभा दें तब भी रोगी को कुछ भी पीड़ा न होगी। सुषुम्ना के कट जाने से (जैसे जब रीढ़ टूट जाती है) या मस्तिष्क के उस भाग में जिस में से होकर सांवेदनिक तार ऊपर चढ़ते हैं रक्तक्षरण होने से शरीर का आधा भाग सुन्न हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों और नाड़ियों और सुषुम्ना और मस्तिष्क में से जाने वाले तारों के ठीक रहते हुए भी ऐसा हो सकता है कि हम को प्रकाश, शब्द इत्यादि का ज्ञान न हो; यदि चोट लगने से दृष्टि केन्द्र बिगड़ जावे तो मनुष्य अन्धा या काना हो सकता है आँख चाहे ज्यों की त्यों दिखाई दे। जब मानस क्षेत्र के बिगड़ने के कारण मनुष्य पगला हो जाता है तब भी उसको चीज़ों का ज्ञान भली प्रकार नहीं रहता।

लघुमस्तिष्क का कार्य

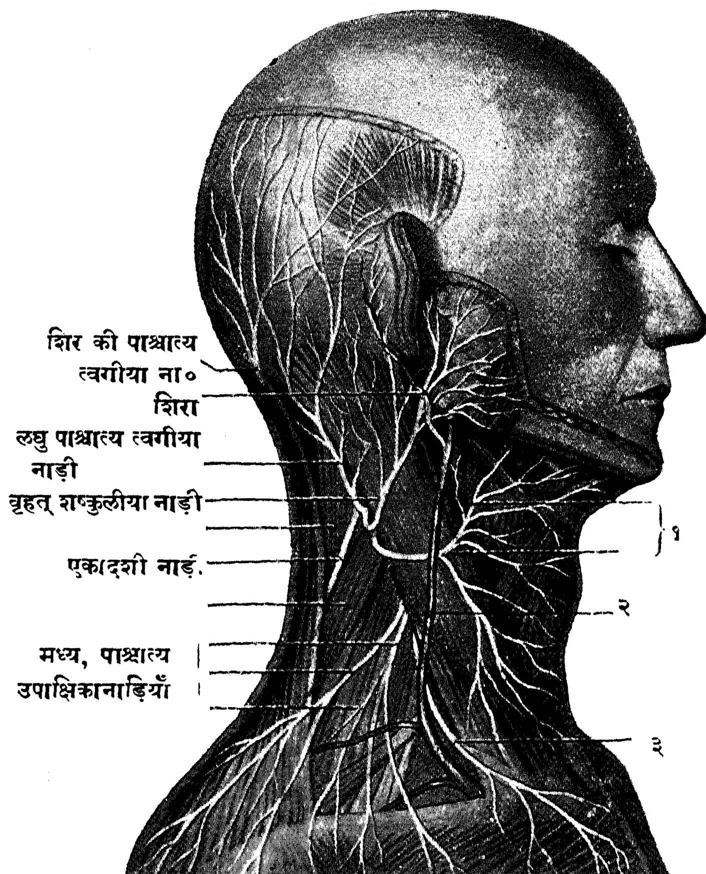
जब हमारे शरीर में कोई गति होती है तो कुछ पेशियों का संकोच होता है और कुछ का प्रसार; प्रत्येक गति के लिये इन

दोनों बातों का होना आवश्यक है। जब हम कुहनी मोड़ते हैं तो प्रगंड के सामने की पेशियाँ (द्विशिरस्का तथा कूर्पर संकोचनी) सिकुड़ती हैं परन्तु प्रगंड की पिछली पेशियाँ (त्रिशिरस्का वा कूर्पर प्रसारणी) ढीली पड़ जाती हैं; यदि संकोचनी पेशियाँ संकोच करें और प्रसारणी पेशियाँ ढीली न पड़ें तो कुहनी का मुड़ना असम्भव हो। यही बात चलना, बैठना, खड़ा होना इत्यादि गतियों के विषय में भी समझनी चाहिये।

जहाँ एक ओर मस्तिष्क कुछ पेशियों को चालक नाड़ियों द्वारा संकोच करने की आज्ञा देता है वहाँ दूसरी ओर विरोधिनी पेशियों को संकोच बंद करने की भी आज्ञा देता है। जब ये दोनों प्रकार की आज्ञाएँ ठीक ठीक मिलती हैं तब गतियाँ अच्छी तरह से होती हैं। लघुमस्तिष्क इस बात के लिये ज़िम्मेदार है कि गतियाँ ठीक ठीक होवें। लघुमस्तिष्क की सेलों के कुछ तार वृहत् मस्तिष्क के गतिक्षेत्र में पहुँचते हैं; इन तारों द्वारा लघु-मस्तिष्क का उपदेश गति क्षेत्र की सेलों को मिलता रहता है। लघुमस्तिष्क का दाहिना भाग वृहत् मस्तिष्क के बाएँ भाग का और बायाँ भाग दाहिने भाग का सहकारी है। इस तरह से शरीर के बाएँ भाग की गतियों का लघुमस्तिष्क के बाएँ भाग से और दाहिने भाग की गतियों का लघुमस्तिष्क के दाहिने भाग से सम्बन्ध है।

कुछ रोगों में लघुमस्तिष्क ख़राब हो जाता है ; कभी कभी उसमें फोड़ा बन जाता है। उसके बिगड़ जाने पर गतियाँ ठीक ठीक नहीं हो पातीं। रोगी की चाल ऐसी हो जाती है जैसी कि मद्यपान करने वाले की; उसके पैर ज़मीन पर ठीक ठीक नहीं टिकते और वह घूमता हुआ और लड़खड़ाकर चलता है।

चित्र २६५



(From Cunningham's Practical Anatomy)

१=शिरोधीया त्वगीया नाड़ी

२=उपरितन शिरोधीया शिरा

३=अग्र उपाक्षिका नाड़ी

चित्र २६६
(Sobotta)
पृष्ठ ६२७

गतियों के ठीक ठीक होने से शरीर में साम्यस्थिति रहती है। लघुमस्तिष्क का कार्य शरीर में साम्यस्थिति रखने का है।

त्वचा से, संधियों से, पेशियों से, चक्षु से और कर्ण की अर्धचक्राकार नालियों से जो सांवेदनिक तार मस्तिष्क को जाते हैं उन में से कुछ लघुमस्तिष्क में भी पहुँचते हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों से उसको समय समय पर समाचार पहुँचते रहते हैं ; उन्हीं समाचारों के अनुसार वह गतिक्षेत्र को उपदेश देता है। साम्यस्थिति के लिये कर्ण की अर्धचक्राकार नालियाँ शेष ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा अधिक आवश्यक है ; जब हम चलते फिरते हैं या करवट बदलते हैं तो इन नालियों के भीतर रहने वाला तरल हिलता है जिस से इन नालियों की नाड़ियों पर विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है ; इस प्रभाव की सूचना लघु-मस्तिष्क को मिलती है जिसके अनुसार पेशियों को (गतिक्षेत्र द्वारा) संकोच और प्रसार करने की आज्ञा मिलती है। जब श्रोत्रेन्द्रिय के रोगों के कारण यह नालियाँ बिगड़ जाती हैं तो कभी कभी घुमेर या चक्कर आने लगते हैं ; हिन्डोले में घूमने से या रेल में या जहाज़ में पहली बार चलने से बहुत से मनुष्यों को घुमनी आ जाती है ; बहते हुए जल की ओर देर तक टक-टकी बाँधकर देखने से भी चक्कर आ जाया करते हैं। ये सब बातें साम्यस्थिति बिगड़ जाने के उदाहरण हैं।

प्रत्यावर्तन ; परावर्तित क्रिया (चित्र २६७)

जब हम अंधेरे से उजाले में जाते हैं तब हमारी पुतली तुरंत ही सिकुड़कर छोटी हो जाती है ; अन्यतः जब हम

उजाले से अँधेरे में जाते हैं तब पुतली फैलकर चौड़ी हो जाती है ; दोनों दशाओं में हम को मालूम भी नहीं होता कि पुतली के आकार में कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं।

जब कोई मनुष्य हमारी आँख की ओर अंगुली लाता है या जब कोई चीज़ अकस्मात् आँख में लगने वाली होती है तब पलक एक दम झपक जाते हैं या हमारा हाथ आँख के सामने आ जाता है ; इस क्रिया में हमारी इच्छा का कोई दखल नहीं है। यह काम इतनी फुरती से होता है कि हमको सोचने विचारने और इच्छा करने का अवकाश ही नहीं मिलता।

यदि कोई मनुष्य बिना आप से कहे आप के पैर के तलवे को अंगुली से या लकड़ी से खुजावे तो आपका अंगूठा ऊपर को मुड़ेगा और अंगुलियाँ नीचे को मुड़ेंगी, या पैर उस स्थान से हट जावेगा। आप चाहें तो अंगुलियों और अंगूठे को न मुड़ने दें या पैर को वहाँ से न हटने दें परन्तु जब तक आप की इच्छा काम नहीं करती उस समय तक ये गतियाँ अवश्य होंगी।

स्वादिष्ट रोचक और प्रिय भोजन को देखकर मुँह में लाला और आमाशय में आमाशयिक रस बनने लगते है।

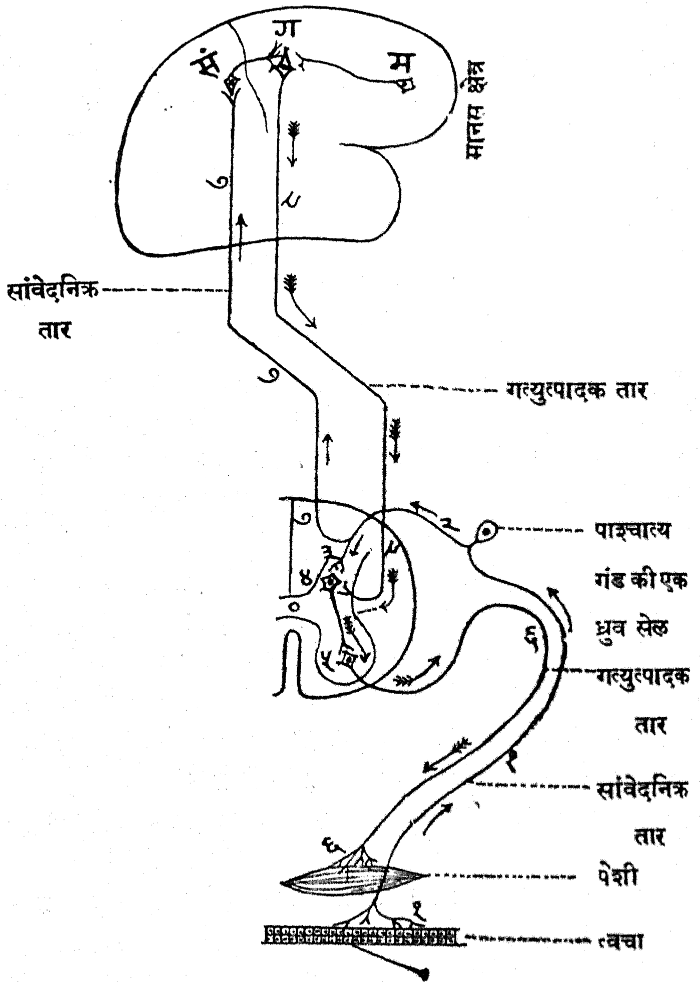
वह क्रिया जो किसी दूसरी क्रिया के उत्तर में बिना हमारी इच्छा के या बिना हमारे जाने होती है परावर्तित क्रिया कहलाती है। अब हम बतलाते हैं कि इस प्रकार की क्रियाएँ कैसे हो पाती हैं :—

जब पैर का तलवा खुजाया जाता है तब त्वचा के सांवेदनिक (केन्द्रगामी) तारों द्वारा यह सूचना सुषुम्ना में पहुँचती है (चित्र २६७ में १,२) और वहाँ से मस्तिष्क को जाती है।

सुषुम्ना में घुसकर केन्द्रगामी तार के कई भाग हो जाते हैं एक छोटे भाग का सुषुम्ना में ही अंत हो जाता है (चित्र २६७ में ३) बड़ा भाग ऊपर चढ़ता हुआ मस्तिष्क को जाता है (चित्र २६७ में ७) ; जो तार सुषुम्ना में रह जाता है उसका पूर्व शृङ्ग की सेल से सम्बन्ध होता है (चित्र २६७ में ४,५) । मस्तिष्क तक सूचना पहुँचने में कुछ देर लगती है ; इस बीच में सुषुम्ना की सेलें अपने आप काम करती हैं और वे केन्द्रत्यागी तारों (चित्र २६७ में ६) द्वारा पेशियों को संकोच करने की आज्ञा देती हैं और पैर उस स्थान से हट जाता है या अंगुलियाँ मुड़ती हैं। इतने में सूचना मस्तिष्क को पहुँचती है और वह निश्चय कर लेता है कि क्या करना चाहिये । इस परावर्तित क्रिया में सुषुम्ना की सेलें उसी प्रकार काम करती हैं जिस प्रकार कि आवश्यकता पड़ने पर छोटा अफ़सर बड़े अफ़सर की अनुपस्थिति में या उसके दूर होने के कारण किसी बात की आज्ञा दे देता है । छोटे अफ़-सर को जितना अधिकार है उसके अनुसार उस समय के लिये जो कुछ वह सबसे उत्तम समझता है उसकी आज्ञा देता है और साथ ही साथ बड़े अफ़सर को भी सूचना पहुँचाता है। बड़ा अफ़सर विचार करता है यदि वह छोटे अफ़सर की आज्ञा से सहमत है तो वह आज्ञा को बहाल रखता है ; यदि उसको अनुचित समझता है तो उसको बदलकर नई आज्ञा देता है ।

जब पैर का तलवा अचानक खुजाया गया तो यह सूचना पाकर सुषुम्ना की सेलें पैर को वहाँ से हटाये जाने की आज्ञा दे देती हैं क्योंकि शायद शरीर को हानि पहुँचाने वाली चीज़ निकट हो। सुषुम्ना की सेलें निकट हैं और मस्तिष्क

चित्र २६७ परावर्तित क्रिया



की दूर ; इतने में मस्तिष्क को विचार करने का समय मिल जाता है (चक्षु, कर्ण इत्यादि ज्ञानेन्द्रियों से मस्तिष्क को निश्चय करने में सहायता मिलती है) ; यदि पैर का हटना अच्छा है तो वह हटा रहता है नहीं तो फिर अपनी जगह आ जाता है।

हमारे शरीर में बहुत सी परावर्तित क्रियाएँ होती हैं ; इनका मुख्य प्रयोजन बहुधा शरीर की रक्षा करने का होता है।

चित्र २६७ की व्याख्या

इस चित्र में यह समझाया गया है कि परावर्तित क्रिया (प्रत्या-वर्तन) किस प्रकार होती है।

१=त्वागीया नाड़ी का तार।

२=यह तार सूचना को सुषुम्ना में ले जाता है। सुषुम्ना में इसके कई भाग हो जाते हैं एक तार (३) पाश्चात्य श्रृङ्ग की सेल (४) के पास रह जाता है ; यह सेल सूचना को पूर्व श्रृङ्ग की सेल (५) तक पहुँचाती है जो अपने तार (६) द्वारा पेशी को संकोच करने की आज्ञा देती है।

३=केन्द्रगामी तार का सुषुम्ना में ही रह जानेवाला भाग।

४=सेल।

५=पूर्व श्रृङ्ग की सेल।

६=मांस में अंत होने वाला तार।

७=मस्तिष्क को जाने वाला केन्द्रगामी तार।

सं=सांवेदनिक क्षेत्र जिसकी सेलें अपने तारों द्वारा गतिक्षेत्र की सेलों से सम्बन्ध रखती हैं।

ग=गति क्षेत्र ।

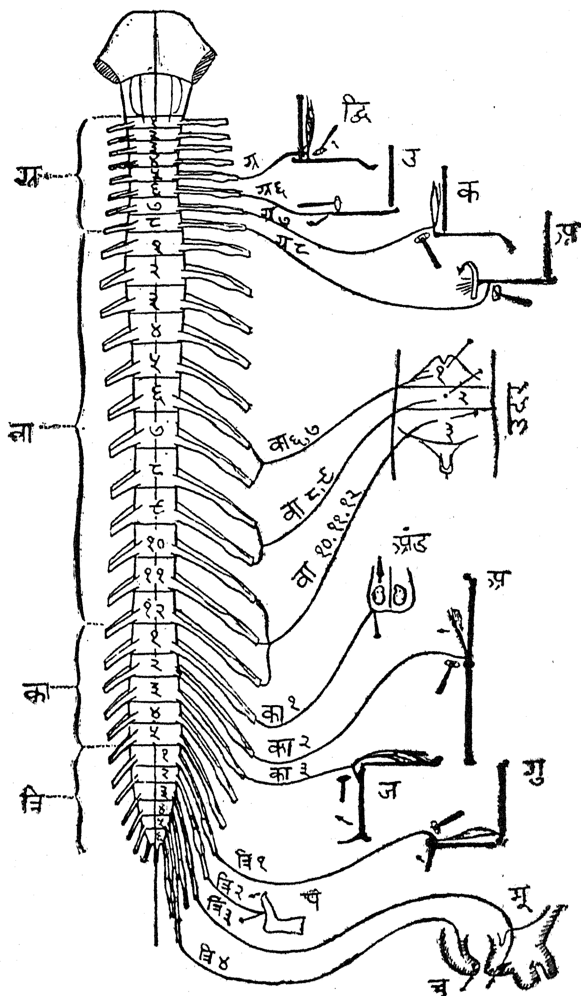
म=मानस क्षेत्र जिस की सेलों का गति क्षेत्र की सेलों से सम्बन्ध है ।

८=इस तार द्वारा गति करने की आज्ञा सुषुम्ना की सेलों को पहुँचती है ।

(१) ऐच्छिक क्रिया :—जब हम कोई गति अपनी इच्छा से करते हैं तो मानस क्षेत्र की सेलों की आज्ञा पाकर गति क्षेत्र की सेलें सुषुम्ना (यदि गति का सम्बन्ध मास्तिष्क नाड़ियों से है तो उन नाड़ियों के उत्पत्ति स्थान) की सेलों को आज्ञा देती हैं और गति हो जाती है । आज्ञा म से आरंभ हो कर ग, ८, ४, ५, में से होती हुई ६ में पहुँचती है ।

(२) परावर्तित क्रिया :—इस का मार्ग यह है—त्वाचा, १, २, ३, ४, ५, ६ मांस ।

चित्र २६८



From the British Journal of Surgery after Levy-Valensi

कुछ प्रतिक्रियाएं*

प्रतिक्रिया	कैसे उत्पन्न की जाती है	क्या होता है	सुषुम्ना के कौन भाग काम में आते हैं
पादतलीका (चित्र २६८ में प)	पाद तल को खुजाना	अंगुलियों का पादतल की ओर मुड़ना शिशुओं में और गति पथ के रोगों में ऊपर को मुड़ना	त्रिक १, २
अंडोत्थापिका (चित्र २६८ में का)	जांघ के अंतरीय भाग को खुजाना	अंड का ऊपर को उठना	कटि १, २
कौड़ी	छाती को स्तन वृंत की ओर से नीचे को खुजाना	कौड़ी का उसी ओर को सिकुड़ना	

* Short and Ham's Synopsis of Physiology.

प्रतिक्रिया	कैसे उत्पन्न की जाती है	क्या होता है	सुषुम्ना के कौन भाग काम में आते हैं
अक्षिश्लैष्मिक कला	कनिनीका को छूना	पलक का झपकना	५,७ मास्तिष्क नाड़ियों के केन्द्र
तारा	आँख पर प्रकाश डालना	तारा का सिकुड़ना	३ मास्तिष्क नाड़ी केन्द्र
जान्विकी (चित्र २६८ में ज)	जानु कंडरा (जानु बंधन) पर ठोकना	टांग आगे को लात मारती है	कटि ३, ४
गौल्फी (चित्र २६८ में गु)	पार्ष्णि कंडरा को ठोकना	पैर पादतल की ओर मुड़ता है	त्रि० १, २
द्विशिरस्का (चित्र २६८ में द्वि)	द्विशिरस्का की कंडरा को ठोकना	प्रकोष्ठ का मुड़ना	ग्रै० ५, ६
त्रिशिरस्का (चित्र २६८ में क)	त्रिशिरस्का की कंडरा को ठोकना	प्रकोष्ठ का सीधा होना	ग्रै० ८, व० १
कौर्चिक	पहुँचे से ऊपर प्रसारणी पेशियों को ठोकना।	हाथ का ऊपर को अकस्मात हिलना	ग्रै० ८

अध्याय २३

चक्षु

हमारे दो चक्षु या नेत्र होते हैं। भ्रुओं के नीचे नासिका के दाहिनी और बाईं ओर कर्पर में दो गढ़े होते हैं; इन को अक्षि खात या नेत्र गुहा कहते हैं। आँख का गोला (अक्षि गोलक) इसी गढ़े में रहता है। चक्षु एक बड़ा उपयोगी और परमावश्यक अंग है। बिना चक्षु के जीवन में आनन्द प्राप्त नहीं होता। इस अंग के द्वारा हम को प्रकाश का ज्ञान होता है; इसी के द्वारा हम सब संसार को देखते हैं; रंग रूप, आकार का बोध भी इसी की सहायता से होता है।

जितना आवश्यक यह अंग है उतना ही उस की रक्षा का प्रबन्ध भी किया गया है। अस्थि से बनी हुई कोठरी जिस में वह रहता है उसके अगले भाग को छोड़कर शेष भाग की अच्छी तरह से रक्षा करती है। अगले भाग की रक्षा के लिये दो पलक या नेत्रच्छद हैं। जब कोई मनुष्य आँख के सामने अंगुली लाता है तो ये पलक तुरंत बंद हो जाते हैं; सोते समय भी इन पलकों के बंद हो जाने से आँख का अगला भाग सुरक्षित रहता है। पलकों के किनारों पर बाल लगे रहते हैं; ये अक्षि पक्ष्म या अक्षि लोम कहलाते हैं। इन बालों से भी आँख की रक्षा होती है, धूल मिट्टी के छोटे छोटे ज़र्रे इन में फँस जाते हैं और वायु में उड़ने वाले छोटे छोटे कीड़े भी बहुधा इन में फँसकर आँख के बाहर ही रह जाते हैं।

अक्षि खात के ऊपर बालों की एक महराव होती है जिस को भ्रु या भौं कहते हैं। माथे का पसीना भौं के कारण आँख में जाने से रुक जाता है।

चक्षु की बनावट

चक्षु की बनावट छाया चित्र खींचने वाले यंत्र की बनावट से बहुत कुछ मिलती है। हम पहिले इस यंत्र की साधारण बनावट बतलायेंगे और फिर उस की चक्षु की बनावट से तुलना करेंगे। यह यंत्र वास्तव में एक अँधेरी कोठरी है; इस कोठरी में एक ओर एक छिद्र होता है जिस में एक शीशा या ताल लगा रहता है; दूसरी ओर अर्थात् ताल के सम्मुख काँच का एक तख्ता या प्लेट लगा रहता है जिस पर मसाला चढ़ा रहता है वस्तुओं का प्रतिबिंब इस मसाला चढ़ी हुई प्लेट पर ही पड़ा करता है। प्रकाश की किरणें ताल में से होकर कोठरी में घुसती हैं और फिर इस प्लेट से टकराती हैं। ताल के सामने एक यंत्र ऐसा लगा रहता है जिस के द्वारा हम इच्छानुसार यह कर सकते हैं कि प्रकाश उस ताल में से होकर कम जावे या अधिक जावे या बिलकुल न जावे। जब मतला साफ़ होता है और धूप तेज़ होती है तब तस्वीर खींचने के लिये कम प्रकाश की आवश्यकता होती, जब बादल होते हैं या धूप हलकी होती है तब ताल के सामने वाले यंत्र का छिद्र चौड़ा कर देने की आवश्यकता होती है ताकि जितने प्रकाश की आवश्यकता है उतना प्रकाश प्लेट पर पड़े। कोठरी की बनावट ऐसी होती है कि हम उस को आवश्यकतानुसार लम्बी या छोटी कर सकते हैं ताकि प्रतिबिंब ठीक प्लेट पर पड़े। छाया चित्रण यंत्र की स्थूल बनावट

यही है; उसमें तरह तरह के पेच लगे रहते हैं जिन से इस समय हम को कोई मतलब नहीं।

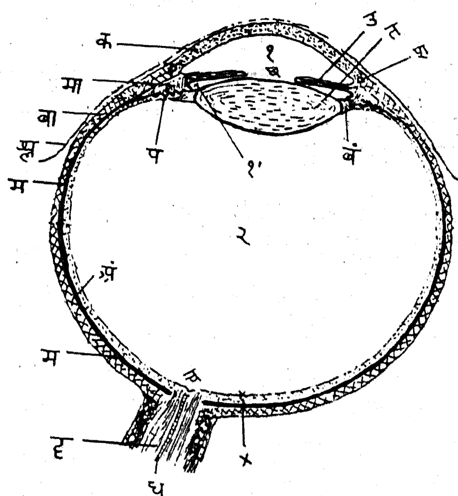
हमारी चक्षु की बनावट उपरोक्त यंत्र की बनावट से बहुत कुछ मिलती है। यंत्र की तरह उस में भी एक अँधेरी कोठरी है जिस के अगले भाग में एक ताल लगा रहता है, यह कोठरी गोल होती है चौकोर नहीं; छाया चित्रण यंत्र की कोठरी की लम्बाई कम और अधिक की जा सकती है परन्तु चक्षु की कोठरी का परिमाण कम अधिक नहीं किया जा सकता; जो काम यंत्र में कोठरी की लम्बाई को कम या अधिक करने से होता है वह चक्षु में ताल की मोटाई को कम या अधिक करने से निकलता है अर्थात् चक्षु का ताल मोटा और पतला हो सकता है। चक्षु में प्रकाश के कम या अधिक प्रवेश कराने के लिये ताल के सामने एक परदा लगा रहता है जिस में एक छिद्र होता है; यह छिद्र आवश्यकतानुसार छोटा या बड़ा हो सकता है; प्रकाश को बिलकुल रोकने के लिये दो पलक होते हैं। चक्षु के पिछले भाग में छाया चित्रण यंत्र की मसाला चढ़ी प्लेट के स्थान में एक सांवेदनिक झिल्ली लगी रहती है; वस्तुओं का प्रतिबिंब इसी पर पड़ता है।

चक्षु का आकार (चित्र २६९)

यदि हम दो गोले लें एक बड़ा और एक छोटा और फिर प्रत्येक गोले के काट कर दो टुकड़े कर लें एक छोटा और दूसरा बड़ा और अब बड़े गोले के बड़े टुकड़े में छोटे गोले का छोटा टुकड़ा जोड़ दें तो चक्षु का आकार इस संयुक्त गोले के सदृश होगा। आंख का अगला $\frac{1}{6}$ भाग छोटे गोले के छोटे भाग के

और पिछला ५/६ भाग बड़े गोले के बड़े भाग के बारबर है। अगला भाग स्वच्छ होता है पिछला अस्वच्छ। पिछला भाग छाया चित्रण यंत्र की अँधेरी कोठरी के सदृश है और अगला भाग उस भाग की तरह है जिसमें से प्रकाश की किरणें कोठरी के भीतर प्रवेश करती हैं।

चित्र २६९ चक्षु का क्षितिज काट



१=आंख का अगला कोष्ठ; १'=पिछला कोष्ठ; २=वृहत् कोष्ठ; क=कनीनिका; उ=उपतारा; छ=तारा; त=ताल; बं=ताल बंधन; श=चक्रवत् शिराकुल्या का छिद्र; प=उपतारानुमंडल; मा=मांस; बा=बाह्य पटल; श्ल=श्लैष्मिक कला; म=मध्य पटल; अं=अंतरीय पटल; च=चक्षु बिम्ब; द=दृष्टि नाड़ी; ध=धमनी; ×=पीत बिन्दु।

अक्षिगोलक की दीवार तीन तहों या पटलों से बनती है; इन का रंग जुदा जुदा होता है। जब आप आँख को देखते हैं तो अगला भाग काला सा दिखाई देता है और पिछला श्वेत। आँख का सब से बाहरी पटल श्वेत होता है, आँख का श्वेत भाग इसी से बनता है (चित्र २६९ में बा)। बाह्य पटल के भीतर मध्य पटल होता है जिस का रंग काला होता है (चित्र २६९ में म) मध्य पटल के भीतरी पृष्ठ से अंतरीय पटल जिस का रंग नीललोहित होता है लगा रहता है (चित्र २६९ में अं)। अक्षिगोलक के पिछले ५/६ भाग में तीनों पटल एक दूसरे से मिले रहते हैं, अगले १/६ भाग में इन का संविधान और प्रकार से है।

आँख का अगला भाग काला (कुछ जातियों में नीला) दिखाई देता है। यदि ग़ौर से देखा जावे तो मालूम होगा कि जो काली चीज़ दिखाई देती है वह पृष्ठ पर नहीं है (ऊपर नहीं है); वास्तव में वह आँख के भीतर है और एक काँच जैसी स्वच्छ चीज़ में से चमकती हुई दिखाई देती है। यह स्वच्छ चीज़ आँख के अगले भाग की दीवार है (चित्र २६९ में क); यह पीछे जाकर श्वेत पटल से मिल गई है, वास्तव में यह समझना चाहिये कि आँख का बाह्य या श्वेत पटल आगे जाकर स्वच्छ और विवर्ण हो गया है। इस स्वच्छ भाग को **कनीनिका** कहते हैं (चित्र २६९ में क)।

कनीनिका में से चमकता हुआ एक काला (कुछ जातियों में भूरा या नीला) परदा दिखाई देता है; यह परदा मध्य पटल का अगला भाग है। इस परदे के बीच में एक गोल

छिद्र होता है जो फैलता हुआ और सिकुड़ता हुआ (बड़ा या छोटा होता हुआ) दिखाई दिया करता है। जब किसी अँधेरी कोठरी की दीवार में कोई छिद्र होता है तो वह दूर से काला काला ही दिखाई देता है और ऐसा मालूम होता है कि वह एक काला धब्बा है, इसी प्रकार आँख में भी यह छिद्र काला काला ही दिखाई देता है। इस छिद्र (चित्र २६९ में छ) को पुतली या तारा कहते हैं और जिस परदे में यह छिद्र होता है उस को उपतारा कहते हैं (चित्र २६९ में उ)।

आँख के पिछले $\frac{5}{6}$ भाग में काला (मध्य) पटल श्वेत (बाह्य) पटल से बिलकुल मिला रहता है ; अगले $\frac{1}{6}$ भाग में यह मध्य पटल कनीनिका से (जो वास्तव में बाह्य पटल का ही भाग है) अलग हो जाता है और उस के पीछे उस से कुछ दूरी पर रहता है ; कनीनिका के पीछे परन्तु उससे कुछ दूरी पर रहने वाले मध्य पटल के भाग को ही उपतारा कहते हैं।

नील लोहित पटल ज्यों ज्यों आगे को आता है पतला होता जाता है, उपतारा के पास पहुँचकर अत्यन्त सूक्ष्म हो जाता है, यह सूक्ष्म भाग उपतारा के पिछले पृष्ठ से लगा रहता है।

उपतारा के पीछे आँख का ताल रहता है (चित्र २६९ में त) इसका वही काम है जो छाया चित्रण यंत्र के ताल का। ताल स्वच्छ होता है, बुढ़ापे में अस्वच्छ या धुँधला हो जाता है। ताल के धुँधले हो जाने को मोतियाबिंद रोग कहते हैं। जिस प्रकार धुँधले शीशे में से होकर प्रकाश की किरणें नहीं

गुज़र सकतीं उसी प्रकार आँख के ताल के धुँधले हो जाने के पश्चात् प्रकाश की किरणें उस में से होकर आँख के भीतर नहीं पहुँच पातीं और मनुष्य को कम दिखाई देने लगता है या वह अंधा हो जाता है।

मसूर के दाने की तरह ताल गोल होता है। उस के दोनों पृष्ठ (सामने के और पीछे के) उभरे होते हैं अर्थात् वह युगलोन्नतोदर होता है। अगला पृष्ठ पिछले से कम उभरा हुआ होता है। ताल का बाहरी भाग भीतर के (कैन्द्रिक) भाग से अधिक मुलायम होता है। अगले पृष्ठ के केन्द्र से पिछले पृष्ठ के केन्द्र तक का माप $\frac{१}{५}$ इंच (५ सहस्रांशमीटर) होता है; उस का व्यास (एक किनारे से दूसरे किनारे तक का माप) $\frac{१}{३}$ इंच (९ सहस्रांशमीटर) से कुछ कम होता है। ताल का भार सामान्यतः २ रत्ती (२१२-२५० सहस्रांश ग्राम) के लगभग होता है।

ताल के ऊपर एक पतला गिलाफ़ चढ़ा रहता है; इसको ताल कोष कहते हैं। ताल एक बंधन द्वारा उपतारानुमंडल से बँधा रहता है (चित्र २६९ में बं), उपतारा के पीछे जो उभरा हुआ भाग होता है उसको उपतारानुमंडल कहते हैं (चित्र २६९ में प); इसमें अनैच्छिक मांस होता है (चित्र २६९ में मा) जिस के ऊपर मध्य पटल रहता है ताल का बंधन एक ओर ताल की परिधि पर तालकोष से लगा रहता है दूसरी ओर उपतारानुमंडल से। मांस के संकोच और प्रसार से ताल का बंधन ढीला या तंग हो जाता है जिस की वजह से ताल का उन्नतोदरत्व बढ़ या घट जाता है। जो काम छाया

चित्रण यंत्र में कोठरी की लम्बाई को कम या अधिक करने से निकलता है वह आँख में ताल को मोटाई को कम या अधिक करने से निकलता है ; इस उन्नतोदरत्व के कम या अधिक होने से वस्तुओं का प्रतिबिंब ठीक नीललोहित पटल पर पड़ता है।

ताल के पीछे आँख का बड़ा कोष्ठ है (चित्र २६९ में २) ; इस में एक गाढ़ा कछ लसदार स्वच्छ अर्धतरल द्रव्य भरा रहता है; इस स्फटिकोपम वस्तु का काम चक्षु के आकार को स्थिर रखने का है; यदि इस कोष्ठ में कुछ न होता तो आँख ज़रा से दबाव से पिचक जाया करती। इस द्रव्य के दबाव से आँख के तीनों पटल भी एक दूसरे से मिले रहते हैं। इस चीज़ में ९८·५०% जल होता है।

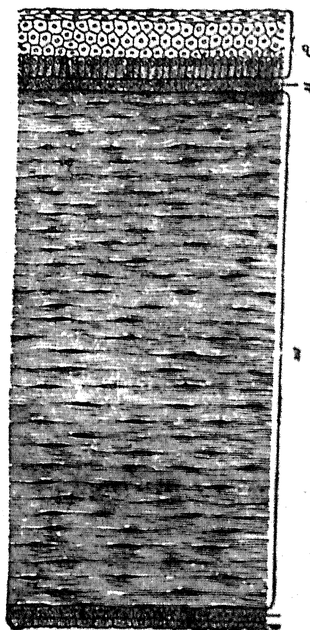
आँख के पटलों की बनावट

बाह्य पटल—यह पीले और श्वेत सात्रिक तंतु से निर्मित है और शेष दोनों पटलों की अपेक्षा अधिक मज़बूत, मोटा और सख्त होता है। नेत्रचालनी पेशियाँ इसी पटल से लगी रहती हैं। इस पटल का पिछला भाग अगले से अधिक मोटा होता है। पिछले भाग की मोटाई $\frac{1}{24}$ इंच के लगभग होती है।

कनीनिका—(चित्र २७०) अणुवीक्षण द्वारा देखने से मालूम होता है कि उस में पाँच तहें हैं अगले पृष्ठ पर सेलों को चार या पाँच स्तरें एक दूसरे के ऊपर बिछी रहती हैं (चित्र २७० में १)। सेलों की तह के नीचे (या पीछे) एक सूक्ष्म कला होती है जिस में सेलें नहीं देख पड़तीं (चित्र २७० में २) ;

इस कला के नीचे सौत्रिक तंतु की मोटी तह होती है जिसमें बहुत सी चपटी तर्क्वाकार सेलें होती हैं (चित्र २७० में ३)। सौत्रिक तह के पीछे एक पतली स्थितिस्थापक कला रहती है

चित्र २७० कनीनिका की सूक्ष्म रचना

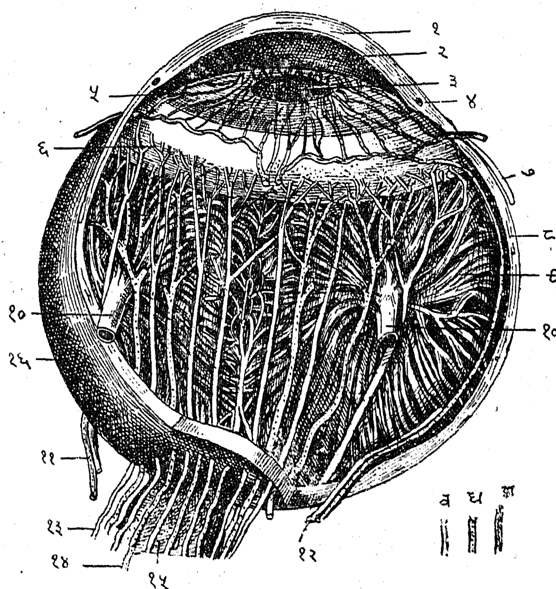


(From May & Worth's Diseases of the Eye.)

(चित्र २७० में ४)। कनीनिका के पिछले पृष्ठ पर सेलों की एक तह बिछी रहती है (चित्र २७० में ५)।

कनीनिका केन्द्र के पास पतली होती है और परिधि के पास मोटी। परिधि के पास उस की मोटाई १/३४ इंच के लग-

चित्र २७१



व्याख्या :—इस चित्र में चक्षु की नाड़ियाँ तथा रक्त वाहिनियाँ दिखाई गई हैं। बाह्य पटल और कनीनिका के कुछ भाग काटकर हटा दिये गये हैं ; इस से बाह्य पटल और मध्य पटल के बीच में रहने वाली नाड़ियाँ और मध्य पटल की रक्त वाहिनियाँ दिखाई देने लगी हैं।

१=कनीनिका; २=अग्र (अगला) कोष्ठ; ३=तारा; ४=चक्रवत् शिरा कुल्या; ५=उपतारा; ६=उपतारानुमंडल; ८=बाह्य पटल; ९=मध्य पटल; १०= मध्य पटल की एक शिरा; ११, १४=मध्य पटल, उपतारा तथा उपतारा-नुमंडल की धमनियाँ; १२, १३=मध्य पटल, उपतारा तथा उपतारानुमंडल की नाड़ियाँ; १५=दृष्टिनाड़ी; १६=बाह्य पटल; व=नाड़ी; धं=धमनी; श=शिरा।

भग होती है। कनीनिका में न रक्त वाहिनियाँ रहती हैं न रक्त परन्तु नाड़ियाँ बहुत होती हैं।

मध्य पटल—यह पीले सौत्रिक तंतु से निर्मित है। इस पटल में बड़ी विशेषता यह है कि इस में रक्त वाहिनियाँ अधिक होती हैं। (चित्र २७१ में ९) इस पटल के भीतरी (अर्थात् अंतरीय पटल से मिले रहने वाले) पृष्ठ पर रक्त केशिकाओं का एक घना जाल होता है। केशिकाओं के बीच में और सौत्रिक तंतु में जो सेलें रहती हैं उन में एक स्याही मायल रंग भरा रहता है। इस रंग के कारण यह पटल काला दिखाई देता है। इस पटल का अगला भाग पिछले की अपेक्षा पतला होता है। दृष्टि नाड़ी के निकट इस की मोटाई १/१४० इंच के लगभग होती है; उपतारानुमंडल के पास इस की मोटाई १/१५० इंच के लगभग रह जाती है।

उपतारानुमंडल—(चित्र २६९ में ५, २७१ में ६) इस के अंतरीय पृष्ठ पर ७० या ८० वलियाँ (मेंढ़ें) या झुर्रियाँ होती हैं (चित्र २७३); ये वलियाँ एक दूसरे के समान्तर होती हैं और ताल की परिधि के पास रहती हैं। ताल का बंधन इन वलियों से ही लगा रहता है। उपतारानुमंडल में अनैच्छिक मांस रहता है।

उपतारा—यह सौत्रिक तंतु से निर्मित है जिस में बहुत सी सेलें रहती हैं; इन सेलों में रंग रहता है। उपतारा में अनैच्छिक मांस भी होता है; कुछ मांस तारा के चारों ओर चक्रवत् लगा रहता है और कुछ पहिये के आरों के समान तारा के किनारे से आरंभ होकर परिधि की ओर जाता है। चक्रव

लगे हुए मांस के संकोच से पुतली छोटी हो जाती है; जब इस मांस का प्रसार होता है या जब दूसरे मांस का संकोच होता है तो पुतली फैलती है।

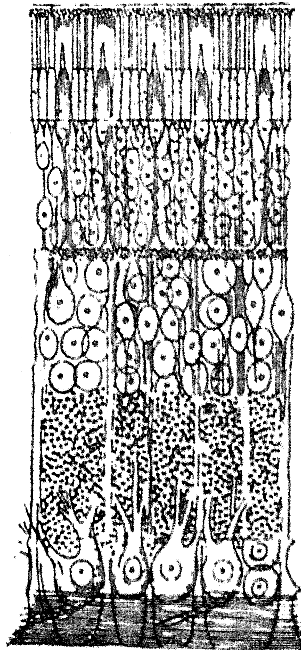
उपतारा के अगले पृष्ठ पर सेलों की एक तह होती है; जिन में रंग रहता है। पिछले पृष्ठ पर भी सेलों की तह होती है; इनमें नीललोहित रंग रहता है; वास्तव में यह तह अन्तरीय पटल का ही भाग है।

उपतारा में रक्त केशिकाओं और नाड़ियों के घने जाल होते हैं।

उपतारा का रंग सब जातियों में एक सा नहीं होता। जब उपतारा के सब भागों की सेलों में रंग रहता है तब वह स्याही मायल दिखाई दिया करती है (जैसे भारतवासियों में); जब अगले पृष्ठ की सेलों में रंग नहीं होता तब उसका रंग धूसर या भूरा सा होता है। जब पिछले पृष्ठ की सेलों को छोड़ कर शेष भाग में रंग नहीं होता तब रंग नीला सा होता है जैसे कि अँगरेज़ों में। यदि उपतारा के किसी भाग में भी रंग नहीं है तो वह लाल लाल दिखाई देती है।

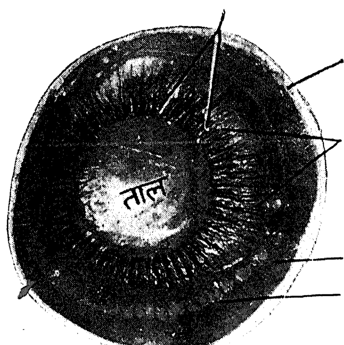
अंतरीय या सांवेदनिक पटक—(चित्र २७२) इस पटल का वही काम है जो छायाचित्रण यंत्र में मसाला चढ़ी हुई प्लेट का होता है। यह पटल नाड़ी सूत्रों से और विशेष प्रकार की सेलों से बनता है; सेलों की कई तहें होती हैं। पिछले भाग में इस की मोटाई १/६० इंच के लगभग होती है; उपतारानुमंडल के पास यह बहुत पतला हो जाता है और उसकी मोटाई १/२४० इञ्च से अधिक नहीं होती। इस पटल के उस भाग में जो उपतारा के

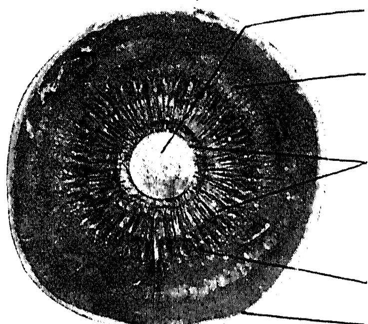
चित्र २७२ रेटीना की सूक्ष्म रचना

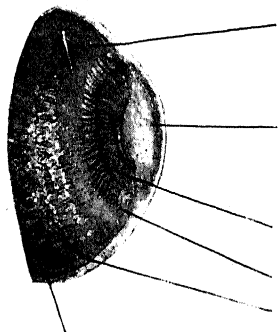


(After Max Schultze)

चित्र २७३ आँख के अगले भाग का फोटो (वास्तविक परिमाण का दुगना)







पृष्ठ ६४८ के सम्मुख

चित्र २७४ जीवित आँख के भीतरी दृश्य या फोटो



From Dimmer Clinic., Vienna, by Courtesy of Docent Dr. Guist and Assistant Dr Pillat.

जीवित मनुष्य की आंख का फोटो। शिराएं मोटी हैं, धमनियाँ पतली हैं। श्वेत चक्र दृष्टि बिम्ब (चाक्षुप बिम्ब) है।

पृष्ठ ६४९ के सम्मुख

समीप रहता है या उसके पिछले पृष्ठ से लगा रहता है नाड़ी सूत्र और सांवेदनिक सेलें नहीं पाई जातीं। जीवितावस्था में यह पटल स्वच्छ होता है और उस का रंग सेलों के भीतर एक विशेष रंग रहने के कारण नीललोहित होता है; मृत्यु के पश्चात् यह पटल अस्वच्छ और धूसर रंग का हो जाता है।

चक्षु के पाश्चात्य ध्रुव पर इस पटल के भीतरी पृष्ठ में एक गोल या अंडाकार पीला धब्बा होता है; इस को पीतबिंदु कहते हैं (चित्र २७४, २७५); पीतबिन्दु का व्यास १/२४ से १/१२ इंच तक होता है, उसके बीच में एक गढ़ा होता है जब हम कोई चीज़ देखते हैं तो अक्षिगोलक इस प्रकार गति करता है कि जिससे यह स्थान उस चीज़ के सम्मुख आ जावे ताकि प्रतिबिंब का कुछ भाग उस पर भी पड़े।

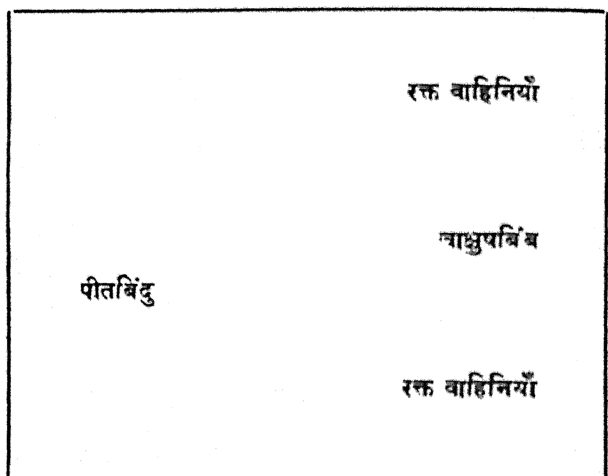
और स्थानों की अपेक्षा पीतबिंदु में देखने की शक्ति सब से अधिक होती है।

पीतबिंदु से १/६ इंच नासिका की ओर हटकर वह स्थान है जहाँ से दृष्टि नाड़ी का आरंभ होता है। इसको चाक्षुष बिंब कहते हैं (चित्र २७२, २७४); चाक्षुष बिंब के केन्द्र में बहुधा एक गढ़ा रहा करता है जिस को बिंब नाभि कहते हैं; बिंब नाभि से अन्तरीय पटल का पोषण करनेवाली रक्त वाहिनियाँ निकलती हुई दिखाई देती हैं (चित्र २७०); चाक्षुष बिब अंतरीय पटल का असांवेदनिक स्थान है; यहाँ पर वे सेलें नहीं होतीं जिनके द्वारा हम को प्रकाश का ज्ञान होता है।

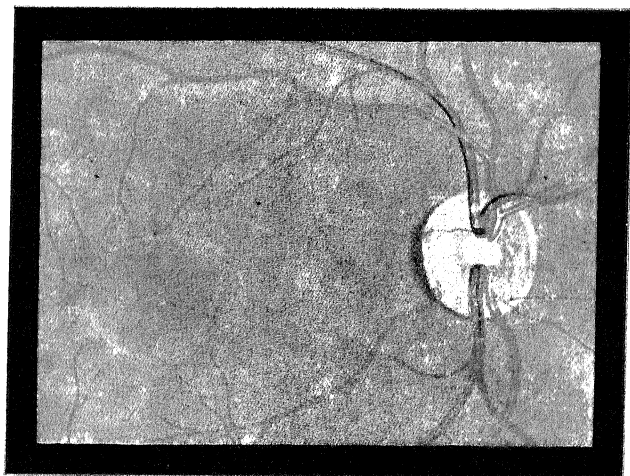
दृष्टि नाड़ी (चित्र २७५, २७४)

यह चक्षु के पिछले भाग से आरंभ होती है; जिन तारों से यह

चित्र २७५ चक्षु का भीतरी दृश्य



चित्र २७५ चाक्षुष बिम्ब और पीत बिन्दु

२  १

Reproduced by permission from Swanzy's "Diseases of the Eye" Edited by Dr. L. Werner, London H. K. Lewis & Co, Ltd, 1915.

पृष्ठ ६५० के सम्मुख

नाड़ी बनती है वे अंतरीय पटल में रहने वाली नाड़ी सेलों से निकलते हैं; ये तार केन्द्रगामी और सांवेदनिक हैं और इकट्ठे होकर चाक्षुष बिंब से मध्य और बाह्य पटलों में से होकर बाहर निकलते हैं। जब अँधेरे कमरे में लेम्प की रोशनी की सहायता से चक्षुदर्शक यंत्र द्वारा चक्षु की परीक्षा की जाती है तब चाक्षुष बिंब पूर्णिमा के चंद्र की भाँति अति सुन्दर और चमकदार दिखाई देता है। (चित्र २७४, २७५)। कई रोगों में चाक्षुष बिंब के रूप, रंग और आकार बदल जाते हैं।

अनुमान है कि दृष्टि नाड़ी में ५००००० के लगभग तार होते हैं। अक्षि खात के पिछले भाग से दृष्टि छिद्र में से होकर यह नाड़ी कपाल के भीतर पहुँचती है। मस्तिष्क के अधोभाग में और जतूकास्थि के गात्र के ऊपर एक ओर की दृष्टि नाड़ी दूसरी ओर की दृष्टि नाड़ी से जा मिलती है; दोनों नाड़ियों के मिलने से जो चीज़ बनती है उसको दृष्टि नाड़ी योजिका (चित्र २७६) कहते हैं। यहाँ पर एक ओर की नाड़ी के कुछ तार मध्य रेखा को पार करके दूसरी ओर चले जाते हैं जो तार चक्षु के कनपुटी की ओर के भाग से आते हैं वे तो उसी ओर रहते हैं परन्तु जो तार नासिका की ओर से आते हैं वे दूसरी ओर चले जाते हैं। दृष्टि नाड़ी योजिका से दृष्टिपथ का आरंभ होता है (चित्र २७६)। हर एक दृष्टिपथ में थोड़े थोड़े दोनों चक्षुओं के तार होते हैं ($\frac{2}{3}$ उसी ओर की चक्षु के और $\frac{1}{3}$ दूसरी ओर की चक्षु के)। दृष्टिपथ वृहत् मस्तिष्क में घुस जाते हैं और उनके तारों का दृष्टि केन्द्रों में जो वृहत् मस्तिष्क के पाश्चात्य खंडों में होते हैं अन्त होता है। दृष्टि केन्द्रों का न केवल एक दूसरे से प्रत्युत गति क्षेत्र और लघुमस्तिष्क से भी सम्बन्ध है।

दृष्टि

प्रकाश की किरणें कनीनिका पर पड़ती हैं; कनीनिका में से होकर वे चक्षु के भीतर प्रवेश करती हैं; जलीय रस, तारा ताल, और बृहत् कोष्ठ में रहने वाले स्वच्छ द्रव्य में से होकर वे दृष्टि पटल पर पड़ती हैं। इस पटल पर वस्तु का प्रतिबिंब बनता है। यह प्रतिबिंब उलटा होता है; हम दूसरे मनुष्य को देख रहे हों तो प्रतिबिंब में पैर ऊपर होंगे और शिर नीचे जैसे कि छाया चित्रण यंत्र में होता है। प्रकाश* की किरणों से दृष्टि पटल की सेलों में एक विचित्र रासायनिक प्रक्रिया होती है; इस प्रक्रिया

* जहां तक प्रकाश का संबंध है पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं :—

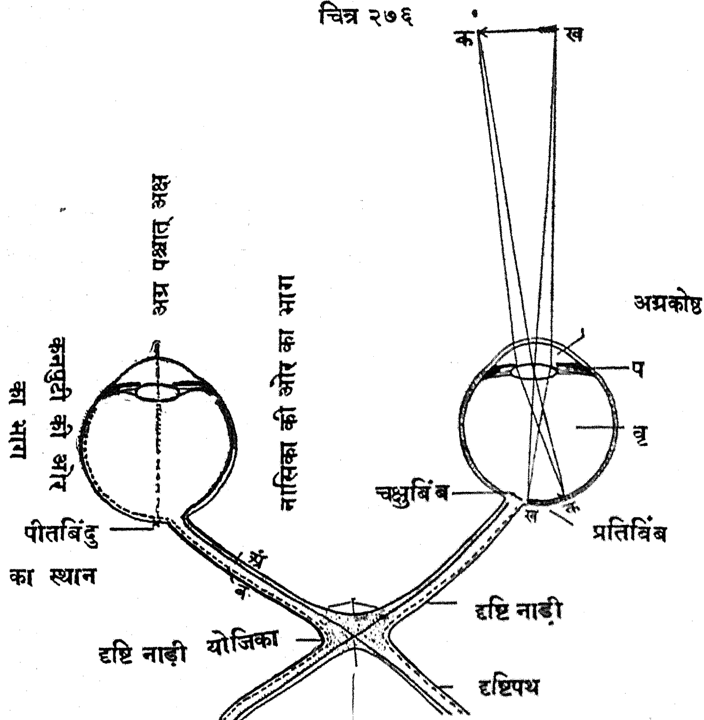
१ स्वच्छ या पारदर्शक—जिन में से प्रकाश की किरणें अच्छी तरह से गुज़र सकें जैसे जल, वायु, कांच, कनीनिका, चक्षु ताल।

२ अस्वच्छ या अपारदर्शक—जिन में से प्रकाश बिलकुल न जा सके जैसे लकड़ी, लोहा, चमड़ा इत्यादि।

३ अर्धस्वच्छ—जिन में से प्रकाश जा सके परन्तु अच्छी तरह से नहीं जैसे कई प्रकार के तेल, पतला कागज़ धुंधला कांच।

जिस चीज़ में से होकर प्रकाश जाता है उसको 'माध्यम' कहते हैं; वायु एक माध्यम है, जल दूसरा माध्यम है इत्यादि। सब माध्यमों का घनत्व एक जैसा नहीं होता। जब तक प्रकाश एक ही माध्यम में रहता है उस की किरणें सीधी रहती हैं परन्तु जब एक माध्यम से दूसरे कम या अधिक घनत्व वाले माध्यम में जाता है तब दोनों माध्यमों के मेल के स्थान पर किरणें मुड़ जाती हैं ; इस भौतिक क्रिया को **वर्तन** कहते हैं जितना घना कोई माध्यम होता है उतना ही अधिक वह किरणों का वर्तन

है न बढ़ता है और तारानुमंडल के मांस को भी संकोच नहीं करना पड़ता। परन्तु जितनी वस्तुएं आँख से २० फुट से कम दूरी पर हैं उनका प्रतिबिंब ताल का आकार स्थिर रहते



चित्र २७६

तार एक ओर से दूसरी ओर को जा रहे हैं

प=पाश्चात्य कोष्ठ; वृ=वृहत् कोष्ठ।

हुए दृष्टिपटल पर नहीं पड़ेगा। इस कारण २० फुट से कम दूरी

की चीज़ों को देखने के लिये ताल का उन्नतोदरत्व अधिक करना पड़ता है; यह काम उस मांस के संकोच से होता है जो उपतारानुमंडल में रहता है सामान्यतः हम ८, ९ इंच से ज़्यादा नज़दीक को चीज़ों को साफ़ साफ़ नहीं देख सकते क्योंकि ताल का उन्नतोदरत्व उतना नहीं हो सकता जिससे इन चीज़ों का प्रतिबिंब दृष्टि पटल पर पड़ सके।

कुछ मनुष्यों के अक्षिगोलक की बनावट ऐसी होती है कि उनमें २० फुट या इससे अधिक दूरी की वस्तुओं का प्रतिबिंब ठीक दृष्टिपटल पर नहीं पड़ता; ये चीज़ें या तो दिखाई नहीं देतीं या धुँधली मालूम होती हैं। जब आँख दूर की चीज़ें न देख सके तब यह रोग **दूरदर्शनासामर्थ्य** कहलाता है (इस को "निकट दृष्टि" भी कह देते हैं)। ऐसे मनुष्य नज़दीक की चीज़ें खूब देख सकते हैं। बहुत से बालक पढ़ते समय पुस्तक को आँख के बहुत पास रखते हैं और मेज़ पर बहुत झुककर पढ़ते और लिखते हैं; ऐसे बालकों को बहुधा निकटदृष्टि रोग होता है। यह दोष ऐनक से दूर हो जाता है; ऐनक के ताल युगलनतोदर होते हैं; यदि ऐनक का प्रयोग न किया जावे तो रोग बढ़ता जाता है।

कुछ मनुष्यों की आँख को बनावट इस प्रकार होती है कि उन को दूर की चीज़ें देखने में आम तौर से कोई कठिनाई नहीं होतो परन्तु वे नज़दीक की चीज़ें साफ़ साफ़ और आसानी से नहीं देख पाते; पढ़ने लिखने में उनको कष्ट होता है; उनकी आँखें शीघ्र थक जाती हैं और माथे और आँखों में दर्द होने लगता है; यह **निकटदर्शनासामर्थ्य** या "दूर दृष्टि" रोग है। यह दोष युगलोन्नतोदर तालों से दूर हो जाता

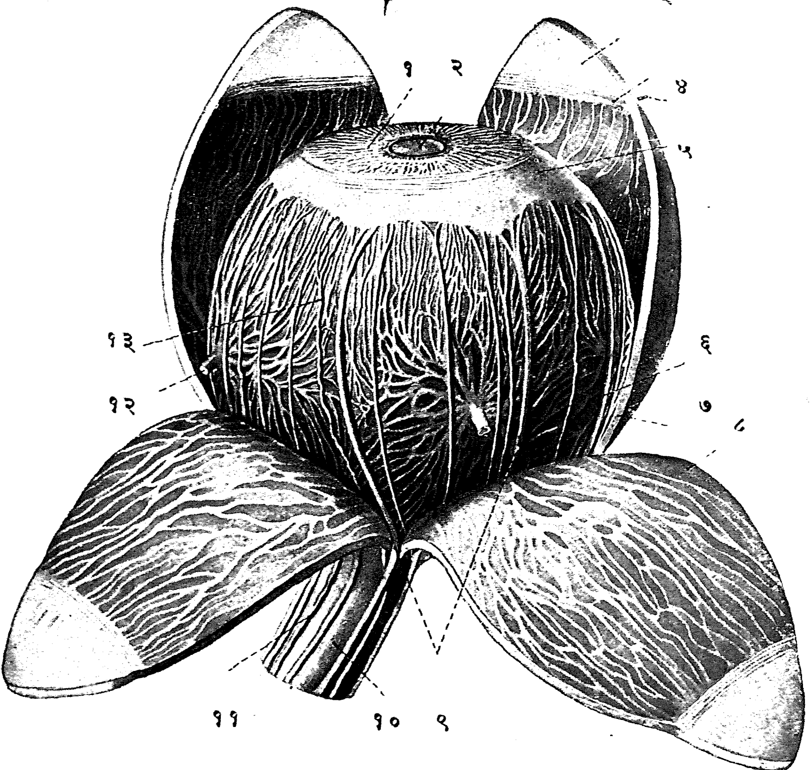
है। ४०, ४५ वर्ष की आयु के पश्चात् बहुत से लोगों को पुस्तक इत्यादि पढ़ने में कुछ कठिनाई होने लगती है ; छोटी छोटी चीज़ें साफ़ साफ़ दिखाई नहीं देतीं ; चीज़ों को अच्छी तरह देखने के लिये तेज़ प्रकाश की आवश्यकता मालूम होती है। यह दोष भी युगलोन्नतोदर तालों से दूर हो जाता है।

चक्षु उसी समय तक ठीक काम कर सकते हैं जब तक सब माध्यम स्वच्छ हों। यदि कनीनिका, जलीय द्रव, ताल और ताल के पीछे रहने वाले द्रव्य में से कोई भी अस्वच्छ हो जावे तो दृष्टि में फ़र्क़ आ जायगा। जब रोहों की रगड़ से कनीनिका धुँधली हो जाती है या ज़ख़्मों के परिणाम से उसमें श्वेत अस्वच्छ तिल बन जाते हैं। तब प्रकाश अच्छी तरह भीतर नहीं जा सकता। वृद्धावस्था में (कभी कभी बचपन और जवानी में भी) ताल के धुँधले हो जाने से भी दृष्टि कम हो जाती है या जाती रहती है ; धुँधला ताल निकलवा देने से दृष्टि फिर आ जाती है। दृष्टि पटल, मध्य पटल, दृष्टि नाड़ी, दृष्टि केन्द्र के रोगों से भी दृष्टि ख़राब हो जाती है।

चित्र २७७ की व्याख्या

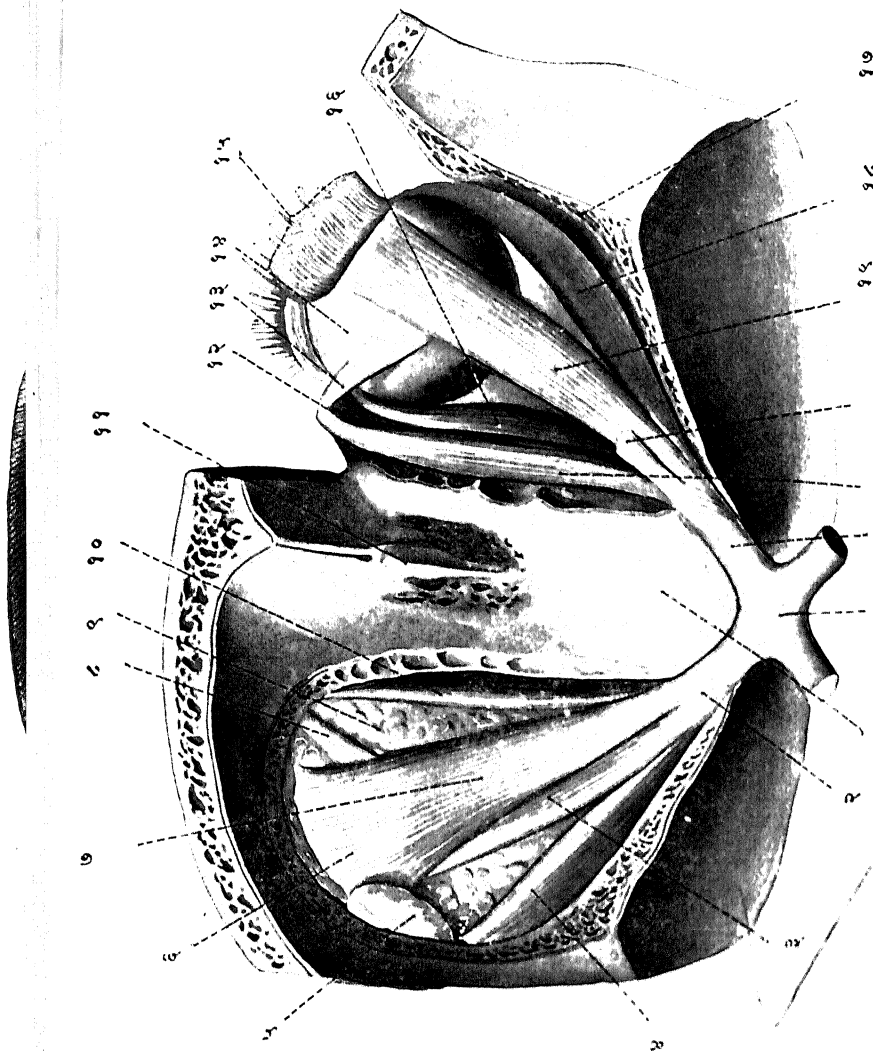
१=उपतारा
२=ताल
३=कनीनिका (पिछला पृष्ठ)
४=अग्र माण्डलिक धमनी
५=उपतारानुमण्डल
६=माण्डलिक नाड़ी
७=बाह्य पटल
८=बाह्य पटल का भूरा पड़त
९=माण्डलिक नाड़ियाँ
१०=दृष्टि नाड़ी
११=पाश्चात्य माण्डलिक धमनियाँ
१२=चक्रवत् शिरा
१३=पाश्चात्य दीर्घ माण्डलि[k]
धमनी

प्लेट ६८



चित्र २७७ (Sobotta) बाह्य पटल हटाकर नाड़ियाँ और रक्त वाहिनियाँ दिखाई गई हैं

पृष्ठ ६५६ के सम्मुख



(Sobotta's Anatomie des Menschen)

पृष्ठ ६५१ के सम्मुख

चित्र २७८ की व्याख्या

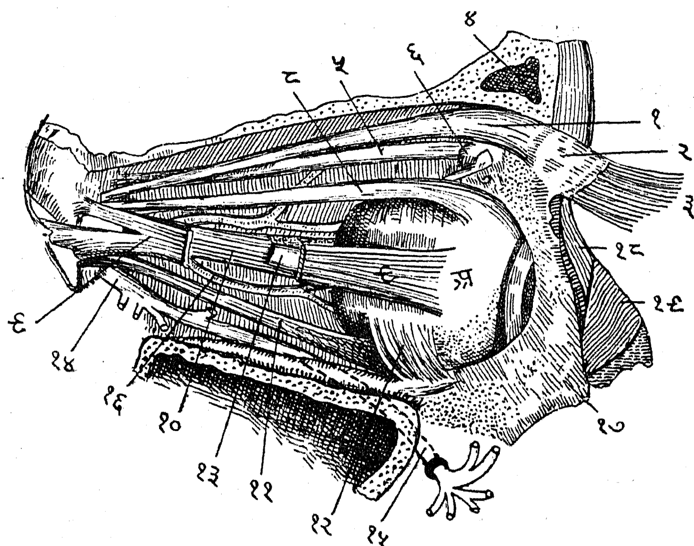
१=अग्र खात का मस्तिष्क बाह्यावरण
२=पेशियों का कंडराकृत उत्पत्तिस्थान
३=सरलोर्ध्व नेत्र चालनी पे०
४=सरलबहिर्नेत्र चालनी ,,
५=अश्रु ग्रन्थि (ऊपर का भाग)
६=ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका की कंडरा
७=ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका
८=वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी की कंडरा
९=अक्षि गूहा की वसा
१०=वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी पे०
११=झर्झर कंटक
१२=वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी की घिड़री
१३=वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी की कंडरा
१४=अक्षि गोलक
१५=ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिका
१६=सरलांतर्नेत्र चालनी
१७=जतूका बृहत् पक्ष
१८=सरलबहिर्नेत्र चालनी
१९=सरलोर्ध्व नेत्र चालनी
२०=ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका (कटीहुई)
२१=वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी
२२=दृष्टि नाड़ी
२३=दृष्टि नाड़ी योजिका

२० फुट से अधिक दूरी की चीज़ों के देखने से आँखों पर ज़ोर नहीं पड़ता ; उपतारानुमंडल के मांस को संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। इससे कम दूर की चीज़ों के देखने के लिये मांस को संकोच करना पड़ता है। बारीक अक्षरों का पढ़ना, सीना, काढ़ना, चित्रकारी, नक़शे खींचना स्वर्णकारी, घड़ीसाज़ी, सूक्ष्मदर्शक यंत्र से काम लेना—इन सब कामों से आँख पर ज़ोर पड़ता है ; जहाँ तक हो सके ये काम लगातार बहुत देर तक नहीं करने चाहियें। कम प्रकाश में पढ़ना या कोई और काम करना आँखों को हानि पहुँचाता है; अधिक प्रकाश—जैसे सूर्य की ओर देखना या भट्टी की ओर बहुत देर तक देखना—भी हानिकारक है। पुस्तक के ऊपर झुक कर या शिर बहुत नीचा करके बैठना और लेट कर पढ़ना भी अच्छा नहीं। पढ़ते और लिखते समय प्रकाश हमेशा बाईं ओर से या पीछे से आना चाहिये, दाहिनी ओर से आयेगा तो हाथ की छाया पड़ने के कारण अच्छी तरह से न लिखा जायेगा। सामने से प्रकाश आयेगा तो वह आँखों पर पड़ेगा जो न केवल अनावश्यक है परन्तु आँखों को हानि भी पहुँचाता है। पुस्तक को आँख से १२ या १३ इंच से ज़्यादा नज़दीक न रखना चाहिये।

नेत्रचालनी पेशियाँ (चित्र २७८,२७९)

अक्षिगोलक को इधर उधर घुमाने के लिये उसमें ६ पेशियाँ लगी हैं। ये पेशियाँ अक्षिगुहा के पिछले भाग से (उस छिद्र के किनारों से जिसमें से होकर दृष्टि नाड़ी कपाल में जाती है) आरंभ होती हैं और बाह्य पटल से लगी रहती हैं। इनमें से चार

चित्र २७९—नेत्रचालनी पेशियाँ



व्याख्या :—

१=ऊर्ध्वनेत्रच्छदोत्थापिका पेशी; २=ऊर्ध्वनेत्रच्छद फलक; ३=अक्षि पक्ष्मन्; ४=ललाट कोटर; ५=वक्रोर्ध्व नेत्रचालनी; ६=घिडरी; ७=नं० ५ की कंडरा; ८=सरलोर्ध्व नेत्रचालनी; ९=बहिर्नेत्रचालनी; १०=सरलांतर्नेत्रचालनी; ११=सरलाधो नेत्रचालनी; १२=वक्राधो नेत्रचालनी; १३=दृष्टि नाड़ी; १४, १५=नेत्राधरीय नाड़ी; १६=चाक्षुषी धमनी; १७=ऊर्ध्व हनु का ललाट प्रवर्द्धन।

पेशियाँ सीधी (सरल) हैं—एक ऊपर, एक नीचे, एक अंदर के कोये की ओर, एक बाहर के कोये की ओर; दो पेशियाँ तिर्छी

या वक्र हैं एक ऊपर और दूसरी नीचे। इन पेशियों के

चित्र २८०

(From Cunningham's Practical Anatomy)

१=घिडरी; २=वक्रोर्ध्व नेत्रचालनी; ३=सरलाधो नेत्रचालनी; सरलांतर्नेत्रचालनी; ५=चतुर्थी नाड़ी; ६=षष्ठी नाड़ी; ७=दृष्टि नाड़ी तृतीया नाड़ी; ९=षष्ठी नाड़ी; १०=चतुर्थी नाड़ी; ११=पंचमी नाड़ी तीसरी शाखा; १२=चन्द्राकार नाड़ी गंड।

ये हैं :—सरलोर्ध्वनेत्रचालनी (चित्र २७९ में ८); सरलाधो नेत्रचालनी (११) सरलांतर्नेत्रचालनी (१०) सरलबहिर्नेत्रचालनी (९) वक्रोर्ध्व नेत्रचालनी (५) वक्राधो नेत्रचालनी (१२)। इन पेशियों के संकोच से आँख चारों ओर अच्छी तरह घूम सकती है। जब हम किसी ओर (जैसे दाहिनी ओर या बाईं ओर) देखते हैं तो दोनों आँखें साथ साथ घूमती हैं। कभी कभी पेशियों के ठीक ठीक संकोच न करने से या उनके पक्षाघातग्रस्त हो जाने से दोनों आँखें साथ साथ नहीं घूमतीं; आँखों में भेंगापन आ जाता है—इसी को तिर्यक् दृष्टि या वक्रदृष्टि कहते हैं।

चक्षु सम्बन्धी और अंग

१—पलक या नेत्रच्छद

२—अश्रु ग्रन्थियाँ

पलक

प्रत्येक आँख में दो पलक होते हैं एक ऊपर (ऊर्ध्व नेत्रच्छद) दूसरा नीचे (अधोनेत्रच्छद)। पलक के बाहरी पृष्ठ पर त्वचा लगी रहती है, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला होती है; इन दोनों के बीच में सौत्रिक तन्तु से निर्मित एक मुड़ी हुई मोटी पट्टी (या फलक) रहती है जिसके कारण पलक में कुछ दृढ़ता रहती है और उसका आकार स्थिर रहता है। दोनों पलकों में

त्वचा और फलक के बीच में नेत्रनिमीलनी पेशी का कुछ भा रहता है ; इस पेशी के संकोच से पलक झपकते तथा बंद हो हैं। श्लैष्मिक कला पतली होती है और रक्त केशिकाओं के कार उसके रंग में कुछ लाली रहा करती है।

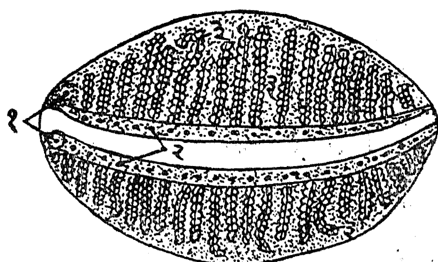
ऊर्ध्व नेत्रच्छद् में नेत्रफलक के ऊपर के किनारे से एव विशेष पेशी को कंडरा लगी रहती है ; इस पेशी को ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिका कहते हैं ; यह अक्षिखात के उसी भाग से आरंभ होती है जहाँ से और ६ पेशियाँ आरंभ होती हैं (चित्र २७९ में १) ; इस पेशी का काम पलक को ऊपर उठाना है। अधोनेत्रच्छद् में ऐसी कोई पेशी नहीं होती।

दोनों पलकों में नेत्रफलक और श्लैष्मिक कला के बीच में पतली परन्तु लम्बी नलाकार ग्रन्थियाँ रहती हैं। ऊपर के पलक में कोई ३० ग्रन्थियाँ होती हैं ; नीचे के पलक में कुछ कम होती हैं। पलक उलटने पर ये ग्रन्थियाँ श्लैष्मिक कला में से चमकती हुई श्वेतधारियों जैसी दिखाई देती हैं (चित्र २८१ में ३)

पलकों के किनारों पर बाल होते हैं ; ये अक्षिपक्ष्मन् कहलाते हैं। ऊपर के पलक के बाल ऊपर मोड़ खाये रहते हैं (उन्नतोदरत्व नीचे को रहता है) ; नीचे के पलक के बाल नीचे को मुड़े हैं (उन्नतोदरत्व ऊपर को रहता है) ; इस से यह होता है कि जब पलक बंद होते हैं तब बाल एक दूसरे में फँसने नहीं पाते। बालों की जड़ों (लोमकूपों) से कुछ चिकनी वस्तु बनाने वाली ग्रन्थियाँ लगी रहती हैं। इन ग्रन्थियों के प्रदाह को ही गोहाई या अंजनयारी कहते हैं।

चित्र २८१

इस चित्र में नेत्रच्छद ग्रन्थियाँ दर्शाई गई हैं



१=अश्रु छिद्र
२=ग्रन्थियों के मुख
३=पलक की ग्रन्थियाँ

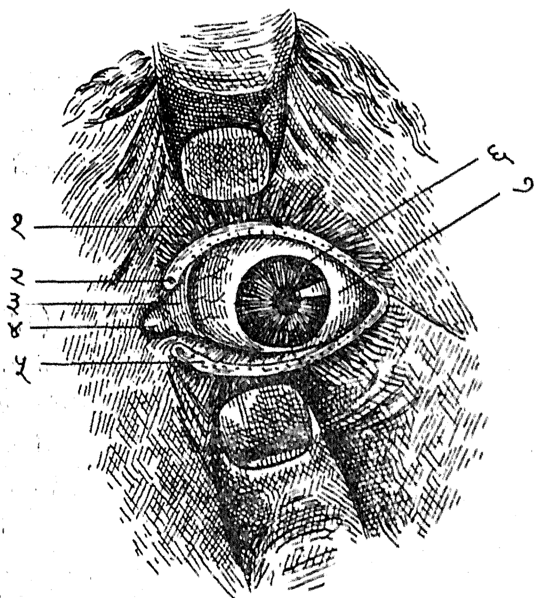
ऊर्ध्वनेत्रच्छद में पक्ष्मन् की पंक्ति के पीछे (कनीनिका की ओर) और अधोनेत्रच्छद में पक्ष्मन् की पंक्ति के आगे (कनीनिका की ओर) ध्यान से देखने से छोटे छोटे छिद्रों की एक पंक्ति दिखाई देती है। ये श्लैष्मिक कला और नेत्र फलक के बीच में रहने वाली ग्रन्थियों के मुख हैं (चित्र २८१ में २; चित्र २८२ में ५); कभी कभी विकारों के कारण इन ग्रन्थियों में एक चेपदार वस्तु बनने लगती है जिसके कारण सोते समय पलकों के किनारे एक दूसरे से चिपक जाया करते हैं कभी कभी इन ग्रन्थियों का प्रदाह हो जाता है या उन के स्राव के इकट्ठा होने से अर्बुद (रसौली) बन जाते हैं।

जहाँ दोनों पलक आपस में एक दूसरे से जुड़ते हैं, उस स्थान को कोया या अपांग कहते हैं।

नासिका की ओर वाले अपांग में दोनों पलकों के सम्मुख किनारों पर दो छोटे उभार होते हैं। प्रत्येक को अश्रु अंकुर

कहते हैं ; अश्रु अंकुर की शिखर पर एक छिद्र होता है जिस

चित्र २८२



१=अक्षि पक्ष्मन् २=अश्रुछिद्र ३=अर्धचन्द्राकार पिण्ड
४=शंकाकार पिण्ड ५=ग्रन्थियों के मुख ६=कनीनिका
७=श्लैष्मिक कला जिसमें से बाह्य पटल दिखाई देता है

का नाम अश्रुछिद्र है (चित्र २८२ में २ अश्रुछिद्र में से ही हो कर अश्रु आँख से नासिका में जाया करते हैं । इस अपांग में दो चीज़ें और दिखाई देती हैं । एक तो छोटा सा लाल लाल

पिंड है (चित्र २८२ में ४) ; यह वास्तव में त्वचा का भाग है ; इसमें नन्हें नन्हें बाल और कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं ; इस कोये में जो मैल (ढीड) बनता है वह इसी पिंड की ग्रन्थियों में बनता है । इस लाल पिंड के नीचे एक त्रिकोण या अर्धचन्द्राकार चीज़ रहती है (चित्र २८२ में ३) ; यह श्लैष्मिक कला का भाग है ।

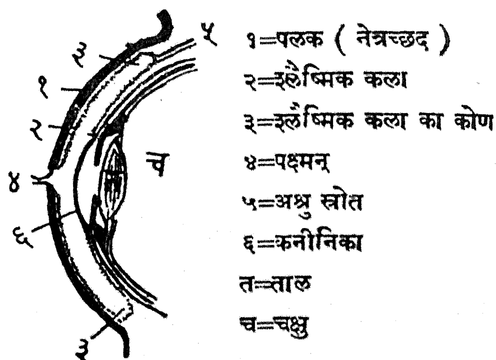
आँख की श्लैष्मिक कला (चित्र २८३)

यह झिल्ली दोनों पलकों के भीतरी पृष्ठों पर और अक्षि गोलक के अगले भाग पर लगी रहती है । जिस स्थान पर यह झिल्ली पलक को छोड़कर अक्षिगोलक पर आती है या यूं समझो कि जहाँ पलक की झिल्ली अक्षिगोलक की झिल्ली से मिलती है वहाँ एक कोण बनता है (चित्र २८३ में ३) एक कोण ऊपर होता है, दूसरा नीचे ।

कनीनिका के पृष्ठ पर इस झिल्ली की सब तहें नहीं रहतीं; केवल सेलों की तह ही रहती है ; सौत्रिक तंतु और रक्त केशिकाएं नहीं रहतीं ।

श्लैष्मिक कला बाह्य पटल से खूब नहीं चिपटी रहती यदि आप चाहें तो चिमटी से उसके किसी भाग को बाह्य पटल से उठा सकते हैं । 'आँख का दुखने आना' साधारणतः इसी कला के प्रदाह को कहते हैं । पलकों की झिल्ली में कभी कभी नन्हें नन्हें दाने बन जाया करते हैं, यह रोहों का रोग है । रोहों की रगड़ से कनीनिका के धुँधले हो जाने का डर रहता है ।

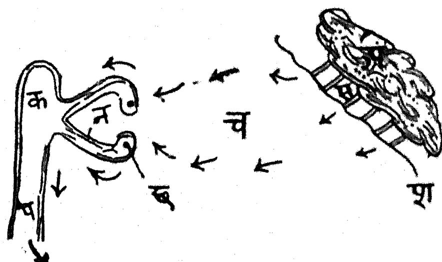
चित्र २८३



अश्रुग्रन्थि (चित्र २९५, २८४)

यह ग्रन्थि बादाम के बराबर होती है। नेत्रगुहा की छत

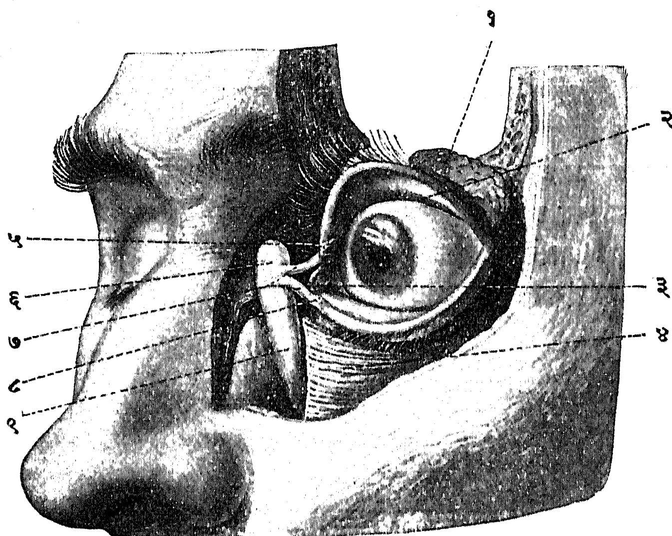
चित्र २८४ बाईं अश्रुग्रन्थि



अ=अश्रुग्रन्थि; स=अश्रु स्रोत; श=श्लैष्मिक कला का कोण; च=चक्षु; छ=अश्रु अंकुर का अश्रु छिद्र; न=अश्रु वाहिनी; क=अश्रु कोष; प=अश्रु प्रणाली।

में (नेत्रच्छदिफलक में) कनपुटी की ओर एक गढ़ा होता है जिस को अश्रुग्रन्थिखात कहते हैं ; अश्रुग्रन्थि इसी खात में रहती है ; ग्रन्थि और अक्षिगोलक के बीच में आँख की दो

चित्र २८५ अश्रुग्रन्थि



(From Sobotta's Anatomie des Menschen)

१=अश्रु ग्रन्थि ; २=अश्रु स्रोत ; ३=अश्रु अंकुर ;
४=नेत्र निमीलनी पे० ; ५=अश्रु छिद्र (ऊर्ध्व) ; ६=अश्रु कोष ;
७=अश्रु वाहिनी ; ८=अश्रु छिद्र (अधर) ; ९=अश्रु प्रणाली

पेशियाँ रहती हैं। ग्रन्थि के नीचे के पृष्ठ का कुछ भाग श्लैष्मिक कला से ढका रहता है। इस ग्रन्थि से दस बारह पतली पतली

नलियाँ निकलती हैं जो श्लैष्मिक कला के ऊपर के कोण में खुलती हैं (देखो चित्र २८४ में स; चित्र २८३ में ५)।

इस ग्रन्थि में जो रस बनता है उस को अश्रु या आँसू कहते हैं। यह एक स्वच्छ जलीय रस है; इसका स्वाद लवण होता है। इसका काम पलकों और अक्षिगोलक के सम्मुख पृष्ठों को तर रखना है। साधारणतः यह रस इतना ही बनता है कि जिससे श्लैष्मिक कला कुछ तर रहे क्योंकि उसकी तरी का हरदम वाष्पीभवन होता रहता है; जब हम रोते हैं तब अश्रु अधिक बनते हैं और आँखों से टपकने लगते हैं। नासिका का आँख से सम्बन्ध है इसलिये रोते समय अश्रु कभी कभी नासिका में चले जाते हैं और नासारन्ध्र में से टपकने लगते हैं (देखो चित्र २८४ और अध्याय २४)।

अध्याय २४

नासिका—घ्राणेन्द्रिय

चेहरे के ऊपर के भाग में दोनों नेत्रों के बीच में मस्तक के नीचे और मुख के ऊपर नासिका रहती है। नासिका के वास्तव में दो भाग हैं :—

१—वह भाग जो बाहर से दिखाई देता है; इसको बहिर्नासिका या नाक कहते हैं।

२—वह भाग जो नथुनों में से दिखाई देता है; यह भाग एक परदे द्वारा दाहिने और बाएँ दो भागों में विभक्त है; प्रत्येक भाग को नासा गुहा या नासा खात कहते हैं।

बहिर्नासिका या नाक

नाक का नीचे का भाग मुलायम होता है और दबाने से भिच जाता है; ऊपर का भाग जो मस्तक के निकट है दृढ़ होता है; मुलायम भाग त्वचा, मांस और कारटिलेज से बनता है; कड़े भाग में अस्थियाँ हैं। नाक के दो ढालू पार्श्व हैं और उसकी तली में दो छिद्र होते हैं जिनको नकने, नथुने या नासारन्ध्र कहते हैं। नाक का वह भाग जो मस्तक के नीचे है और जिस पर ऐनक टिका करती है नासावंश या नासा सेतु कहलाता है; इस भाग में नासास्थियाँ होती हैं (देखो चित्र १६६)।

नासा गुहा

नासारन्ध्रों में से देखने से मध्य रेखा के इधर उधर एक एक नाली दिखाई देती है; यही नासा गुहा या खात है। दोनों नासा खातों के बीच में एक खड़ा परदा लगा रहता है। परदे का अगला भाग कारटिलेज से बनता है; पिछला भाग अस्थिकृत है। अस्थिकृत भाग का अधिक भाग नासाफलकास्थि और झर्झरास्थि (बहुछिद्रास्थि) के मध्य फलक से बनता है; जतूकास्थि, नासास्थियाँ, ऊर्ध्व हन्वस्थियाँ, तथा तालवस्थियाँ भी कुछ सहायता देती हैं। परदा प्रायः दाहिनी या बाईं ओर को कुछ झुका रहता है। अस्थियों और कारटिलेज के पृष्ठों पर श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है (चित्र २८८)।

प्रत्येक नासा गुहा के सम्बन्ध में ये चीज़ें होती हैं:—

१—फ़र्श (या गुहा भूमि); २—छत (या गुहाच्छदि), ३—भीतरी दीवार या अन्तः प्राचीर, ४—बाहरी दीवार या बहिः प्राचीर, ५—नासारंध्र या नासा पुरोद्वार, ६—नासा पश्चिमद्वार।

फ़र्श—जिन अस्थियों से कठिन तालु बनता है उन्हीं अस्थियों के ऊपर के पृष्ठों से नासा गुहा का फ़र्श बनता है। ये अस्थियाँ दो हैं; फ़र्श का अगला $\frac{3}{4}$ भाग ऊर्ध्व हन्वस्थि के तालव प्रवर्धन (या तालु फलक) से बनता है, पिछला $\frac{1}{4}$ भाग तालवस्थि के समस्थ भाग से। अस्थियों के ऊपर श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। फ़र्श का ढलान पीछे को कंठ की ओर होता है। उसके पिछले किनारे से कोमल तालु लगा रहता है (चित्र २८७ में त)।

छत—यह कई अस्थियों के अंशों के आपस में जुड़ने से बनती है। छत का बीच का भाग क्षितिज होता है और अगले और पिछले भाग ढालू। बीच का क्षितिज भाग झर्झरास्थि के चालनी पटल से बनता है; अगला भाग नासास्थि और ललाटास्थि के अंशों से बनता है; पिछले भाग के बनाने में जतूकास्थि का गात्र, नासाफलकास्थि और तालव्रस्थि का जतूक प्रवर्धन सहायता देते हैं। छत के क्षितिज भाग के छिद्रों में से होकर घ्राण नाड़ियाँ कपाल में घुसती हैं। छत की चौड़ाई बहुत थोड़ी होती है।

भीतरी दीवार—यह परदे से बनती है जिस का वर्णन पीछे हो चुका है।

बाहरी दीवार—(देखो चित्र २८६, २८७, २८८)—इस का अगला भाग जिस से नकना बनता है मुलायम होता है; इस में कारटिलेज होता है जिसके ऊपर त्वचा चढ़ी रहती है; त्वचा में मोटे बाल होते हैं। शेष भाग अस्थिकृत है। उसके बनाने में नासास्थि, ऊर्ध्व हन्वस्थि का गात्र और ललाट प्रवर्धन अधो शुक्तिका (अधः सीपाकृति), झर्झरास्थि (बहुछिद्रास्थि) का पार्श्व पिंड, और तालव्रस्थि का ऊर्ध्व भाग सहायता देते हैं (देखो चित्र २८६ में न, ७, अ, त, म, ऊ)। झर्झरास्थि की दोनों शुक्तिकास्थियाँ इस दीवार पर रहती हैं (चित्र २८६ में ऊ. म); इस प्रकार इस दीवार में तीनों शुक्तिकाएं दिखाई देती हैं—अधो शुक्तिका सब से नीचे (अ), मध्य शुक्तिका उसके ऊपर (म), ऊर्ध्व शुक्तिका सब से ऊपर और पिछले भाग में (ऊ)। यदि हम नासारंध्रों में से देखें तो मध्य और अधो शुक्तिका के अगले

सिरे दिखाई देंगे। इन तीनों शुक्तिकाओं द्वारा नासा गुहा में तीन नालियाँ या सुरंगें बन जाती हैं :—

चित्र २८६ कपाल के दाहिने भाग का भीतरी पृष्ठ

१=ललाटास्थि का ऊर्ध्व भाग; २=ललाटास्थि का समस्थ भाग (नेत्रच्छदि फलक); ३=ललाट कोटर; ४=शिखर कण्टक; ५=झर्झरास्थि के मध्य फलक का अंश; ६=ऊर्ध्व सुरंगा; ७=ऊर्ध्व हन्वस्थि का ललाट प्रवर्धन (या कूट); ८=ऊर्ध्व हन्वस्थि का तालु फलक; ९=ताल्वस्थि का समस्थ भाग; १०=हाइपोफिसिस खात; ११=सेवनी; १२=सेवनी; १३=जतूकास्थि के बृहत् पक्ष का भाग, १४=सेवनी; १५ सेवनी; १६ शङ्ख चक्र; १७=पश्चात् अस्थि का बृहत्मस्तिष्क खात; १८=लघुमस्तिष्क खात; १९=पार्श्व शिराकुल्या परिखा; २०=पार्श्व शिराकुल्या परिखा; २१=अश्मकूट; २२=पश्चात् अस्थि का समस्थ भाग; २३=अर्बुद जो पहिले कशेरुका पर टिकता है; २४=सेवनी; २५=जिह्वाधोवर्ती नाड़ी का छिद्र; २६, २७=धमनी परिखा; २८=पाश्चात्य अर्बुद; २९=ऊर्ध्व अन्वायाम शिराकुल्या परिखा; ३०=कीलाकार या शिफा प्रवर्द्धन; ३१=कर्णान्तर्द्वार; ३२, ३३=अश्रुवाहिका का नासिका की अधोसुरंगा से सम्बन्ध है, यह डोरा अक्षि गुहा से नासिका में निकल आया; ३४=ऊर्ध्व हन्वस्थि कोटर।

म=सींक मध्य सुरंगा में है;
ल=ललाटास्थि;
प=पश्चात् अस्थि;
ज=जतूकास्थि;
न=नासास्थि ऊ=ऊर्ध्व शुक्तिका;
अ=अधो शुक्तिका;
त=ताल्वस्थि

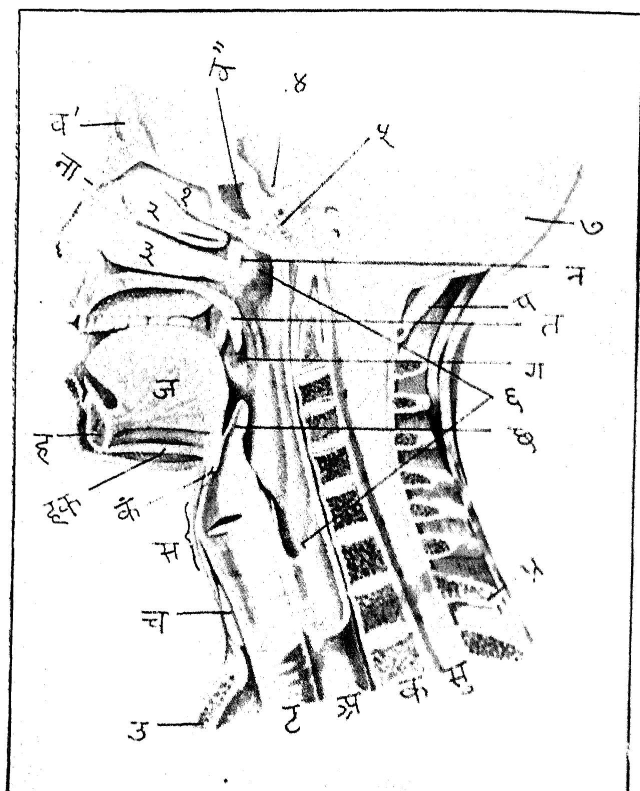
अ (चित्र से बाहर)=सींक अधो सुरंगा में है;
पा=पार्श्वास्थि;
शं=शङ्खास्थि;
ब=झर्झरास्थि;
म=मध्य शुक्तिका;
ह=ऊर्ध्व हन्वस्थि;

चित्र २८६ कपाल के दाहिने भाग का अंतः पृष्ठ

त्रि० ना० वर्मा

पृष्ठ ६७२ के सम्मुख

चित्र २८७ लम्बाई के रुख़ बीच में से कटा हुआ शिर



(After Lonamy)

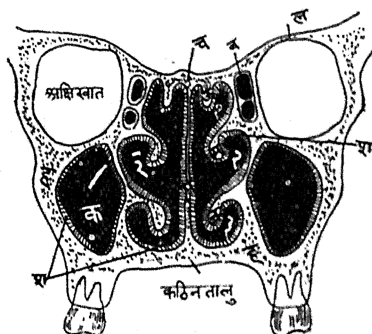
चित्र २८७ की व्याख्या

१=ऊर्ध्व शुक्तिका	२=मध्य शुक्तिका
३=अधो शुक्तिका	४=हाइपोफिसिस या पिट्युटिरीखात
५=जतूकास्थि	६=कंठ
७=पाश्चात्य अस्थि	
व'=ललाट कोटर	व''=जतूकाकोटर
ना=नासास्थि	ह=अधो हन्वस्थि (कटी हुई)
कं=कंठिकास्थि (कटी हुई)	ह क=चिबुक कंठिका पेशी
स=स्वर यंत्र	च=चुल्लिका ग्रन्थि (कटी हुई)
उ=उरोस्थि	ट=टेंटुवा
अ=अन्नप्रणाली	क=कशेरुका (कटा हुआ)
सु=इस नाली में सुषुम्ना रहती है	प्र=कशेरु कण्टक
छ=स्वर यंत्रच्छद	ग=ताल्व ग्रन्थि
त=कोमल तालु	प=पेशियाँ
न=कंठकर्णी नाली का मुख	ज=जिह्वा का मांस या चिबुक जिह्वा कंठिका पेशी।

(१) एक अधो शुक्तिका के नीचे (चित्र २८६ में इस में 'अ' सींक है); इस को नासाधः सुरंगा कहते हैं (चित्र २८८ में ३)।

(२) दूसरी मध्य शुक्तिका और अधो शुक्तिका के बीच में (चित्र २८६ में इस में 'म' सींक है); इस को नासा मध्य सुरंगा कहते हैं (चित्र २८८ में २)।

चित्र २८८—इस चित्र में नासा गुहा की सुरंगें दर्शाई गई हैं



च=चालनी पटल; ब=बहुछिद्रास्थि कोटर; ल=ललाटास्थि का नेत्र-च्छदि फलक; ऊ=ऊर्ध्व शुक्तिका; म=मध्य शुक्तिका; न=अधो शुक्तिका; १=ऊर्ध्व सुरंगा; २=मध्य सुरंगा; ३=अधः सुरंगा; क=ऊर्ध्व हन्वस्थि कोटर; इसका मध्य सुरंगा से सम्बन्ध श्वेत रेखा द्वारा दिखाया गया है; श=श्लैष्मिक कला; प=परदा; ह=ऊर्ध्व हनु ।

(३) तीसरी ऊर्ध्व शुक्तिका और मध्य शुक्तिका के बीच में चित्र २८६ में ६); इस को नासा ऊर्ध्व सुरंगा कहते हैं (चित्र २८८ में १)। यह तीनों में सब से छोटी होती है ।

इस दीवार के सब भागों पर श्लैष्मिक कला लगी रहती है। यदि आप अपनी नाक के पार्श्व को अंतरीय अपांग के पास दबावें तो आपको एक गढ़ा सा मालूम होगा; यहाँ से अश्रु-वाहिका नामक नाली का आरम्भ होता है; यह नाली नासिका की बाहरी दीवार में रहती है और इसका अंत नासा गुहा के अगले भाग में होता है; चित्र २८६ में एक डोरा (३२) अश्रु वाहिका में डालकर अधः सुरंगा में से निकाला गया है (३३)। जब हम अधिक रोते हैं तो कभी कभी आँसू नासिका से भी बहने लगते हैं; आँख से आँसू अश्रुछिद्रों में से होकर अश्रुवाहि-नियों में जाते हैं; ये नलियाँ अश्रुकोष से लगी रहती हैं; अश्रु-कोष से आँसू अश्रुवाहिका द्वारा नासिका में पहुँचते हैं (देखो चित्र २८४)।

ऊर्ध्वहन्वस्थि का गात्र भीतर से खोखला होता है; इस कोटर की दीवारों पर श्लैष्मिक कला लगी रहती है। इस कोटर का एक (कभी कभी दो) छिद्र द्वारा मध्य सुरंगा से सम्बन्ध रहता है। चित्र २८६ में (३४) इस कोटर का छिद्र है; चित्र २८८ में श्वेत रेखा द्वारा इन दोनों का सम्बन्ध दिखलाया गया है (क और २ के बीच की रेखा)।

मध्य सुरंगा का ललाट कोटर और झर्झरास्थि की अगली और बीच के कोटरों से भी सम्बन्ध रहता है। ऊर्ध्व सुरंगा का झर्झरास्थि के पिछले कोटर से सम्बन्ध रहता है। जितने कोटर हैं उन सब में श्लैष्मिक कला लगी रहती है।

नासा पुरोद्वार या नासा रन्ध्र—नासा गुहा का अगला छिद्र कुछ कुछ तिकोना होता है; उसमें मोटे मोटे बाल रहते

हैं; इन बालों से एक छलनी बन जाती है। जब वायु भीतर प्रवेश करती है तो धूल मिट्टी के ज़र्रे इन बालों में फँसकर बाहर ही रह जाते हैं।

नासा पश्चिम द्वार—नासा गुहा पिछले द्वार द्वारा कंठ से सम्बन्ध रखता है। यह द्वार चौकोर होता है। कोमल तालु की ओट में रहने के कारण ये द्वार मुँह खोलने पर दिखाई नहीं देते।

नासिका की श्लैष्मिक कला

नासिका की श्लैष्मिक कला में और स्थानों की श्लैष्मिक कला से यह विशेषता है कि उसमें रक्त अधिक रहता है; शुक्तिकाओं पर चढ़ा हुआ भाग विशेष कर अधिक रक्तमय होता है; इसमें रक्त केशिकाओं के घने जाल और बड़े बड़े झुंड रहते हैं। ऊर्ध्व शुक्तिका और परदे के बीच में $\frac{१}{१२}$ इंच और अधो शुक्तिका और परदे के बीच में $\frac{१}{६}$ इंच से अधिक अंतर नहीं रहता। जब ज़ुकाम में श्लैष्मिक कला का प्रदाह होता है तो कला के फूल जाने से यह अन्तर और भी कम हो जाता है; इस अंतर में श्लेष्म के भर जाने से या शुक्तिकाओं की सूजी हुई कला और परदे के आपस में मिल जाने से कभी कभी नासिका के सुर बन्द हो जाया करते हैं। नासिका में अधिक रक्तमय कला के रहने का मुख्य अभिप्राय यह है कि जो वायु भीतर जावे वह रक्त की गरमी से गरम होकर जावे। कला से मिलकर जाने के कारण वायु में कुछ तरी भी आ जाती है। अधिक ठंढी वायु फुफ्फुसादि कोमल अंगों को हानिकारक है।

श्लैष्मिक कला के पृष्ठ की सेलों में लोमवत् अंकुर होते हैं; ये सेलांकुर कंठ की ओर गति किया करते हैं। गंधज्ञ प्रदेश में इस प्रकार की अंकुरविशिष्ट सेलें नहीं होतीं।

श्लैष्मिक कला में श्लैष्मिक ग्रन्थियों के अतिरिक्त जगह जगह लसीकाणु सदृश सेलों के समूह भी रहते हैं।

श्लैष्मिक कला में श्लेष्म बना करता है जिससे उसके पृष्ठ तर रहा करते हैं। जब इस कला का प्रदाह होता है (जैसे जुकाम में) तब यह श्लेष्म अधिक बनता है; इसी को सिनक कहते हैं; यह सिनक नासारंध्रों द्वारा बाहर निकलता है या पीछे कंठ में चला जाता है। सिनक मस्तिष्क से नहीं आता जैसा कि कुछ लोगों का मिथ्या विचार है।

नासिका के कार्य

नासिका के दो बड़े कार्य हैं :—

१—वह श्वास मार्ग का एक बड़ा आवश्यक भाग है (देखा अध्याय ११)।

२—वह हमारी घ्राणेन्द्रिय है।

श्वास मार्ग

उच्छ्वास क्रिया से वायु नासारंध्रों द्वारा नासिका में प्रवेश करता है; मध्य और अधो सुरंगों में होती हुई पश्चिम द्वारों द्वारा वायु कंठ में पहुँचती है; कंठ से स्वरयन्त्र और टेंटुवे में से होकर फुप्फुसों में जाती है। प्रश्वास क्रिया में अशुद्ध वायु टेंटुवे, स्वरयंत्र और कंठ में होती हुई नासिका में पहुँचती है, वहाँ से

नासारंध्रों द्वारा बाहर आती है। जब हम मुँह से साँस लेते हैं तो वायु सीधी मुँह से कंठ में चली जाती है और कंठ से मुँह में होकर बाहर आ जाती है।

श्वास नासिका द्वारा ही लेना चाहिये, मुँह द्वारा नहीं। नासारंध्रों में बालों की छलनी होती है जिसका काम भीतर जानेवाली धूल मिट्टी या वायु में उड़ने वाले सूक्ष्म कीड़ों इत्यादि को बाहर रोक लेना है; मुँह में ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं है। नासिका की मोटी रक्तमय कला के रक्त की गरमी से भीतर जाने वाली वायु गरम हो जाती है अर्थात् उस का तापक्रम शरीर के तापक्रम के बराबर हो जाता है; मुँह में ठंढी वायु को गरम करने का कोई प्रबन्ध नहीं है। नासिका की श्लैष्मिक कला में जो श्लेष्म बनती है उस में कुछ कीटाणुनाशक शक्ति भी होती है; जब वायु भीतर जाती है तो वह थोड़ी बहुत कीटाणु रहित हो कर जाती है, मुँह में इस प्रकार का कोई प्रबन्ध नहीं है। मुँह से श्वास लेने वालों का स्वास्थ्य बहुधा खराब रहा करता है उन को ज़ुकाम (प्रतिश्याय), खाँसी अक्सर रहा करते हैं, गला भी पड़ जाया करता है और फुप्फुस के रोगों के होने की भी अधिक संभावना रहती है।

जिन बालकों को नासिका से श्वास लेने की अपेक्षा मुँह से श्वास लेने में सुगमता होती है या जो नासिका से श्वास ले ही नहीं सकते उन के नासा गुहा में या कंठ के ऊपर के भाग में बहुधा किसी न किसी प्रकार की रुकावट हुआ करती है; यह चिकित्सा से दूर की जा सकती है। मुँह से श्वास लेने को एक बुरी आदत समझना चाहिये।

घ्राणेन्द्रिय

प्रत्येक नासा गुहा में ऊर्ध्व शुक्तिका तथा उस के सम्मुख परदे की श्लैष्मिक कला का काम गंध पहचानने का है। इन दोनों स्थानों की कला को घ्राण प्रदेश कहते हैं (चित्र २८९); इस का क्षेत्रफल १½ वर्ग इंच (२५० वर्ग सहस्रांश मीटर) से अधिक नहीं होता।

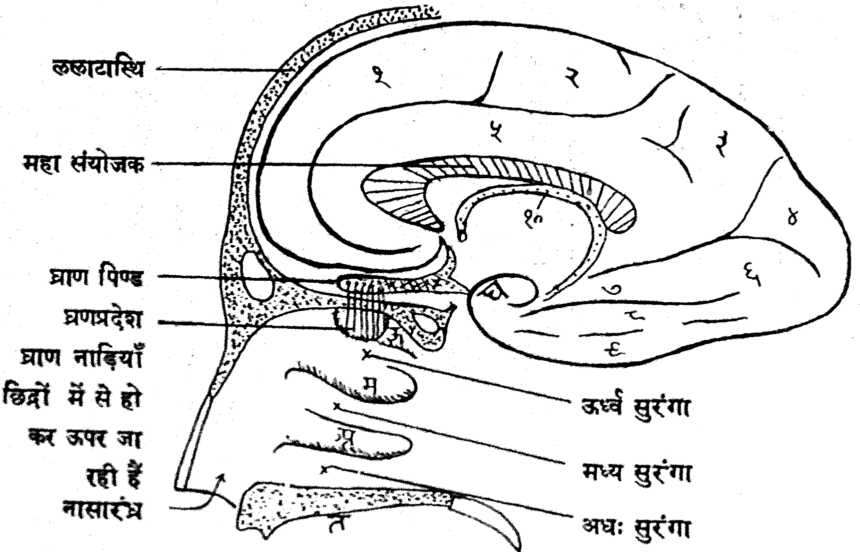
नासिका के और भागों की कला गन्धज्ञ नहीं होतीं। घ्राण प्रदेश का रंग पीला सा होता है। यहाँ दो प्रकार की सेलें रहती हैं:—

१—साधारण सेलें जिनका ऊपर का भाग स्तंभाकार होता है और नीचे का पतला और नोकीला। इन सेलों के सहारे और विशेष सेलें रहती हैं।

२—गन्धज्ञ सेलें (घ्राण सेलें); ये सेलें बीच में से मोटी होती हैं और दोनों सिरों पर पतली। जो सिरा पृष्ठ पर होता है उसमें बाल जैसे कई सख्त तार निकले रहते हैं; दूसरे सिरे से एक पतला और लम्बा तार निकलता है। सेलों के इन पतले और लम्बे तारों से घ्राण नाड़ियाँ बनती हैं। ऊपर के तार घ्राणांकुर कहलाते हैं।

वस्तुओं की गन्ध तब ही मालूम हो सकती है कि जब वे वायव्य दशा में घ्राण सेलों के घ्राणांकुरों से टकरावें। जब गंधवत् द्रव्यों के अणु घ्राणांकुरों से लगते हैं तो घ्राण सेलों पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। घ्राण नाड़ियों द्वारा यह

चित्र २८९ घ्राण प्रदेश का घ्राण खंड से संबंध



१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ बृहत् मस्तिष्क के मध्य पृष्ठ के खंड ;
१०=धनुष पिण्ड ;
घ=घ्राण केंद्र ; ऊ=ऊर्ध्व शुक्तिका ; म=मध्य शुक्तिका ; अ=अधोशुक्तिका ।

प्रभाव मस्तिष्क के घ्राणकेन्द्रों को पहुँचता है जिससे हम को गन्ध का बोध होता है।

घ्राण नाड़ियाँ जिनकी संख्या हर एक ओर २० के लगभग होती है घ्राण प्रदेश से नासा गुहा की छत के छिद्रों में से होकर कपाल में घुस जाती हैं (चित्र २८९), कपाल में पहुँचते ही ये घ्राण पिंड में घुस जाती हैं और यहीं इन का अंत हो जाता है। घ्राण पिंड से नये तार आरंभ होते हैं जिन से घ्राण पथ बनता है ; घ्राण पथ का अंत घ्राण केन्द्र में होता है।

घ्राण प्रदेश को छोड़कर नासिका की शेष श्लैष्मिक कला में केवल स्पर्श, पीड़ा, गरमी, सर्दी प्रतीत करने की शक्ति है ; इस कला में पंचमी नाड़ी के तार रहते हैं।

अध्याय २५

जिह्वा (रसना) ; स्वादेन्द्रिय

जब हम कोई चीज़ खाते हैं तो हम को उस का स्वाद जिह्वा द्वारा ही मालूम होता है। रस या स्वाद पहिचानने के अतिरिक्त जिह्वा और भी कई कार्य करती है ; उसकी सहायता से हम बोलते हैं ; भोजन को भली प्रकार चबाने और उसको निगलने के लिये भी उस की बड़ी आवश्यकता है। जब कोई चीज़ दाँतों के बीच में फँस जाती है तो उसको जिह्वा निकाल लेती है, वह भोजन को गाल और दाँतों के बीच में या दाँतों की संधों में अड़ने नहीं देती। भोजन की वस्तुओं का तापक्रम मालूम करने की शक्ति भी इस में है।

जिह्वा की बनावट

सुस्थता में उस की फूंग (अगला सिरा) पतली और नोकीली होती है और जड़ (मूल) मोटी और चौड़ी। उस का रंग गुलाबी सा होता है। रक्तहीनता में रंग फीका पड़ जाता है। जिन लोगों को सदा अजीर्ण रहता है उन के मुँह से दुर्गन्ध आया करतो है और जिह्वा पर मैल जम जाता है जिस के कारण उस का रंग मैला श्वेत या भूरा सा हो जाता है कभी कभी जिह्वा फट भी जाती है।

जिह्वा अधिकतर मांस से बनी है, मांस के ऊपर मोटी श्लैष्मिक कला चढ़ी रहती है। वह कई मांस पेशियों * द्वारा

* (१) शिफा रसनिका, (२) जिह्वाकंठिका, (३) चिबुकजिह्वाकंठिका।

अधो हन्वस्थि, शिफा प्रवर्धन, और कंठिकास्थि से जुड़ी रहती है। जिस मांस * से वह बनी है उसके संकोच और प्रसार से वह छोटी, बड़ी, चौड़ी और पतली हो जाती है। जिन

चित्र २९० जिह्वा

चित्र-व्याख्या
त=कोमल तालु
शु=शुंडिका
ग=ताल्व ग्रन्थि
स=स्वरयंत्रच्छद
म=जिह्वामूल
ख=खातवेष्टित अंकुर
क=कंठ ;
१=पाश्चात्य स्तंभ
२=अग्र स्तंभ
३, ४=अंकुर
५=फूंग (जिह्वाग्र)

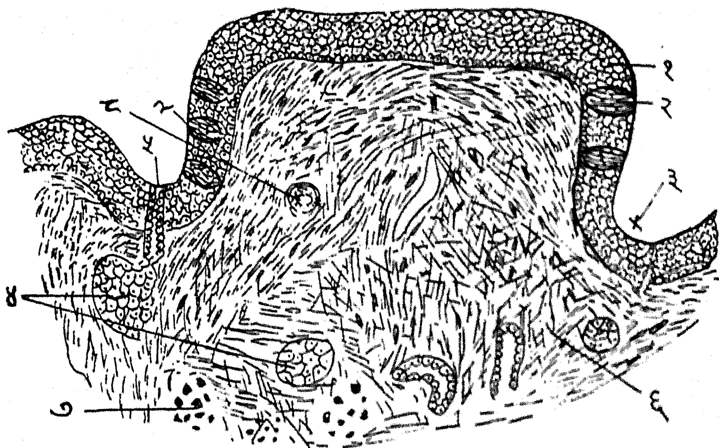
* (१) ऊर्ध्व अन्वायाम रसनिका। (२) अधो अन्वायाम रसनिका। (३) व्यत्यस्त रसनिका। (४) लम्ब रसनिका। ये सब पेशियाँ युग्म हैं जैसी वे जिह्वा के दक्षिणार्ध में हैं वैसी ही वामार्ध में हैं।

मांस पेशियों द्वारा वह अस्थियों से जुड़ी है उन के संकोच और प्रसार से वह मुँह से बाहर निकल आती है और फिर भीतर चली जाती है और मुँह के भीतर भी गति करती है।

यदि आप जिह्वा के ऊपर के पृष्ठ को देखें (चित्र २९०) तो श्लैष्मिक कला में अनेक छोटे और बड़े दाने दिखाई देंगे। ये दाने या उभार सौत्रिक तंतु, नाड़ी सूत्र और रक्तकेशिकाओं के इकट्ठे होने से बनते हैं; इन सब चीज़ों के ऊपर सेलों की कई तहें चढ़ी रहती हैं (देखो चित्र २९१)।

दाने या अंकुर तीन प्रकार के होते हैं:—

चित्र २९१ खातवेष्टितांकुर की सूक्ष्म रचना



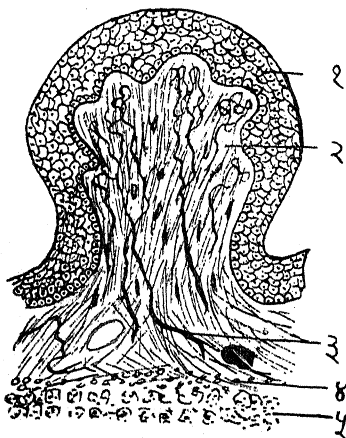
१=खातवेष्टितांकुर की पृष्ठ के सेलों की तहें; २=स्वादकोष; ३=खात या खाई; ४=जिह्वा की ग्रन्थियाँ; ५=ग्रन्थि स्रोत; ६=सौत्रिक तंतु; ७=मांस; ८=धमनी।

१—जिह्वामूल पर नौ-दस बड़े बड़े दाने रहते हैं, ये दाने दो पंक्तियों में रहते हैं जो पीछे जाकर एक दूसरे से मिलकर एक वृहत कोण बनाती हैं (चित्र २९० में ख)। प्रत्येक दाने के चारों ओर एक खाई होती है; इस खाई के कारण ये दाने खातवेष्टितांकुर कहलाते हैं (चित्र २९१)।

खात की दीवारों में दबे हुए बहुत से छोटे छोटे विशेष सेलसमूह होते हैं (चित्र २९१ में २); इन को स्वादकोष कहते हैं, प्रत्येक अंकुर में कोई सौ डेढ़ सौ स्वादकोष होते हैं।

२—दूसरे प्रकार के दाने जिह्वा के किनारों और फूंग पर

चित्र २९२ छत्रिकांकुर की सूक्ष्म रचना



१=पृष्ठ ली सेलें ;
२=सौत्रिक तंतु
३=रक्तवाहिनी ;
४=लसीकाणु समूह;
५=मांस ।

पाये जाते हैं, इन में भी स्वादकोष होते हैं, ये कुछ कुछ छत्रिका नामक वनस्पति जैसे होते हैं इस कारण छत्रिकांकुर कहलाते हैं (देखो चित्र २९० में ४; चित्र २९२)।

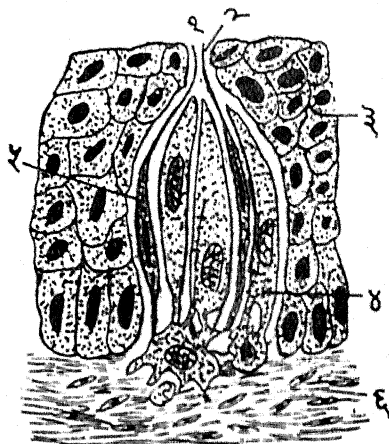
३—ये दाने पतले और नोकीले होते हैं और जिह्वा में हर जगह पाये जाते हैं। ये बहुधा समांतर पंक्तियों में रहते हैं; इन को सूत्रांकुर कहते हैं (चित्र २९० में ३) इन में स्वाद पहिचानने की शक्ति कम होती है, इन का विशेष सम्बन्ध स्पर्श ज्ञान से है।

जिह्वा की फूंग, मूल तथा किनारों में स्वाद पहिचानने की शक्ति अधिक होती है, शेष भाग स्पर्श, उष्णता इत्यादि के ज्ञान के लिये काम में आता है।

स्वादकोष (चित्र २९३)

स्वादकोष विशेषकर खातवेष्ठित और छत्रिकांकुरों में

चित्र २९३



१=स्वाद रंध्र
२=रसज्ञ सेल का बाल
३=मामूली सेलें जिनसे स्वाद कोष की दीवार बनती है
४=रसज्ञ सेलों को सहारा देने-वाली सेलें
५=रसज्ञ सेल
६=सौत्रिक तंतु

पाये जाते हैं, इन के अतिरिक्त वे कोमल तालु के नीचे के पृष्ठ

और स्वरयंत्रच्छद के पिछले पृष्ठ पर भी रहते हैं। स्वाद कोष में एक छिद्र होता है जिस को स्वादरंध्र कहते हैं। स्वाद कोष में दो प्रकार की सेलें होती हैं:—

१—रसज्ञ सेलें (चित्र २९३ में ५) जो बीच में मोटी होती हैं और सिरों पर पतली। इन के ऊपर के सिरे से एक बाल जैसा तार निकलता है; यह बाल स्वादरंध्र में रहता है (चित्र २९३ में २)। सेल के दूसरे सिरे से जो तार निकलता है वह स्वाद सम्बन्धी नाड़ी के तार से मिला रहता है।

२—रसज्ञ सेलें अधिकतर कोष के कैन्द्रिक भाग में रहती हैं; इन के चारों ओर और कुछ उन के बीच में भी और सेलें रहती हैं। (चित्र २९३ में ४); ये रसज्ञ सेलों को सहारा देती हैं।

स्वाद या रस

सुरस वस्तुओं का स्वाद तब ही जाना जा सकता है कि जब वे घुली हुई दशा में हों। जब आप मिश्री खाते हैं तो वह तुरंत मुँह के रसों में घुल जाती है; घुली हुई मिश्री के अणु रसज्ञ सेलों के बालों से टकराते हैं; इस स्पर्श से जो प्रभाव इन सेलों पर पड़ता है उसकी सूचना नाड़ी तारों द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्रों को पहुँचती है।

जिह्वा के पिछले $\frac{1}{3}$ भाग से ये तार जिह्वाकंठ नाड़ी द्वारा मस्तिष्क में पहुँचते हैं; अगले $\frac{2}{3}$ भाग के तार रासनिकी नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को जाते हैं। दोनों नाड़ियों के तार स्वाद केन्द्र में पहुँचते हैं।

रसों के भेद

रस ६ हैं:—

अम्ल (खट्टा) ; तिक्त (कड़वा) ; मधुर (मीठा) ; लवण (नमकीन) ; कटु (चरपरा) और कषाय (कषैला)। इन में से मुख्य रस अम्ल, तिक्त, मधुर और लवण माने जाते हैं। मधुर फूँग से, अम्ल किनारों से और कटु जिह्वा मूल से अच्छी प्रकार जाने जाते हैं ; शेष रस कुछ कुछ हर एक भाग से जाने जा सकते हैं।

अध्याय २६

कर्ण—श्रवणेन्द्रिय

इस इन्द्रिय से हम सुनते हैं अर्थात् इसके द्वारा हमको शब्द या आवाज़ का ज्ञान होता है। इसके तीन भाग हैं; इनमें से केवल एक ही भाग बाहर से दिखाई देता है; इसी भाग को साधारण बोल चाल में कान कहते हैं; शेष दो भाग शंखास्थि के भीतर रहते हैं और बाहर से दिखाई नहीं देते।

कर्ण के तीन भाग

१—बाह्य कर्ण

२—मध्य कर्ण
३—अंतःस्थ कर्ण } शंखास्थि के भीतर रहते हैं।

बाह्य कर्ण (चित्र २९४)

बाह्यकर्ण के दो भाग हैं:—

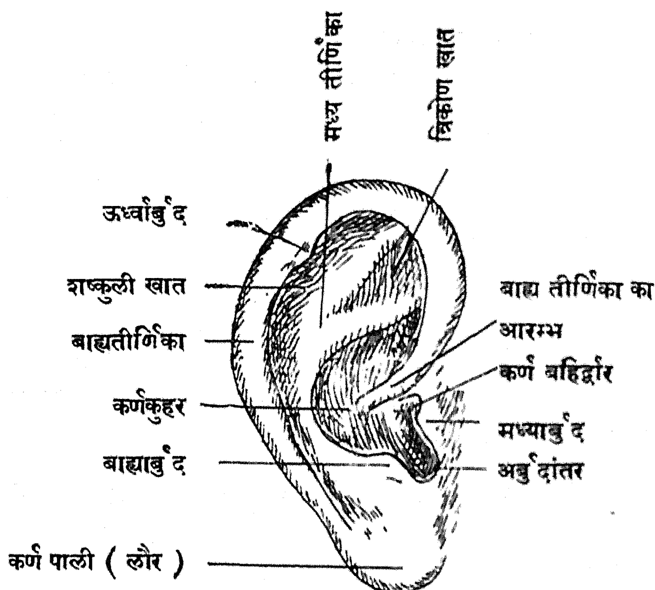
१—एक वह भाग जिसमें छिद्र कराकर स्त्रियाँ बालियाँ पहनती हैं; यह कर्ण शष्कुली कहलाता है।

२—कान की नली जो कर्ण शष्कुली के छिद्र से मध्य कर्ण की बाहरी दीवार तक रहती है; इसको कर्णाञ्जली कहते हैं।

कर्ण शष्कुली :—इसका आकार सीपी (शुक्तिका) जैसा होता है; बड़ा भेद यह है कि इसमें कई उभार और दबाव होते

हैं ; इन सब के जुदा जुदा नाम रक्खे गये हैं। कर्ण शाष्कुली का नीचेवाला अंश मोटा और मुलायम होता है ; इसको लौर या कर्ण पाली कहते हैं। कर्ण पाली को छोड़कर कर्ण शाष्कुली के शेष भाग में कारटिलेज होता है जिसके दोनों पृष्ठों पर त्वचा रहती है ; कारटिलेज कई जगह मुड़ा रहता है; कर्ण पाली में कारटिलेज नहीं होता ; उसमें सौत्रिक तन्तु और ज़रा सी वसा रहती है।

चित्र २९४ कर्ण शाष्कुली

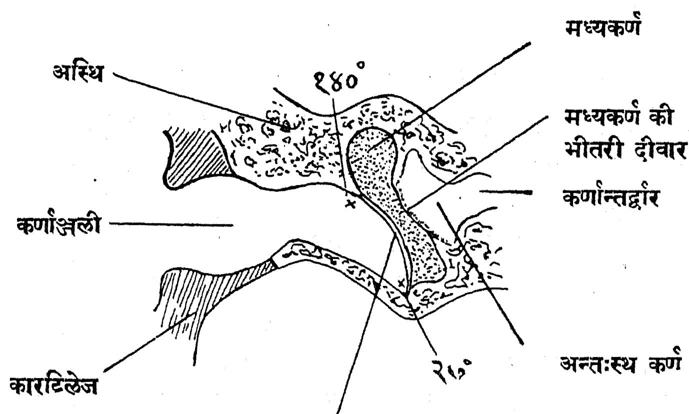


कर्ण शाष्कुली के बीच में सीपी की भाँति एक गढ़ा होता है ; इस गढ़ की तली से कान की नली (कर्णाञली) का आरम्भ

होता है। इस गढ़े को कर्ण कुहर कहते हैं (चित्र २९४)।

कर्णाञ्जली—(चित्र ३०० में ब; ३०१ में १; चित्र २९५); यह नली कोई १ इंच लम्बी होती है; नली के बाहरी ⅓ भाग की दीवार कारटिलेज से बनती है। शेष भाग अस्थिकृत है (चित्र २९५) समस्त नली में त्वचा लगी रहती है जिसमें

चित्र २९५



बहुत सी छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। इन ग्रन्थियों में वह चीज़ बनती है जिसको साधारण बोल चाल में कान का मैल कहते हैं; इसका नाम कर्ण गूथ है। साधारणतः कर्ण गूथ बहुत थोड़ा बनता है और पतला होता है; कभी कभी वह अधिक बनने लगता है और नली में इकट्ठा हो जाता है। यह वस्तु

पानी लगने पर फूल जाती है। कान में पानी गिरने से जो कर्ण शूल हो जाया करता है उसका एक कारण इस मैल का ख़ूब फूल जाना है।

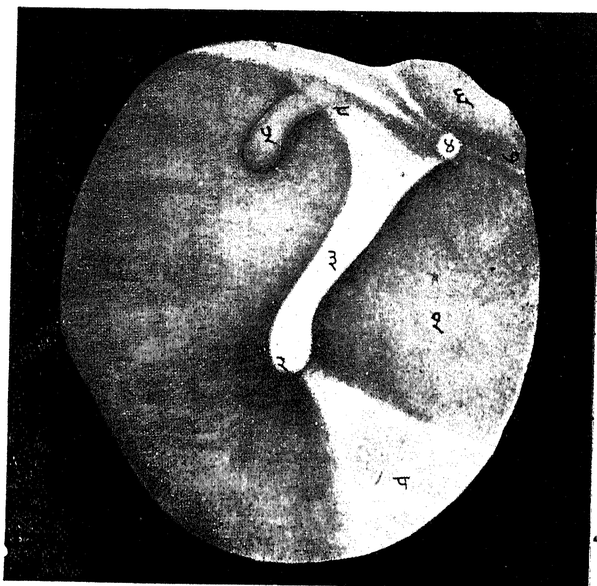
कर्णाञ्जली बिलकुल सीधी नहीं होती जैसा कि चित्र २९५ से विदित है; इसी कारण बाहर से उसके सब भाग दिखाई नहीं देते, यदि कर्ण शष्कुली ऊपर और पीछे को खींची जावे तब कर्णाञ्जली सब की सब देखी जा सकती है।

कर्णपटह (चित्र २९७ चित्र ३०० में प)

यदि कर्णाञ्जली को कर्णदर्शक यन्त्र से यथाविधि देखें तो जहाँ उसका अन्त होता है वहाँ एक धूसर श्वेत चमकदार परदा लगा हुआ दिखाई देगा। इस परदे को कर्णपटह (या कान का ढोल) कहते हैं। जो मनुष्य मैल निकालने के लिये कर्णाञ्जली को सींक या किसी और पतली नोकीली चीज़ से कुरेदा करते हैं वे कभी कभी इस क्रिया से कर्णपटह को हानि पहुँचा लेते हैं। कनपुटी पर ज़ोर से थप्पड़ लगने से या शिर के शङ्ख देश में किसी और प्रकार अधिक चोट लगने से (विशेष कर बालकों में) कभी कभी यह परदा फट जाया करता है और कान से रक्त बहने लगता है।

कर्ण पटह बाह्य कर्ण को मध्य कर्ण से जुदा करता है। यह परदा तिर्छा लगा रहता है (चित्र २९४), कर्णाञ्जली की छत और परदे के ऊपर के किनारे के एक दूसरे के मिलने के स्थान पर १४०° का वृहत् कोण बनता है, जहाँ परदे का नीचे का किनारा कर्णाञ्जली के फ़र्श से मिलता है वहाँ २७° का लघु कोण बनता है (चित्र २९५)। कर्ण दर्शक यन्त्र से देखने पर कर्णपटह के

चित्र २५७ कर्णपटह (कर्णदर्शक द्वारा देखा गया)



(After Politzer from Hunter Tod's Diseases of Ear)

१=कर्णपटह

२=पटहनाभि

३=मुद्गरदंड

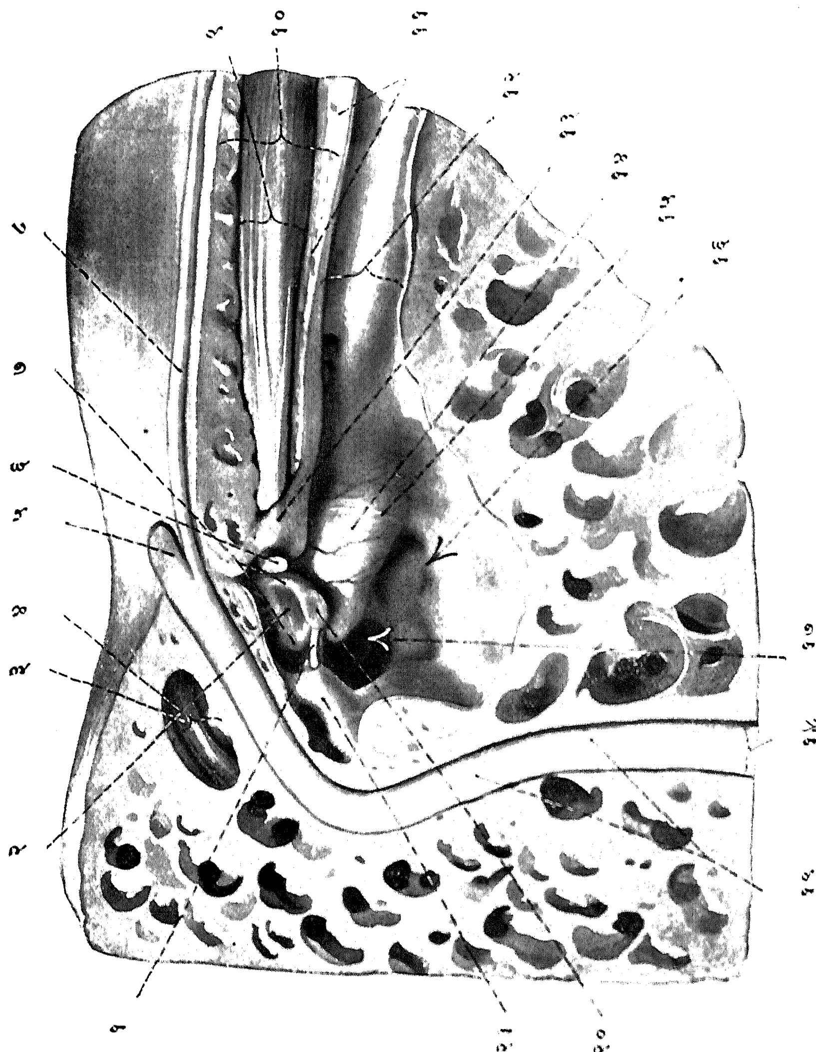
४=मुद्गर का लघु प्रवर्द्धन

५=नेहाई का लम्बा प्रवर्द्धन

६=कला

प=प्रकाश शंकु

हमारे शरीर की रचना—प्लेट ७० चित्र २९८ मध्य कर्ण



(Sobotta)

पृष्ठ ६९३ के सम्मुख

चित्र २९८ मध्य कर्ण की अन्तरीय दीवार

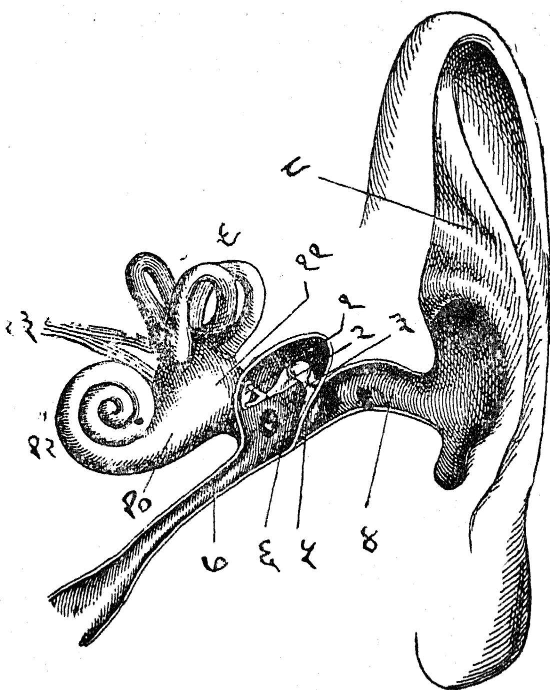
१=रकाबीया पेशी की कंडरा
२=रकाब कला
३=बाह्य (पार्श्व) अर्द्ध चक्राकार नाली (झिल्ली कृत)
४=पार्श्व अर्द्ध चक्राकार नाली (अस्थिकृत)
५=सप्तमी नाड़ी
६=कर्ण पटहोत्तंसनी की कंडरा
७=शूर्मिका जंघा
८=अशमोर्ध्व वृहती नाड़ी
९=पटहोत्तंसनी पेशी
१०=पटहोत्तंसनी सुरंगा
११=सुरंगा प्राचीरक
१२=कंठ कर्णी सुरंग
१३=कोकला प्रवर्द्धन
१४=नाकु
१५=मध्य कर्णी नाड़ी
१६=मध्य कर्णी गुफा
१७=कोकला द्वार
१८=सप्तमी नाड़ी सुरंगा
१९=सप्तमी नाड़ी
२०=शूर्मिका शिर
२१=सूची अर्बुद

मध्य भाग में एक गढ़ा सा दिखाई देता है, इसे पटह नाभि कहते हैं, परदे का यह भाग मध्य कर्ण की ओर दबा हुआ है (चित्र २९७ में २), परदे के मध्य में एक तिर्छी रेखा दिखाई देती है, यह रेखा ऊपर से नाभि तक रहती है। यह रेखा वास्तव में मध्य कर्ण की मुद्गर नामक अस्थि के बड़े प्रवर्द्धन (मुद्गर दण्ड की छाया है (चित्र २९७ में ३) । कभी कभी मुद्गरास्थि के पीछे नेहाई अस्थि का लघु प्रवर्द्धन भी दिखाई दिया करता है (चित्र २९७ में ५); पटह के अगले और नीचे के भाग में एक तिकोना चमकीला स्थान देख पड़ता है। इसे प्रकाश शंकु कहते हैं (चित्र २९७ में प); इसका कारण प्रकाश की किरणों का परावर्तन है। कर्णपटह पर और भी कई चीज़ें दिखाई देती हैं। उसमें कोई छिद्र नहीं होता। रोगों में उसका दर्शन और प्रकार का हो जाता है।

मध्य कर्ण (चित्र ३०० में म)

यह एक छोटी सी कोठरी है जो शङ्खास्थि के भीतर रहती है। इस कोठरी की चौड़ाई $\frac{1}{8}$ इंच; और लम्बाई अथवा ऊँचाई $\frac{15}{34}$ इंच ($\frac{1}{2}$ इंच से कुछ अधिक) के लगभग होती है। उसकी बाहरी दीवार कर्णपटह से बनती है। भीतरी दीवार से अन्तःस्थ कर्ण का आरम्भ होता है। इस दीवार में दो छिद्र होते हैं एक अंडाकार दूसरा गोल (वृत्त) होता है। शेष दीवारें, छत और फ़र्श शङ्खास्थि से बनते हैं। उसकी सामने की दीवार में एक नली का मुख होता है, इस नली द्वारा मध्यकर्ण कंठ से सम्बन्ध रखता है (चित्र ३०० में कं—नली)

चित्र २९९



(From Hæckel's Evolution of Man.)

१=रकाबास्थि; २=शूर्मिकास्थि; ३=मुद्गरास्थि; ४=कर्णाञ्जली; ५=कर्ण पटह; ६=मध्यकर्ण; ७=कंठकर्णी नाली; ८=कर्णशष्कुली; ९=अर्द्धचक्राकार नालियाँ; १०, ११=अंतःकर्ण का कोष्ठ; १२=कोकला; १३=नाड़ी।

यदि आप मुँह बन्द करके नासारन्ध्रों को भी अँगुलियों से दबाकर बन्द कर लें और फिर श्वास बाहर निकालने की

कोशिश करें तो कर्ण में कुछ भरता हुआ मालूम होगा। वास्तव में होता यह है कि नासारन्ध्रों और मुख के बन्द रहने से वायु बाहर तो जा नहीं सकती परन्तु कंठ का मध्य कर्ण से सम्बन्ध होने के कारण वह इस नली में से होकर मध्य कर्ण में चली जाती है, इस वायु के दबाव से कर्णपटह कुछ बाहर को जाने लगता है। इस नली को कंठ कर्णी नाली कहते हैं (चित्र २८७ में न) जब कंठ के प्रदाह के कारण इस नाली में श्लेष्म इकट्ठी हो जाती है या जब इस नाली का प्रदाह हो जाता है तब कान भारी मालूम हुआ करता है और सुनाई ठीक ठीक नहीं पड़ता।

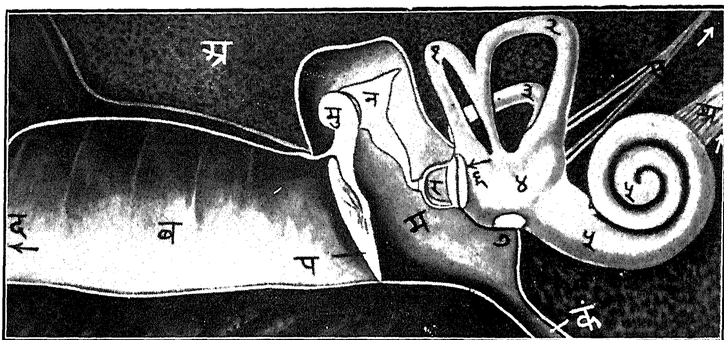
मध्य कर्ण की अस्थियाँ (चित्र २९९, ३००, ३०१)

मध्य कर्ण में तीन छोटी छोटी अस्थियाँ रहती हैं, ये अस्थियाँ आपस में बंधनों द्वारा बँधी रहती हैं और इनके बीच में चल संधियाँ होती हैं।

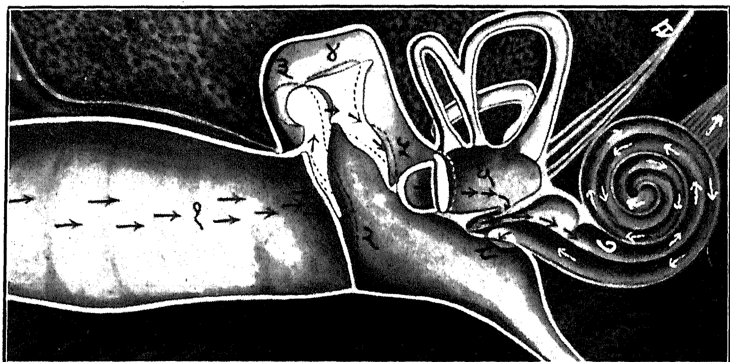
सब से बाहर अर्थात् कर्णपटह के पास जो अस्थि है उसको मुद्गर कहते हैं (चित्र ३०० में मु), इसकी शकल कुछ कुछ मुद्गर या हथौड़े के सदृश होती है। बीच की अस्थि को नेहाई या शूर्मिका कहते हैं (चित्र ३०० में न); इसका आकार स्वर्णकार की नेहाई के सदृश होता है। तीसरी अस्थि अतःस्थ कर्ण के पास होती है, इसकी शकल पादग्रहणी या रकाब के सदृश होती है, इसका नाम रकाब है (चित्र ३०० में र)

मुद्गर—इस अस्थि का मोटा भाग 'शिर' कहलाता है, शिर के नीचे का दबा हुआ भाग 'ग्रीवा' कहलाता है। ग्रीवा

चित्र ३०० श्रवणेन्द्रिय



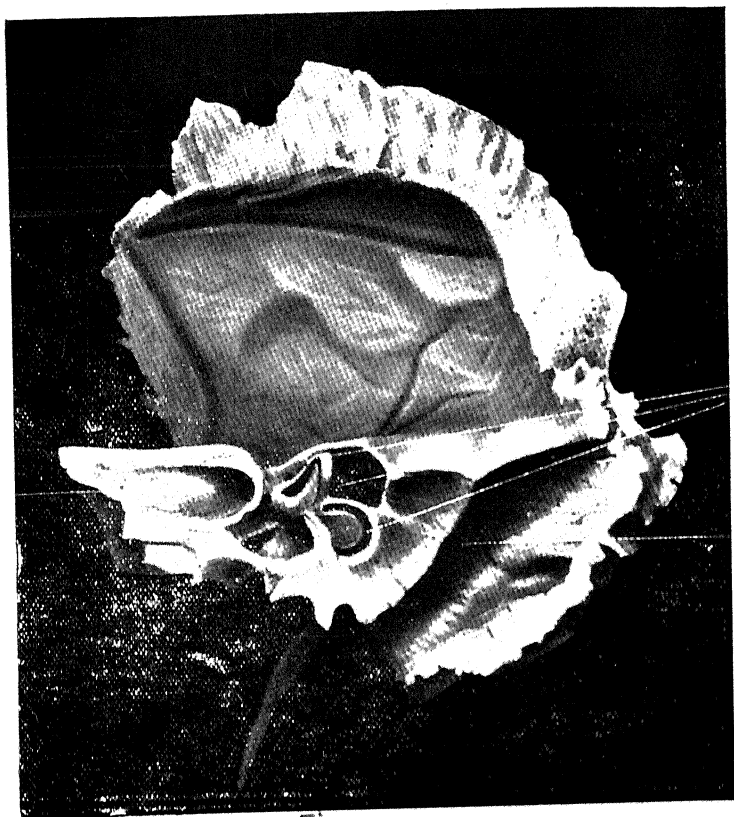
चित्र ३०१



(From Harmsworth's Popular Science)

पृष्ठ ६९६

चित्र ३०२ शङ्खास्थि



(From Reik's Diseases of Nose, Throat and Ear)

१=कर्णान्तर्द्वार ; २=ऊर्ध्व अर्ध चक्राकार नाली ; ३=पार्श्विक अर्ध चक्राकार नाली ; ४=पाश्चात्य अर्ध चक्राकार नाली ; ५=शिरा कुल्या खात ; ६=शिफा प्रवर्द्धन ।

के नीचे उसमें तीन प्रवर्द्धन होते हैं। एक हथौड़े के बेंटे के सदृश लम्बा होता है, यह मुद्गर दंड कहलाता है और कर्णपटह से लगा रहता है; मुद्गरदंड से एक पतली पेशी लगी रहती है जिसके संकोच से कर्णपटह तन जाता है; इस पेशी को **पटहोत्तंसनी** पेशी कहते हैं; जब हम किसी बात को ध्यान से सुनते हैं तब कर्ण पटह पहिले की अपेक्षा अधिक तन जाता है। शेष दो प्रवर्द्धन छोटे छोटे होते हैं; एक को अग्र प्रवर्द्धन और दूसरे को पार्श्व-प्रवर्द्धन कहते हैं। इस अस्थि के शिर पर एक स्थालक होता है; यहीं पर नेहाई अस्थि इससे मिली रहती है।

नेहाई या शूर्मिका—इस की शकल अग्रचर्वण दंत से भी बहुत कुछ मिलती है। नेहाई (और दंत) के समान इस में एक मोटा भाग होता है जिस से दो प्रवर्द्धन निकले रहते हैं। मोटे भाग को **गात्र** कहते हैं। एक प्रवर्द्धन छोटा (लघु) होता है दूसरा बड़ा (बृहत्)। गात्र पर एक स्थालक होता है; यहीं पर मुद्गर का शिर उस से मिला रहता है (देखो चित्र ३००); इन दोनों के बीच में संधि होती है। बृहत् प्रवर्द्धन का सिरा रकाबास्थि के एक अंश से मिला रहता है; इन दोनों के बीच में संधि होती है।

रकाब—लोहे की रकाब की भाँति इस में एक महाराब (डांट) होती है जो एक चौड़े भाग से जुड़ी रहती है; यह चौड़ा भाग लोहे की रकाब के उस भाग के सदृश है जिस पर पैर टिकता है। यह चौड़ा भाग या रकाबाधार (पादान) अंतःस्थ

कर्ण के एक छिद्र में फँसा रहता है (चित्र ३०० में ६) ; जहाँ महराब के दोनों सिरे आपस में मिलते हैं वहाँ एक छोटा सा उभार होता है ; इस को शिर कहते हैं ; शिर पर एक स्थालक होता है जिस से शूर्मिकास्थि का वृहत् प्रवर्द्धन मिला रहता है। शिर के नीचे का भाग ग्रीवा कहलाता है ; ग्रीवा से कर्णान्तरिका नामक पतली पेशी की कंडरा लगी रहती है।

तीनों अस्थियों के बीच में संधियाँ होती हैं जिन के कारण वे एक दूसरे के सहारे गति कर सकती हैं। मुद्गरास्थि कर्ण पटह से लगी रहती है और रकाब अंतःस्थ कर्ण के एक छिद्र से ; इस कारण जब कर्ण पटह हिलता है तो ये सब अस्थियाँ हिलती हैं और इस गति का असर अंतःस्थ कर्ण पर भी पड़ता है जैसा कि हम आगे चलकर समझायेंगे। जब तक अस्थियाँ अच्छी तरह गति करती हैं तभी तक हम अच्छी तरह सुन सकते हैं। जब मध्यकर्ण का प्रदाह होता है तो इन अस्थियों की संधियाँ ख़राब हो जाती हैं; कभी कभी अचेष्ट बन जाती हैं ; तब श्रावण शक्ति में फ़र्क़ आ जाता है। वृद्धावस्था में ये संधियाँ बिगड़ जाया करती हैं।

श्लैष्मिक कला

मध्य कर्ण में सब जगह एक पतली श्लैष्मिक कला बिछी रहती है ; यह कला इस कोष्ठ में रहने वाली अस्थियों, पेशियों और नाड़ियों पर भी लगी रहती है। कर्णमूलपिंड (शंखास्थि का भाग) के भीतर जो छोटी छोटी बहुत सी वायु कोटरें हैं उन में भी यह कला बिछी रहती है। कंठकर्णी नाली की कला

द्वारा मध्य कर्ण की श्लैष्मिक कला कंठ की श्लैष्मिक कला से मिली रहती है। कंठकर्णी नाली की श्लैष्मिक कला और मध्य कर्ण के बहुत से भागों की श्लैष्मिक कला के पृष्ठ की सेलों में लोमवत् अंकुर (सेलांकुर हैं) होते हैं।

अंतःस्थ कर्ण या गहन (चित्र २९९, ३००, ३०१)

इस की बनावट बड़ी पेचीदा और विचित्र है; इसी से इस को गहन भी कह देते हैं।

अंतःस्थ कर्ण के तीन भाग हैं। मध्य कर्ण के सम्मुख एक कोठरी होती है; यह बीच का भाग है (चित्र ३०० में ४) इस कोठरी के पिछले भाग से तीन मुड़ी हुई नालियाँ जुड़ी रहती हैं; इन से अंतःस्थ कर्ण का पिछला भाग बनता है (चित्र २९४ में १, २, ३)। कोठरी के सामने घड़ी की कमानी की तरह एक मुड़ा हुआ भाग होता है (चित्र ३०० में ५); इस की शकल कोकला नामक शंख से बहुत कुछ मिलती है, इस कारण इस को कोकला * कहते हैं। इस तरह से अंतःस्थ कर्ण के ये तीन भाग हुए :—

१—तीन मुड़ी नालियाँ या अर्धचक्राकार नालियाँ।

२—बीच की कोठरी या कर्ण कुटी।

३—कोकला।

ये तीनों चीज़ें अस्थिकृत हैं (इन की दीवारें शंखास्थि से

* इस प्रकार के शंख छोटी नदियों में बहुत मिलते हैं; बहुत लोग इस शंख को घोंघा भी कहते हैं। इस शब्द का अँगरेज़ी रूप कौकलिया (cochlea) है।

ही बनती हैं ; यह न समझना चाहिये कि शंखास्थि के भीतर कोई खोखली जगह है जिस में ये चीज़ें रहती हैं और इन चीज़ों और शंखास्थि के बीच में कोई अंतर रहता है ; ऐसा नहीं है)।

अस्थिकृत अंतःस्थ कर्ण के तीनों भागों के भीतर झिल्लीकृत अंतःस्थ कर्ण रहता है ; अस्थिकृत नालियों के भीतर झिल्लीकृत नालियाँ रहती हैं; अस्थिकृत कुटी में झिल्लीकृत कोष्ठ रहते हैं ; अस्थिकृत कोकले में झिल्लीकृत कोकला रहता है। अस्थि के खोल से उस के भीतर रहनेवाली चीज़ों की रक्षा होती है। इस प्रकार अंतःस्थ कर्ण के दो भाग हुए :—

१—अस्थिकृत अंतःस्थ कर्ण।

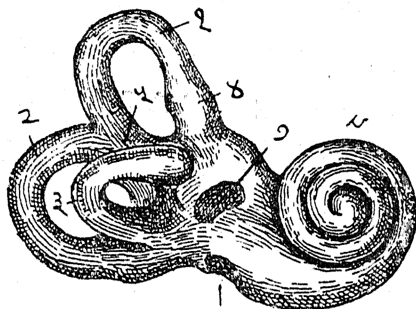
२—झिल्लीकृत अंतःस्थ कर्ण।

अस्थिकृत अंतःस्थ कर्ण (चित्र ३००, ३०३)

१—कर्ण कुटी—यह कोठरी मध्यकर्ण के सम्मुख और अर्धचक्राकार नालियों और कोकले के बीच में रहती है। नालियाँ उस के पीछे और कुछ ऊपर को रहती हैं; कोकला उस के आगे रहता है। कुटी कुछ अंडाकार सी होती है : जहाँ वह सब से चौड़ी है वहाँ उस का माप १/४ इंच होता है ; जहाँ वह सब से तंग है वहाँ उस का माप केवल १/६ इंच ही होता है। उस की बाहर की दीवार पर (कर्णकुटी की बाहरी दीवार ही मध्यकर्ण की अंतरीय दीवार है) एक छिद्र होता है। यह छिद्र अंडाकार होता है (चित्र ३०३ में ७) और कर्ण कुटी द्वार कहलाता है ; इस छिद्र में रकाब अस्थि का चौड़ा भाग

(रकाबाधार) रहता है (चित्र ३०० में ६) कोठरी के सामने के भाग में एक गोल सा छिद्र होता है (चित्र ३०० में ७, चित्र ३०३ में ६) ; यह कोकले का छिद्र है और कोकलाद्वार कहलाता है; कोकलाद्वार एक झिल्ली द्वारा बंद रहता है ।

चित्र ३०३ दाहिना अस्थिकृत गहन



१=ऊर्ध्व अर्धचक्राकार नाली; २=पाश्चात्य नाली; ३=पार्श्व नाली; ४=नाली का फूला हुआ सिरा; ५=दो नलियों का जुड़ा हुआ भाग; ६=कोकलाद्वार; ७=कर्णकुटी द्वार; ८=कोकला ।

कर्णकुटी की शेष दीवारों पर बहुत से छोटे छोटे छिद्र और कई एक उभार और गड्ढे होते हैं। छिद्रों में से होकर नाड़ी सूत्र भीतर आते हैं।

कर्णकुटी के पिछले भाग में नालियों के पाँच छिद्र होते हैं (चित्र ३०४ में ४, ६, ७, ८ और ९)। हर एक नाली के दो सिरे होते हैं। तीनों नालियों के छः सिरे हुए। यदि सब सिरे कर्णकुटी में अलग अलग खुलें तो सब सिरों के ६ छिद्र होने

चाहियें; परन्तु ऊर्ध्व और पाश्चात्य नालियों के पास के सिरे कर्णकुटी में खुलने से पहले आपस में जुड़ जाते हैं, इसलिये दोनों सिरों का एक ही छिद्र होता है। इस प्रकार तीन नालियों के केवल पाँच ही छिद्र होते हैं।

२—अर्धचक्राकार नालियाँ—ये तीन होती हैं:—

(१) ऊपर की या ऊर्ध्व नाली।

(२) पीछे रहनेवाली या पाश्चात्य नाली।

(३) बाहर की ओर रहने वाली पार्श्व नाली।

ऊर्ध्व नाली—इस का घेरा अर्धचक्र से कुछ अधिक होता है कोई २/३ चक्र समझिये। नाली की लम्बाई ३/४ इञ्च के लगभग होती है। इसका एक सिरा पाश्चात्य नाली के पास के सिरे से जुड़ा रहता है; दूसरे सिरे का छिद्र अलग होता है। (चित्र ३०३ में १, चित्र ३०४ में १) अलग खुलनेवाला सिरा फूला हुआ होता है (चित्र ३०३ और ३०४ में ४)।

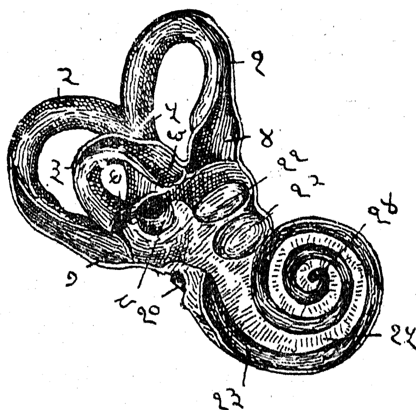
पाश्चात्य नाली—(चित्र ३०३ में २)। यह तीनों नालियों में से सब से लम्बी होती है; इस की लम्बाई ४/५ इञ्च के लगभग होती है। इस का ऊपर का सिरा ऊर्ध्व नाली के सिरे से जुड़ा रहता है, नीचे का सिरा (चित्र ३०४ में ७) फूला हुआ होता है।

पार्श्व नाली—(चित्र ३०३ में ३)। यह सब से छोटी है, इस की लम्बाई १/२ इंच के लगभग होती है। इसका भी एक सिरा फूला हुआ होता है; नली के दोनों सिरे जुदा जुदा खुलते चित्र ३०४ में ६, ९)।

नलियों का व्यास सामान्यतः $\frac{१}{३००}$ इंच के लगभग होता है।

३—कोकला—(चित्र ३०३ में ८; चित्र ३००, ३०४)। कोकला कुछ कुछ शंकाकार होता है; एक ओर वह पतला और नोकीला होता है, दूसरी ओर चौड़ा और मोटा; पतला भाग शिखर कहलाता है, चौड़ा भाग तली। कोकले की ऊँचाई अर्थात् शिखर से तली तक का माप $\frac{१}{५}$ इंच के लगभग होता है और तली की चौड़ाई $\frac{१}{४}$ इंच से कुछ अधिक होती है। कोकला क़रीब क़रीब क्षितिज रहता है, उस का शिखर सामने को और बाहर की ओर (कनपुटी की ओर) और ज़रा नीचे को झुका

चित्र ३०४ अस्थिकृत गहन (कटा हुआ)



१ से ५ तक=वही व्याख्या जो चित्र ३०३ में

६=पार्श्व नाली का फूला हुआ सिरा

७=पाश्चात्य नाली का फूला हुआ सिरा

८=ऊर्ध्व और पाश्चात्य नालियों के जुड़े हुए सिरों का छिद्र

१०=कोकला द्वार

११=इस गड्ढे में अंडाकार कोष रहता है।

१२=इस गड्ढे पर वर्तुल कोष रहता है; १३=कोकले की नीचे की नली;

१४=कोकले का शिखर; १५=परदा जिसके द्वारा कोकले के दो भाग हो जाते हैं;

इस चित्र में नालियों, कुटी और कोकले की दीवारें आधी आधी काट डाली गई हैं।

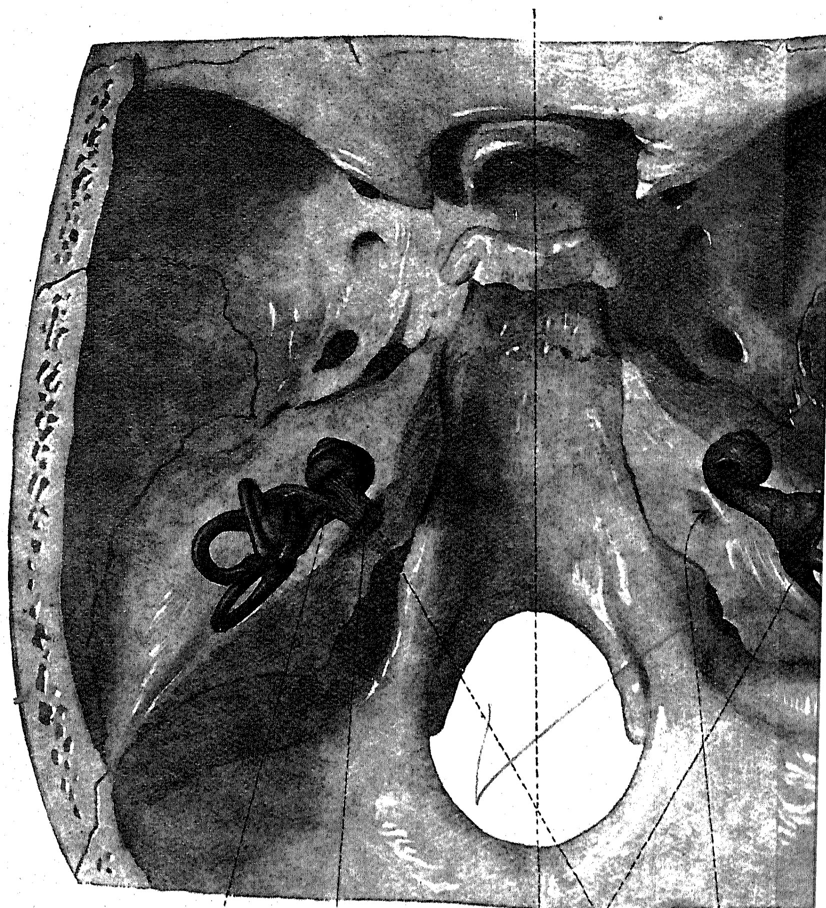
हुआ रहता है; उसकी तली पोले को मध्यरेखा की ओर और शंखास्थि के अश्मकूट (सूच्याकार भाग) के पिछले पृष्ठ की ओर रहती है। अश्मकूट के पिछले पृष्ठ पर एक छिद्र होता है जिसको कर्णान्तर्द्वार कहते हैं (चित्र ३०२ में १); यह एक $\frac{1}{3}$ इंच लम्बी नाली का मुख है। इस नाली का नाम कर्णान्तर नाली है; इसका दूसरा अर्थात् बाहर का सिरा बन्द है; कोकले की तली इसी सिरे पर रहती है या यह समझो कि कर्णान्तर नाली कर्णान्तर्द्वार से कोकले की तली तक रहती है। यदि हम कर्णान्तर्द्वार में से देखें तो कोकले की तली में बहुत से छिद्र दिखाई देंगे; इनमें से होकर नाड़ियाँ अन्दर घुसती हैं।

कोकला वास्तव में दो चीज़ों से बना हुआ है :—

१—पतला स्तंभ जो शंकाकार होता है।

२—एक नली जो इस स्तम्भ पर लिपटी रहती है।

स्तंभ—यह कोकले के बीच में रहता है; इस की तली मोटी होती है और कोकले की तली में रहती है; इस का शिखर पतला होता है और कोकले के शिखर की ओर रहता है। स्तम्भ की तली में कई छिद्र होते हैं। स्तम्भ के भीतर बहुत सी सीधी और तिर्छी सूक्ष्म नालियाँ होती हैं; श्रावण नाड़ी



(Sobotta's Atlas)

के तार तली के छिद्रों में से हो कर स्तम्भ में घुसते हैं और फिर इन नालियों में रहते हैं।

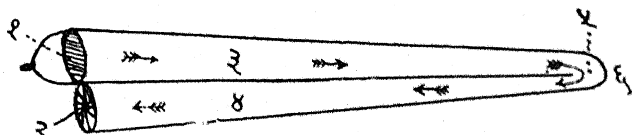
नली—नली स्तम्भ पर इस प्रकार लिपटी रहती है कि लपेट एक दूसरे से मिले रहते हैं। नली के पौने तीन लपेट या फेरे होते हैं। नली का आरम्भिक भाग जो कर्ण कुटी के पास होता है चौड़ा होता है यहाँ उस का व्यास $\frac{1}{६}$ इञ्च होता है; यहाँ से शिखर तक नली तंग होती चली गई है; शिखर का भाग अत्यन्त तङ्ग होता है। नली की लम्बाई १$\frac{1}{५}$ इंच के लगभग होती है। भीतर से एक परदे द्वारा नली के दो भाग हो जाते हैं; यह परदा स्तम्भ से आरम्भ होता है और कुछ अस्थि से बना होता है और कुछ कला से (चित्र ३०४ में १५); इस परदे को कोकला फलक कहते हैं। नली की भाँति कोकला-फलक तली से आरम्भ होकर चक्कर खाता हुआ शिखर तक पहुँचता है; जहाँ नली चौड़ी होती है वहाँ वह भी चौड़ा होता है; जहाँ नली तङ्ग होती है वहाँ वह भी कम चौड़ा होता है।

फलक द्वारा नली के दो भाग हो जाते हैं। एक नली से दो नलियाँ बन जाती हैं। एक नली फलक के ऊपर रहती है दूसरी उसके नीचे। ऊपर की नली कर्णकुटी से सम्बन्ध रखती है, नीचे की मध्य कर्ण से। कर्णकुटी की बाहरी दीवार में अंडाकार छिद्र होता है जिसको कर्णकुटी द्वार कहते हैं (देखो चित्र ३०३ में ७)। यहाँ रकाबास्थि का पादान लगा रहता है। ऊपर की नली कर्णकुटीद्वार के पास ही आरम्भ होती है।

फलक के नीचे की नली का वहाँ से आरम्भ होता है जहाँ कोकलाद्वार (वृत्त छिद्र) होता है (चित्र ३०१ में ८)।

यह द्वार जीवितावस्था में एक झिल्ली द्वारा बन्द रहता है; झिल्ली द्वारा नीचे की नली मध्यकर्ण से पृथक् रहती है। यदि यह झिल्ली न हो तो नीचे की नली का मध्यकर्ण से सम्बन्ध हो जावे। इस नली को मध्यकर्ण सम्बन्धी नली (कुल्या) कहते हैं। ऊपर नीचे की दोनों नलियाँ कोकले की शिखर में एक छिद्र द्वारा एक दूसरे से मिली रहती हैं (चित्र ३०६)।

चित्र ३०६ कोकले की नलियाँ (कुल्याएँ)



इस चित्र में यह मान लिया गया है कि कोकले की नली सीधी कर दी गई है। ३ और ४ के बीच में फलक है। दोनों नलियाँ (३, ४) कोकले के शिखर (६) में पहुँचकर एक छिद्र द्वारा (५) एक दूसरे से मिल जाती हैं। ऊपर की नली का आरम्भ कर्णकुटीद्वार (१) के पास होता है जहाँ रकाबास्थि लगी रहती है। नीचे की नली का आरम्भ (या अन्त) कोकलाद्वार (२) से होता है जहाँ एक झिल्ली लगी रहती है।

झिल्लीकृत अन्तःस्थ कर्ण

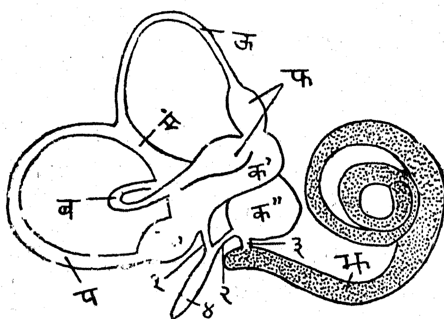
१—अस्थिकृत कर्णकुटी के भीतर झिल्ली से बनी हुई दो छोटी छोटी थैलियाँ रहती हैं। एक थैली ऊपर पिछले भाग में रहती है, दूसरी थैली सामने और नीचे के भाग में। पिछली थैली (चित्र ३०७ में क') अगली (क'') से बड़ी होती है और उससे तीनों झिल्लीकृत नालियाँ लगी रहती हैं। (देखो चित्र ३०७)। अगली थैली पिछली से छोटी होती है। इसके

पिछले भाग से एक पतली नली निकलती है (चित्र ३०७ में २) जो पिछली थैली की पतली नली (चित्र ३०७ में १) से मिल जाती है; इन दोनों से एक बड़ी नली बन जाती है (चित्र ३०७ में ४)। अगली थैली से एक अत्यन्त सूक्ष्म नली और निकलती है (चित्र ३०७ में ३) जो झिल्लीकृत कोकले (चित्र ३०७ में झ) से जुड़ी रहती है।

दोनों थैलियाँ कहीं कहीं कर्णकुटी की दीवार से सौत्रिक तन्तु द्वारा बँधी रहती हैं। थैलियों के भीतर और उनके और कर्णकुटी की दीवार के बीच में कुछ लसीका जैसा तरल रहता है।

२—**झिल्लीकृत नालियाँ**—अस्थिकृत नालियों के भीतर झिल्ली से बनी हुई नालियाँ रहती हैं। इनकी मोटाई अस्थिकृत

चित्र ३०७ झिल्लीकृत अन्तःस्थ कर्ण



ऊ=ऊर्ध्व नाली; ब=पार्श्वनाली; प=पाश्चात्य नाली; सं=जुड़ा हुआ सिरा; फ=फूला हुआ सिरा; क'=ऊपर की थैली; क''=नीचे की थैली।

झ=झिल्लीकृत कोकला; ३=नीचे की थैली और झिल्लीकृत कोकले के बीच में रहनेवाली नली; १, २, ४=नलियाँ।

नालियों की मोटाई से $\frac{1}{3}$ होती है। कई जगह इनकी दीवारें सौत्रिक तन्तु द्वारा अस्थिकृत नालियों की दीवार से बँधी रहती हैं। हर नाली का एक सिरा फूला हुआ होता है। तीनों नालियाँ ऊपर की थैली से जुड़ी रहती हैं (देखो चित्र ३०७)। उनमें एक तरल भरा रहता है। दोनों प्रकार की नालियों के बीच में जो अन्तर है उसमें भी तरल रहता है।

३—झिल्लीकृत कोकला—पीछे यह बतलाया जा चुका है कि एक फलक द्वारा कोकले की नली के दो भाग हो जाते हैं; एक नली फलक के ऊपर रहती है दूसरी उसके नीचे। नीचेवाली नली को मध्यकर्ण सम्बन्धी कुल्या कहते हैं। ऊपर की नली के एक पतली कला द्वारा दो भाग हो जाते हैं; जहाँ फलक की अस्थि झिल्ली से मिलती है वहीं से इस कला का आरम्भ होता है; यह कला बाहर की ओर जाकर कोकले की दीवार से जा मिलती है (देखो चित्र ३०८)। इस प्रकार कोकले की नली के तीन भाग हो जाते हैं :—

१—ऊपर की नली (चित्र ३०८ में १); इसका कर्णकुटी से सम्बन्ध रहता है; इसको कर्णकुटी सम्बन्धी (या ऊर्ध्व) कुल्या कहते हैं।

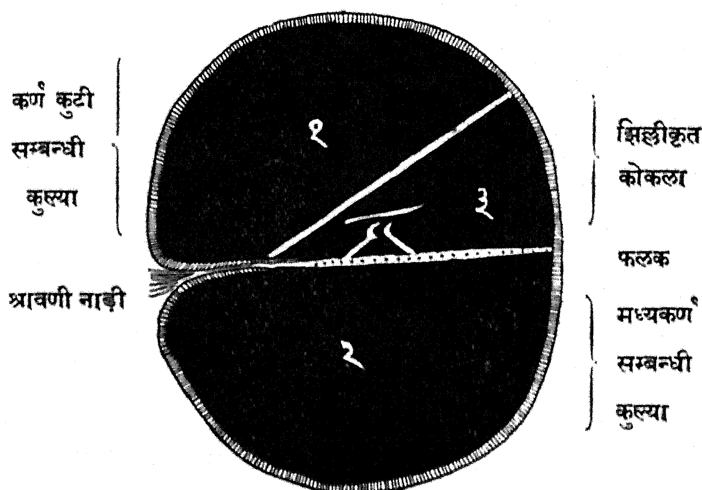
२—फलक के नीचे की नली (चित्र ३०८ में २); इसको मध्यकर्ण सम्बन्धी (या अधो) कुल्या कहते हैं।

३—ऊपर और नीचे (१ और २) की नलियों के बीच में रहनेवाली नली (चित्र ३०८ में ३); यह मध्यकुल्या या झिल्लीकृत कोकला है।

तीनों कुल्याएँ चक्राकार हैं। हर एक कुल्या कोई पौने

तीन चक्र खाकर शिखर तक पहुँचती है। ऊपर और नीचे की कुल्याएँ शिखर में पहुँचकर एक छिद्र द्वारा एक दूसरे से मिल जाती हैं (देखो चित्र ३०६); इनमें से किसी का तीसरी कुल्या से किसी प्रकार भी सम्बन्ध नहीं है।

चित्र ३०८ कोकले की नली का व्यत्यस्त काट



मध्य कुल्या की छत और फ़र्श झिल्ली से बनते हैं; शेष दीवार कोकले की अस्थि पर रहनेवाली अस्थिजनक कला से बनती है। इस कुल्या का व्यत्यस्त काट तिकोना होता है जैसा कि चित्र ३०८ से विदित होता है। कुल्या के दोनों सिरे बन्द हैं (देखो चित्र ३०७); इस कुटी में रहनेवाली थैलियों में से अगली थैली (चित्र ३०७ क") इस कुल्य से एक सूक्ष्म

नली द्वारा (चित्र ३०७ में ३) जुड़ी रहती है। जो तरल थैली में रहता है वह इस कुल्या में भी रहता है। शेष दो कुल्याओं में वह तरल रहता है जो कर्ण कुटी में झिल्लीकृत थैलियों के बाहर रहता है।

झिल्लीकृत कोकला या मध्यकुल्या की सूक्ष्म रचना

कोकले की मध्य कुल्या के फ़र्श की रचना बड़ी ही विचित्र और विषम है। उसकी रचना का पूर्ण ज्ञान बड़े बड़े सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों द्वारा ही होता है। इस पुस्तक में हम केवल मोटी मोटी बातें ही लिखेंगे।

अस्थिकृत फलक वास्तव में अस्थि के दो पतले पतले पत्रों से बनता है (चित्र ३०८, चित्र ३०९ में अ); इन पत्रों के बीच में जो अंतर रहता है उसमें श्रावणी नाड़ी के तार रहते हैं (चित्र ३०९ में श्र)। इन पत्रों के बीच में से होकर ये तार झिल्लीकृत फलक और मध्य कुल्या में पहुँचते हैं (चित्र ३०९ में सू)।

फलक की झिल्ली पर लम्बी लम्बी शलाकाकार सेलों की दो पंक्तियाँ रहती हैं ; एक पंक्ति दूसरे के सम्मुख रहती है। एक पंक्ति की सेलों के नीचे के सिरे दूसरी पंक्ति की सेलों के नीचे के सिरों से अलग रहते हैं ; परन्तु दोनों पंक्तियों की सेलों के ऊपर के सिरे एक दूसरे से मिले रहते हैं (देखो चित्र ३०८)। पंक्तियों के तिर्छे रहने से और सेलों के ऊपर के सिरों के मिले रहने से एक नली बन जाती है ; इसको श्रोत्र सुरंगा कहते हैं।

श्रोत्र सुरंगा की वे सेलें जो अस्थिकृत फलक के पास रहती हैं कुछ कुछ अन्तः प्रकोष्ठास्थि के सदृश होती हैं ; उनका ऊपर

का सिरा मुड़ा रहता है और उसमें एक गड्ढा होता है (चित्र ३०९ में अं)। दूसरी पंक्ति की सेलें हंसग्रीवाकार होती हैं; इनके ऊपर के सिरे हंस की गरदन के सदृश मुड़े हुए रहते हैं और पूर्वोक्त सेलों के गड्ढों में फँसे रहते हैं (चित्र ३०९ में वा)। अनुमान है कि सुरंग की बाह्य (हंसग्रीवाकार) सेलों की संख्या ४००० और अंतरीय सेलों की संख्या ६००० के लगभग होती है ; दोनों प्रकार की सेलें १०००० के लगभग होती हैं।

सुरंग के दोनों ओर सुरंग की सेलों से मिली हुई कुछ सेलें ऐसी रहती हैं कि उनके सिरों से बड़े पतले पतले बाल जैसे तार निकले रहते हैं। ऐसी सेलों की एक पंक्ति जिसमें कोई ३५०० सेलें होती हैं सुरंग की अंतरीय सेलों के पास रहती है (चित्र ३०९ में ल) ; सुरंग के दूसरी ओर ऐसी सेलों की कई समांतर पंक्तियाँ होती हैं, इनकी संख्या १२००० से १८००० तक होती है। ये लोमश सेलें कहलाती हैं (चित्र ३०९ में ल, ल') लोमश सेलों के अतिरिक्त सुरंग के दोनों ओर और भी कई प्रकार की सेलें रहती हैं।

सुरंग और उसके आसपास की सेलों से जो चीज़ बनती है उसे श्रावण यंत्र कहते हैं। कौर्टी* नामक व्यवच्छेदक ने इस यंत्र की रचना पहले पहल समझाई थी इस कारण इस यंत्र को "कौर्टी का यंत्र" कहा करते हैं।

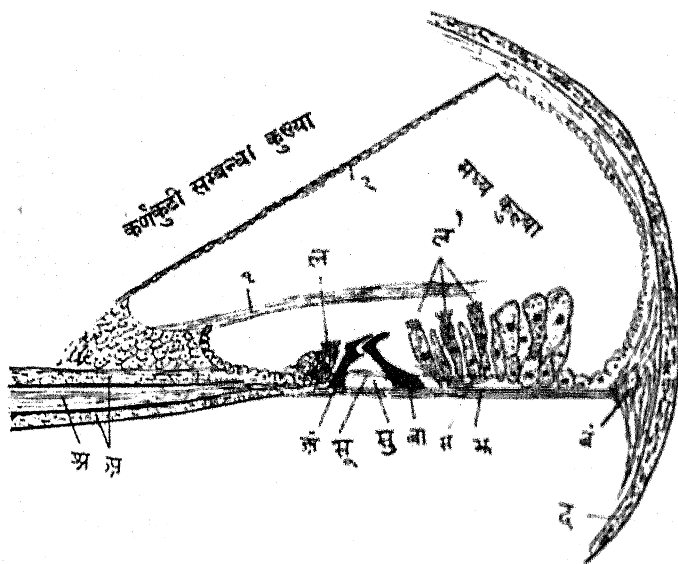
श्रावणी नाड़ी

कोकले के स्तम्भ की तली में बहुत से छिद्र होते हैं। स्तम्भ

*इटली देश का एक व्यवच्छेदक।

के भीतर इन छिद्रों से आरम्भ होनेवाली सूक्ष्म नालियाँ रहती हैं। ये नालियाँ उस स्थान तक जाती हैं जहाँ से अस्थिकृत फलक का आरंभ होता है। फलक के पास पहुँचकर प्रत्येक

चित्र ३०९ मध्य कुल्या की सूक्ष्म रचना



मध्य कर्ण सम्बन्धी कुल्या

व्याख्या :—२=मध्य कुल्या की छत; द=अस्थिकृत कोकले की दीवार; बं=बंधन (अस्थिजनक कला); अ=अस्थि के पत्र; श्र=श्रावणी नाड़ी के सूत्र; सु=श्रोत्र सुरंगा; अं=अंतरीय पंक्ति की सेलें; बा=बाह्य पंक्ति की सेलें; सू=श्रावणी नाड़ी के तार; ल=अंतरीय लोमश सेलें; ल'=बाह्य लोमश सेलें।

नाली पहले से अधिक चौड़ी हो जाती है। इस चौड़े स्थान में नाड़ी सेलों के छोटे छोटे समूह होते हैं जिनको नाड़ी गंड कहते हैं। इन सेलों से दो दो तार निकलते हैं; एक तार फलक के दोनों पत्रों के बीच में होकर सुरंग की ओर जाता है (चित्र ३०९ में अ); दूसरा तार फलक से स्तम्भ की नाली में पहुँ-चता है।

उन तारों से जो नाड़ी गंडों से स्तम्भ में आते हैं अष्टमी नाड़ी का आधा भाग बनता है। ये तार केन्द्रगामी और सांवेद-निक हैं और कोकला के नाड़ी गंड इनके उत्पत्ति स्थान हैं। सेलों के दूसरे तार अस्थिकृत फलक में होकर सुरंग के पास पहुँचते हैं; इनका इष्ट प्रदेश लोमश सेलें हैं; कुछ तारों का अंत सुरंग के इस पारवाली सेलों के पास हो जाता है, कुछ सुरंग में से होकर सुरंग के दूसरी पारवाली लोमश सेलों तक पहुँचते हैं।

शब्द या ध्वनि

जब कोई चीज़ बजती है तो वह बड़ी शीघ्रता से हिलती या कँपती है। जब सारंगी और सितार बजाये जाते हैं तो उनके तार हिलते हुए दिखाई देते हैं; जब तबला या ढोल बजाया जाता है तो चमड़े की झिल्ली हिलती है; जब घड़ियाल बजाई जाती है तब वह बहुत ही शीघ्रता से हिलती है; जब हम बोलते हैं तो हमारे स्वरयंत्र की स्वररज्जुएँ कँपती हैं। शब्दकर वस्तु के कँपने से आसपास की वायु भी कँपने लगती है और उसमें तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। जब कोई शब्दकर वस्तु जैसे घड़ियाल हिलती है तो उससे मिले हुए वायु के ज़र्रों को धक्का लगता है और

वे उस वस्तु से परे हट जाते हैं; परे हटने पर ये ज़र्रे अपने पास वाले ज़र्रों को धक्का देते हैं और धक्का देकर अपने पूर्व स्थान को लौट जाते हैं; ये ज़र्रे दूसरे ज़र्रों को धक्का देते हैं और फिर अपने पूर्व स्थान को पहुँच जाते हैं। इस प्रकार जो धक्का शब्द-कर वस्तु के एक बार हिलने से वायु को मिला उसका असर दूर तक पहुँचा अर्थात् उस से दूर तक की वायु में उत्कंपन उत्पन्न हो गई। इस एक धक्के का असर अभी खतम न होने पाया था कि इतने में वस्तु के हिलने से वायु को दूसरा धक्का मिलता है; पहले धक्के की भाँति इसका असर भी वायु में दूर तक पहुँचता है।

शब्दकर वस्तु बड़ी शीघ्रता से हिलती है; इस कारण वायु को भी धक्के एक दूसरे के पश्चात् बड़ी शीघ्रता से लगते हैं। इन धक्कों से वायु में कम्पन (या उत्कम्पन) की लहरें या तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं। वायु के ज़र्रे अपने स्थान को छोड़कर बहुत दूर हटकर नहीं जाते; थोड़ी देर के लिए वे अपने स्थान से हटते हैं और इस धक्के के असर को और ज़र्रों को दे कर अपने आप फिर वहीं लौट आते हैं। जब तोप चलती है तो आसपास के मनुष्य वायु की उत्कम्पन को प्रतीत कर सकते हैं; यह न समझना चाहिए कि तोप के पासवाली वायु धक्का खाकर मनुष्यों के पास आ पहुँची। ऐसा नहीं होता; तोप के पासवाली वायु तोप से अधिक दूर नहीं हटी; जो धक्का इस वायु को लगा केवल उसका असर ही वायु के एक भाग से दूसरे भाग में होता हुआ मनुष्यों तक पहुँचता है।

वायु की उत्कम्पन के विषय में हम एक उपमा देते हैं :—

मान लो कि आप किसी बड़े मेले में हैं और वहाँ बड़ी भीड़ है ; आप भीड़ में सब से पीछे हैं। आगे से सिपाही भीड़ को पीछे को हटाता है; अगले मनुष्यों के पीछे को हटने से पीछे वाले मनुष्यों को धक्का लगता है और वे पीछे हट जाते हैं। इनके पीछे हटने पर उनसे पीछेवालों को धक्का लगता है और वे भी पीछे हटते हैं। इस प्रकार धक्का सब से पीछेवाले मनुष्यों तक पहुँचता है और उनको थोड़ा बहुत पीछे हटना पड़ता है। वे पीछे हट ही रहे थे कि इतने में सिपाही चुप हो जाता है। अगले मनुष्य तुरन्त ही आगे बढ़ने लगते हैं इन के आगे बढ़ते ही उनके पीछेवाले मनुष्य जो खिचकर पीछे को हट गये थे, अब फिर आगे को सरककर अपने पूर्व स्थान पर पहुँच जाते हैं ; उनके पीछेवाले मनुष्य भी ऐसा ही करते हैं। सिपाही फिर धमकाता है। और मनुष्य फिर पीछे को हटते हैं। और अब एक नया धक्का भीड़ के पिछले भाग तक पहुँचता है।

सिपाही के धक्का देने से अगले मनुष्य धक्का खाते हैं परन्तु वे हटकर सब से पीछे नहीं पहुँच जाते केवल उस धक्के का असर ही पीछेवाले मनुष्यों तक पहुँचता है। इसी प्रकार जब शब्दकर वस्तु के कँपने से वायु को धक्का मिला या उसमें उत्कम्पन उत्पन्न हुई तब केवल यह असर ही दूर तक पहुँचता है वायु बहुत दूर तक नहीं हटती। वायु के ज़र्रे भीड़ के मनुष्यों के सदृश हैं। जब तोप चलती है तो उसके आसपास की वायु हमारे कान तक नहीं पहुँचती केवल वायु की उत्कम्पन ही हम तक पहुँचती हैं।

वायु की उत्कम्पन की तरंगें शब्दकर वस्तु के चारों ओर फैल जाया करती हैं। जब हम किसी ताल में एक ढेला फेंकते

हैं तो जहाँ ढेला गिरता है उस स्थान के चारों ओर पानी की लहर उत्पन्न हो जाती है। कहीं पानी उठ जाता है और कहीं दब जाता है ; ये लहरें धीरे धीरे किनारे के पास पहुँचती हैं और ऐसा मालूम होता है कि पानी ढेले के पास से चलकर लहर रूप में किनारे तक जा पहुँचा है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता ; क्योंकि पानी में यदि कोई तिनका या पत्ता पड़ा हो तो वह लहर के साथ उठता और गिरता तो दिखाई देगा परन्तु लहर के साथ साथ किनारे तक न आयेगा। यदि लहर के साथ साथ पानी भी ढेले के पास से किनारे तक आता तो तिनका भी उसके साथ साथ चला आता। इस से स्पष्ट है कि ढेले के गिरने से पानी ऊपर नीचे को तो अवश्य होता है परन्तु वह लहर के साथ आगे को दूर तक नहीं जाता। वायु की उत्कम्पनों की लहरें भी ऐसी ही होती हैं।

वायु की उत्कम्पन का सबसे अधिक वेग शब्दकर वस्तु के पास होता है ; ज्यों ज्यों वह आगे को फैलती हैं त्यों त्यों उनका वेग कम होता जाता है। यही कारण है कि शब्दकर वस्तु के पास शब्द ज़ोर से सुनाई देता है और उससे दूर हलका।

शब्द की उत्कम्पन वायव्य, द्रव तथा ठोस तीनों प्रकार के पदार्थों में होकर जा सकती हैं। साधारणतः उत्कम्पन वायु में होकर चलती हैं। यदि उत्कम्पन पानी में से न जा सकतीं तो समुद्र और नदियों की तह में रहनेवाले मछली इत्यादि जानवर पानी के बाहर का शब्द न सुन सकते।

साधारणतः शब्द की उत्कम्पन वायु में से गुज़रती हैं। शब्द तरल और ठोस पदार्थों में से वायु की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से चलता है। यदि वायु का तापक्रम १५° शतांश

हो तो शब्द एक सेकंड में ११२० फुट चलेगा। शब्द गरम वायु में सर्द वायु की अपेक्षा अधिक शीघ्रता से चलता है; प्रति दरजा शतांश शब्द की चाल २ फुट अधिक हो जाती है; यदि वायु का तापक्रम २०° शतांश हो तो शब्द की चाल ११३० फुट प्रति सेकन्ड होगी।

शब्द जल में वायु की अपेक्षा चौगुने वेग से चलता है; यदि उसका ताप ८° शतांश हो तो उसकी चाल ४७०८ फुट प्रति सेकन्ड होगी। लकड़ी में उसकी चाल लगभग १००००—१५००० फुट, काँच में १६००० और चाँदी में ८८००, सोने में ७०००, फौलाद में १६००० फुट प्रति सेकंड होती है।

शब्द किस प्रकार सुनाई देता है

शब्द की उत्कम्पनें वायु में होती हुई हमारे कान तक पहुँचती हैं। कर्णाञ्जली की वायु में उत्कम्पन पैदा हो जाती है; इस नली के अन्त पर कर्णपटह नामक जो झिल्ली लगी है वह इस उत्कम्पन को ग्रहण करती है और कँपने लगती है। कर्णपटह के हिलने के कारण मध्यकर्ण की तीनों अस्थियाँ हिलती हैं। कर्णपटह जब मध्यकर्ण की ओर जाता है तो उसके भीतरी पृष्ठ से लगा हुआ मुद्गरदंड भी भीतर को हो जाता है (चित्र ३०१ में अस्थियों की गतियाँ बिन्दुवाली लकीरों से दर्शाई गई हैं)। जब मुद्गरदंड भीतर को हटता है तो उसका शिर बाहर की ओर आता है; मुद्गर के शिर से नेहाई का गात्र बँधा हुआ है, इस कारण जब मुद्गर का शिर बाहर को गति करता है तो नेहाई का गात्र भी उसके साथ बाहर की ओर आता है। अब नेहाई का वृहत् प्रवर्द्धन जो रकाब से बँधा हुआ है भीतर की ओर

जाता है जिसकी वजह से रकाब का पादान नामक अंश भी भीतर को गति करता है (देखो चित्र ३०१) ।

जब कर्णपटह बाहर की ओर आता है तो अस्थियों की गति दूसरी दिशा में होती है अर्थात् मुद्गरदंड बाहर को आता है और उसका शिर और नेहाई का गात्र अंतःस्थ कर्ण की ओर जाते हैं, रकाबास्थि बाहर को कर्णपटह की ओर गति करती है। इन गतियों का परिणाम यह होता है कि रकाब का पादान जो कर्णकुटीद्वार में रहता है कभी भीतर की ओर जाता है और कभी बाहर को आता है । जब तक कर्णपटह में उत्कंपन रहती है तब तक रकाब के पादान में भी यह गति होती रहती है ।

कर्णकुटी में एक जलाय तरल रहता है और कर्णकुटीद्वार के पास से कोकले की ऊर्ध्व कुल्या (कर्णकुटी सम्बन्धी कुल्या) का आरंभ होता है । पादान के हिलने से कर्णकुटी के और कोकले की ऊपर और नीचे की कुल्याओं के तरल में उत्कंपन पैदा होती है जिसके कारण मध्यकुल्या या झिल्लीकृत कोकले के भीतर रहनेवाला तरल भी हिलने लगता है । इस तरल की उत्कंपन से लोमश सेलों पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है जिसकी सूचना श्रावणी नाड़ी के तारों द्वारा मस्तिष्क के श्रावण केन्द्रों (जो ऊर्ध्व शंख चक्रांगों में होते हैं) को जाती है और हम को शब्द का ज्ञान होता है ।

कर्णशष्कुली उत्कंपनों को ग्रहण और इकट्ठा करता है; कर्ण का यह भाग घोड़ा, गाय, खरगोश, कुत्ता इत्यादि जानवरों में बड़ा होता है ; ज़रा सी आहट पाते ही ये जानवर कर्णशष्कुली को खड़ा कर लेते हैं ताकि जितनी ज़्यादा उत्कंपनें कर्णाञली

में पहुँच सकें उतनी पहुँचें। कर्णांजली का काम इन को कर्णपटह तक पहुँचा देने का है। मध्यकर्ण में अस्थि जैसी ठोस चीज़ों के रहने से हलकी उत्कंपनों का भी वेग बढ़ जाता है। कोकलाकर्ण का सांवेदनिक भाग है ; यदि बाह्यकर्ण और मध्यकर्ण ठीक हों और कोकला किसी रोग के कारण ख़राब हो जावे तो हमारी श्रावणशक्ति जाती रहेगी।

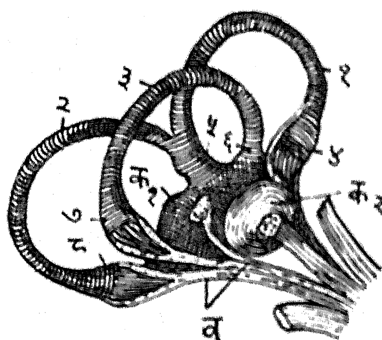
शब्द का ज्ञान तब ही हो सकता है कि जब उत्कंपन कोकले तक पहुँचें। साधारणतः उत्कंपनें बाह्य और मध्य कर्ण द्वारा पहुँचा करती हैं। जब बाह्यकर्ण और मध्यकर्ण के बिगड़ने से उत्कंपनें कोकले तक न पहुँच सकें तब यदि घड़ी माथे से लगाई जावे या दाँतों के बीच में दबाई जावे तो उस की टिक टिक सुन पड़ेगी। अब उत्कंपनें कर्पर की अस्थियों द्वारा कोकले तक पहुँची हैं क्योंकि अस्थि ठोस चीज़ होने के कारण वायु की अपेक्षा शब्द का अच्छा चालक है। परन्तु यदि कोकला भी ख़राब हो गया हो तो घड़ी की टिक टिक न सुन पड़ेगी।

बहरापन कई कारणों से हो सकता है। कर्णाञ्जली में मैल इकट्ठा होने से उत्कंपनें कर्णपटह तक अच्छी तरह से नहीं पहुँच सकतीं। कभी कभी कर्णपटह फट जाता है या मध्यकर्ण के प्रदाह के समय उसमें से पीप बाहर आने के लिये छिद्र बन जाते हैं; ऐसी दशा में भी सुनाई में फ़र्क़ आ जाता है। जब प्रदाह के कारण मध्यकर्ण की अस्थियाँ गल जाती हैं या उनकी संधियाँ अचेष्ट हो जाती हैं (वृद्धावस्था में भी संधियाँ बिगड़ जाती हैं) तब भी मनुष्य को ऊँचा सुनाई देने लगता है। कोकले या श्रावणी नाड़ी या श्रवण केन्द्रों के रोगों में मनुष्य पूर्णतया बहरा हो जाता है।

झिल्लीकृत अर्धचक्राकार नालियों तथा थैलियों का कार्य

अर्धचक्राकार नालियों के फूले हुए सिरों और थैलियों की दीवारों में लोमश सेलें पाई जाती हैं। इन नालियों और थैलियों के नाड़ी तार कर्णान्तर नाली में पहुँच कर कोकले के तारों से मिल जाते हैं; सब तारों के इकट्ठे होने से पूरी अष्टमी नाड़ी बनती है। अष्टमी नाड़ी कर्णान्तर्द्वार से निकलकर मस्तिष्क में चली जाती है; कोकले के तार तो श्रावण केन्द्र को जाते हैं परन्तु नालियों और थैलियों के बहुत से तार लघु मस्तिष्क के दूसरी

चित्र ३१० झिल्लीकृत थैलियाँ तथा अर्धचक्राकार नालियाँ



१=ऊर्ध्व नाली; २=पाश्चात्य नाली; ३=पार्श्व नाली; ४, ७, ८=फूले हुए सिरे; ५=जुड़ा हुआ सिरा; क१=ऊपर की थैली; क२=नीचे की या अगली थैली; व=नाड़ियाँ।

ओर के गोलार्ध में पहुँचते हैं; शेष तार बृहत् मस्तिष्क में मस्तिष्क की तीसरी नाड़ी के उत्पत्ति स्थान को जाते हैं।

इन नालियों और थैलियों के भीतर एक जलीय तरल रहता है जिसका संगठन लसीका जैसा होता है। जब हम चलते फिरते हैं या कूदते हैं या छलांग मारते हैं या करवट बदलते हैं या हिंडोले में चक्कर खाते हैं तो यह तरल भी हिलता है और लोमश सेलों के बालों से टकराता है। इस तरल के दबाव से जो प्रभाव इन लोमश सेलों पर पड़ता है उसकी सूचना नाड़ी सूत्रों द्वारा लघु मस्तिष्क को मिलती है। इन नालियों द्वारा लघु मस्तिष्क को इस बात की सूचना मिलती रहती है कि हम किस दिशा में जा रहे हैं और हमारे शरीर की क्या स्थिति है अर्थात् हम खड़े हैं या पड़े हैं, उलटे हैं या चक्कर खा रहे हैं। इस सूचना से लघु मस्तिष्क को शरीर में साम्यावस्था (साम्य-स्थिति) रखने में सहायता मिलती है (देखो "लघुमस्तिष्क के कार्य")। जब नालियों में रोग हो जाते हैं तो शरीर की साम्यावस्था में फर्क आ जाता है; यदि रोगी सीधा खड़ा होना चाहे तो ऐसा करने में उसको बड़ी कठिनता होगी; रोगी को चक्कर भी आने लगते हैं।

अध्याय २७

स्वरयंत्र (चित्र ३११, ३१२)

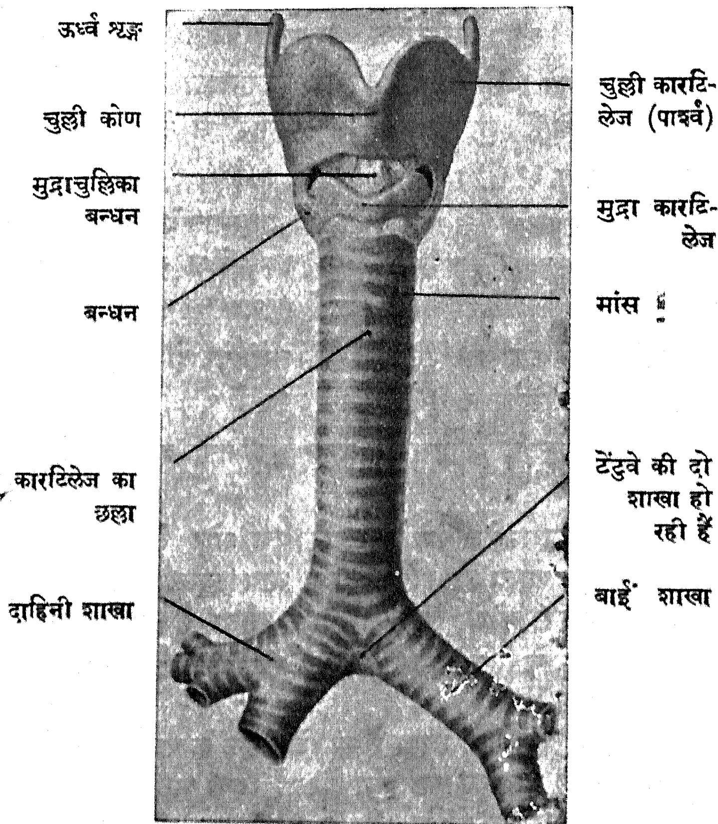
स्वरयंत्र नौ कारटिलेजों से निर्मित एक कोष्ठ है जो ग्रीवा के ऊपर के भाग में कंठिकास्थि के नीचे और कंठ के सामने रहता है। कोष्ठ के नीचे के भाग से टेंटुवे का आरम्भ होता है; ऊपर का भाग कंठ से सम्बन्ध रखता है। नौ कारटिलेजों में से आठ से तो उसकी अगली पिछली और पार्श्विक दीवारें बनती हैं; एक कारटिलेज से जो पीपल के पत्ते (पत्र) के सदृश होता है उसका ढकना (स्वरयंत्रच्छद) बनता है; जब भोजन मुख से कंठ में जाता है तो यह ढकना पीछे को इस प्रकार झुक जाता है कि उससे स्वरयंत्र का रास्ता ढक जाता है और भोजन उसके भीतर नहीं गिर सकता।

स्वरयंत्र के कारटिलेज आपस में बंधनों तथा पेशियों द्वारा एक दूसरे से बँधे रहते हैं; कारटिलेजों के नाम ये हैं:—

१—चुल्ली कारटिलेज—इसका आकार देशी चूल्हे जैसा होता है। इस कारटिलेज के दो चौड़े पार्श्व होते हैं (चित्र ३११) जो सामने मध्य रेखा में एक दूसरे से जुड़े रहते हैं; इनके मेल से जो एक उभार बनता है वह ग्रीवा में चिबुक के नीचे स्पर्श किया जा सकता है; इस उभार को चुल्लीकोण कहते हैं (चित्र ३११)।

२—चुल्ली कारटिलेज के नीचे अँगूठी जैसा कारटिलेज

चित्र ३११ स्वरयंत्र और टेंटुआ (अगला पृष्ठ)



रहता है; अँगूठी की भाँति इसमें एक मोटा भाग होता है (जहाँ अँगूठी में नग रहता है) जिससे एक पतला घेरा लगा रहता है। इस कारटिलेज को मुद्रा कहते हैं। मुद्रा का मोटा भाग जो पीछे रहता है गात्र कहलाता है; घेरे को मुद्राचक्र कहते हैं। मुद्रा के नीचे के किनारे से टेंटुवा आरम्भ होता है (चित्र ३११)।

३, ४—स्वरयंत्र के पिछले भाग में मुद्रागात्र के ऊपर ठोस त्रिकोण के सदृश दो छोटे छोटे कारटिलेज रहते हैं, ये त्रिकोण या सूच्याकार कारटिलेज हैं (चित्र ३१२ में ८)।

५, ६—त्रिकोण कारटिलेज के शिखरों पर दो बहुत छोटे शंक्वाकार कारटिलेज रहते हैं (चित्र ३१२ में ९)।

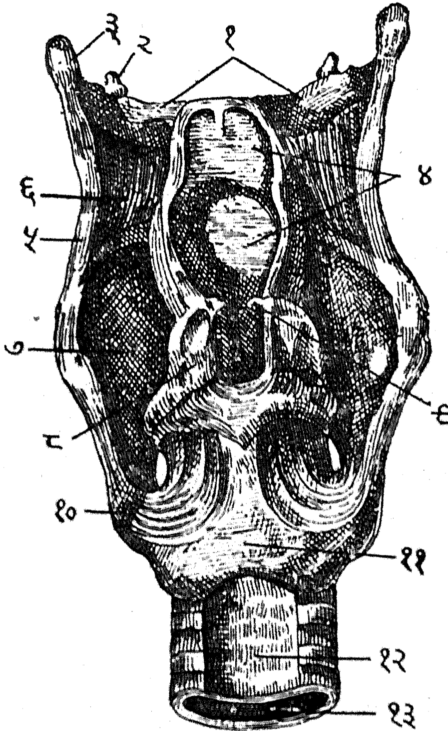
७, ८—शंकुओं के पास दो बहुत ही नन्हें शलाका जैसे कारटिलेज रहते हैं।

९—यह कारटिलेज पत्ते के सदृश एक ओर से चौड़ा और दूसरी ओर से पतला होता है। पतला भाग चुल्ली कारटिलेज के भीतरी पृष्ठ (कोण से) से बँधा रहता है; चौड़ा भाग ऊपर जिह्वामूल के निकट रहता है। यह स्वरयंत्रच्छद कहलाता है (चित्र ३१२ में ४)।

जब मुँह ख़ूब बाया जाता है तो जिह्वामूल के पास इस कारटिलेज के चौड़े भाग का कुछ अंश दिखाई दिया करता है।

इन सब कारटिलेजों के भीतरी पृष्ठों पर श्लैष्मिक कला रहती है। समस्त स्वरयंत्र के पिछले पृष्ठ से कंठ के नीचे के भाग की अगली दीवार बनती है।

चित्र ३१२ स्वरयंत्र (पिछला पृष्ठ)



व्याख्या :—पेशियाँ हटा दी गई हैं ; केवल कारटिलेज और बंधन दर्शाये गये हैं ।

१=कंठिकास्थि का गात्र; २=लघुश्रृङ्ग; ३=बृहत्श्रृङ्ग; ४=स्वरयंत्रच्छद का पिछला पृष्ठ; ५=चुली का ऊर्ध्व श्रृङ्ग; ६=चुलीकंठिका कला; ७=चुली का पिछला पृष्ठ; ८=त्रिकोण कारटिलेज; ९=शंकाकार कारटिलेज; १०=चुली के अधरश्रृङ्ग और मुद्रा के गात्र की संधि; ११=मुद्रा का गात्र; १२=टेंटुआ का पिछला मांसकृत भाग; १३=टेंटुआ का छिद्र ।

सामान्यतः जवान उमर में स्वरयन्त्र के ये माप होते हैं :—

	पुरुष	स्त्री
लम्बाई	१·८ इंच	१·५ इंच
व्यत्यस्त व्यास (चौड़ाई)	१·७ इंच	१·६ इंच
अग्र पश्चात् व्यास (मोटाई)	१·५ इंच	१·२ इंच
परिधि (घेरा)	५·६ इंच	४·७ इंच

यौवन से पहले पुरुष और स्त्री के स्वरयन्त्रों के माप एक ही जैसे होते हैं। जब यौवन आरम्भ होता है तब स्त्री के स्वरयन्त्र में तो अधिक परिवर्तन नहीं होता परन्तु पुरुष का स्वरयन्त्र शीघ्रता से बढ़ता है; सब कारटिलेज बड़े हो जाते हैं; चुल्ली कारटिलेज ग्रीवा में उभरा हुआ देख पड़ता है और स्वरयन्त्र के सब माप बढ़ जाते हैं। इस परिवर्तन का परिणाम यह होता है कि लड़के का स्वर बदल जाता है और पहले की अपेक्षा भारी और मोटा हो जाता है।

स्वर रज्जु (चित्र ३१३, ३१६)

स्वरयन्त्र के भीतर चुल्ली कारटिलेज और त्रिकोण कारटिलेज के बीच में मध्य रेखा के इधर उधर श्लैष्मिक कला के दो झोल होते हैं; एक झोल ऊपर होता है दूसरा उससे ज़रा सी दूरी पर उसके नीचे। ऊपर के झोलों में श्लैष्मिक कला के नीचे सौत्रिक तन्तु की एक पतली पट्टी रहती है; इनका स्वर से कोई सम्बन्ध नहीं होता। नीचेवाले झोलों का स्वर से सम्बन्ध है; इस कारण वे स्वर रज्जु कहलाते हैं। स्वर रज्जु में श्लैष्मिक कला के नीचे एक मोटी पट्टी स्थितिस्थापक सौत्रिक तन्तु की रहती है; इस पट्टी के पास एक पतली मांस-

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
वृक्क	३४, ३२३	Kidney
वृद्धि	१६	Growth
वृद्धि क्रम	८१४	Development
वृषण	३३	Scrotum
वृत्त रन्ध्र	१३१	Foramen rotundum
वृंताकार पिंड	५५४	Corpus mammillarium
वृन्त पिंड	५५१	,, ,, ,,
वंक्षण	३७	Groin
वंशानुगा धारा	५७	Vertebral border
ंक्षणोलूखल	७३	Acetabulum

श

शर्करा	३५९	Glucose
शर्करा जनक	३६२	Glycogen
शर्कराजन	३६२	Glycogen
शर्करा परिवर्त्तक	४५८	Invertase
शार	३८८	Cream
शव		Corpse
श्वेताणु	२४३	Leucocyte
श्वेतसार	३५८	Starch
श्वेतसारीय	४२७	Starchy
श्वेतसार विश्लेषक	४५७	Amylopsin

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
श्लैष्मिक कला	३४७	Mucous membrane
श्वास कर्म	३११	Respiration
श्वास मार्ग	३०३, ६७७	Respiratory tract
श्वास प्रणाली	३०९	Bronchus
श्वास प्रणालिका	३१०	Bronchiole
श्वासोच्छ्वास संस्थान	२९६, २६	Respiratory system
शिखर	५१	Apex
शिखर कंटक	१२१	Crista galli
शिफा प्रवर्द्धन	११८	Styloid process
शिफा छिद्र	११९	Stylomastoid foramen
शिथिलितावस्था	७४४	Relaxed condition
शिर	५१, २७	Head
शिरा	२५१	Vein
शिराक	२६४	Venule
शिरा जाल	४७७	Venous plexus ; Choroid plexus
शिरा परिखा	२९७	Groove for vein
शिरा संयोजक खात	४५१	Fossa for ductus venosus
शिरा कुल्या सङ्गम	११५	Torcular Herophili
शिरोधीया धमनी विवर	१२५	Foramen lacerum
शिरोधीया धमनी सुरङ्गा	११९	Carotid canal

चित्र ३१३ स्वरयंत्र का भीतरी दृश्य जैसा कि स्वरयंत्रदर्शक यंत्र से दिखाई देता है



(Keen's Surgery.)

ज=जिह्वामूल

उ=स्वरयंत्रच्छद

स=स्वररज्जु

२, ३=कारटिलेज

ट=इस अंतर में से टेंटुवा दिखाई देता है

चित्र ३१४

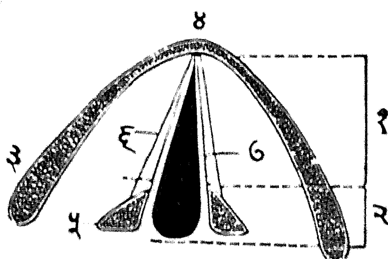
३=चुल्लीपार्श्व

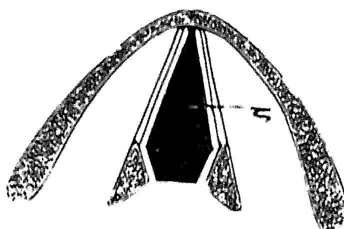
४=चुल्लीकोण

५=त्रिकोण कारटिलेज

६=स्वररज्जु

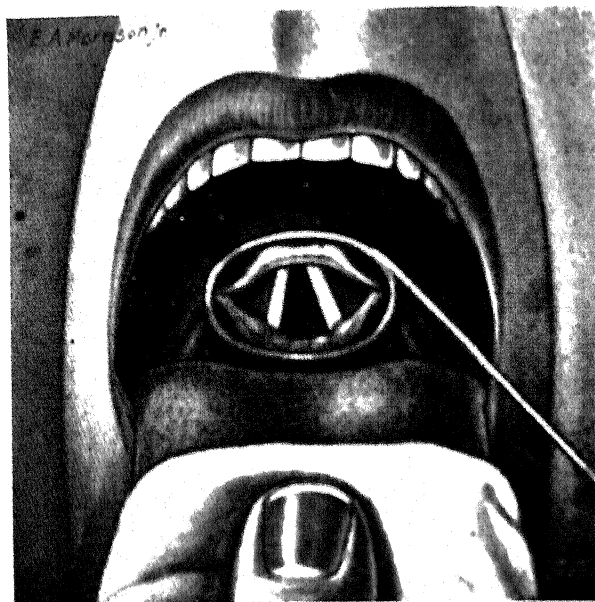
७, ८=स्वररज्जुओं का अंतर





स्वररज्जुओं का अंतर घट बढ़ जाया करता है।

चित्र ३१५ स्वरयंत्र की परीक्षा अँधेरे कमरे में लैम्प के प्रकाश की सहायता से स्वरयंत्रदर्शक द्वारा इस प्रकार की जाती है।



जिह्वा हाथ से दबा ली जाती है

(Reik's Diseases of Nose, Throat and Ear by kind permission)

पृष्ठ १२१ के सम्मुख

पेशी भी रहती है। ऊपर के झोल और स्वररज्जु के बीच में एक कोष्ठ सा रहता है जिसको स्वरयन्त्रकुटी कहते हैं। दोनों स्वररज्जुओं के बीच में कुछ अन्तर रहता है (चित्र ३१३) पेशियों के संकोच और प्रसार से दोनों स्वररज्जुएँ एक दूसरे के निकट या एक दूसरे से परे हो सकती हैं जिससे इनका अन्तर घट बढ़ जाता है। यही नहीं; पेशियों के संकोच और प्रसार से और कारटिलेजों की गतियों से स्वररज्जु ढीली भी हो जाती हैं और तन भी जाती हैं। जब हम श्वास लेते हैं तब स्वररज्जुओं का अन्तर अधिक हो जाता है और वे ढीली पड़ जाती हैं; अन्यतः जब हम बोलते हैं या गाते हैं तब यह अन्तर घट जाता है अर्थात् रज्जुएँ एक दूसरे के पास आ जाती हैं और वे तन जाती हैं।

जब हम स्वरयन्त्र के भीतरी भाग को मुँह में से स्वरयन्त्र-दर्शक यन्त्र द्वारा देखते हैं तो हम को चित्र ३१५ और ३१६ जैसा दृश्य दिखाई देता है। जब मनुष्य चुपचाप श्वास लेता है तब स्वर-रज्जुओं के बीच में मामूली अन्तर रहता है; जब वह खूब गहरा श्वास लेता है तब यह अन्तर और भी अधिक हो जाता है; जब वह बोलता है तब अन्तर कम हो जाता है; गाते और चिल्लाते समय यह अन्तर बहुत ही घट जाता है। (चित्र ३१३; ३१६)

स्वर

जब हम बोलते हैं तो वायु प्रश्वास क्रिया द्वारा फुफ्फुसों से टेंटुवे और स्वरयन्त्र में से होकर बाहर आती है; जब वह स्वररज्जुओं से टकराती है तो ये कँपने लगती हैं। स्वर-रज्जुओं की उत्कम्पन से शब्द पैदा होता है। बोलने में

कण्ठ, तालु, जिह्वा, दन्त और ओष्ठों से सहायता मिलती है। जिस प्रकार सारंगी के तारों के ढीले पड़ने और तन जाने से या छोटे और लम्बे होने से शब्द में भेद हो जाता है उसी प्रकार स्वररज्जुओं के तनने और ढीले होने से स्वर भिन्न भिन्न प्रकार के उत्पन्न होते हैं। स्त्री की स्वररज्जुएँ पुरुष की स्वररज्जुओं की अपेक्षा कम लम्बी होती हैं इस कारण दोनों के स्वरों में भेद होता है। जब दाँत टूट जाते हैं या जिह्वा कट जाती है या तालु में छिद्र हो जाता है या कण्ठ का प्रदाह हो जाता है तब स्वर बदल जाया करता है। जैसे रास्ते (कण्ठ, मुख इत्यादि) में से होकर वायु की उत्कम्पनें गुज़रेंगी वैसा ही शब्द उत्पन्न होगा।

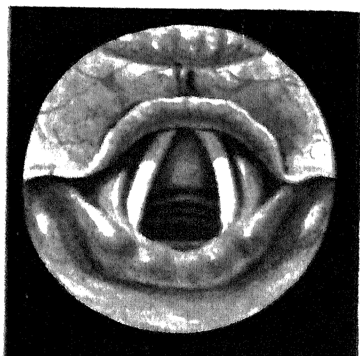
चित्र ३१६

स्वरयंत्र दर्शक द्वारा स्वरयंत्र का भीतरी दृश्य वैसा ही दिखाई देता है। (१) में स्वररज्जु पास पास हैं जैसी कि बोलने और गाने में रहती हैं (२) स्वररज्जुओं की वह दशा है जो मामूली स्वांस लेने में होती है।

चित्र ३१६

१ | २





१—स्वर रज्जुएँ तनी हुई हैं जैसा कि गाने के समय होता है
२—स्वर रज्जुएँ ढीली हैं जैसा कि साधारण स्वाँस लेने के समय होता है

पृष्ठ १२८ के सम्मुख

अध्याय २८

प्रणाली विहीन ग्रन्थियाँ

प्लीहा (चित्र १९४, ३१७, ३१९)

यह अङ्ग उदर के बाएँ भाग में रीढ़ के पास आमाशय के पीछे नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं पसलियों की आड़ में रहता है। प्लीहा और बाएँ फुप्फुस के बीच में वक्ष उदर मध्यस्थ पेशी रहती है (देखो चित्र १९४) आमाशय, क्लोम, वृक्क और वृहत् अन्त्र इस अङ्ग से मिले रहते हैं (देखो चित्र १९४) उसका रङ्ग बैंगनी होता है। उसका भार ३ छटाँक के लगभग होता है। उसका गुरुत्व १०३७ से १०६० तक होता है।

प्लीहा की लम्बाई ४ या ५ इंच होती है। प्लीहा का परिमाण बहुत से रोगों में (विशेषकर मलेरिया या मौसमी ज्वर तैय्या, चौथिया व काला अज़ार ज्वर में) बहुत बड़ा हो जाता है।

प्लीहा का क्या विशेष कार्य्य है यह अभी पूरे तौर से मालूम नहीं हुआ है। यदि किसी व्यक्ति के शरीर से प्लीहा निकाल डाली जावे तो उस व्यक्ति के स्वास्थ्य में कोई विशेष अन्तर नहीं आता।

जब भोजन पचता है तब उसका परिमाण अधिक हो जाता है। भोजन के पचने के पश्चात् उसका परिमाण फिर कम हो जाता है। शायद इस ग्रन्थि का भोजन के पचाव से कोई सम्बन्ध हो।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस ग्रन्थि का एक कार्य्य

चित्र ३१७ की व्याख्या

यह उदर का व्यत्यस्त काट है। उदर दूसरे कटि कशेरुका में से काटा गया है। जिस शव का यह काट है उसमें प्लीहा बढ़ी हुई थी। सामान्यतः प्लीहा उदर में इतनी नीचे नहीं रहती।

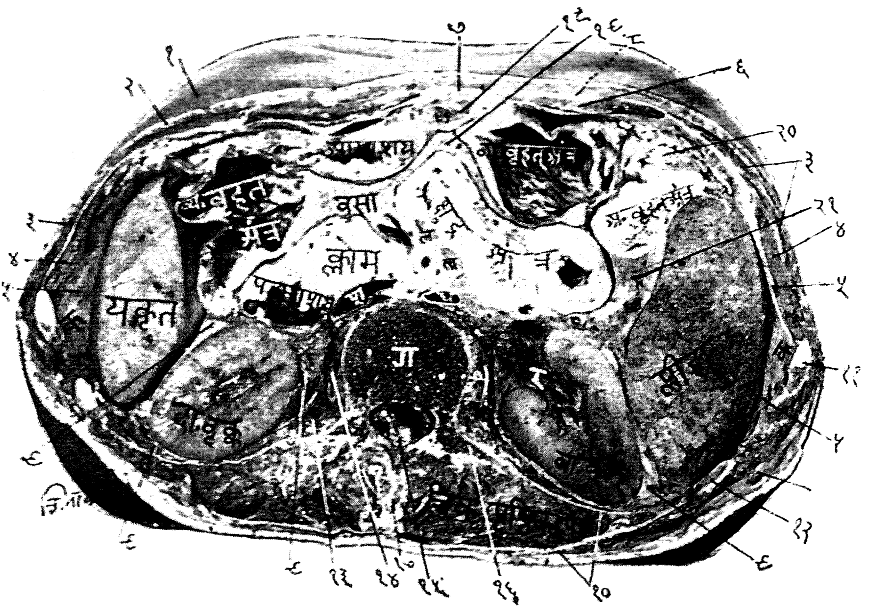
(चित्र के बाहर)

१=त्वचा
२=वसा
३=उदरच्छदा बहिस्था पेशी
४=उदरच्छदा मध्यस्था और अंतःस्था
५=उदरक कला
६=सरला पेशी
७=श्वेत रेखा
८=सरला पिधान का अगला भाग
९=परिवृक्क वसा
१०=कटि कला
११=ग्यारहवीं पर्शुका
१२=बारहवीं पर्शुका
१३=कटि लम्बिनी पेशी
१४=कटि चतुरस्रा पेशी
१५=(सुषुम्ना की) अश्व पुच्छ
१६=पार्श्व प्रवर्द्धन
१७=कशेरु कण्टक
१८=अन्त्रच्छदा कला का भाग
१९=अनुप्रस्थ वृहत् अन्त्र धारक कला (इसकी दो तहों के बीच में वसा है)
२०=अन्त्रच्छदा कला
२१=वसा

(चित्र के भीतर)

अ्य वृहत् अंत्र=अनुप्रस्थ वृहत् अन्त्र
अ. वृहत अन्त्र=अधोगामी वृहत् अन्त्र
श=अधोगा महा शिरा
ध=महा धमनी
र=वृक्क खात
ल, ल क्लोम और क्षुद्रांत्र के बीच में =लसीका ग्रन्थियाँ
ग=दूसरे कटी कशेरुका का गात्र

चित्र ३१७



पृष्ठ ७३० के सम्मुख

प्लीहा

आमाशय—यहाँ आमाशय रहता है

बृहत् अंत्र—यहाँ बृहत् अंत्र रहता है

इत्यादि

पृष्ठ १३१ के सम्मुख

यह है कि वह रक्त के उन लाल कणों को नष्ट कर दे जो अपना काम कर चुके हैं और जिनकी आयु पूरी हो चुकी है अर्थात् जिनका शरीर में रहना अब आवश्यक नहीं है। जो रक्त प्लैहो धमनी द्वारा प्लीहा में पहुँचता है उसमें प्लैही शिरा के रक्त की अपेक्षा लाल कण कम रहते हैं।

इस ग्रन्थि का कार्य्य रक्त के श्वेत कणों को बनाना भी है क्योंकि प्लैही शिरा के रक्त में प्लैही धमनी के रक्त की अपेक्षा श्वेत कण अधिक होते हैं। शायद यह ग्रन्थि किसी प्रकार रोगाणुओं से शरीर की रक्षा भी करती है।

चुल्लिका ग्रन्थि (चित्र ३१९, ३२१)

यह ग्रन्थि ग्रीवा में रहती है ; इसी के बढ़ जाने को "घेघा" कहते हैं (चित्र ३१९)। उसका आकार कुछ कुछ देशी चूल्हे की तरह होता है इसी कारण उसका नाम चुल्लिका ग्रन्थि रक्खा गया है। उसके दो पार्श्विक खंड होते हैं जो आगे टेंटुवे के सामने एक तंग भाग द्वारा एक दूसरे से जुड़ जाते हैं। प्रत्येक पार्श्विक खंड शंकाकार होता है—नीचे से चौड़ा और मोटा, ऊपर से पतला और नोकीला। पार्श्विक खंड स्वरयंत्र के चुल्लिका तथा मुद्रा कारटिलेज वा टेंटुवे के ऊपर के पाँच या छः छल्लों से मिला रहता है ; उस की लम्बाई (ऊँचाई) २ इंच और चौड़ाई १ इंच और मोटाई $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इंच के लगभग होती है। बीच का भाग $\frac{1}{2}$ इंच चौड़ा और इतना ही मोटा होता है और वह टेंटुवे के दूसरे और तीसरे छल्लों के सामने रहता है। कभी कभी दोनों पार्श्विक खंड अलग अलग रहते हैं अर्थात् बीच में वे एक दूसरे से जुड़े नहीं रहते।

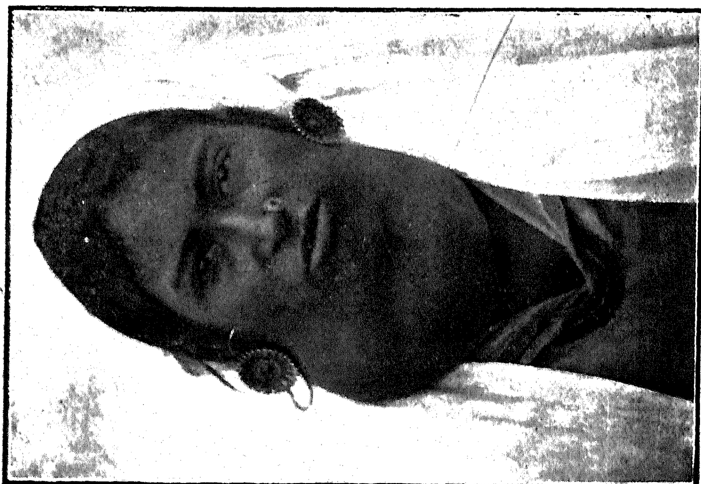
यह ग्रन्थि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कुछ बड़ी होती है। उसका भार ३० माशे के लगभग होता है; रंग पीलाहट लिये भूरा। जब स्त्री रजस्वला होती है या जब वह गर्भवती होती है तब उसका परिमाण कुछ बढ़ जाया करता है।

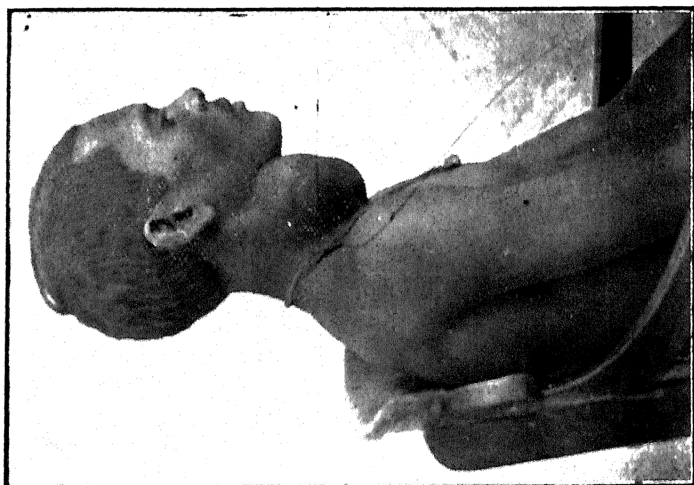
चुल्लिका ग्रन्थि हमारे स्वास्थ्य के लिये एक परमावश्यक अंग है। इसका बढ़ना या छोटा हो जाना; इसका कम काम करना या आवश्यकता से अधिक काम करना—ये दोनों ही बातें बुरी हैं। जब यह अंग ठीक ठीक काम नहीं करता तब स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

चुल्लिका ग्रन्थि में जो वस्तु बनती है उसके कम बनने से या बिलकुल न बनने से एक प्रकार का मूरखपन हो जाता है। कुछ बालक बचपन से ही मंदबुद्धि होते हैं, ऐसे बच्चों का वर्धन ठीक नहीं होता, दाँत देर में निकलते हैं और जब निकलते हैं तो देर स्थायी नहीं होते हैं, वे शीघ्र गल जाते हैं, पेट फूला रहता है, हाथ पैर छोटे और टाँगें भारी होती हैं, चेहरा पीला सा रहता है, कर्पर के विवर समय पर बंद नहीं होते, पेशियाँ कमज़ोर होती हैं, बच्चा अपने सहारे खड़ा नहीं हो सकता, बुद्धि बहुत कम होती है। यदि ये बच्चे जीते हैं तो आयु के बढ़ने के साथ साथ उनके अंग नहीं बढ़ते। और उनकी बुद्धि वैसी ही रहती है जैसे छोटे बच्चे की। यौवन के चिह्न भी उपस्थित नहीं होते।

चुल्लिका ग्रन्थि के विकृत होने से और भी रोग हो जाते हैं विशेषकर स्त्रियों में। स्त्री स्थूल होती जाती है, त्वचा भारी पड़ जाती है और उसमें रूखापन आ जाता है, बाल गिरने लगते हैं। चेहरा फूल जाता है, ओष्ठ मोटे हो जाते हैं, नकुने चौड़े और मोटे पड़ जाते हैं। विचार और स्मरण शक्तियाँ

चित्र ३१९ घेघा

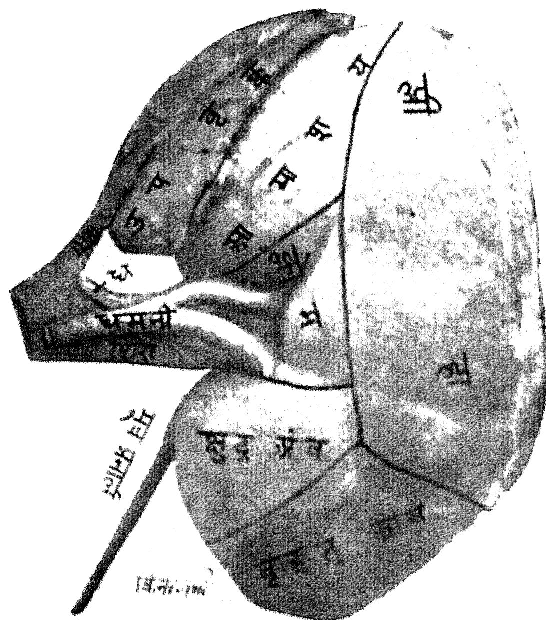




पृष्ट ७३२ के सम्मुख

चित्र ३२०

उपवृक्क और वृक्क



प्लीहा—यहां प्लीहा लगी रहती है
आमाशय—यहां आमाशय रहता है

इत्यादि

पृष्ठ १३३ के सम्मुख

कम हो जाती हैं, चाल सुस्त पड़ जाती है। शरीर का ताप-क्रम कम रहता है। मिज़ाज चिड़चिड़ा हो जाता है; दिन बदिन रोगी वहमी होता जाता है। रोग बढ़ता जावे तो एक प्रकार का पागलपन हो जाता है।

जब यह ग्रन्थि आवश्यकता से अधिक काम करती है तब भी स्वास्थ्य ख़राब रहता है। ऐसी दशा में हृदय की चाल तेज़ हो जाती है। धमनी स्पंदन (नाड़ी की गति) जो साधारणतः ७०–७५ प्रति मिनट होता है अब ९०, १००, १४० या १६० तक होने लगता है। अँगुलियों की छोटी छोटी धमनियों की फड़क भी आसानी से प्रतीत होने लगती है। आँखें आगे को निकल आती हैं; पलक आँख को अच्छी तरह नहीं ढक सकते। ग्रन्थि का परिमाण बढ़ जाता है। हाथ काँपने लगते हैं। इन बातों के अतिरिक्त रक्तहीनता, दुबलापन और कमज़ोरी बढ़ती जाती है और अंत में मन्द ज्वर भी रहने लगता है।

१—चुल्लिका ग्रन्थि वसा के संवर्तन के लिये आवश्यक है। जब वह कम काम करती है या जब किसी व्यक्ति की चुल्लिका ग्रन्थि निकाल डाली जाती है तो व्यक्ति मोटा होता जाता है। वसा के ओषजनीकरण का इस ग्रन्थि से एक विशेष सम्बन्ध रहता है।

२—चुल्लिका ग्रन्थि खटिक के संवर्तन के लिये भी आवश्यक है। उसके ठीक ठीक काम न करने से या निकाल डाले जाने के बाद अस्थियाँ भली प्रकार नहीं बनतीं। वे छोटी और पतली रहती हैं कारण यह कि खटिक और मगनेशियम स्फुरित भली प्रकार शरीर में नहीं जमा होते और अस्थि सेलें नहीं बन पातीं।

३—चुल्लिका ग्रन्थि यकृत को शर्कराजन से शर्करा बनाने में भी सहायता देती है।

४—चुल्लिका ग्रन्थि उन विषैले पदार्थों को जो शरीर में बनते रहते हैं नाश करती है। चुल्लिका ग्रन्थि गर्भावस्था में बढ़ जाया करती है कारण यह कि इस समय उन विषैले पदार्थों को भी जो भ्रूण के वर्द्धन से बनते हैं नाश करने की आवश्यकता होती है।

५—चुल्लिका ग्रन्थि का शरीर की वृद्धि, बुद्धि, जननेन्द्रियों के ठीक ठीक बढ़ने और अप्रधान लैंगिक चिन्हों के नमूदार होने से भी एक विशेष सम्बन्ध है।

जो रोग इस ग्रन्थि के कम काम करने से होते हैं उनको इस ग्रन्थि के सत के प्रयोग से बहुत फ़ायदा होता है। चुल्लिका ग्रन्थि का सत और बहुत से विकारों में भी उपयोगी पाया गया है।

उपचुल्लिका ग्रन्थि

ये ग्रन्थियाँ मटर के आकार और परिमाण की होती हैं। दो ग्रन्थियाँ दाहिनी ओर होती हैं दो बाईं ओर। ये चुल्लिका ग्रन्थि के पार्श्विक खंडों के पिछले किनारों से लगी रहती हैं।

इन ग्रन्थियों का खटिक सम्मेलनों के संवर्तन से विशेष सम्बन्ध है। जब इनका कार्य्य ठीक नहीं होता तो व्यक्ति छोटे रहते हैं और अस्थियाँ पतली और कमज़ोर रहती हैं और शीघ्र टूट जाती हैं और टूटने पर शीघ्र जुड़ती भी नहीं। ये ग्रन्थियाँ वसा के व्यय को कम करती हैं अर्थात् शरीर में वसा अधिक इकट्ठी होती है (चुल्लिका ग्रन्थि के विरोधी हैं); ये यकृत को शर्कराजन से शर्करा बनाने से रोकती हैं (चुल्लिका ग्रन्थि की विरोधी और क्रोम की सहायक हैं)

शरीर में खटिक की कमी से नाड़ियों की कोपशीलता बढ़ जाती है; खटिक की अधिकता से कोपशीलता कम हो जाती

है। इसलिये जब इन ग्रन्थियों के विकार से शरीर में खटिक की कमी हो जाती है तो "टिटेनी" (Tetany) नामक रोग उत्पन्न हो जाता है जिसमें ऐच्छिक पेशियों का दौरे के रूप में संकोच होने लगता है; ये दौरे इन पेशी सम्बन्धी विशेष नाड़ियों पर ज़रा सा दबाव पड़ने पर उत्पन्न हो जाते हैं।

थाइमस (चित्र ३२१)

इस ग्रन्थि का कुछ भाग वक्ष में उरोस्थि के पीछे और कुछ ग्रीवा के नीचे के भाग में रहता है। यह ग्रन्थि १४-१५ वर्ष तक बढ़ती रहती है और फिर धीरे धीरे छोटा होने लगती है। नवजात शिशु में इस का भार १३-२७ माशे तक और ११ से १५ वर्ष के बीच में ३७ से ५२ माशे तक होता है। इसके पश्चात् भार कम होने लगता है यहाँ तक कि ६५ वर्ष की आयु में केवल ६ माशे रह जाता है ; इस समय उस में केवल वसामय सौत्रिक तंतु रहती है। ग्रन्थि का रंग गुलाबी मायल धूसर होता है। ग्रन्थि की लम्बाई २½ इंच और चौड़ाई १ इंच के लगभग होती है। उसके दो खण्ड होते हैं एक दाहिना दूसरा बायां।

इस ग्रन्थि का विशेष कार्य क्या है यह अभी ठीक तौर से मालूम नहीं हुआ। यह ग्रन्थि शरीर में खटिक सम्मेलनों के आत्मीकरण में और वसा के कम व्यय होने में सहायता देती है। इसके निकाल डालने से या विकृत होने से व्यक्ति छोटा हो जाता है और दुबला हो जाता है। इस ग्रन्थि का अधिक बड़ा हो जाना अकस्मात् और अचानक मृत्यु (विशेषकर बालकों में) से कुछ सम्बन्ध अवश्य रखता है।

चित्र ३२१ की व्याख्या :—

एक वर्ष की कन्या की ग्रीवा और छाती के अंग दर्शाए गए हैं। थाइमस ग्रन्थि साफ़ साफ़ दिखाई देती है।

१=अंसकंठिका पेशी

२=मूलशिरोधीया धमनी

३=शिरोधीया शिरा

४=अक्षकाधोवर्ती शिरा

५=शिरोधीया और अक्षकाधोवर्ती शिरा के संयोग से बनी हुई शिरा

६=(चित्र के भीतर अंसकंठिका पेशी के पास) उरः चुल्लिका पेशी का कटा हुआ भाग

७=मौखिकी धमनी

८=(श्वेत चित्र के भीतर) उरः कंठिका पेशी

९=द्विगुम्फिका पेशी

१०=हनुकंठिका पेशी

११=कंठिकास्थि

१२=चुल्लिका कारटिलेज

१३=चुल्लिका ग्रन्थि

१४=चुल्लिका ग्रन्थि की शिरा

१५=वसा

१६=कर्णाग्र लाला ग्रन्थि प्रणाली

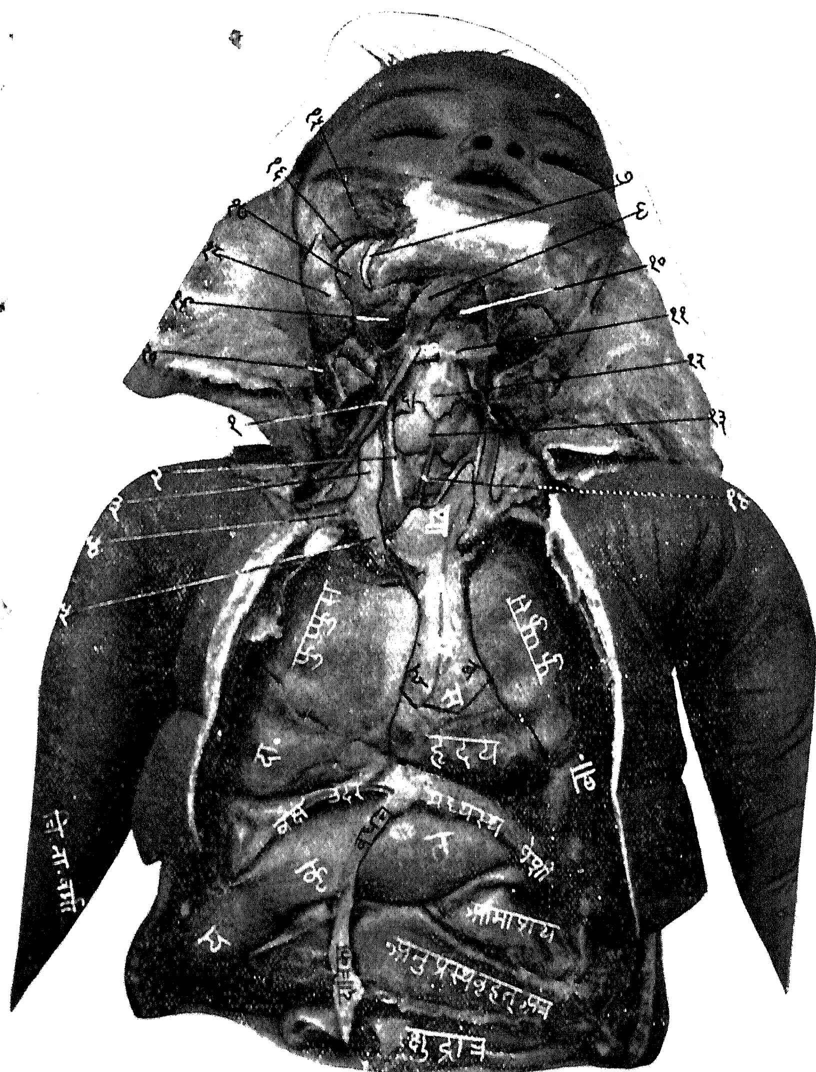
१७=चर्वणी पेशी

१८=कर्णाग्र लाला ग्रन्थि

१९=हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि

२०=उरः कर्णमूलिका पेशी।

चित्र ३२१ एक वर्ष की कन्या के ग्रीवा और वक्ष के अंग



पृष्ठ ७३६ के सम्मुख

उपवृक्क (चित्र ३२०)

ये ग्रन्थि उदर में वृक्क के ऊपर के सिरे पर रहती हैं। उपवृक्क दो होते हैं एक दाहिना दूसरा बायां। दाहिना उपवृक्क बाएं से कुछ छोटा और त्रिकोणाकार होता है। बायां उपवृक्क अर्धचन्द्राकार होता है। उपवृक्कों का परिमाण सब व्यक्तियों में एक सा नहीं होता। उसकी ऊंचाई (लम्बाई) १$\frac{1}{4}$-२$\frac{1}{2}$ इंच चौड़ाई १ इंच और मोटाई $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ इंच होती है ; रंग पीलाहट लिये भूरा ; भार ६—७ माशे।

इस ग्रन्थि का वर्धन और स्वास्थ्य से सम्बन्ध अवश्य है। उपवृक्क का अंतःस्थ भाग बहिःस्थ भाग से जिस को वल्क कहते हैं भिन्न प्रकार का होता है, दोनों भागों की उत्पत्ति भी जुदा जुदा है।

वल्क (बहिःस्थ भाग) का काम शरीर में वसा का जमा करना अर्थात् उस के व्यय को कम करना है। अंतःस्थ भाग में "एडरीनलीन" नामक पदार्थ बनता है।

बहिःस्थ भाग (वल्क) के बढ़ जाने से दो बातें होती है :—

(१) शरीर वसा के इकट्ठा होने से स्थूल (मोटा) हो जाता है।

(२) बहिःस्थ जननेन्द्रियाँ जल्दी बड़ी हो जाती हैं ; ४ वर्ष के बालक की बहिःस्थ जननेन्द्रियाँ (शिश्न) १४ वर्ष के बालक के बराबर मालूम होने लगती हैं ; कन्याओं में भगांकुर बड़ा हो जाता है और ४ वर्ष में भग पर बाल निकल आते हैं। परन्तु उसका गर्भाशय नहीं बढ़ता और रजोदर्शन भी आरम्भ नहीं होता।

अंतःस्थ भाग के कम करने से (जैसा कि इस ग्रन्थि के क्षय

रोग में होता है) एक रोग उत्पन्न हो जाता है जिस में रक्त भार कम हो जाता है । (सामान्यतः १२० शतांशमीटर पारा होता है ; इस रोग में ८० के लगभग रहता है) ; रोगी की त्वचा का रंग गहरा हो जाता है । रोगी निर्बल और शक्तिहीन होता जाता है ; ज़रा से परिश्रम से वह बहुत थक जाता है ; मतली और कै आने लगती है ; और दस्त भी आने लगते हैं ।

अंतःस्थ भाग खटिक सम्मेलनों के आत्मीकरण का भी सहायक है ।

"एडरीनलीन" जो इस ग्रन्थि से निकाली जाती है आज कल एक अत्यन्त उपयोगी वस्तु है । यह वस्तु पिंगल नाड़ी मंडल का उत्तेजक है ।

इस ग्रन्थि से 'एडरीनलोन' नामक औषधि निकाली जाती है ; यह औषधि बड़ी उपयोगो वस्तु है ।

हाइपोफिसिस या पिट्यूटरी (चित्र २१६ ; चित्र २२२ में ७)

यह पिंड अंडाकार होता है और जतूकास्थि के हाइपोफिसिस खात में रहता है । इसका अग्रपश्चात् व्यास $\frac{1}{3}$ इंच और एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व तक का माप $\frac{1}{2}$ इंच और मोटाई $\frac{1}{4}$ इंच के लगभग होती है उसका भार ०.८ ग्राम होता है । इसके दो खण्ड होते हैं एक अगला दूसरा पिछला । पिछला खण्ड एक खोखले डंठल द्वारा मस्तिष्क के तीसरे कोष्ठ से सम्बन्ध रखता है ।

कंकाल के विविध भागों का यथाप्रमाण बढ़ना इसी ग्रन्थि के ठीक ठीक काम करने पर निर्भर है ।

इस ग्रन्थि से "पिट्युट्रिन" नामक एक अत्यन्त उपयोगी औषधि बनाई जाती है ।

पिट्युट्री के अगले खण्ड के कार्य्य :—

(१) गर्भावस्था में कम काम करने से भ्रूण की अस्थियाँ ठीक ठीक नहीं बनतीं जैसे शाखाओं का छोटा हो जाना ; या किसी अस्थि का न बनना। शाखाओं की अस्थियों के छोटे होने से एक प्रकार का बौना पन हो जाता है।

(२) पैदा होने के पश्चात् और यौवनारम्भ से पहले अग्र खंड के कम काम करने से दो बातें पैदा होती हैं :—

(अ) बौनापन जिसके साथ साथ शरीर स्थूल हो जाता है और जननेन्द्रियों की बढ़ोत नहीं होती। ऊँचाई कम होती है ; मोटापन बहुत होता है ; विशेषकर वसा कूल्हों और स्वों और ग्रीवा में इकट्ठी होती है ; जननेन्द्रियाँ नहीं बढ़तीं ; पुरुष में शुक्रकीट नहीं बनते और स्त्री में रजोदर्शन नहीं होता ; कभी कभी अंड अंडकोष तक नहीं उतरते।

(आ) बौनापन जिस में जननेन्द्रियों की बढ़ोत कम होती है परन्तु मोटापन नहीं होता।

(३) यौवन प्राप्ति के पश्चात् अग्र खण्ड के कम काम करने से एक प्रकार की स्थूलता (मोटापन) हो जाती है ; व्यक्ति सुस्त रहता है और उसको नींद आया करती है और सहज में थक जाता है।

(४) गर्भावस्था में अग्रखंड के अधिक काम करने से "देवपन" उत्पन्न होता है। अस्थियों के लम्बे होने से सम्पूर्ण शरीर बहुत बड़ा हो जाता है। पुराने ज़माने के 'देव' शायद ऐसे ही मनुष्य रहे होंगे।

(५) पैदा होने के पश्चात् अग्रखंड के अधिक कार्य करने से "ऐक्रोमिगली" (Acromegaly) रोग हो जाता है। इस रोग

में हाथ, पैर, नीचे का जाबड़ा और चेहरे की हड्डियाँ बड़ी हो जाती हैं ; पुरुषों में नपुंसकता होती है ; और स्त्रियों में रजोदर्शन नहीं होता ; मूत्र में द्राक्षौज आने लगती है ; शरीर दुबला होता जाता है।

पिट्युटी के अग्रखंड का जननेन्द्रियों से एक विशेष सम्बन्ध है। इस के बिना डिम्ब ग्रन्थि अपना काम नहीं करती ; स्त्रियों में मासिक स्राव नहीं होता या कम होता है। जब यह खण्ड अधिक कार्य करता है, तो मासिक स्राव अधिक होता है, इतना कि रक्त के अधिक बहने से मृत्यु तक हो जाती है।

पिट्युटी के पश्चात् खण्ड के कार्य्य :—

जो रस इस भाग में बनता है उसमें गर्भाशय, मूत्राशय, बृहदंत्र इत्यादि अंगों के अनैच्छिक मांस को सिकोड़ने की शक्ति है। इसी कारण इस वस्तु का प्रयोग प्रसव काल के समय किया जाता है। बिना शुक्र के मूत्राधिक्य रोग में भी यह बहुत उपयोगी है। औपरेशन के पश्चात् जब मल मूत्र बन्द हो जाते हैं तब भी यह बहुत उपयोगी होता है।

पीनियल (चित्र २२१, २५१)

अनुमान है कि इस ग्रन्थि का कार्य लैंगिक चिन्हों को शीघ्र उत्पन्न न होने देना है। एक ६ वर्ष की कन्या एक जवान स्त्री के समान मालूम होती थी; उसके कक्षतल में और विटप देश में बाल उग आये थे ; उसको मासिक स्राव होता था ; उसकी छाती खूब बड़ी थीं। मृत्यु के पाश्चात् मालूम हुआ कि एक गुल्म के कारण पीनियल जाती रही थी। उसका रस शरीर में

वसा को इकट्ठा होने में सहायता देता है। शिशुओं का मोटापन पीनियल और थाइमस द्वारा होता है।

क्लोम और जनन ग्रन्थियाँ

इनमें प्रणालियाँ हैं परन्तु ये ग्रन्थियाँ ऐसे रस भी बनाती हैं जो प्रणालियों द्वारा नहीं निकलते प्रत्युत सीधे रक्त में पहुँच जाते हैं।

क्लोम—इसमें एक वस्तु बनती है जिसका नाम "इनस्युलीन' (Insulin) रक्खा गया है। इसका काम शर्कराजन के विशलेषण को रोकना है। जब क्लोम विकृत हो जाता है (विशेष कर वह भाग जहाँ इनस्युलीन बनती है) तो शर्कराजन से शर्करा बहुत बनती है और यह शर्करा मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकलती है; व्यक्ति को क्लोमजन मधुमेह हो जाता है। इनस्युलीन के प्रयोग से यह रोग अच्छा हो जाता है; और नहीं तो इस रोग की भयानकता कम हो जाती है।

अंड और डिम्ब ग्रन्थियाँ

जनन ग्रन्थियाँ (पुरुष में अंड और स्त्री में डिम्ब ग्रन्थि) ही केवल शरीर में ऐसी ग्रन्थियाँ हैं कि जो खटिक सम्मेलनों के शरीर में जमा होने को कम करके कंकाल की बढ़ोत को रोकती हैं। यदि बचपन में (यौवन से पहले) ये ग्रन्थियाँ निकाल डाली जावें तो संपूर्ण कंकाल लम्बा हो जाता है विशेषकर शाखाओं की अस्थियाँ; हाथ की अंगुलियाँ जान्वस्थि तक पहुँचती हैं। वक्ष भी लम्बा हो जाता है। कोई विशेष स्थूलता उत्पन्न नहीं होती; यदि होती है तो वसा विटप देश में इकट्ठी

होती है (पिट्युट्रीजन मोटापे में वसा कूल्हों में इकट्ठी होती है ; भोजन सम्बन्धी मोटापे में पेट में) ।

अंड :—यदि यौवन से पहले दोनों अंड निकाल डाले जावें तो हीजड़ापन हो जाता है । हीजड़ा सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकता (बंध्य होता है) परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह नपुंसक हो (मैथुन न कर सके) ; वह आम तौर से मोटा होता है और उसकी शकल सूरत ज़नानी होती है ; अप्रधान लैंगिक चिन्ह नमूदार नहीं होते जैसे डाढ़ी, मूछ नहीं उगतीं ; विटप देश में बाल नहीं होते ; स्वर नहीं बदलता ; प्रोस्टेट और बाह्य जननेन्द्रियाँ (शिश्न) नहीं बढ़तीं । मानसिक और शारीरिक बढ़ौत में कोई अन्तर नहीं आता ।

जवानी प्राप्ति के बाद—२०-२५ वर्ष के पीछे दोनों अंड ग्रन्थियों के निकाले जाने से निषफलत्व उत्पन्न हो जाता है (पुरुष स्त्री को गर्भित नहीं कर सकता है) ; प्रोस्टेट ग्रन्थि मुर्झा जाती है ।

यदि अंड और डिम्ब ग्रन्थि भ्रूणावस्था में अच्छी तरह बनें परन्तु यौवन पर वे न बढ़ें तो व्यक्ति में शिशुपन रहता है । यौवन समय पर न शुक्रकीट बनते हैं और न डिम्ब परिपक्व होते हैं ; छाती नहीं बढ़ती ; कक्षतल और विटप देश में बाल नहीं उगते ; चेहरे से बचपन टपकता है ।

वीयना* नगर के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने नवजात चूहों के अंड और डिम्ब ग्रन्थियाँ निकाल डालीं । परिणाम यह हुआ कि चूहों में शिश्न छोटा बना (भगांकुर और शिश्न के बीच के प्रमाण

* Vienna in Austria

का) ; चूहियों में भगांकुर साधारण चूहियों के भगांकुर से ५,६ गुना लम्बा हो गया ।

यह बात याद रखने योग्य है कि प्रत्येक व्यक्ति में दोनों प्रकार के लैंगिक चिन्ह होते हैं। अंड और डिम्ब ग्रन्थियों का काम है कि वह एक प्रकार के चिन्हों को दबा दे जिससे व्यक्ति में एक ही प्रकार के लैंगिक चिन्ह प्रधान रहें (नर या नारी)। अंड का काम नारी चिन्हों को दबाना और नर चिन्हों को उभारना है ; डिम्ब ग्रन्थि का काम है नारी चिन्हों को उभारना और नर चिन्हों को दबाना ।

अध्याय २९

उत्पादक संस्थान (१)

जो अङ्ग संतानोत्पत्ति के काम में आते हैं उनको जननेन्द्रियाँ कहते हैं। पुरुष की जननेन्द्रियाँ स्त्री की जननेन्द्रियों से भिन्न प्रकार की होती हैं।

नर जननेन्द्रियाँ

ये दो प्रकार की हैं :—

१—बाह्य जननेन्द्रियाँ ये बाहर से दिखाई देती हैं जैसे शिश्न, अंडकोष में लटके हुए अंड।

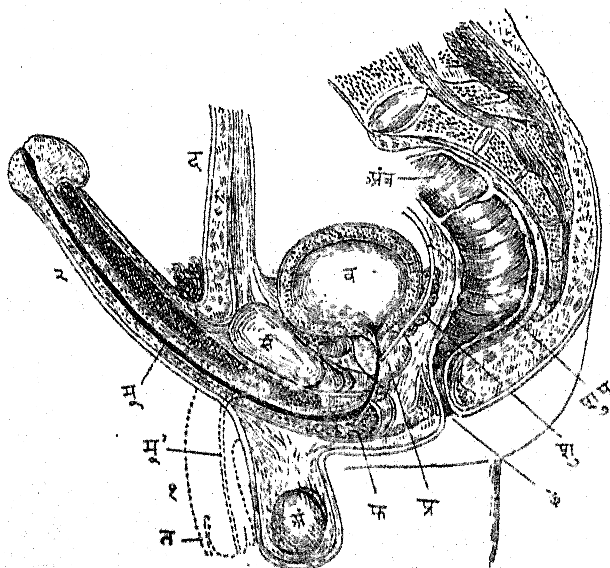
२—अंतरीय जननेन्द्रियाँ—ये वस्तिगह्वर के भीतर रहती हैं और इस कारण बाहर से दिखाई नहीं देतीं जैसे शुक्राशय, शुक्रप्रणाली, प्रोस्टेट, शिश्नमूल ग्रन्थि।

शिश्न

यह मैथुन करने का यन्त्र है; पुरुष का वीर्य स्त्री की योनि में इसी अंग द्वारा पहुँचता है। इसी अंग द्वारा मूत्र शरीर से बाहर निकलता है। शिश्न की लम्बाई और मोटाई सब पुरुषों में एक सी नहीं होती। शिथिलतावस्था में उसकी लम्बाई सामान्यतः ३ या ४ इंच और उसकी परिधि ३ इंच के लगभग होती है। जब मैथुन की इच्छा होती है तब वह अधिक लम्बा और मोटा हो जाता है और उसमें दृढ़ता आ जाती है। शिश्न

के दृढ़ हो जाने को 'प्रहर्ष' कहते हैं दृढ़ता के कारण ही वह योनि में प्रवेश कर सकता है।

चित्र ३२२ नर वस्तिगह्वर (बीच में से कटा हुआ)



(Elder Smith—Redrawn and Modified)

द=उदर की दीवार ; व=वस्ति या मूत्राशय ; शु प=शुक्र प्रणाली शु=शुक्राशय ; छ=मलद्वार ; प्र=प्रोस्टेट ; फ=मूत्रमार्ग का स्थूल भाग ; अं=अंड ; त=शिश्नाग्र त्वचा ; मू=मूत्रमार्ग ; मू'=मूत्रमार्ग ; १=शिश्न की शिथिलतावस्था ; २=शिश्न की दृढ़ावस्था (प्रहृष्ट शिश्न) सं=विटप सन्धि (कटी हुई)।

शिश्न का अगला भाग शंकाकार होता है और उसको

शिश्न मुण्ड या मणि या शिश्नाग्र कहते हैं (चित्र ३२३ में १३; चित्र ३२५ में मुं) ; मणि में एक छिद्र होता है जिसे मूत्रबहिर्द्वार कहते हैं (चित्र ३२५ में छ, ३२३ में १४) ; मूत्र और वीर्य इसी छिद्र में से बाहर निकलते हैं। मणि की त्वचा ऊपर को हट जाती है और फिर उसके ऊपर आ जाती है ; इसको शिश्नाग्र त्वचा कहते हैं (चित्र ३२२ में त) मुसलमानों में इस त्वचा को कटा डालने का (ख़तना) रिवाज है। कभी कभी यह त्वचा तंग होती है और आसानी से ऊपर नहीं सरक सकती ; जब वह बहुत तंग * होती है तो मैथुन करने में कुछ कठिनता होती है, बच्चे मूत्र त्यागते समय किल्छा करते हैं और कभी कभी दर्द के कारण रो भी पड़ते हैं। ऐसी हालत में इसको कटा डालना चाहिये। शिश्नाग्र त्वचा में बाल नहीं होते।

मणि के पीछे एक खाई होती है ; इस मणिखात में श्वेत रंग की एक चिकनाईदार वस्तु इकट्ठी हो जाया करती है ; इसमें एक विशेष प्रकार की गंध आया करती है। मुंड के इस भाग की त्वचा में कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं ; यह चीज़ इन्हीं ग्रन्थियों में बनती है और शिश्नगूथ कहलाती है। जब शिश्नगूथ अधिक बनता है या शिश्न की सफ़ाई न करने के कारण बहुत दिनों तक इकट्ठा रहता है तब वह मणि के ऊपर भी आ जाता है कभी कभी उसके सड़ने के कारण मणि पर फुन्सियाँ निकल आती हैं।

---

* शिश्नाग्र त्वचा के अधिक तंग होने को 'परिवर्तिका' कहते हैं।

चित्र ३२३

म श=अधोगा महा शिरा

म ध= महा धमनी

ध=वृक्क की धमनी

श=वृक्क की शिरा

१=वृक्क

२=मूत्र प्रणाली

३=मूत्राशय

४=मूत्र प्रणाली का छिद्र

५=शुक्र स्रोत का मुख

६=प्रोस्टेट ग्रन्थि

७=शिश्नमूल ग्रन्थि

८=शिश्नमूल ग्रन्थि स्रोत का छिद्र

९=मूत्र मार्ग का स्थूल भाग

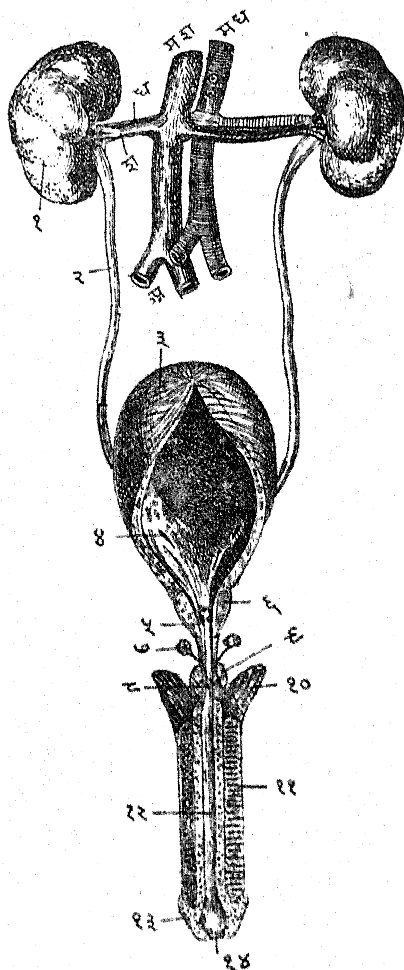
१०=शिश्न दंडिका (कटा हुआ)

११=शिश्न दंडिका का पिछला नोकीली भाग

१२=मूत्र मार्ग

१३=शिश्न मुण्ड

१४=मूत्र बहिर्द्वार

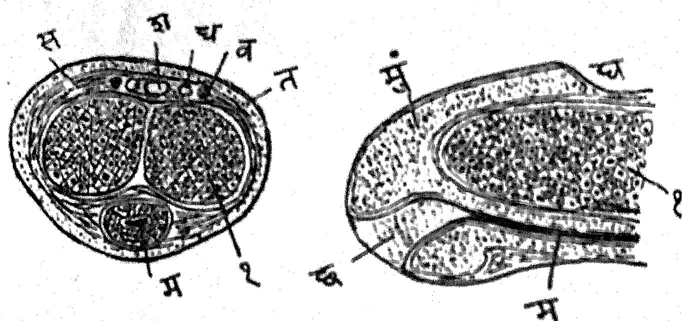


मणि और विटप देश के बीच का भाग शिश्न शरीर कहलाता है; शिश्न का शेष भाग जो अंडकोष से ढका हुआ है शिश्नमूल कहलाता है । शिश्न शरीर की त्वचा के नीचे वसा नहीं होती यह त्वचा ढीली भी होती है और अन्य स्थानों की त्वचा की अपेक्षा पतली होती है ; इसका रंग और स्थानों से गहरा होता है और उसमें बाल नहीं होते ।

शिश्न की बनावट (चित्र ३२४, ३२५, ३२६, ३२७)

शिश्न सौत्रिक तंतु और अनैच्छिक मांस से निर्मित तीन

चित्र ३२४ चित्र ३२५

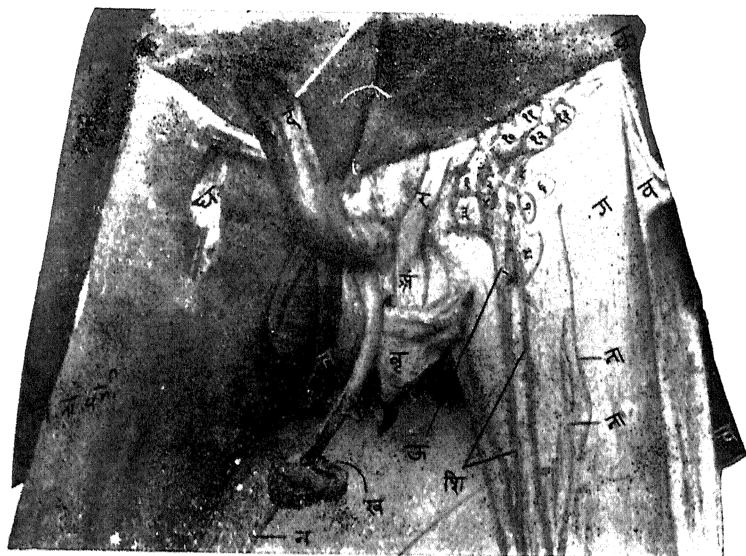


मोटाई के रुख कटा हुआ शिश्न । लम्बाई के रुख कटा हुआ शिश्न

चित्र ३२४ :—म=मूत्र मार्ग । १=शिश्न दंडिका ; त=त्वचा ; न=शिश्नीया नाड़ी ; ध=शिश्नीयाधमनी ; श=शिश्नीया शिरा ; स=सौत्रिक कला (शिश्नावरक कला)

चित्र ३२५ :—मुं=शिश्न मुंड ; ध=मुंड खात ; १=शिश्न दंडिका म=मूत्र मार्ग ; छ=छिद्र या मूत्र बहिर्द्वार ।

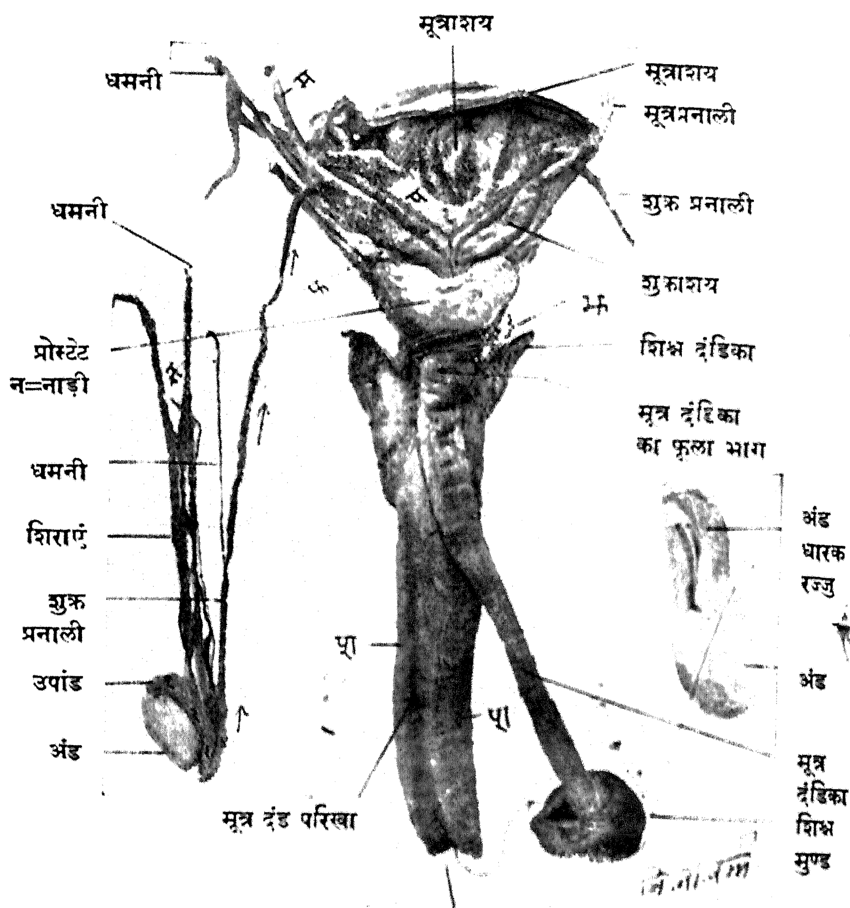
चित्र ३२६ शिश्न; और वंक्षण की लसीका ग्रन्थियाँ



१ से १३ तक=वंक्षण की लसीका ग्रन्थियाँ। र=अंड धारक रज्जु; अं=अंड; वृ=वृषण; त=त्वचा; ऊ=ऊपरितन शिरा; शि=शिरा; ग=कला; ना=त्वगीया नाड़ियाँ; व=वसा; च=त्वचा; न=नली जो मूत्रमार्ग में है। ख=खात जिसमें शिश्न दंडिकाओं का नोकीला सिरा रहता है। दं=शिश्न दंडिका; क=पुरोध्वं कूट; ध=औवीं धमनी।

पृष्ठ ७४८ के सम्मुख

चित्र ३२७ शुक्रमार्ग और मूत्रमार्ग



श=शिश्न दंडिका; अ=दो कलाएं; म=मूत्र प्रनाली

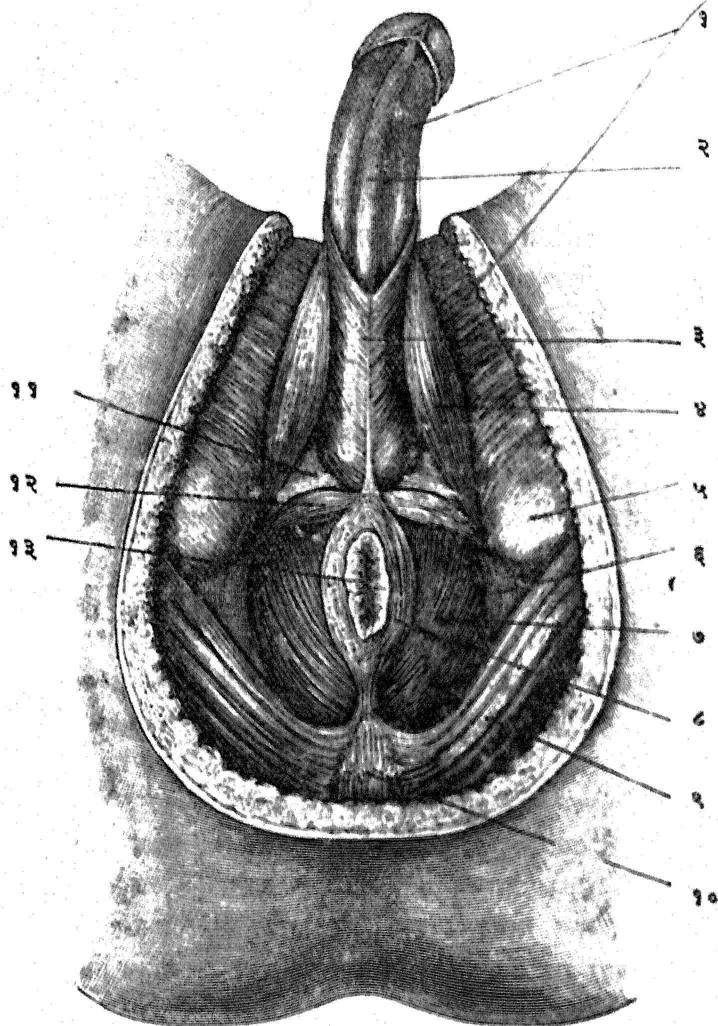
१=उपांडशिर; २=उपांड गात्र ; ३=उपांड पुच्छ। जिधर को तीर की नोक है शुक्र उधर को बहता है।

बेलनाकार दंडों से बनता है (देखो चित्र ३२४)। इनमें से दो दंडे पास पास और समांतर शिश्न के ऊपर के भाग में रहते हैं (चित्र ३२४ और ३२५ में १); तीसरा दंडा जो भीतर से खोखला होता है इन दोनों दंडों के नीचे रहता है (चित्र ३२८ में म)। जो नली इस नीचे वाले दंडे में रहती है उसको मूत्रमार्ग कहते हैं (चित्र ३२२ में मू, ३२३ में १२)। ऊपर का हर एक दंडा **शिश्नदंडिका** कहलाता है; नीचे के दंडे को **मूत्रदंडिका** कहते हैं।

शिश्नदंडिकाओं के बेलनाकार होने के कारण उनके बीच में ऊपर और नीचे एक अंतर रहता है; ऊपर के अंतर में शिश्न की दो धमनियाँ, एक शिरा और दो नाड़ियाँ रहती हैं (चित्र ३३०); धमनी की फड़क शिश्न को इस जगह दबाकर मालूम की जा सकती है। नीचे का अंतर गहरा होता है और यहीं मूत्रदंडिका रहती है (चित्र ३२४ चित्र ३२५)।

तीनों दंडों की बनावट एक जैसी है। ये सौत्रिक तंतु से बने हैं; सूत्र दोनों प्रकार के होते हैं श्वेत और पीले। सौत्रिक तंतु से मिला हुआ कुछ अनैच्छिक मांस भी रहता है। इन दंडों के भीतर छोटे छोटे आशय या कोष्ठ होते हैं जिन की दीवारें सौत्रिक तंतु और मांस से बनती हैं (चित्र ३२९)। प्रहर्ष समय ये आशय रक्त से भर जाते हैं। जिस प्रकार कपड़े का नल पानी से ख़ूब भर जाने पर दृढ़ हो जाता है उसी प्रकार इन आशयों के रक्तपरिपूर्ण हो जाने से शिश्न में स्थूलता और दृढ़ता आ जाती है। जब मैथुन की क्रिया समाप्त होती है तो आशयों का रक्त शिरा द्वारा लौट जाता है और

चित्र ३२८



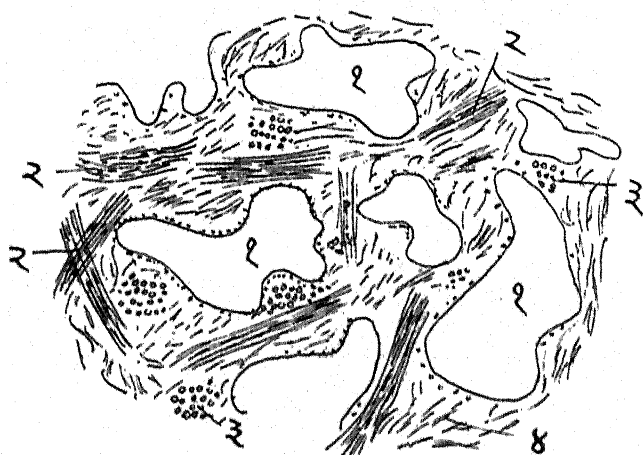
(From Gray's Anatomy)

१=शिश्न दंडिका ; २=मूत्रदंडिका ; ३=शिश्न मूलिका पेशी ; ४=शिश्न प्रहर्षिणी पेशी ; ५ कुकुन्दरपिण्ड ; ६=कुकुन्दर गुदा खात ; ७=गुदोत्थापिका पेशी ; ८=मलद्वार संकोचनी बहिःस्था पेशी ; ९= नैतंबिका वृहती पेशी ; १०=गुदास्थि ; ११=त्रिकोण ; १२=श्रोणि आधार की उपरितन व्यत्यस्त पेशी ; १३=मलद्वार ।

खाली नल की भाँति शिश्न भी मुलायम और शिथिल हो जाता है ।

शिश्नदंडिकाएं मणि के शिखर तक नहीं पहुँचते; वास्तव में वे मणि के बनाने में कोई सहायता नहीं देते, इन दंडों का

चित्र ३२९ शिश्नदंडिका की रचना



१=रक्ताशय ; २ अनैच्छिक मांस ; ३=मांस कटा हुआ ; ४=सौत्रिक तंतु ।

अंत मुंडखात के पास ही हो जाता है ; यहाँ ये नोकीले हो जाते

चित्र ३३० की व्याख्या

१=शिश्नपृष्ठ शिरा

२=शिश्न कला

३=आंडिकी धमनी

४=आंडिकी शिरा जाल

५=अंड धारक रज्जु

६=शिश्नपृष्ठ नाड़ी

७=शिश्नपृष्ठ धमनी

८=शिश्न धारक बन्धन

९=शिश्नपृष्ठ शिरा

१०=बाह्य वंक्षण विवर

११=जघन-वंक्षणीया नाड़ी

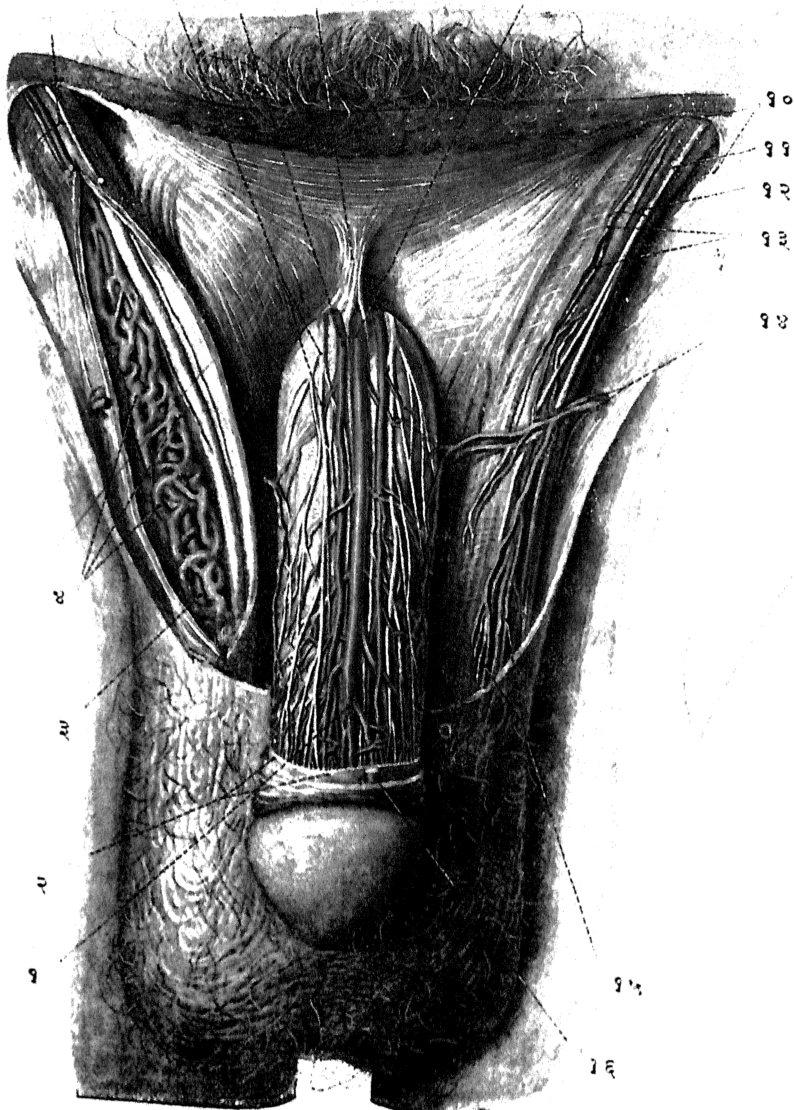
१२=अंड धारक रज्जु

१३=बाह्य आंडिकी रक्त वाहिनियाँ

१४=बाह्य जनन रक्त वाहिनियाँ

१५=अग्र वृषणीया रक्त वाहिनियाँ

१६=उपरितन शिश्नी या शिरा



(Sobotta's Atlas) पृष्ठ ७५२ के सम्मुख

हैं और मणि उन पर टोपी की तरह चढ़ी रहती है (देखो चित्र ३३६ और ३२५)। मूत्र दंडिका आगे आकर मोटा हो जाता है ; इसी फूले हुए भाग से मणि बनती है (चित्र ३२६, ३२७, ३२५ में मुं,)।

पीछे जाकर (शिश्नमूल में) ये तीनों दंडे एक दूसरे से अलग हो जाते हैं (चित्र ३२७)। प्रत्येक शिश्नदंडिका नोकीला हो जाता है (चित्र ३२७) और यह नोकीला भाग अपनी ओर की नितंबास्थि से जा जुड़ता है। शिश्नदंडिका के पिछले भाग पर शिश्नप्रहर्षिणी पेशी (चित्र ३२८) लगी रहती है ; इस के संकोच से यह होता है कि जो रक्त धमनी द्वारा शिश्न दंडिका में पहुँचता है वह शिरा द्वारा लौटने नहीं पाता और आशयों में इकट्ठा रहता है ; जब इस पेशी का प्रसार होता है तब रक्त लौट जाता है, आशय ख़ाली हो जाते हैं और शिश्न शिथिल हो जाता है।

मूत्रदंडिका मध्यरेखा में ही रहता है परन्तु पीछे जाकर अधिक स्थूल हो जाता है (चित्र ३२७), इस भाग पर शिश्न मूलिका पेशी लगी रहती है (चित्र ३२८ ; ३३५) ; यह पेशी आगे जाकर शिश्नदंडिकाओं के पार्श्वों और शिश्नावरक कला से भी लगी रहती है। इसके संकोच से मूत्रमार्ग मूत्र से ख़ाली हो जाता है ; जब वीर्य बाहर निकलता है तब भी इस पेशी का संकोच होता है। अंडकोष के पीछे शिश्नमूल पर अँगुली रखने से इस पेशी का संकोच मालूम किया जा सकता है। इस पेशी के संकोच से शिश्न में दृढ़ता भी आती है।

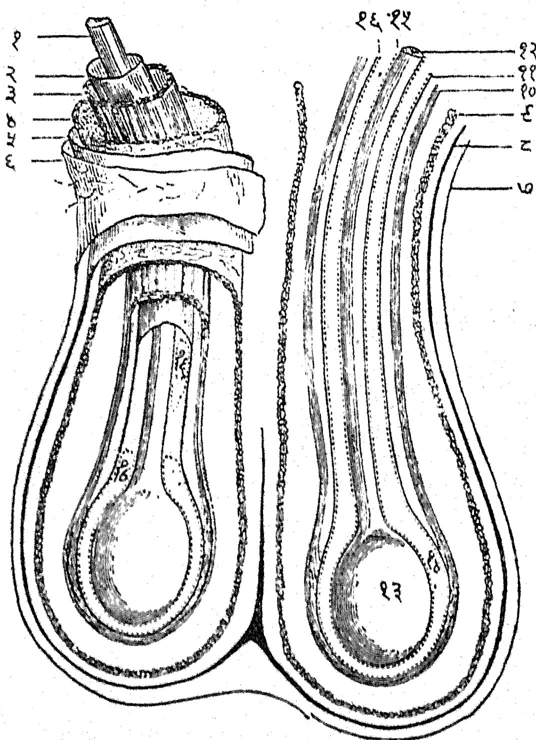
मूत्राशय के नीचे के भाग से मणि के छिद्र तक मूत्र के

बहने का जो रास्ता है उसको मूत्रमार्ग कहते हैं। मूत्रमार्ग का अधिक भाग तो मूत्रदंडिका में रहता है जैसा कि पीछे समझाया जा चुका है। जिस स्थान से मूत्रमार्ग का आरम्भ होता है वह मूत्रांतर्द्वार कहलाता है। मूत्रांतर्द्वार के नीचे प्रोस्टेट नामक एक शंकाकार ग्रन्थि रहती है (चित्र ३२२ में प्र ; चित्र ३२७ ; चित्र ३३५) ; मूत्रमार्ग का प्रारम्भिक कोई १ इंच लम्बा भाग इसी ग्रन्थि में रहता है। प्रोस्टेट ग्रन्थि के शिखर के नीचे का कोई ½ इंच लम्बा भाग दो कलाओं (झिल्लियों) के बीच में रहता है (चित्र ३२७ चित्र ३३७) शेष भाग जिसकी लम्बाई कोई ६ इंच होती है मूत्रदंडिका में रहता है मणि वाले छिद्र को मूत्रबहिर्द्वार कहते हैं। कुल मूत्रमार्ग की लम्बाई पुरुषों में ७—८ इंच और स्त्रियों में १½ इंच होती है।

अंडकोष या वृषण (चित्र ३२६, ३३१)

शिश्न के नीचे एक थैली रहती है जिसको अंडकोष या वृषण कहते हैं। थैली की त्वचा बहुत पतली होती है और उस में बाल होते हैं। त्वचा के नीचे वसा नहीं रहती ; वसा की जगह अनैच्छिक मांस की एक तह रहती है। इस मांस के संकोच और प्रसार से थैली छोटी और बड़ी हो जाती है। यदि आप अंडकोष को गौर से देखें तो अंडकोष की त्वचा में कृमिवत् आकुञ्चन के सदृश एक लहर दिखाई देगी ; यह त्वचा के नीचे रहनेवाले मांस के संकोच और प्रसार से ही उत्पन्न होती है। शीत के प्रभाव से यह मांस बहुधा सिकुड़ा रहता है जिसके कारण अंडकोष मोटा और छोटा मालूम होता है। गर्मी के प्रभाव

चित्र ३३१ वृषण और अंडधारक रज्जु के वेष्ट



१, १२=अंडधारक रज्जु
२, ११=फनलाकार वेष्ट
३, १०=मांस वेष्ट
४, ९=सौत्रिक वेष्ट
५, ८=वृषण त्वगीया मांस
६, ७=त्वचा
१३=अंड
१४=उदरक कला
१७=पर्य्यांण्डिका

से मांस फैल जाता है और थैली पतली और बड़ी दिखाई देती है। वृद्धावस्था में मांस के कमज़ोर हो जाने से थैली ढीली हो जाती है और नीचे को अधिक लटका करती है। अंडकोष भीतर से एक परदे द्वारा दो भागों में विभक्त रहता है; इस परदे का बाहरी चिह्न वह "सेवनी" है जो अंडकोष के बीच में दिखाई देती है। यह सेवनी पीछे मलद्वार तक और आगे मणि तक रहती है। अंडकोष के दाहिने भाग में दाहिना और बाएँ में बायाँ अंड रहता है।

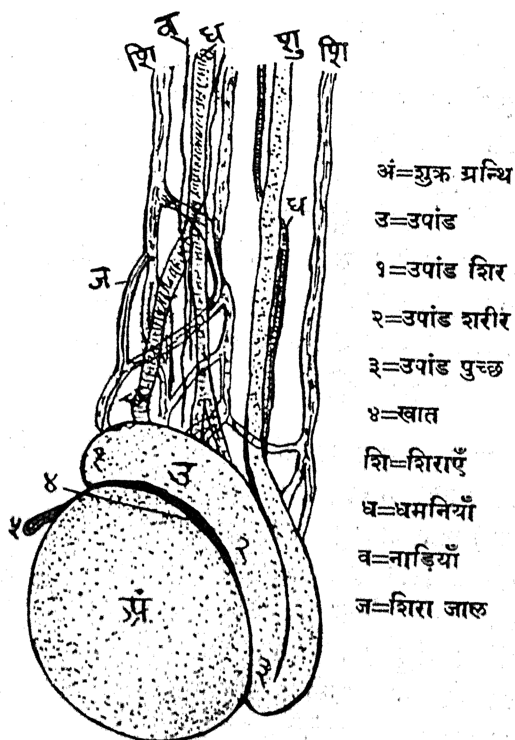
शुक्र ग्रन्थि या अंड (चित्र ३२६, ३२७, ३३२)

यदि आप अंडकोष को टटोलें तो उसके भीतर दो सख़्त चीज़ें मालूम होंगी; ये अंड हैं। अंड का आकार मुर्गी के अंडे से कुछ कुछ मिलता है भेद इतना है कि उसके पार्श्व अंडे के सदृश बहुत उभरे नहीं रहते। प्रत्येक अंड के दो सिरे (ऊपर का और नीचे का), दो किनारे (अगला और पिछला) और दो पार्श्व (बाह्य और अन्तः) होते हैं। अंड कुछ तिर्छा लटका रहता है; ऊपर का सिरा कुछ आगे को और बाहर की ओर और नीचे का सिरा पीछे को और मध्य रेखा की ओर रहता है। अंड की लम्बाई १½ से १¾ इंच, चौड़ाई १ इंच और मोटाई १ इंच से कुछ कम होती है; उसका भार एक तोले के लगभग होता है।

अंड के पिछले किनारे से एक लम्बा पतला और कुछ चपटा पिंड लगा रहता है इसको उपांड कहते हैं; इसको अंडकोष की दीवार में से टटोल कर स्पर्श कर सकते हैं। उपांड का ऊपर का सिरा मोटा होता है यह उपांड का शिर कहलाता है (चित्र ३२७ और ३३२ में १); नीचे का सिरा पतला होता है

इसको 'पुच्छ' कहते हैं; (चित्र ३२७ और ३३२ में ३) बीच का भाग उसका गात्र या 'शरीर' कहलाता है (चित्र ३२७ और ३३२

चित्र ३३२ अंड



में २)। उपांड का शिर तो अंड से नलियों द्वारा जुड़ा रहता है (नलियाँ अंड से उपांड में जाती हैं, देखो चित्र ३३३), शेष भाग केवल कला द्वारा ही अंड से मिला रहता है।

अंड के ऊपर एक झिल्ली या कला चढ़ी रहती है जिसकी दो तहें होती हैं; इस कला से उपांड का अधिक भाग भी ढका रहता है। इस कला को पर्य्योण्डिका या अंडवेष्ट कहते हैं। पर्य्योण्डिका की दोनों तहों के सम्मुख पृष्ठ चिकने होते हैं और कुछ भीगे रहते हैं। जिस प्रकार रबड़ की पोली गेंद को अँगुली से दबाने से अँगुली का कुछ भाग रबड़ की दो तहों (गेंद पिचक जाती है) से ढक तो जाता है परन्तु वास्तव में रहता है गेंद के बाहर ही उसी प्रकार यद्यपि अंड का अधिक भाग इस थैली जैसे वेष्ट की दो तहों से ढका रहता है परन्तु वास्तव में है उसके बाहर ही। कभी कभी पर्य्योण्डिका की दो तहों के बीच में जलीय द्रव इकट्ठा हो जाता है, जिसके कारण अंड बड़ा मालूम होने लगता है ; यह 'जलदोष' कहलाता है।

शुक्र ग्रन्थि की रचना (चित्र ३३३)

शुक्र ग्रन्थि में कोई दो तीन सौ छोटे छोटे कोष्ठ (चित्र ३३३ में क) होते हैं; इन कोष्ठों की दीवारें (चित्र ३३३ में प) सौत्रिक तंतु से निर्मित रहती हैं। इन कोष्ठों में बाल जैसी बारीक पतली नलियाँ रहती हैं (चित्र ३३३ में न)। इन नलियों की संख्या कोई ८००—९०० होती है और वे आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा मिली रहती हैं। ये नलियाँ बहुत मुड़ी हुई रहती हैं, यदि नली के मोड़ खोल कर वह सीधी करली जावे तो उसकी लम्बाई कोई २ या ३ फुट के लगभग होगी। नली की चौड़ाई १/१०० इंच होती है। सब नलियों की लम्बाई मिला कर १/२ मील के लगभग होती है।

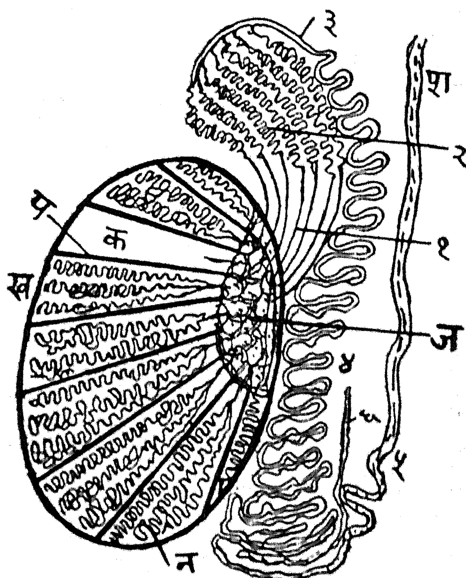
ग्रन्थि के अगले भाग से आरंभ होकर नलियाँ पिछले किनारे

की ओर जाती हैं; ज्यों ज्यों वे पीछे की ओर जाती हैं वे एक दूसरे से जुड़ती जाती हैं जिसके कारण ग्रन्थि के पिछले भाग में एक जाल बन जाता है (चित्र ३३३ में ज)

अब इस जाल से कोई २०—२५ बड़ी नलियाँ आरंभ होती हैं और ग्रन्थि से बाहर निकलती हैं (चित्र ३३३ में १)। ये नलियाँ बहुत मुड़ी रहती हैं (चित्र ३३३ में २) और इन्हीं मुड़ी हुई नलियों के समूह से उपांड का शिर बनता है। उपांड के शिर में इन नलियों के संयोग से एक बड़ी नली बन जाती है

चित्र ३३३ अंड की रचना

क=अण्ड के कोष्ठ
प=सौत्रिक तन्तु से निर्मित दीवारें
ख=शुक्रग्रन्थि का एक खण्ड
न=नलियां
ज=नलियों का जाल
१,२=नलियां जिनके संयोग से शुक्र प्रनाली बनती है
३=शुक्र प्रनाली का प्रारम्भिक भाग
४,५=शुक्र प्रनाली
श=शुक्र प्रनाली



(चित्र ३३३ में ३) जिसको शुक्र प्रनाली कहते हैं। शुक्र

प्रनाली बहुत मोड़ खाकर और गेंडलियाँ मार कर अंड के पिछले किनारे के नीचे के भाग तक पहुँचती है; इसी मुड़े हुए भाग से उपांड का शरीर और पुच्छ बनती है (चित्र ३३२ में ४), (चित्र ३३३ का ३३२ से मुकाबला करो)। उपांड की पुच्छ में जाकर यह नली बहुत मोटी हो जाती है और ऊपर को मुड़कर उपांड के अंतः पार्श्व से लगी हुई ऊपर को चढ़ती है (चित्र ३३३ में ५ और श)। यदि शुक्र प्रणाली की सब गेंडलियाँ और मोड़ खोल दिये जावें तो उसकी लम्बाई २० फुट के लगभग होगी।

शुक्रग्रन्थि की नलियाँ वास्तव में छोटी छोटी नलाकार ग्रन्थियाँ हैं। इन ग्रन्थियों में शुक्र बनता है। शुक्र के मुख्य अवयव शुक्रकीट या शुक्राणु हैं।

अंडधारक रज्जु

यदि आप अंडकोष के ऊपर के भाग को टटोलें तो उसमें एक रस्सी या डोरी जैसी चीज़ मालूम होगी (चित्र ३२६ में र); अंड इसी डोरी द्वारा अंडकोष में लटका रहता है। इस डोरी को अण्डधारक रज्जु कहते हैं। यह डोरी अंड की रक्त तथा लसीकावाहिनियों और नाड़ियों और शुक्रप्रणाली के एकत्रित रहने से बनती है। विटप संधि के ऊपर यह रज्जु उदर की दीवार में से होकर उदर के भीतर चली जाती है। जिस मार्ग में से होकर यह रज्जु भीतर जाती है कभी कभी उसी मार्ग में से अंत्र का कुछ भाग अंडकोष में चला आता है; इसे "अंत्रवृद्धि" रोग कहते हैं।

अंडधारक रज्जु के अवयव (चित्र ३२७, ३३२)

१—शुक्रप्रनाली और उसकी धमनी

२—अंड की धमनी

३—कई शिराएँ, अंड के समीप शिराओं का एक घना जाल होता है

४—लसीकावाहिनियाँ

५—नाड़ियाँ

जब अंडधारक रज्जु टटोली जाती है तो इन सब चीज़ों में से शुक्रप्रनाली अधिक कड़ा और दृढ़ मालूम होती है। ये सब अवयव आपस में सौत्रिक तंतु द्वारा इकट्ठे रहते हैं और इन सब के ऊपर कई कलाएँ और मांस की एक पतली तह चढ़ी रहती है।

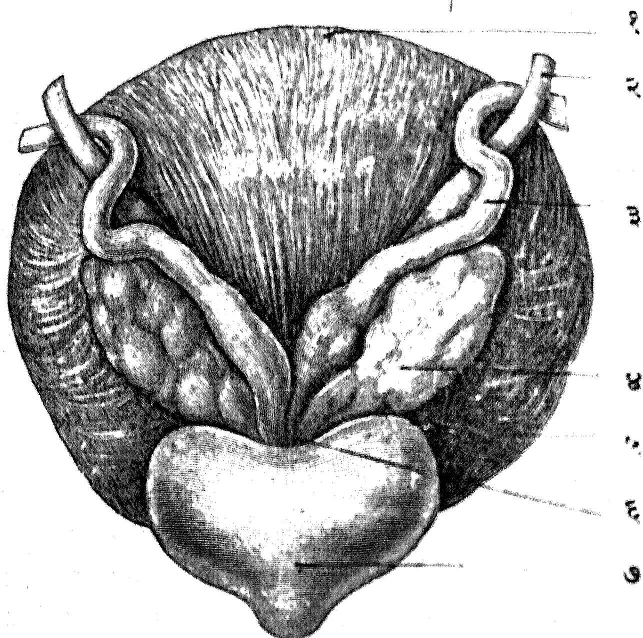
शुक्रप्रनाली, शिराएँ और लसीका वाहिनियाँ अंड से आरंभ होकर उदर में चली जाती हैं; धमनियाँ और नाड़ियाँ उदर से अंड को जाती हैं।

शुक्राशय (चित्र ३२७, ३३४)

ये दो थैलियाँ हैं जो वस्तिगह्वर में मूत्राशय के पिछले भाग से लगी रहती हैं; इनके पीछे मलाशय रहता है (चित्र ३२२)। शुक्राशय की लम्बाई कोई २—३ इंच होती है; उसका परिमाण सब मनुष्यों में एकसा नहीं होता। ऊपर का सिरा स्थूल होता है, नीचे का पतला और नोकीला। थैली के अंतः पार्श्व से शुक्र-प्रनाली लगी रहती है (चित्र ३३४)। शुक्रप्रनाली का अंत थैली के नीचे वाले नोकीले सिरे में होता है। जहाँ शुक्रप्रनाली शुक्राशय से जुड़ती है वहीं से एक पतली नली का आरंभ होता है; इस नली को शुक्रस्रोत कहते हैं। शुक्रस्रोत प्रोस्टेट ग्रन्थि के भीतर घुस कर मूत्रमार्ग में खुलता है (चित्र ३३४, ३३५)।

शुक्र ग्रन्थि में जो वस्तु बनती है वह शुक्रप्रनाली द्वारा आकर शुक्राशय में इकट्ठी हुआ करती है और फिर यहाँ से

चित्र ३३४

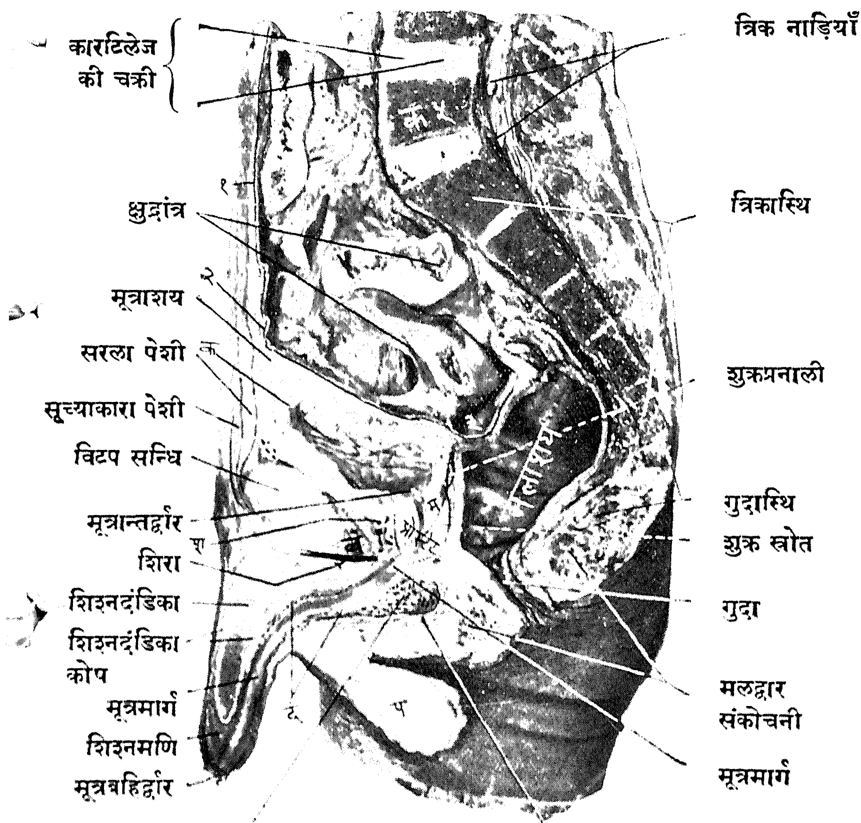


(From Gray's Anatomy)

१=मूत्राशय ; २=मूत्र प्रनाली ; ३=शुक्र प्रनाली ; ४=शुक्राशय ; ५=मूत्राशय ; ६=शुक्र प्रनाली शुक्राशय की शिखर से जुड़ रही है ७=प्रोस्टेट ग्रन्थि ।

आवश्यकतानुसार (मैथुन के समय) शुक्रस्रोत द्वारा निकल कर मूत्रमार्ग में पहुँचती है ।

चित्र ३२५ जवान पुरुष का वस्तिगह्वर

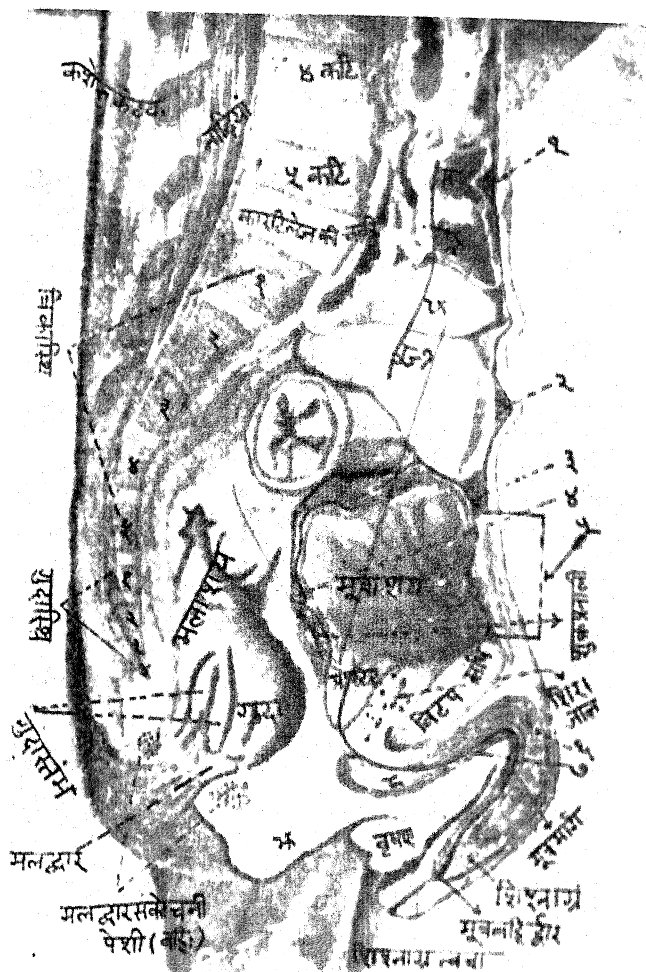


१, २, ३=उदरक कला

दं=मूत्रदंडिका ; म=प्रोस्टेट का मध्य खंड

पृष्ठ ७६२ के सम्मुख

चित्र ३३६; १०-११ वर्ष के बालक का वस्तिगह्वर



१, २, ३, ४=उदरक कला

५=मूत्राशय के इस भाग पर उदरक कला नहीं है। पृष्ठ ७६३ के सम्मुख

प्रोस्टेट (चित्र ३२७, ३३४, ३३५, ३३६)

यह एक छोटे अखरोट के बराबर शंकाकार अंग है जो वस्तिगह्वर में मूत्राशय के नीचे और मलाशय के सामने रहता है; मूत्रमार्ग इसमें से होकर नीचे जाता है। उसका आकार लट्टू जैसा होता है; तली (या स्थूल भाग) ऊपर मूत्राशय से संश्लिष्ट रहती है; पतला भाग (शिखर) नीचे को श्रोणि आधार की ओर रहता है, उसमें से मूत्रामार्ग निकलकर आगे जाता है। तली का व्यास कोई $१\frac{१}{२}$ इंच, तलो से शिखर तक का माप कोई $१\frac{१}{४}$ इंच और उसकी मोटाई कोई १ इंच के लगभग होती है। उसका भार कोई ८ माशे होता है।

यदि ग्रन्थि काटी जावे तो भीतर से सुर्खी मायल भूरे रङ्ग की दिखाई देगी। उस पर एक सात्रिक कोष चढ़ा रहता है। इस ग्रन्थि में अनैच्छिक मांस भी रहता है।

इस ग्रन्थि में कोई ऐसी प्रनाली नहीं होती जो बाहर से दिखाई दे। जो रस इस ग्रन्थि में बनता है वह दस-बीस पतली पतली नलियों में जो अंग के भीतर ही रहती हैं आता है। ये प्रनालियाँ (प्रोस्टेट स्रोत) मूत्रमार्ग के फ़र्श में आकर खुलती हैं। यह रस शुक्र से मिल जाता है।

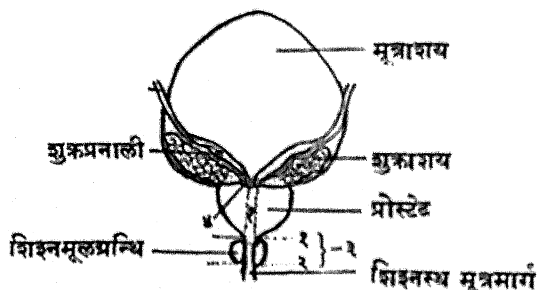
वृद्धावस्था में यह ग्रन्थि बढ़ जाया करती है; ऐसी दशा में मूत्र त्यागने में कष्ट होने लगता है।

शिश्नमूल ग्रन्थियाँ (चित्र ३२३ ; ३३७)

ये पीले रङ्ग की मटर के तुल्य छोटी छोटी दो ग्रन्थियाँ हैं जो प्रोस्टेट के शिखर के नीचे श्रोणि आधार में दो कलाओं के बीच में मूत्रमार्ग के इधर उधर रहती हैं।

हर एक ग्रन्थि से एक नली निकलती है जो एक इंच लम्बी होती है और शिश्नस्थ मूत्रमार्ग में जाकर खुलती है। इस ग्रन्थि का रस शुक्र से मिल जाता है।

चित्र ३३७



१, २=दो कलायें

३=कलाओं के बीच में रहने वाला मूत्रमार्ग का भाग

४=शुक्रस्रोत

५=प्रोस्टेट में रहने वाला मूत्रमार्ग का भाग

शुक्र या वीर्य

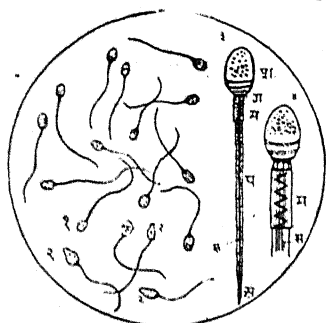
यह दूधिया रङ्ग का गाढ़ा लसदार ज़रा क्षारीय प्रतिक्रिया वाला द्रव होता है। उसमें एक विशेष प्रकार की गंध आया करती है। कपड़े पर उसका धब्बा हलके पीले रङ्ग का पड़ता है; कपड़ा सूखने पर उस जगह से सख्त भी हो जाता है; शुक्र से भीगा कपड़ा आग के सामने सुखाया जावे तो धब्बे का रङ्ग गहरा हो जावेगा।

शुक्र का गुरुत्व जल से अधिक होता है। एक बार मैथुन करने में कोई ½ तोले से १½ तोले तक शुक्र निकला करता है।

१०० भागों में ९० भाग जल के, ३ भाग खटिक और स्फुर के यौगिकों के, १ भाग सोडियम के लवणों का, १ भाग अन्य लवणों का और ५ भाग कई प्रकार की सेलों के होते हैं।

यदि ताजे शुक्र की अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा की जावे तो उसमें बड़ी फुरती से इधर उधर फिरते हुए कीट सदृश चीज़ें दिखाई देंगी। ये वे सेलें हैं जिनका होना सन्तानोत्पत्ति के लिये आवश्यक है। इनको शुक्राणु या शुक्रकीट कहते हैं (देखो चित्र ३३८)।

चित्र ३३८ शुक्राणु



श=शिर
ग=ग्रीवा
म=मध्य भाग
प=पुच्छ
अ=अंतिम भाग
स=सूत्र

शुक्राणु की लम्बाई १/१००० से १/५०० इंच तक होती है। उस का अगला सिरा मोटा और अंडाकार होता है पिछला पतला और नोकीला। मोटा भाग शिर कहलाता है; शिर के पीछे जो दबा हुआ भाग है वह ग्रीवा है; ग्रीवा के पीछे शुक्राणु का मध्य भाग या गात्र है; गात्र के पीछे लम्बी पुच्छ होती है जिसका अंतिम भाग पतला और नोकीला होता है। मामूली अणुवीक्षण से शुक्राणु ऐसे दिखाई देते हैं जैसे चित्र ३३८ में १, २; बड़े

त्रों से देखने से उनकी रचना ऐसी मालूम होती है जैसी ३ और ४। शिर की मोटाई $\frac{१}{१०००}$ इंच के लगभग होती है। जीवित शुक्राणु की पुच्छ उसी प्रकार गति किया करती है जैसे पानी में तैरते हुए या ज़मीन पर रेंगते हुए सर्प का शरीर।

शुक्रकीट शुक्र के तरल में तैरा करते हैं; निर्बल शुक्रकीट धीरे धीरे गति करते हैं; बलवान् शुक्रकीट बड़ी तेज़ी से फिरते हैं। एक ही मनुष्य के शुक्र में कभी शुक्रकीट कम होते हैं और कभी ज़्यादा; कभी कभी होते ही नहीं। जिन पुरुषों के शुक्र में शुक्रकीट कभी होते ही नहीं अर्थात् जिनकी शुक्रग्रन्थियों में ये बनते ही नहीं वे पुरुष सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते, वे मैथुन करने में समर्थ भले ही हों। अनुमान है कि एक घन शतांश-मीटर शुक्र में ६ करोड़ से ८ करोड़ तक शुक्राणु रहते हैं। जितना शुक्र एक मैथुन क्रिया में निकलता है उसमें इनकी संख्या १८०,०००,०० से २२६,०००,००० तक होती है।

यदि आप शुक्र को एक काँच के गिलास में अलग रख दें तो कुछ देर पीछे उसकी दो तहें हो जायँगी। ऊपर की तह पतली, अपारदर्शक और दही के पानी के सदृश कुछ श्वेत रङ्ग की होती है; नीचे की तह गाढ़ी और दूधिया रङ्ग की होती है। शुक्र में जितने शुक्रकीट थे वे नीचे की तह में बैठ गये; ऊपर की तह में जल और उसमें घुले हुए लवण और कुछ टूटी फूटी सेलें रहती हैं। जितनी गहरी नीचे की तह होती है उतने ही अधिक शुक्रकीट उस शुक्र में समझने चाहियें। शुक्र में शुक्र-कीटों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की सेलें रहती हैं। परन्तु इनका कोई विशेष कार्य नहीं है।

शुक्रकीट जल में जीवित नहीं रह सकते। अम्ल वा अम्ल रस में भी वे तुरन्त मर जाते हैं। वे ज़रा क्षारीय प्रतिक्रिया वाले द्रवों को पसन्द करते हैं।

शुक्राणु १४–१५ वर्ष की आयु में बनने आरम्भ हो जाते हैं परन्तु इस समय के शुक्राणु प्रबल सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं होते। २०–२५ वर्ष की आयु में अच्छे शुक्राणु बनने लगते हैं।

जो शुक्र मैथुन में निकलता है उसके सब अंश शुक्रग्रन्थि में नहीं बनते; इन ग्रन्थियों में शुक्रकीट बनते हैं। जो शुक्र इस ग्रन्थि से शुक्रप्रनाली में पहुँचता है वह बहुत गाढ़ा होता है इतना गाढ़ा कि शुक्रकीट भली प्रकार गति नहीं कर सकते। शुक्र-प्रनाली की श्लैष्मिक कला में जलीय रस बनता है, इस से मिलकर शुक्र कुछ पतला हो जाता है। शुक्राशय में भी कुछ रस बनता है यह शुक्र को आर पतला कर देता है। जब मैथुन के समय वह मूत्रमार्ग में से बहता है तो प्रोस्टेट और शिश्नमूल ग्रन्थियों के रस उस में मिलते हैं। शुक्र इस प्रकार कई रसों का मिश्रण है।

कुछ पुरुषों में मैथुन करते समय दो चार बून्द एक स्वच्छ लसदार तरल की मूत्रबर्हिद्वार से निकला करती हैं; यह शुक्र नहीं होता; इस में शुक्रकीट नहीं होते; यह प्रोस्टेट अथवा शिश्नमूल ग्रन्थियों का रस है। साँड कुत्ते और बकरे जब मैथुन करने लगते हैं तब कभी कभी उनके शिश्न से भी इस प्रकार के स्वच्छ तरल की दो चार बून्दें गिरा करती हैं।

शुक्र ग्रन्थियों का और कार्य

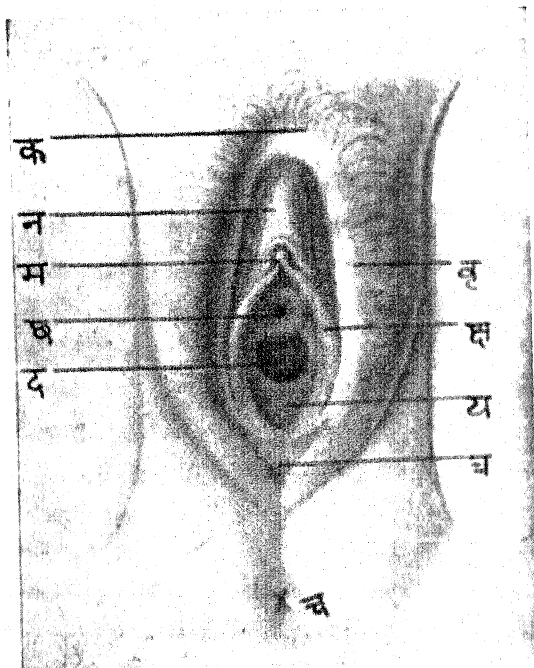
शुक्रकीट बनाने के अतिरिक्त इन ग्रन्थियों का एक और

बड़ा काम है। इन में एक ऐसी वस्तु बनती है जिस की संतानोत्पत्ति के लिये तो कोई आवश्यकता नहीं (जैसी कि शुक्रकोटों को होती है) परन्तु जो रक्त में मिल जाती है और उसके साथ साथ शरीर के विविध अंगों में पहुँचती है और उनको प्रबल और पुष्ट बनाता है। हर एक व्यक्ति को इस वस्तु की वर्धन काल में अर्थात् २५–३० वर्ष की आयु तक बड़ी आवश्यकता होती है। यदि किसी व्यक्ति के अंड यौवन- (जवानी) प्राप्ति से पहिले उसके शरीर से निकाल दिये जावें तो उस व्यक्ति का वर्धन भली प्रकार न होगा और यौवन के बाहरी चिह्न (डाढ़ी मूँछों का निकलना, कक्षतल और विटप-देश में बालों का जमना, स्वर का बदल जाना इत्यादि) भी अच्छी तरह दिखाई न देंगे। बैल और साँड में जो फ़र्क होता है वह सभी लोग जानते हैं, यदि बछड़े के अंड निकाल दिये जावें या किसी और प्रकार बेकार कर दिये जावें (व्यक्ति अखता कर दिया जावे) तो वह बछड़ा बड़ा होकर बैल बनेगा ; यदि अंड उस के शरीर में ज्यों के त्यों रहें तो वह साँड बनेगा। बैल न केवल संतानोत्पन्न करने में असमर्थ होता है प्रत्युत उसका वर्धन (बढ़ोत) भी कम होता है और वह उसी आयु के साँड की अपेक्षा बहुत कमज़ोर, दुबला और परिश्रम से डरनेवाला होता है।

सब अंगों के परिपक्व होने के पूर्व इन ग्रन्थियों से शुक्र बनाने का काम लेना न केवल उस व्यक्ति के लिये प्रत्युत उस की संतान के लिये भी अत्यन्त हानिकारक है। इस कारण कम से कम २५ वर्ष की आयु के पूर्व मैथुन द्वारा या किसी और प्रकार वीर्य शरीर से बाहर निकालना अनुचित है ; क्योंकि

जब इन ग्रन्थियों से शुक्र बनाने का काम अधिक लिया जाता है तब वे उस वस्तु को जिसका काम शरीर के शेष अंगों को पुष्टि प्रदान करना है अच्छी तरह नहीं बना सकतीं। उपरोक्त से सिद्ध होता है कि २५ वर्ष की आयु से पहिले विवाह संस्कार होना ठीक नहीं है।

चित्र ३३९. अक्षतयोनि स्त्री का भग



क=कामाद्रि; न=भगनासा

म=भगनासाग्र; छ=मूत्रबहिर्द्वार

द=योनिद्वार; य=योनिच्छद; वृ=बृहत्भगोष्ठ

क्ष=क्षुद्रभगोष्ठ; च=चूति

अध्याय ३०

उत्पादक संस्थान (२)

नारी जननेन्द्रियाँ

पुरुष के समान स्त्री की जननेन्द्रियाँ भी दो प्रकार की होती हैं :—

१—बाह्य जननेन्द्रियाँ जो बाहर से देख पड़ती हैं जैसे भग (भग नासा, भगोष्ठ, योनिद्वार इत्यादि)।

२—अंतरीय जननेन्द्रियाँ जो वस्तिगह्वर या श्रोणि के भीतर रहती हैं जैसे डिम्ब ग्रन्थि, डिम्ब प्रनाली, गर्भाशय या जरायु, योनि ।

भग (चित्र ३३९)

जिस स्थान में पुरुष में शिश्न और अंडकोष होते हैं उस स्थान में स्त्री में जो अंग दिखाई देते हैं वे सब मिलकर भग कहलाते हैं। भग के बीचोबीच एक दरार होती है ; दरार के दो पाट या ओष्ठ होते हैं। ये भगोष्ठ त्वचा के झोलों से बनते हैं ; त्वचा के नीचे वसा रहने के कारण ये झोल उभरे हुए देख पड़ते हैं। बाहर से केवल दो ही पाट या ओष्ठ दिखाई देते हैं और उनके बीच में भग की दरार है। यदि हम इन ओष्ठों को अँगुली से हटाकर दरार को चौड़ा करें तो इन ओष्ठों के भीतर दो ओष्ठ और दिखाई देंगे ; ये पतले होते हैं और त्वचा से ही

बनते हैं ; इन में वसा कम होती है। इस प्रकार दरार के दोनों ओर दो दो ओष्ठ हुए। बाहर से दिखाई देनेवाले मोटे ओष्ठ बृहत् भगोष्ठ और इन के भीतरी ओर रहने वाले क्षुद्र भगोष्ठ कहलाते हैं (चित्र ३३९ में बृ, क्ष)।

यदि हम भगोष्ठों को फैलावें तो दरार में दो छिद्र दिखाई देंगे। इन छिद्रों में से एक बड़ा होता है यह योनि का छिद्र है और योनिद्वार कहलाता है (चित्र ३३९ में द, चित्र ३४०); मैथुन के समय पुरुष का शिश्न इसी छिद्र में होकर योनि के भीतर प्रवेश करता है, और इसी छिद्र में से मासिक स्राव बहता है और बालक जन्म लेता है। दूसरा छिद्र योनिद्वार से १/२ इंच ऊपर रहता है ; यह मूत्र मार्ग का छिद्र है और मूत्रबहिर्द्वार कहलाता है (चित्र ३३९ में छ, चित्र ३४० में १०) ; मूत्र इसी छिद्र में से बाहर निकलता है।

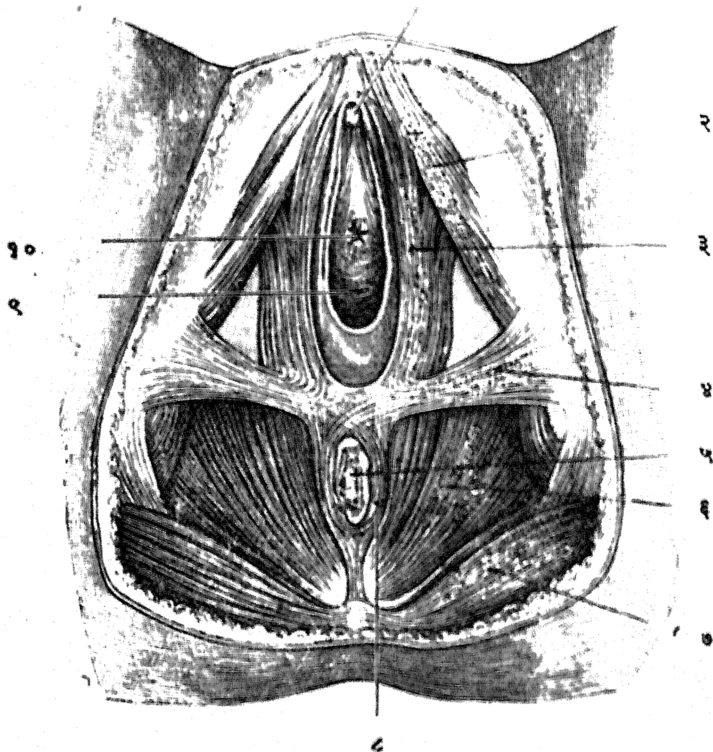
अक्षत योनि स्त्रियों में योनिद्वार पर त्वचा का पतला परदा लगा रहता है (चित्र ३३९ में य) ; इस परदे में एक छिद्र होता है जिस में से प्रति मास आर्तव निकला करता है। प्रथम मैथुन में दृढ़ शिश्न के बड़े वेग के साथ भीतर घुसने के कारण यह परदा फट जाता है ; इस परदे के फटने से स्त्री को थोड़ी बहुत पीड़ा हुआ करती है और ज़रा सा रक्त भी निकला करता है। किसी किसी स्त्री में यह परदा बहुत पतला होता है और उस का छिद्र चौड़ा होता है; यदि शिश्न पतला हो तो परदे के बिना फटे और बिना पीड़ा के मैथुन हो जाता है क्योंकि वह छिद्र फैलकर इतना चौड़ा हो जाता है कि शिश्न योनि में प्रवेश कर सके।

जब तक यह परदा मौजूद है और उस का छिद्र बड़ा नहीं है उस समय तक यह माना जाता है कि स्त्री से मैथुन नहीं किया गया। परदे का फट जाना बहुधा इस बात का साक्षी है कि स्त्री से मैथुन हो चुका। चोट लग जाने से भी कभी कभी यह परदा फट जाया करता है। इस परदे को योनिच्छद कहते हैं; कभी कभी इस को कुमारिच्छद भी कह देते हैं क्योंकि विवाहित स्त्रियों में मैथुन होने के पश्चात् यह परदा नहीं रहता। जब परदा फट जाता है तो उस के शेष भाग के टुकड़े योनिद्वार के इधर उधर दिखाई दिया करते हैं (चित्र ३४२)।

वृहत् भगोष्ठ ऊपर जाकर एक दूसरे से मिल जाते हैं; जहाँ ये एक दूसरे से मिलते हैं वह स्थान कुछ उभरा हुआ हाता है; इस स्थान को कामाद्रि कहते हैं (चित्र ३३९ में क) जब स्त्री जवान होने लगती है (१२, १३ वर्ष की आयु म) तब यहाँ बाल उग आते हैं। इस देश में दोनों भगास्थियों का जोड़ रहता है।

कामाद्रि के नीचे दोनों वृहत् ओष्ठों के बीच में और मूत्र बहिर्द्वार के ऊपर एक छोटा सा अंकुर होता है (चित्र १३४ में न); इस को भगनासा (या भगांकुर) कहते हैं; जिस प्रकार पुरुष में शिश्न होता है उसी प्रकार स्त्री में यह अंग होता है। शिश्न की अपेक्षा यह बहुत छोटा होता है शिश्न दंडिकाओं की भाँति इस में भी दो दंडे होते हैं जिन को भगनासा दंडिका हते हैं (चित्र ३४१)। भगनासा दंडिका शिश्न दंडिका की ांति नितंबास्थि की महराब से जुड़ा रहता है; आगे आकर

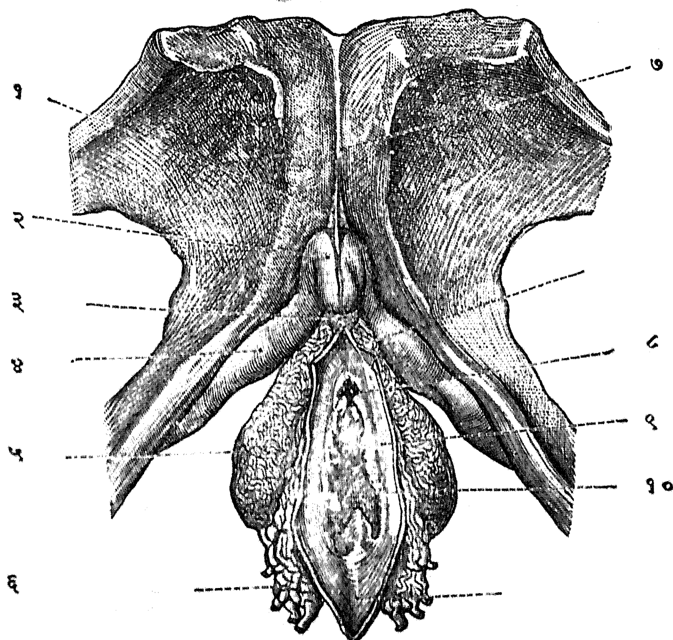
चित्र ३४० भग की पेशियाँ



(From Gray's Anatomy)

१=भगनासा मुंड ; २=भगनासा प्रहर्षिणी पेशी ; ३=योनिसंकोचनी पेशी ; ४=श्रोणि आधार की उपरितन व्यत्यस्त पेशी (=श्रोणि आधारा व्यत्यस्ता पे०); ५=मलद्वार ; ६=मलद्वारोत्थापिका पेशी ; ७=नैतंबिका बृहती ; ८=मलद्वार संकोचनी ; ९=योनिद्वार ; १०=मूत्रबहिर्द्वार ।

चित्र ३४१ भग



(From Toldt-Hochstetter, Anatornischer Atlas)

१=भग संधि

२=भग नासा दंडिका

३=भगनासा मणि

४=भगनासा दंडिका

५=प्रहर्षिणी तंतु

६=भग ग्रन्थि

७=भगास्थि

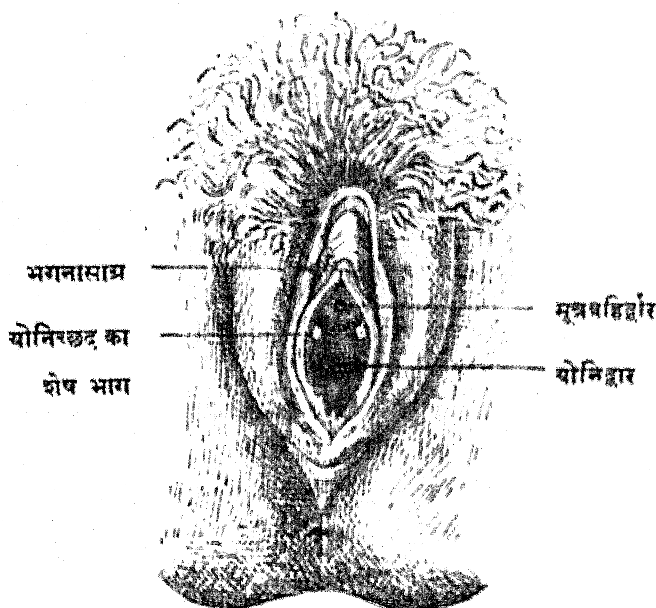
८=मूत्र बहिर्द्वार

९=योनि

१०=योनि द्वार

दोनों दंडिकाएँ एक दूसरे से मिल जाती हैं और उन से भगनासा बनती है (चित्र ३४१)। इन दंडिकाओं की रचना शिश्न दंडिकाओं की रचना के सदृश होती है। प्रत्येक दंडिका से भगनासोत्थापिका (भगनासा प्रहर्षिणी) पेशी लगी रहती है (चित्र ३४० में २) भगनासा का सिरा (भगनासाग्र) शिश्न मुंड

चित्र ३४२ भग (क्षत योनि)



के सदृश होता है उस की त्वचा ऊपर को हट सकती है और क्षुद्रोष्ठों की त्वचा से मिली रहती है। भगनासाग्र में कोई छिद्र नहीं होता जैसा कि शिश्नमुंड में होता है।

भगनासा में दो ही दंडे होते हैं; शिश्न के मूत्रदंडिका की भाँति भगनासा में कोई दंडा नहीं होता, भगनासा में से न मूत्र निकलता है और न पुरुष के शुक्र जैसी कोई और चीज़। स्त्रियों में मूत्र मार्ग जुदा होता है (देखो चित्र ३३९)।

मैथुन के समय भगनासा रक्त से भर जाता है और उस में शिश्न के समान दृढ़ता आ जाती है। मैथुन में शिश्न भगनासा से रगड़ खाता है और इस रगड़ से स्त्री को अत्यंत आनंद प्राप्त होता है मैथुन की समाप्ति पर रक्त के लौट जाने के कारण भगनासा भी शिश्न की तरह शिथिल हो जाती है।

डिम्ब ग्रन्थियाँ (चित्र ३४३, ३४४)

जैसे पुरुष में दो शुक्रग्रन्थियाँ होती हैं वैसे ही स्त्री में भी दो अंग होते हैं; इन में डिम्ब बनते हैं, इस कारण इन को डिम्ब ग्रन्थियाँ कहते हैं। स्त्री के डिम्ब और पुरुष के शुक्राणु के परस्पर संयोग से ही गर्भस्थिति होती है।

डिम्ब ग्रन्थियाँ वस्तिगह्वर में उस की पार्श्विक दीवारों से लगी हुई रहती हैं; एक ग्रन्थि गर्भाशय के दाहिनी ओर रहती है दूसरी उसके बांई ओर (चित्र ३४६ में ड)। ग्रन्थि का आकार और परिमाण कबूतर के अंडे जैसा होता है। उस की लम्बाई १ से १$\frac{१}{४}$ इंच तक, चौड़ाई $\frac{३}{४}$ इंच और मोटाई $\frac{१}{२}$ इंच के लगभग होती है। उस का भार ६ से ८ माशे तक होता है।

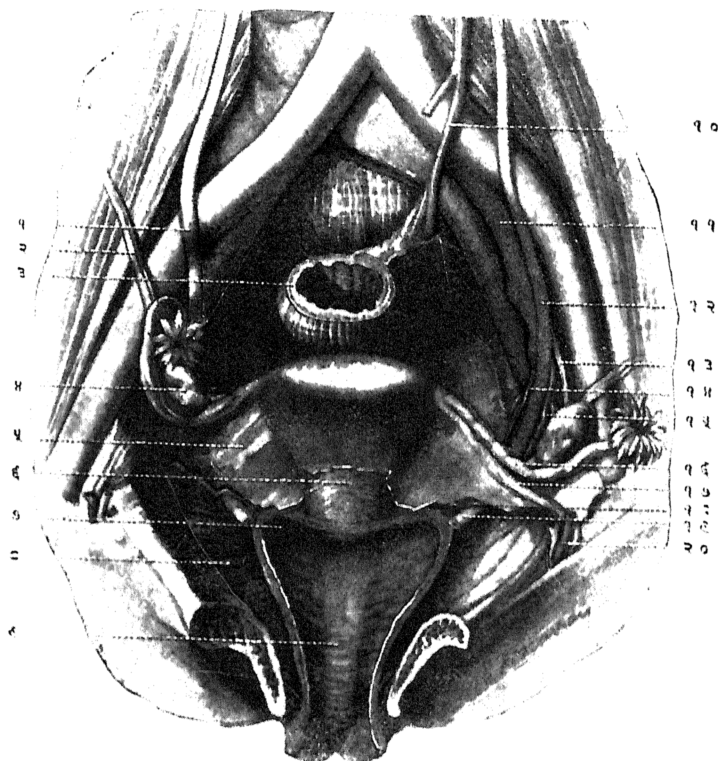
डिम्ब ग्रन्थि की रचना (चित्र ३४४)

यदि डिम्ब ग्रन्थि के यन्त्रों द्वारा सूक्ष्म पत्ते काटे जावें और

चित्र ३४३ की व्याख्या

१=मूत्र प्रणाली
२=डिम्ब रक्त वाहिनियाँ
३=श्रोणिगा बृहत् अन्त्र
४=डिम्ब ग्रन्थि
५=गर्भाशय का पार्श्विक बन्धन
६=जरायु ग्रीवा
७=योनि पार्श्विक कोण
८=गुदोत्थापिका पे०
९=योनि की कला जिसमें सलवटें पड़ी रहती हैं
१०=सरलांत्रोर्ध्व धमनी
११=अन्तः श्रोणिगा धमनी
१२=मूत्र प्रणाली
१३=नाभि धमनी (सूखी हुई)
१४=सरलांत्र मध्य धमनी
१५=गर्भाशयिकी धमनी
१६=डिम्ब प्रणाली
१७=गोल बन्धन
१८=गर्भाशयिकी धमनी
१९=मूत्र प्रणाली
२०=उदराधः रक्त वाहिनियाँ

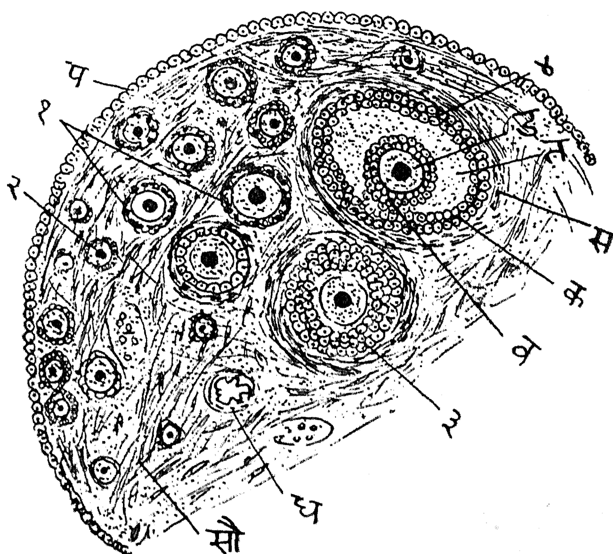
चित्र ३४३ नारी वस्ति गह्वर



(Cunningham's Practical Anatomy)

पृष्ठ ७१८ के सम्मुख

चित्र ३४४ डिम्ब ग्रन्थि की सूक्ष्म रचना



प=पृष्ठ की सेलें; १,२,३=डिम्बकोष या डिम्बाशय; १=बड़े डिम्बकोष; २=छोटे डिम्बकोष; ३=यह डिम्बकोष १,२ की अपेक्षा ज़्यादा पका हुआ है; ४=यह सब से बड़ा डिम्बकोष है और परिपक्व हो गया है; स=डिम्बकोष की दीवार की सौत्रिक तह; क=डिम्बकोष की दीवार की सेलनिर्मित तह; त=डिम्बकोषीय तरल; ड=डिम्ब; व=डिम्बवेष्ट; सौ=सौत्रिक तन्तु; ध=धमनी।

फिर ये पन्ने अणुवीक्षण द्वारा यथाविधि देखे जावें तो उसकी रचना ऐसी मालूम होगी जैसी कि चित्र ३४४ में दर्शाई गई है। ग्रन्थि में सौत्रिक तंतु रहता है (चित्र ३४४ में सौ); सौत्रिक तंतु से कहीं कहीं अनैच्छिक मांस भी मिला रहता

है। ग्रन्थि के पृष्ठ पर सेलों की एक तह होती है (चित्र में प) उस के भीतर बहुत सी सेलों तथा सौत्रिक तंतु से निर्मित छोटी और बड़ी थैलियाँ या आशय होते हैं (१, २, ३, ४) इन थैलियों को डिम्ब कोष कहते हैं।

छोटे डिम्बकोष बहुधा ग्रन्थि के बहिःस्थ भाग में अर्थात् पृष्ठ के निकट रहते हैं; बड़े कोष अधिकतर केन्द्रिक भाग में पाये जाते हैं। जब बड़े कोष परिपक्व हो जाते हैं तब वे पृष्ठ के नीचे पहुँच जाया करते हैं (चित्र ३४४ में ४)।

यदि हम किसी बड़े कोष को ग़ौर से देखें तो इसकी रचना ऐसी मालूम होगी :—

१—सब से बाहर उसकी दीवार सौत्रिक तंतु से बनती है चित्र ३४४ में स; चित्र ३४५ में १,२)।

२—सात्रिक तह के भीतर सेलों की कई तहें बिछी रहती हैं (चित्र ३४४ में क चित्र ३४५ में ३)।

३—सेल तथा सौत्रिक तंतु से निर्मित थैली के भीतर एक तरल भरा रहता है (चित्र ३४४ में त; चित्र ३४५ में ६)।

४—थैली के भीतर एक बड़ी सेल होती है (चित्र ३४४ में ड); इसको डिम्ब कहते हैं (चित्र ३४५ में ५)।

५—डिम्ब के चारों ओर और उससे चिपटी हुई सेलों की कई तहें होती हैं; यह डिम्ब वेष्ट है (चित्र ३४४ में ब)।

छोटे छोटे डिम्बकोषों में तरल नहीं रहता। डिम्ब वेष्ट और कोष की दीवार के बीच में कोई अंतर भी नहीं रहता; सब सेलें एक दूसरे से मिली रहती हैं (चित्र ३४४ में ३)।

सब से छोटे डिम्बकोषों में डिम्ब के चारों ओर सेलों की

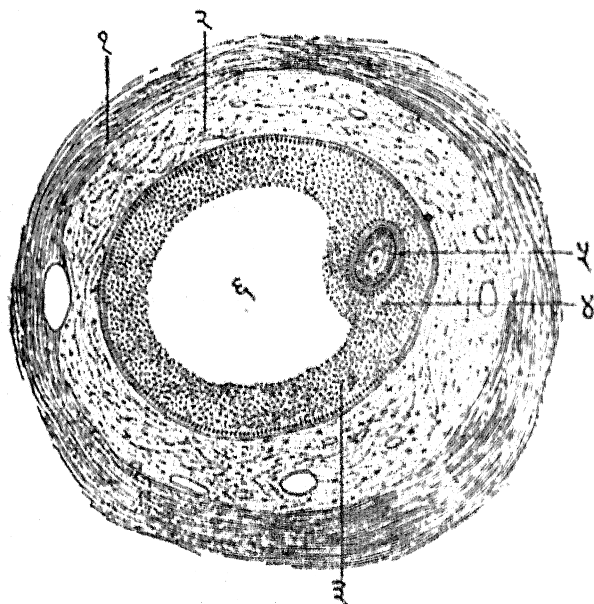
केवल एक ही तह दिखाई देती है। ज्यों ज्यों ये कोष बड़े होते हैं सेलों की संख्या अधिक होती जाती है और फिर कोष के भीतर तरल इकट्ठा होने लगता है।

अनुमान है कि दोनों ग्रन्थियों में छोटे बड़े सब डिम्बकोषों की संख्या ७२००० के लगभग होती है (डिम्बों की संख्या भी इतनी ही हुई)।

जब कोई डिम्बकोष पूरे परिमाण (पक्कावस्था) को प्राप्त होता है तो वह कैन्द्रिक भाग से बहिःस्थ भाग में पहुँचकर पृष्ठ के नीचे आ जाता है; परिपक्क कोष का लम्बा व्यास $\frac{१}{३}$ इंच के लगभग होता है (चित्र ३४९, चित्र ३४५)। ग्रन्थि का पृष्ठ इस कोष के स्थान में उभर जाता है; फिर पृष्ठ फट जाता है। और तरल के दबाव से डिम्बकोष भी फट जाता है। अब डिम्ब अपने चारों ओर वाली सेलों सहित (डिम्बवेष्ट) कोष से बाहर निकल आता है और डिम्ब प्रनाली में चला जाता है। परिपक्क डिम्ब का व्यास $\frac{१}{१५०}$-$\frac{१}{१३०}$ इंच के लगभग होता है ; नंगी आँखों से वह एक सूक्ष्म बिन्दु जैसा दिखाई देता है। डिम्ब कोष बहुधा मासिकस्राव के समय परिपक्क हुआ करते हैं। जब डिम्ब कोष फटनेवाला होता है तब उसकी दीवार की सेलें बड़ी बड़ी हो जाती हैं और उनके भीतर एक पीली वस्तु इकट्ठी होने लगती है जिसके कारण थैली का रंग पीला सा हो जाता है। जब कोष में से डिम्ब निकल जाता है तो उसके भीतर रक्त भर जाता है और कुछ समय पीछे कुल थैली से एक पीला पिंड बन जाता है, इसको पीतांग कहते हैं। यदि डिम्बकोष से निकले हुए डिम्ब और पुरुष के शुक्रकीट के संयोग से गर्भस्थिति हो जावे तो इस पीतांग में एक विचित्र परिवर्तन होता है और वह बड़ा हो जाता

है, यदि गर्भस्थिति न हो तो यह पीतांग कुछ समय पीछे सिकुड़ कर छोटा और श्वेत हो जाता है और अब वह श्वेतांग कहलाता है ।

चित्र ३४५ डिम्बकोष (Stohr)



१,२=सौत्रिक वेष्ट ; ३=सेलयुक्त वेष्ट ; ४=डिम्ब वेष्ट ; ५=डिम्ब ; ६=तरल

डिम्ब के बाहर निकल जाने के पश्चात् डिम्बग्रन्थि का पृष्ठ फिर ज्यों का त्यों हो जाता है परन्तु एक छोटा सा चिह्न बना रहता है। वृद्धावस्था में डिम्बग्रन्थि के पृष्ठ पर बहुत से गढ़े दिखाई देते हैं। इन गढ़ों के कारण उसकी शकल आड़

की गुठली जैसी दिखाई देने लगती है। दोनों ग्रन्थियों के गढ़ों की संख्या उतनी ही होती है कि जितनी उन दोनों ग्रन्थियों से निकलनेवाले डिम्बों की। सामान्यतः एक मास में एक ही डिम्ब निकलता है और उसका एक ही चिह्न या गढ़ा बनता है। यदि किसी स्त्री की दोनों ग्रन्थियों पर ५० गढ़े हों तो यह कहना असत्य न होगा कि वह स्त्री ५० बार रजस्वला हुई। बहुधा ग्रन्थियाँ बारी बारी से डिम्ब निकालती हैं, एक मास में एक ओर की ग्रन्थि से डिम्ब निकलता है दूसरे मास में दूसरी ओर की ग्रन्थि से।

गर्भाशय या जरायु (चित्र ३४६; ३४७, ३५२; ३४३)

यह वह अंग है जिसमें गर्भ रहा करता है। वह वस्तिगह्वर में रहता है; उसके सामने मूत्राशय और पीछे मलाशय रहते हैं। गर्भाशय के दोनों ओर कुछ दूरी पर डिम्ब ग्रन्थियाँ रहती हैं।

गर्भाशय का आकार कुछ कुछ नाशपाती जैसा होता है परन्तु उसका स्थूल भाग नाशपाती के सदृश गोल होने के बजाय चपटा होता है।

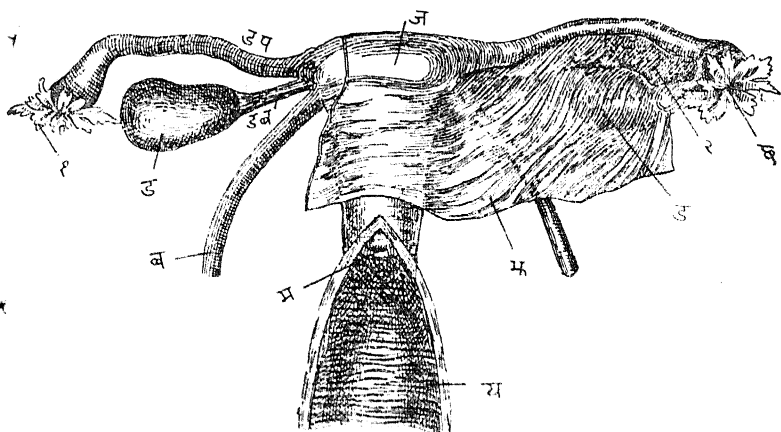
अप्रजाता (जिस स्त्री के कभी सन्तान न हुई हो अथवा जिसने गर्भधारण न किया हो) में गर्भाशय की लम्बाई (ऊपर से नीचे तक का माप) ३ इंच, चौड़ाई (एक किनारे से दूसरे किनारे तक माप) २ इंच और मोटाई (सामने से पीछे तक का माप) १ इंच होती है। उसका भार $२\frac{१}{२}$ से $३\frac{१}{२}$ तोले तक होता है। प्रजाता (जो स्त्री सन्तान उत्पन्न कर चुकी है) में उसका आकार उपरोक्त से कुछ ही बड़ा होता है।

गर्भाशय का ऊपर का भाग मोटा होता है; नीचे का भाग जो योनि से जुड़ा रहता है पतला होता है। नीचे के भाग में एक छिद्र होता है (चित्र ३४६ में म); इसको गर्भाशय का बहिर्मुख कहते हैं। गर्भाशय बहिर्मुख योनि में अँगुली देकर स्पर्श किया जा सकता है। इस मुख के दो ओष्ठ होते हैं एक अगला और दूसरा पिछला। ये भी स्पर्श किये जा सकते हैं (चित्र ३४९)।

गर्भाशय वस्तिगह्वर में सीधा खड़ा नहीं रहता। वह आगे को मूत्राशय की ओर झुका रहता है (चित्र ३५२) जहाँ गर्भाशय का ऊपर का स्थूल भाग नीचे के पतले भाग से मिलता है वहाँ भी गर्भाशय कुछ आगे को मुड़ा रहता है। मोटे भाग (जो भाग झुकाव से ऊपर रहता है) को गर्भाशय का गात्र और पतले भाग को ग्रीवा कहते हैं (चित्र ३४७)।

गर्भाशय के ऊपर उदरक कला लगी रहती है; यह कला गर्भाशय से मूत्राशय पर चली जाती है (चित्र ३५१, ३५२; चित्र १७१) वस्तिगह्वर के पार्श्वों से गर्भाशय उदरक कला की दो चौड़ी तहों द्वारा बँधा रहता है (चित्र ३४६ में इ), ये उसके चौड़े या पार्श्विक बन्धन कहलाते हैं। पार्श्विक बन्धन की दोनों तहों के बीच में गर्भाशय का अगला या गोल बन्धन (चित्र ३४६ में ब) रहता है जो उदर की दीवार में से होकर बृहत् भगोष्ठ तक जाता है और वहीं रह जाता है। इन बन्धनों द्वारा गर्भाशय अपने स्थान में स्थिर रहता है। जब ये बन्धन खिचकर लम्बे और ढीले हो जाते हैं तब गर्भाशय अपने स्थान से हट जाता है; इसको गर्भाशयस्थानच्युति या गर्भाशयस्थान-

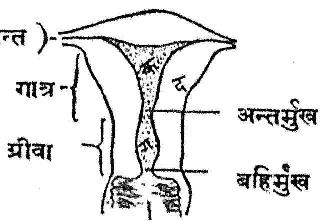
चित्र ३४६ गर्भाशय, डिम्बप्रनाली; डिम्ब ग्रन्थि



ज=जरायु या गर्भाशय ; झ=चौड़ा बन्धन यह बन्धन केवल एक ही ओर दर्शाया गया है ।

ड प=डिम्ब प्रनाली; ड ब=डिम्ब ग्रन्थि का बन्धन; ब=जरायु का गोल बन्धन ; ड=डिम्ब ग्रन्थि ; यह ग्रन्थि चौड़े बन्धन की पिछली तह में रहती है जैसी कि चित्र में दाहिनी ओर दर्शाई गयी है । १=डिम्ब प्रनाली के मुख की झालर । छ=छिद्र जिसके द्वारा डिम्ब डिम्बप्रनाली में पहुँचता है । म=जरायु का बहिर्मुख । य=योनि ।

चित्र ३४७
ऊर्ध्वांश



क=गात्र ; ग=ग्रीवा ; द=दीवार । योनि

अंश कहते हैं ; कभी कभी बजाय आगे को झुके रहने के वह पीछे को त्रिकास्थि की ओर झुक जाता है।

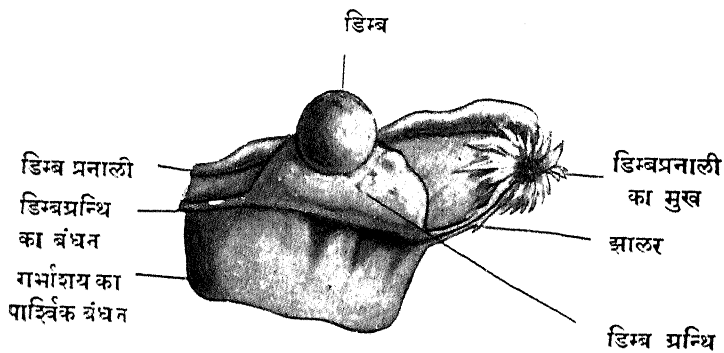
गर्भाशय भीतर से खोखला होता है (चित्र ३४७)। सामान्यतः उसके भीतर अधिक स्थान नहीं होता क्योंकि अगली और पिछली दीवारें क़रीब क़रीब एक दूसरे से मिली रहती हैं। गर्भस्थिति के पश्चात् उसकी समाई बढ़ने लगती है। गर्भस्थिति के पूर्व गर्भाशय छोटा होता है और वह वस्ति-गह्वर के भीतर रहता है। विटप संधि (भग संधि) के ऊपर उसको उदर की दीवार में से स्पर्श करना कठिन है। जब गर्भ-स्थिति हो जाती है तो वह धीरे धीरे बड़ा होता है और तीसरे मास में उसका ऊपर का भाग (ऊर्ध्वांश) भग संधि तक आ जाता है और उदर की दीवार में से टटोलकर स्पर्श किया जा सकता है।

गर्भाशय के ऊपर के भाग में दाहिनी और बाईं डिम्ब प्रना-लियों के मुख होते हैं (चित्र ३४७)। गर्भाशय की दीवारें बहुत मोटी होती हैं और अनैच्छिक मांस से बनती हैं। मांस के बाहर उदरक कला रहती है। गर्भाशय के भीतर श्लैष्मिक कला रहती है जिसमें बहुत सी लम्बी लम्बी नलाकार ग्रन्थियाँ होती हैं।

डिम्ब प्रनाली (चित्र ३४३, ३४६, ३५२)

डिम्ब ग्रन्थियों की तरह डिम्ब प्रनालियाँ भी दो होती हैं। एक दाहिनी दूसरी बाईं। यह नली गर्भाशय से आरंभ होकर डिम्ब ग्रन्थि तक जाती है। डिम्ब प्रनाली गर्भाशय के चौड़े पार्श्विक बन्धन के ऊपर के किनारे में बन्धन की दोनों तहों के बीच में

चित्र ३४८ परिपक्व डिम्ब डिम्बग्रन्थि के पृष्ठ पर आ पहुँचा है

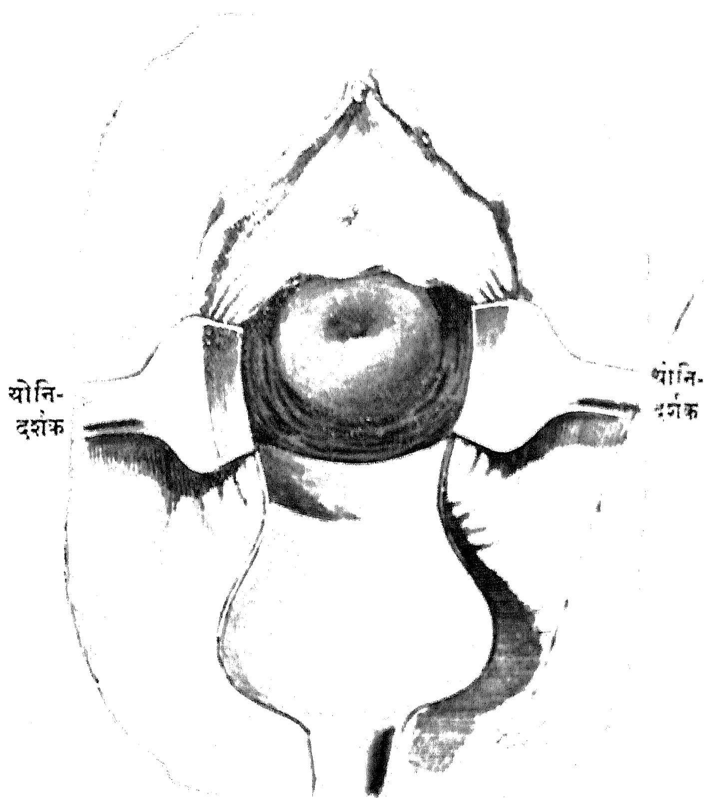


(From Lewis's Anatomy & Physiology for Nurses)

पृष्ठ ७८६ के सम्मुख

चित्र ३४८ अप्रजाता के जरायु का बहिर्मुख

भग नासा



(From Jellet's Manual of Midwifery)

योनि की दीवारें योनिदर्शकों द्वारा चौड़ाई गई हैं। गर्भाशय का बहिर्मुख छोटा और गोल दिखाई देता है।

पृष्ठ १८१ के सम्मुख

रहती है। डिम्ब प्रनाली की लम्बाई ४ इंच के लगभग होती है, उसकी मोटाई गर्भाशय के पास $\frac{१}{६}$ इंच और डिम्ब ग्रन्थि के पास $\frac{१}{३}$ इंच के लगभग होती है। नली भीतर से बहुत तंग होती है, गर्भाशय के पास नली का भीतरी व्यास $\frac{१}{२४}$ इंच और डिम्ब ग्रन्थि के पास $\frac{१}{१२}$ इंच के लगभग होता है।

डिम्ब प्रनाली का ग्रन्थि की ओर का सिरा फूला हुआ होता है और यहाँ छिद्र के चारों ओर एक झालर सी लगी रहती है (चित्र ३४६ में १)। डिम्ब प्रनाली डिम्बग्रन्थि से जुड़ी हुई नहीं होती। केवल उसकी झालर का कुछ भाग डिम्ब ग्रन्थि से मिला रहता है। जब डिम्बग्रन्थि से कोई डिम्ब निकलता है तब वह इस झालर के सहारे डिम्ब प्रनाली के छिद्र तक पहुँचता है।

डिम्ब प्रनाली की दीवार सौत्रिक तंतु और अनैच्छिक मांस से बनती है, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला लगी रहती है। श्लैष्मिक कला में लम्बाई के रुख सलवटें या झोल पड़े रहते हैं। कला के पृष्ठ की सेलों में अंकुर (सेलांकुर) होते हैं जिनकी गति गर्भाशय की ओर हुआ करती है, इस गति के कारण डिम्ब को गर्भाशय की ओर पहुँचने में सहायता मिलती है।

योनि (चित्र ३४३, ३५२, ३४६)

यह वह मार्ग है जिसमें से होकर मासिकस्राव बहा करता है, इसी में मैथुन के समय शिश्न प्रवेश करता है और इसी रास्ते से प्रसव काल में बच्चा गर्भाशय से बाहर आता है।

वास्तव में योनि एक नली है जिसका ऊपर का सिरा वस्तिगह्वर में रहता है और गर्भाशय को ग्रीवा के नीचे के भाग के चारों ओर लगा रहता है, गर्भाशय का बहिर्मुख इस नली के

भीतर रहता है (देखो चित्र ३५२, ३५३) । नली का नीचे का सिरा खुला हुआ होता है और उसका छिद्र भग में भगोष्ठों के बीच में मूत्रबहिर्द्वार से ½ इंच नीचे रहता है । अक्षतयोनि स्त्रियों में योनिद्वार का अधिक भाग योनिच्छद नामक झिल्ली द्वारा बन्द रहा करता है (देखो चित्र ३३९) । योनिद्वार से आरंभ होकर योनि ऊपर को और पीछे को त्रिक की ओर जाती है, गर्भाशय सामने की ओर झुका रहता है, इस कारण जहाँ योनि और गर्भाशय एक दूसरे से जुड़े रहते हैं वहाँ एक समकोण बनता है (देखो चित्र ३५३) । चूंकि गर्भाशय की ग्रीवा का कुछ भाग योनि के भीतर रहता है (देखो चित्र ३५३) इस कारण गर्भाशय के अगले ओष्ठ और योनि की अगली दीवार और पिछले ओष्ठ और पिछली दीवार के बीच में कुछ अन्तर रहता है, ये अन्तर योनि के अग्र और पाश्चात्य कोण कहलाते हैं (चित्र ३५३) । पाश्चात्य कोण अग्र कोण से अधिक गहरा होता है ।

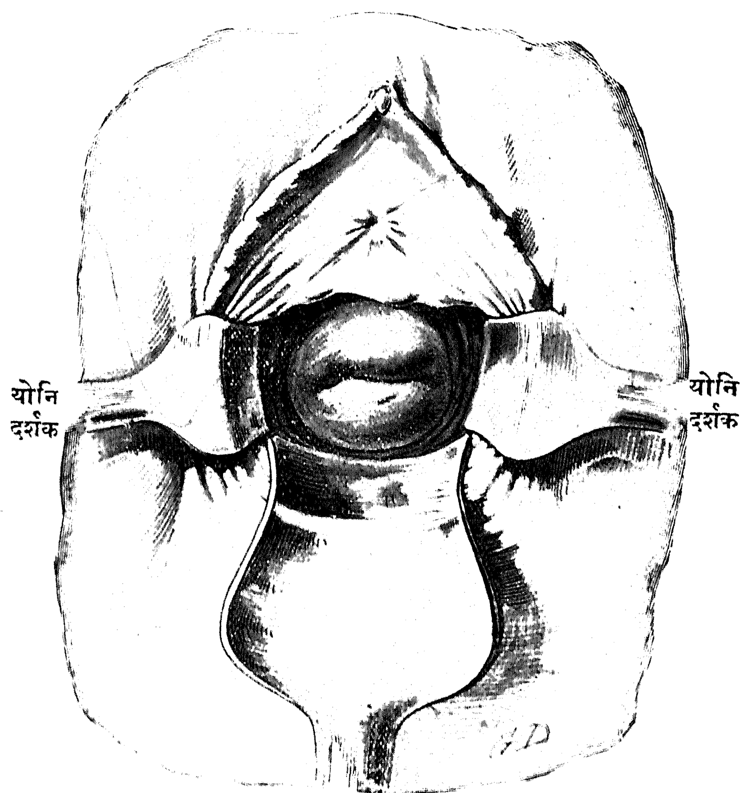
योनि की लम्बाई तीन चार इंच होती है, उसके सामने की दीवार पिछली दीवार से कुछ कम लम्बी होती है (चित्र ३५२, ३५३) । योनि की दीवारें सौत्रिक तंतु तथा अनैच्छिक मांस से बनती हैं, भीतरी पृष्ठ पर श्लैष्मिक कला रहती है ।

योनि की दीवारें एक दूसरे से मिली रहा करती हैं, इससे कोई चीज (कीड़ा, मकोड़ा इत्यादि) सहज में उसके भीतर नहीं पहुँच सकता । उसकी लम्बाई और चौड़ाई दबाव पड़ने पर अधिक हो सकती है । श्लैष्मिक कला का पृष्ठ सदा कुछ तर रहा करता है।

योनि की अगली दीवार से कुछ दूर तक मूत्राशय की दीवार मिली रहती है । द्वार के पास योनि कुछ तङ्ग होती है , बीच

चित्र ३५० प्रजाता के जरायु का बहिर्मुख

भगनासा



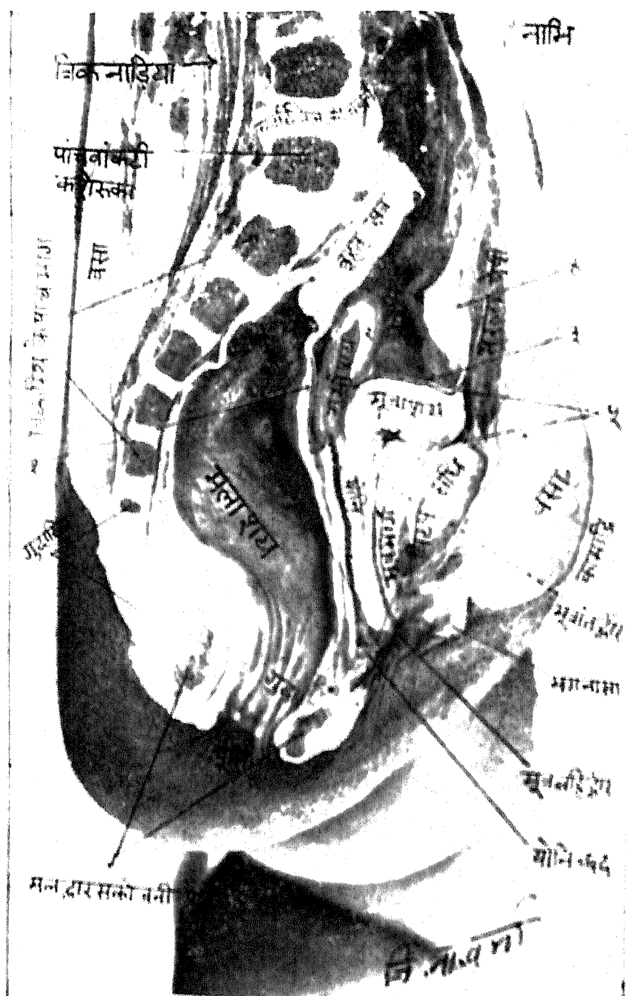
योनिदर्शक

(From Jellet's Manual of Midwifery)

योनि की दीवारें योनिदर्शकों द्वारा चौड़ाई गई हैं। गर्भाशय का बहिर्मुख एक अनुप्रस्थ दरार जैसा दिखाई देता है।

पृष्ठ ७८८ के सम्मुख

चित्र ३५१ एक वर्ष की कन्या का वस्तिगह्वर

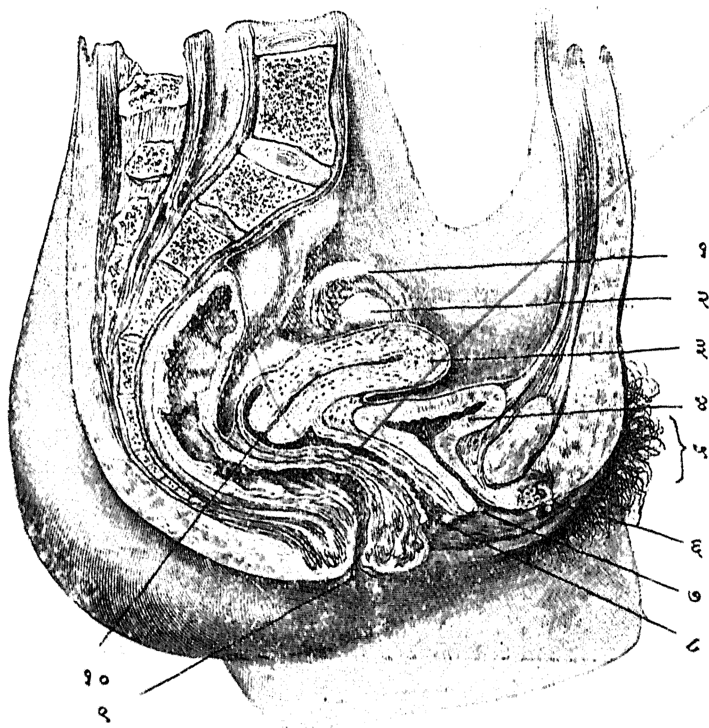


१, २, ३, ४ उदरक कला

५ मूत्राशय का उदरक कला रहित भाग। शिशुओं में मूत्राशय का कुछ भाग वस्तिगह्वर से ऊपर निकला रहता है।

पृष्ठ १८५ के सम्मुख

चित्र ३५२ नारी वस्तिगह्वर (लम्बाई के रुख़ कटा हुआ)



(From Lewis's Anatomy and Physiology for nurses)

१=डिम्ब प्रनाली ; २=डिम्बग्रन्थि ; ३=गर्भाशय ; ४=मूत्राशय ; ५=कामाद्रि ; ६=भगनासा ; ७=मूत्रबहिर्द्वार ; ८=योनिद्वार ; ९=मल-द्वार ; १०=गर्भाशय का बहिर्मुख ।

में चौड़ी होती है, गर्भाशय के पास जाकर फिर तङ्ग हो जाती है।

योनिद्वार पर योनि संकोचनी पेशी रहती है (चित्र ३४०)। योनि की दीवार में बहुत से शिरा जाल होते हैं जो मैथुन के समय रक्त से खूब भर जाते हैं, इसकी वजह से योनि की दीवार पहिले की अपेक्षा अधिक मोटी हो जाती है। योनि द्वार के पिछले भाग में दोनों ओर योनि संकोचनी पेशी से ढकी हुई एक ग्रन्थि रहती है जिसको भग ग्रन्थि कहते हैं (देखो चित्र ३४१)

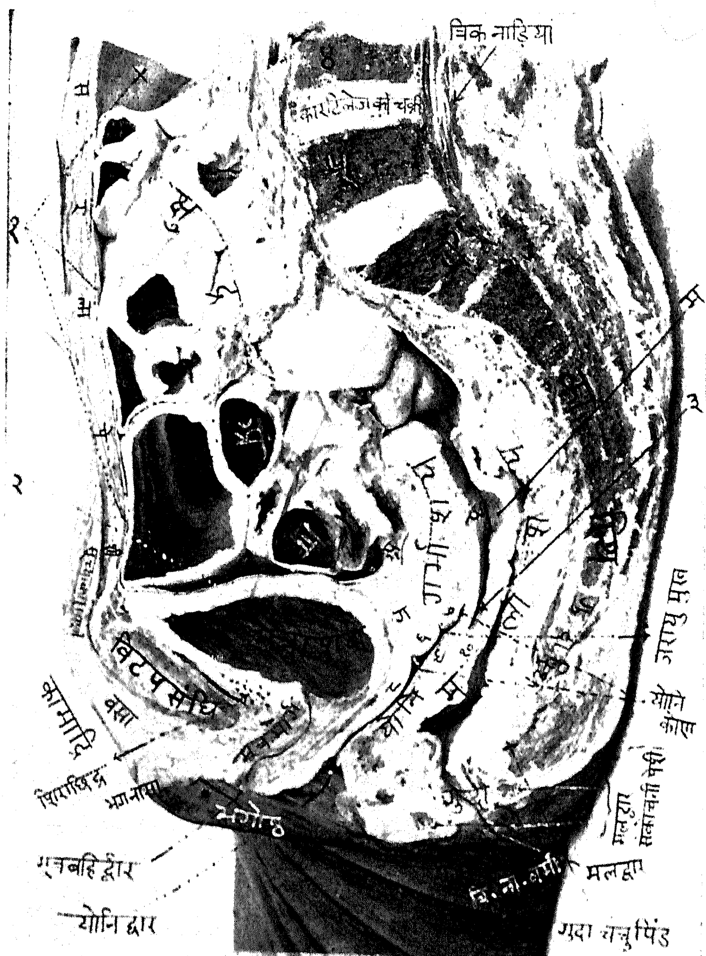
दुग्ध ग्रन्थि (चित्र ३५४)

स्त्री के दो स्तन* या दुग्ध ग्रन्थियाँ होती हैं। ग्रन्थि कुछ कुछ अर्धगोलाकार होती है और वसा और त्वचा से ढकी रहती है; उसके पीछे वसा और मांस पेशियाँ रहती हैं। ग्रन्थि दूसरी पर्शुका से छठी पर्शुका तक और उरोस्थि के किनारे से कक्षतल-मध्य रेखा † तक फैली रहती है। ग्रन्थि के मध्य में एक शंकाकार या बेलनाकार उभार होता है जिसको चूचुक या स्तन वृन्त कहते हैं। चूचुक के शिखर में दुग्ध स्रोतों के १२-२० छिद्र होते हैं। चूचुक में कुछ मांस तंतु होता है; मलने से इस मांस के संकोच के कारण यह कुछ खड़ा (दृढ़) हो जाया करता है। चूचुक के चारों ओर एक गहरे रङ्ग का घेरा होता है जिसको स्तनमंडल कहते हैं।

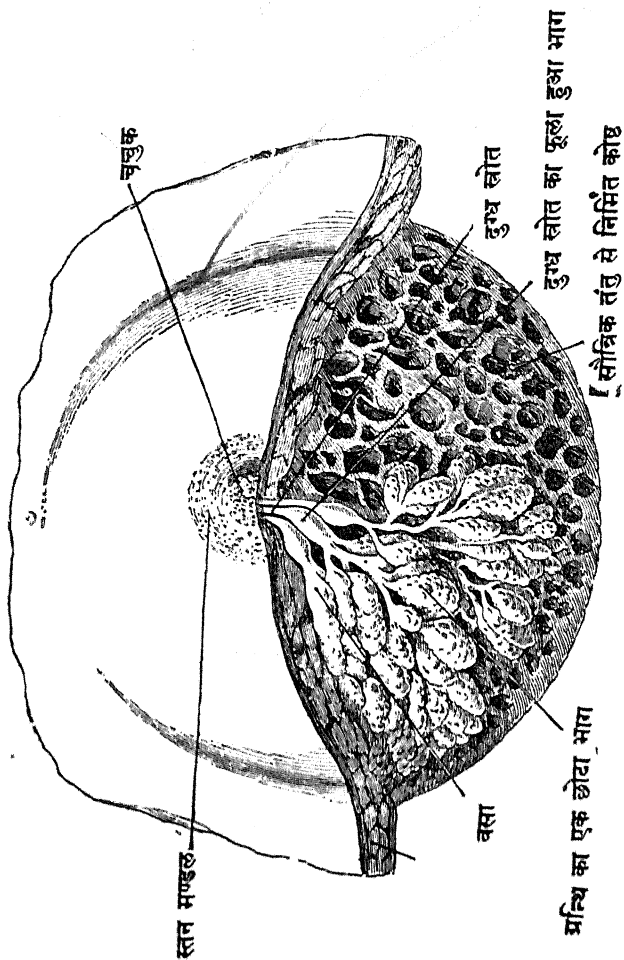
* पुरुष में भी स्तन होते हैं परन्तु वे बहुत छोटे होते हैं और उनमें सामान्यतः दुग्ध नहीं बनता है।

† कक्षतल के मध्य से उरस्थल के पार्श्व पर खींची गई लम्ब रेखा।

चित्र ३५३ जवान स्त्री का वस्तिगह्वर (बीच में से कटा हुआ)



१, २, अ, प, ३=उदरक कला उदर की दीवार से मूत्राशय के ऊपर होती हुई गर्भाशय के अगले पृष्ठ पर आती है और फिर पिछले पृष्ठ पर होती हुई मलाशय के अगले पृष्ठ पर जाती है। ६, ७=बहिर्मुख के ओष्ठ; ८, ९, योनि की दीवारें। १०=मलाशय की दीवार। पृष्ठ ७९० के सम्मुख



चित्र ३५४ दुग्ध ग्रन्थि की स्थूल रचना (Luschka from Gray's Anatomy)

कुमारियों में स्तन छोटे होते हैं ; ज्यों ज्यों कन्या जवान होती है और उसकी जननेन्द्रियाँ बढ़ती हैं त्यों त्यों ये ग्रन्थियाँ भी बढ़ती हैं। जब स्त्री गर्भवती होती है और जब वह अपने स्तनों से शिशु को दुग्ध पिलाती है तब ये ग्रन्थियाँ बड़ी हो जाती हैं।

कुमारी (जिस स्त्री ने कभी गर्भ न धारण किया हो) के स्तनमंडल का रङ्ग हलका और कुछ गुलाबी मायल होता है ; गर्भ के दूसरे मास में स्तनमंडल बड़ा हो जाता है और उसका रङ्ग गहरा हो जाता है ; अंत में वह कृष्णवर्ण हो जाता है। जब स्त्री शिशु को दुग्ध पिलाना बंद करती है तब स्तन मंडल का रंग फिर हलका पड़ने लगता है परन्तु उतना हलका कभी नहीं होता जैसा कि गर्भवती होने के पूर्व था।

ग्रन्थि की स्थूल रचना चित्र ३'५४ में दर्शाई गई है।

अध्याय ३१

आर्तव*

जब कन्या जवान होने लगती है तब उसकी योनि से प्रति मास एक लाल तरल बहने लगता है; इस को आर्तव या ऋतु कहते हैं। आर्तव निकलने को कन्या का रजस्वला या ऋतुमती होना कहते हैं। आर्तव का पहिली बार निकलना रजोदर्शन कहलाता है। रजोदर्शन इस बात का चिह्न है कि

*सामान्यतः आर्तव, रज, ऋतु और शोणित ये चारों शब्द एक दूसरे के तुल्यार्थ माने जाते हैं। प्राचीन शास्त्रकारों ने रज और वीर्य या शुक्र और शोणित के संयोग से संतानोत्पत्ति भी मानी है। अब हम जानते हैं कि संतानोत्पत्ति वास्तव में शुक्रकीट और डिम्ब के परस्पर संयोग से होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि उपरोक्त बात को जानते हुए (कि शुक्र-कीट और डिम्ब के संयोग से उत्पत्ति होती है) आज कल रज और शोणित शब्दों के क्या अर्थ मानें? 'रज' और 'शोणित' शब्दों को आर्तव के तुल्यार्थ समझें या 'डिम्ब' के तुल्यार्थ? हमारी सम्मति में तो इन शब्दों को 'आर्तव के तुल्यार्थ मानने की अपेक्षा 'डिम्ब' के तुल्यार्थ मानना ज़्यादा अच्छा मालूम होता है। सबसे अच्छा तो शायद यह हो कि नवीन वैद्यक ग्रन्थों में मासिक स्राव के लिये केवल 'आर्तव' और 'ऋतु' शब्दों का प्रयोग हो; 'डिम्ब' और 'रज' दोनों एक ही चीज़ मानी जावें और 'शोणित' शब्द का बिलकुल प्रयोग न हो; इससे संदिग्धार्थता के होने की संभावना न रहेगी।

कन्या अब जवान होने लगी है। रजोदर्शन के साथ साथ यौवन के और भी चिह्न दिखाई देने लगते हैं जैसे स्तनों का बढ़ना, कामाद्रि पर बालों का उगना। कन्या की मानसिक दशा में भी विचित्र परिवर्तन होने लगते हैं।

रजोदर्शन किस आयु में होता है

भारतवर्ष में रजोदर्शन १२, १४ वर्ष की आयु में होता है; कभी कभी १२ वर्ष के पूर्व भी हो जाता है। और कारणों को छोड़कर रजोदर्शन इन बातों पर निर्भर है :—

१—जल-वायु—शीतप्रधान देशों में (जैसे यूरोप) ग्रीष्म प्रधान देशों की अपेक्षा रजोदर्शन देर में होता है (१४-१५ वर्ष की आयु में)।

२—सभ्यता, सामाजिक अवस्था, रहने-सहने का ढंग, शिक्षा प्रणाली और परिस्थिति—जिन जातियों में लड़कियाँ बचपन से ही विवाहादि की बातें सुनती रहती हैं उनमें रजोदर्शन शीघ्र होता है। चञ्चल मिज़ाज लड़कियों को भी रजोदर्शन शीघ्र होता है। अमीर घरों की लड़कियों को जिन्हें शारीरिक परिश्रम तो कम करना पड़ता है परन्तु पौष्टिक और उत्तेजक भोजन खूब मिलता है ग़रीब घरों की लड़कियों की अपेक्षा रजोदर्शन जल्दी हुआ करता है। निर्बल और अस्वस्थ लड़कियों को रजोदर्शन देर में होता है।

१२-१४ वर्ष की आयु से ४५-५० वर्ष की आयु तक स्त्री प्रति मास रजस्वला होती रहती है। जब गर्भस्थिति हो जाती है तब आर्तव बंद हो जाता है। और जब तक वह गर्भवती रहती है तब तक बंद रहता है। सामान्यतः वे स्त्रियाँ जो अपने

शिशु को अपने स्तनों से दुग्ध पिलाती हैं प्रसव के पश्चात् भी कई महीने तक रजस्वला नहीं हुआ करतीं।

४५ और ४९ वर्षों के बीच में आर्तव निकलना स्वाभाविक तौर से बंद हो जाता है; इस को रजोनिवृत्ति कहते हैं। रजोदर्शन से रजोनिवृत्ति तक उपरोक्त कालों को छोड़कर (जब आर्तव बंद हो जाता है) स्त्री रजस्वला होती रहती है; सामान्यतः वह केवल इसी काल में गर्भधारण करने के योग्य होती है। असामान्य दशा में गर्भ रजोदर्शन के पूर्व या रजोनिवृत्ति के पश्चात् भी रह जाता है।

आर्तव कितने कितने दिन पीछे निकलता है

दो आर्तवों के बीच में बहुधा २८ दिन का अंतर रहा करता है। किसी किसी स्त्री को एक या दो दिन कम या अधिक लगते हैं। स्राव ३-४ दिन रहता है; कम से कम एक दिन और अधिक से अधिक ६ दिन लगा करते हैं। ६ दिन से अधिक स्राव का ठहरना बहुधा रोग का साक्षी है। बहुत थोड़े थोड़े दिनों के पीछे स्राव का होना (जैसे एक मास में दो बार होना) भी बुरा है।

आर्तव क्या चीज़ है

आर्तव रक्तमय स्राव होता है जो गर्भाशय से निकलकर आता है। रक्त में श्लेष्म मिली रहती है जिसके कारण वह शीघ्र जमने नहीं पाता। आर्तव की प्रतिक्रिया क्षारीय होती है और उसका रंग स्याही मायल लाल। श्लेष्म के अतिरिक्त उसमें गर्भाशय तथा योनि के पृष्ठों की गिरी हुई सेलें भी

होती हैं। उसमें खटिक यौगिक साधारण रक्त की अपेक्षा कुछ अधिक परिमाण में होते हैं।

आर्तव का परिमाण सब स्त्रियों में एक सा नहीं होता। उस का परिमाण एक छटाँक से तीन या चार छटाँक तक कहा जा सकता है।

आर्तव कैसे निकलता है

आर्तव निकलने से पहिले गर्भाशय की श्लैष्मिक कला अधिक रक्तमय हो जाती है। अधिक रक्त के कारण कला पहिले से मोटी हो जाती है। अब रक्तकेशिकाओं में से रक्त निकलकर कला में जगह जगह इकट्ठा हो जाता है। जगह जगह रक्त के इकट्ठे होने से श्लैष्मिक कला मुलायम और कुछ पिलपिली सी हो जाती है। फिर रक्त श्लैष्मिक कला में से होकर बाहर निकलता है। कहीं कहीं पृष्ठ की सेलें रक्त के दबाव से गिर जाती हैं। जब रक्त निकल जाता है तो श्लैष्मिक कला सिकुड़ कर पूर्व दशा को प्राप्त होती है। गिरी हुई सेलों की जगह नई सेलें बन जाती हैं।

आर्तव निकलने के दिनों में शेष जननेन्द्रियों में भी कुछ परिवर्तन हुआ करता है। डिम्ब ग्रन्थि डिम्ब प्रनालियाँ और योनि अधिक रक्तमय हो जाते हैं और उन का रंग गहरा हो जाता है। गर्भाशय का परिमाण भी कुछ बढ़ जाया करता है।

आर्तव निकलने के दो-चार दिन पहिले से जब तक वह निकलता रहता है उस समय तक बहुत सी स्त्रियों की मानसिक और शारीरिक अवस्था में भी कुछ परिवर्तन हुआ करता है। आलस्य और अरुचि तो साधारण बातें हैं; कमर

और कूल्हों और पेडू में कुछ भारीपन मालूम हुआ करता है; इन दिनों में कुछ स्त्रियों का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। कुछ स्त्रियों को विशेषकर उन को जो चंचल मिज़ाज होती हैं और जिन को अजीर्ण और क़ब्ज़ रहा करता है या जो अमीरी के कारण किसी प्रकार का शारीरिक व्यायाम न करने के कारण स्थूलशरीर हो जाती हैं या जिन को जोशीली पुस्तकों और उपन्यासों के पढ़ने का अधिक शौक़ होता है रजस्वला होते समय पेडू, कमर और कूल्हों में बड़ी पीड़ा होती है और उनके हाथ पैर टूटा करते हैं।

मासिक स्राव क्यों होता है

इस प्रश्न का ठीक उत्तर न प्राचीन शास्त्रकार दे पाये और न अभी तक नवीन वैज्ञानिक दे सके। आज कल इस विषय में कई मत प्रचलित हैं। ऐसा मालूम होता है कि मासिक स्राव के शायद एक से अधिक प्रयोजन होंगे।

मासिक स्राव का डिम्ब के परिपक्व होने से कुछ सम्बन्ध अवश्य मालूम होता है क्योंकि मासिक स्राव अधिकतर तब ही होता है कि जब परिपक्व डिम्ब डिम्बप्रनाली में आता है या आनेवाला होता है। रजोदर्शन से पहिले बहुधा डिम्ब परिपक्व नहीं होते और रजोनिवृत्ति के पश्चात् डिम्ब ग्रन्थि सिकुड़कर छोटी होने लगती है और डिम्ब का निकलना बंद हो जाता है; इन दोनों कालों में आर्तव बंद रहता है। मासिक स्राव का एक प्रयोजन यह भी मालूम होता है कि उस से गर्भाशय की श्लैष्मिक कला इस योग्य बन जावे कि उस में गर्भ चिपक सके।

परीक्षाओं और निरीक्षणों से यह बात सिद्ध हो गई है कि मासिक स्राव के पश्चात् का जो पक्ष होता है उस में स्त्री के गर्भवती होने की उस मास के शेष दिनों की अपेक्षा अधिक संभावना होती है ; ज्यों ज्यों दिन गुज़रते जाते हैं और नये मासिक स्राव का काल निकट आता जाता है त्यों त्यों गर्भस्थिति की संभावना कम होती जाती है। इस से यह स्पष्ट है कि गर्भाधान संस्कार के लिये मासिक स्राव बंद होने के पश्चात् के दस-पंद्रह दिन उत्तम हैं। जब स्राव हो रहा हो उन दिनों में मैथुन करना न केवल एक मलिन क्रिया है प्रत्युत उस से दोनों व्यक्तियों के स्वास्थ्य को हानि भी पहुँचती है।

प्रति मास एक डिम्ब डिम्बप्रनाली में पहुँचा करता है; यदि ठीक समय पर उस का शुक्रकीट से संयोग हो जावे तो गर्भस्थिति हो जाती है। यदि गर्भस्थिति न हो तो डिम्ब कुछ समय पश्चात् जीवित नहीं रहता।

गर्भस्थिति के पश्चात् स्त्री रजस्वला नहीं होती, गर्भ धीरे धीरे बढ़ता है और जितने दिनों के अंतर से वह स्त्री रजस्वला होती है उस से दस-गुने दिनों में वह बच्चा जनती है। बहुत सी स्त्रियों का आर्तवकालांतर २८ दिन का होता है इसलिये बहुत से बालक २८×१०=२८० दिन में जने जाते हैं। यदि कालांतर २७ या २९ दिन का हो तो बालक २७० या २९० दिन में जन्म लेंगे।

मैथुन

इस क्रिया द्वारा पुरुष का शुक्र स्त्री की योनि में पहुँचता

है। शिश्न मुंड और भगनासामुंड में सांवेदनिक कण होते हैं। जब यथासमय और विधिपूर्वक मैथुन होता है तो शिश्नमुंड योनि की दीवारों से रगड़ खाता है और भगनासा शिश्न के आरंभिक भाग से टकराता है (विटप संधि के पास के भाग से जब समस्त शिश्न योनि में प्रवेश कर जावे)। इस रगड़ का असर नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क को पहुँचता है। इस रगड़ से स्त्री और पुरुष दोनों को एक विशेष प्रकार का आनंद प्राप्त होता है। योनि की दीवारें एक श्लेष्ममय रस से तर रहती हैं, यह रस कुछ तो उन दो ग्रन्थियों में बनता है जो योनिद्वार के पास योनि की दीवारों में होती हैं, कुछ यह ऊपर से गर्भाशय की ग्रीवा की श्लैष्मिक कला से आता है। कभी कभी श्लेष्मा अधिक बनती है, साधारण लोगों का मिथ्या विचार है कि यह चीज़ "स्त्री का वीर्य" है, सत्य तो यह है कि इस वस्तु में संतानोत्पादक शक्ति नहीं होती, इसका काम केवल योनि की दीवारों को तर रखना है जिससे शिश्न की रगड़ से योनि की श्लैष्मिक कला को कोई हानि न पहुँचे।

शिश्नमुंड गर्भाशय के मुख के समीप पहुँचता है या उससे मिल जाता है, थोड़ी देर पीछे शुक्र बड़े वेग के साथ मूत्रबहिर्द्वार से बाहर निकलता है और गर्भाशय के मुख के पास ही योनि में गिरता है, कभी कभी गर्भाशय इस शुक्र को उसी समय भीतर चूस लेता है। शुक्र निकलने पर मैथुन क्रिया का अंत होता है, रक्त के लौट जाने के कारण शिश्न शिथिल हो जाता है। जब मैथुन ठीक ठीक होता है तो दोनों व्यक्तियों को एक विशेष प्रकार की संतुष्टता और तृप्ति प्राप्त होती है।

मैथुन का अभिप्राय केवल संतानोत्पत्ति है और संतानो-

त्पत्ति स्वजातीय रक्षा का मुख्य साधन है। जो काम स्वरक्षा या स्वजातीय रक्षा के लिये परमवाश्यक हैं उनके साथ एक विशेष प्रकार का आनन्द मिला रहता है, इस आनन्द को प्राप्त करने के लिये हम उन कामों को अवश्य करते हैं और इससे सृष्टि का काम चलता रहता है। जितनी आवश्यक कोई क्रिया होती है उतनी ही प्रबल उस काम के करने की इच्छा प्राणियों में होती है। स्वजातीय रक्षा एक परमावश्यक कार्य है इस कारण मैथुन की इच्छा दोनों व्यक्तियों में अत्यन्त प्रबल रक्खी गई है, वास्तव में कभी कभी वह इतनी प्रबल होती है कि व्यक्ति अपने कर्तव्य को भूल जाता है और बुरे से बुरे काम करने के लिये तय्यार हो जाता है और स्वरक्षा के नियमों का भी उल्लंघन करता है।

अधिक मैथुन से दोनों व्यक्तियों का स्वास्थ्य बिगड़ता है, उसको आनन्द प्राप्ति का साधन समझना एक बड़ी भूल है।

गर्भाधान

योनि और गर्भाशय में शुक्राणु कई दिन तक जीवित रह सकते हैं। गर्भाशय से ये धीरे धीरे डिम्ब प्रनाली में पहुँचते हैं। शुक्राणु को डिम्ब से विशेष अनुकर्षण होता है, इस कारण जिस डिम्ब प्रनाली में डिम्ब होता है उसी में शुक्राणु घुसते हैं। केवल प्रबल शुक्राणु ही डिम्ब तक पहुँच पाते हैं, ये डिम्ब से चिपट जाते हैं और डिम्ब के चारों ओर लगी हुई सेलों में से होकर उसके भीतर घुसने की कोशिश करते हैं [चित्र ३५५ में (१)]। गर्भाधान के लिये केवल एक ही शुक्राणु की आवश्यकता समझी जाती है, इन बहुत से शुक्राणुओं में से जो सब से प्रबल होता है वही डिम्ब के भीतर घुस पाता है। शुक्राणु और डिम्ब के

संयोग को गर्भाधान कहते हैं गर्भाधान से जो चीज़ बनती है वही गर्भ है।

हर एक मैथुन क्रिया में शुक्र गर्भाशय के भीतर नहीं पहुँचता, वह बहुधा योनि से बाहर निकल जाता है। जब शुक्र भीतर रुके तब ही गर्भाधान हो सकता है। चूंकि गर्भाधान के लिये केवल एक ही शुक्राणु की आवश्यकता है इसलिये शुक्र का ज़रा सा भाग भी भीतर रह जावे तब भी गर्भस्थिति हो जाया करती है। गर्भाशय, योनि और डिम्ब प्रनाली में शुक्राणु कई दिन तक जीवित रह सकते हैं इसलिये यह आवश्यक नहीं है कि जिस दिन मैथुन हो उसी दिन गर्भाधान भी हो, अतः गर्भाधान मैथुन से कई दिन पीछे भी हो सकता है।

शुक्राणु अम्ल के प्रभाव से मर जाते हैं, जब रोग के कारण स्त्री की योनि में अम्ल रस रहता है तब गर्भस्थिति नहीं हो सकती। आर्तव बन्द होने के पश्चात् के दस पंद्रह दिनों में गर्भाधान के होने की और दिनों की अपेक्षा अधिक संभावना रहती है। जब दोनों व्यक्ति स्वस्थ और ठीक आयुवाले हों और गर्भाधान के इच्छुक हों, तब गर्भाधान शीघ्र हो जाता है।

सामान्यतः एक शुक्राणु का एक डिम्ब से संयोग होता है और एक गर्भ बनता है, स्त्री एक दफे में एक ही बच्चा जनती है। कभी कभी एक ही साथ या कुछ दिनों के अंतर से दो शुक्राणुओं का दो डिम्बों से संयोग हो जाता है, तब दो गर्भ उत्पन्न होते हैं और स्त्री एक साथ या थोड़ी देर या कुछ दिनों के अंतर से दो बच्चे जनती है। कभी कभी दो से अधिक बच्चे भी पैदा होते हैं। मनुष्य में जब एक से अधिक बच्चे एक साथ पैदा होते हैं तो वे या तो शीघ्र मर जाते हैं या निर्बल रहते हैं।

कभी कभी दो शुक्राणुओं का एक डिम्ब से संयोग हो जाता है। ऐसे गर्भ से जो बच्चा उत्पन्न होता है उसके दो शरीर होते हैं जो आपस में जुड़े रहते हैं। ये अद्भुत बालक बहुधा अधिक काल तक नहीं जिया करते।

अध्याय ३२

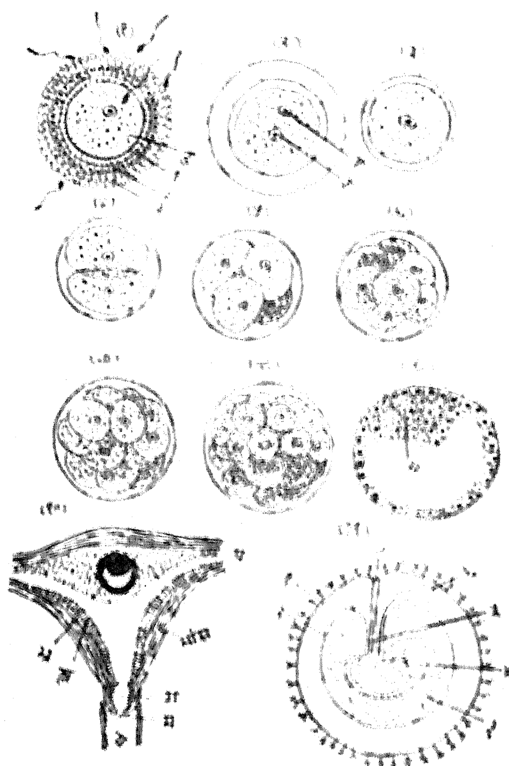
गर्भविज्ञान

गर्भाधान अर्थात् शुक्राणु और डिम्ब का संयोग अधिकतर डिम्ब प्रनाली में हुआ करता है, कभी कभी गर्भाशय में भी हो जाता है। शुक्राणु की मींगी (शिर) डिम्ब की मींगी से मिल जाती है और उसका जीवोज (शिर को छोड़कर शेष भाग) डिम्ब के जीवोज में मिल जाता है, दोनों के मेल से बनी हुई सेल को गर्भ-सेल या भ्रूण-सेल कहते हैं [देखो चित्र ३५५ में (१) (२) (३)]।

डिम्ब प्रनाली से चलकर भ्रूण-सेल शीघ्र ही गर्भाशय में आ जाती है और वहाँ श्लैष्मिक कला से चिपक जाती है। डिम्ब वेष्ट की सेलें [चित्र ३५५ के (१) में १, २, ३] गर्भाधान के पश्चात् भी कुछ दिनों तक बनी रहती हैं।

अब भ्रूण-सेल बीच में से फट जाती है और एक सेल से दो सेलें बन जाती हैं (चित्र ३५५ में ४), फिर दो सेलों से चार सेलें बन जाती हैं (५), चार से आठ (६) और आठ से सोलह और सोलह से बत्तीस (७, ८)। फटने का यह सिल-सिला जारी रहता है जिसके कारण एक छोटा सा गोल सेल-समूह बन जाता है (८) इस सेल-समूह को कलल कहते हैं। जो सेलें कलल के बाहर के भाग में हैं वे उन सेलों की अपेक्षा जो उसके भीतरी भाग में हैं कुछ छोटी होती हैं। बाहर की सेलें भीतर की सेलों के चारों ओर एक प्रकार का वेष्ट बनाती हैं।

चित्र ३'५'१ भ्रूण का वर्द्धन



(१) गर्भाधान ; ड=डिम्ब; १, २, ३=डिम्बवेष्ट । (२) श=शुक्राणु की मींगी ; ड=डिम्ब की मींगी । (३) एक सेल का गर्भ । (४) दो सेलों का गर्भ (५) चार सेलों का गर्भ । (६) आठ सेलों का गर्भ । (७) सोलह सेलों का गर्भ । (८) कलल । (९) बुद्बुद ; स=सेल-समूह । (१०) भ्र=भ्रूण ; प=डिम्ब प्रनाली; श्लैष्मिक कला; ग=जरायु

ग्रीवा; म=जरायु का बहिर्मुख; य=योनि । (११) १=अंकुरविशिष्टआवरण; २=अंतरावरण; ३=गर्भोदक; ४=भ्रूण; ५=नाल; ६ पोषक पदार्थ की थैली ।

फिर इस कलल के भीतर एक खोखला स्थान बन जाता है; धीरे धीरे इस स्थान में कुछ तरल इकट्ठा होने लगता है जिसके दबाव से बाहर की सेलें भीतर के सेल समूह से परे हट जाती हैं (चित्र ३५५ में ९; स=सेलसमूह) इस अवस्था और आकार का गर्भ बुद्बुद् कहलाता है ।

एक सेल से इतनी सेलें बन गईं । प्रश्न उठता है कि इनके बनने के लिये सामान कहाँ से आया ? इसका उत्तर यह है कि गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में एक गढ़ा बन जाता है जिसमें यह भ्रूण चिपक जाता है; कला में जो रक्त और लसीका रहता है उसी से भ्रूण की सेलों के बढ़ने के लिये सामान मिलते हैं ।

बुद्बुद् के भीतर जो सेल समूह है उससे गर्भ का शरीर बनता है और उसको ढाँकनेवाली झिल्लियों का भी कुछ भाग बनता है; बाहर की जो सेलें हैं वे गर्भ के बनाने में कोई सहायता नहीं देतीं, उनसे केवल उसको ढाँकनेवाली झिल्लियाँ ही बनती हैं ।

गर्भाशय की श्लैष्मिक कला में परिवर्तन

गर्भ धारण करने के पश्चात् यह कला मोटी होने लगती है; उसकी नलाकार ग्रन्थियाँ अधिक लम्बी हो जाती हैं । श्लैष्मिक कला भ्रूण को चारों ओर से ढाँक लेती है (देखो चित्र ३५५ में १०); यह समझना चाहिये कि भ्रूण के चारों ओर श्लैष्मिक कला का एक वेष्ट बन जाता है । अब गर्भाशय की कला गर्भ कला कहलाती है । जब गर्भ गर्भाशय से

बाहर निकलता है तथा इस कला का अधिक भाग उखड़कर बाहर निकल जाता है ; इस कारण इस कला को पतनशील गर्भ कला भी कहते हैं। इस उखड़ी हुई कला के स्थान में फिर नई कला बन जाया करती है।

धीरे धीरे भ्रूण बड़ा होता है। उसके ऊपर सेलों तथा सौत्रिक तंतु से निर्मित दो आवरण बन जाते हैं। एक आवरण बाहर होता है और पतनशील गर्भ कला से मिला रहता है ; इसको भ्रूण बाह्यावरण (चित्र ३५५ के ११ में १) कहते हैं। दूसरा आवरण इसके भीतर होता है ; इसको भ्रूण अन्तरावरण (चित्र ३५५ के ११ में २ कहते हैं)।

बाह्यावरण धीरे धीरे बढ़कर मोटा हो जाता है और उसके बाह्य पृष्ठ पर बहुत से छोटे छोटे बाल जैसे अंकुर निकल आते हैं (चित्र ३५५ में ११ ; चित्र ३५६)। इन अंकुरों द्वारा भ्रूण के लिये गर्भाशय के लसीका से पोषक पदार्थों का आचूषण होता है।

चित्र ३५६



(From Haeckel's Evolution of Man)

२०—२२ दिन का गर्भ। अं बाह्यावरण के अंकुर। भ्रूण इस थैली के भीतर ऊपर और दाहिनी ओर को है (वास्तविक परिमाण)

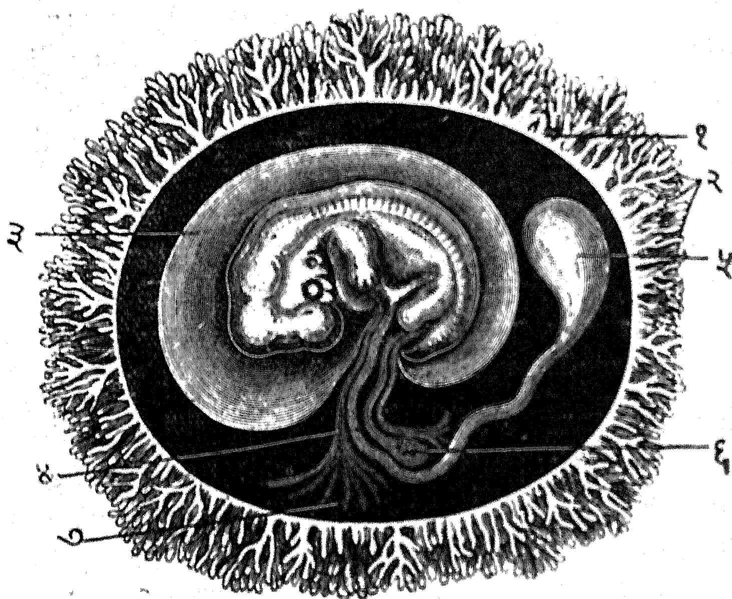
ज्यों ज्यों भ्रूण बड़ा होता है वह गर्भाशय के भीतर स्थान घेरता है। चित्र ३५५ (१०) से विदित है कि भ्रूण अभी तक गर्भाशय की एक ही दीवार से लगा हुआ है और शेष दीवारों से बचा हुआ है ; जिस स्थान पर भ्रूण लगा रहता है वहाँ बाह्यावरण के अंकुर अधिक और घने बनते हैं ; शेष स्थानों में ये छोटे और कम होते हैं। दूसरे मास के पश्चात् उस स्थान को छोड़कर जहाँ भ्रूण दीवार से लगा हुआ है शेष स्थानों में अंकुर बनने बन्द हो जाते हैं और जो अंकुर बन चुके थे वे सिकुड़कर छोटे होने लगते हैं और अन्त में जाते रहते हैं और बाह्यावरण अंकुरहीन हो जाता है। परन्तु जहाँ भ्रूण लगा हुआ है वहाँ के अंकुरों की संख्या बढ़ जाती है और वे अधिक लम्बे और बड़े हो जाते हैं। गर्भ कला के इस भाग में छोटे छोटे गढ़े या आशय बन जाते हैं जिनके भीतर रक्त भरा रहता है। इन रक्तपूर्ण गढ़ों में बाह्यावरण के अंकुर डूबे रहते हैं।

चौथे पाँचवें सप्ताह में भ्रूण और उसके अन्तरावरण के बीच में कुछ द्रव इकट्ठा होने लगता है, इसको गर्भोदक कहते हैं (चित्र ३५५, ११ में ३) गर्भोदक के दबाव से अन्तरावरण बाह्यावरण से जा मिलता है और उससे खूब चिपट जाता है। ६–७ मास तक गर्भोदक की मात्रा धीरे धीरे बढ़ती रहती है। नौवें मास में कोई सेर सवा सेर गर्भोदक इकट्ठा हो जाता है।

पहले गर्भकला का वह भाग जो भ्रूण के ऊपर है शेष गर्भकला से अलग रहता है ; इसलिये गर्भाशय में गर्भ और उसकी दीवारों के बीच में कुछ अन्तर रहता है जैसा कि चित्र ३५५ में १० से विदित होता है। भ्रूण के बढ़ने से उसके ऊपर की गर्भकला शेष गर्भकला के समीप पहुँचती जाती है और

तीसरे मास में ये दोनों एक दूसरे से मिल जाती हैं; अब भ्रूण और गर्भाशय की दीवारों के बीच में कोई स्थान शेष नहीं रहता (चित्र ३५८)। गर्भोदक के दबाव से गर्भकला पतली हो जाती है और उसकी ग्रन्थियाँ जाती रहती हैं। गर्भाशय का मुख श्लेष्म

चित्र ३५७ छः सप्ताह का गर्भ

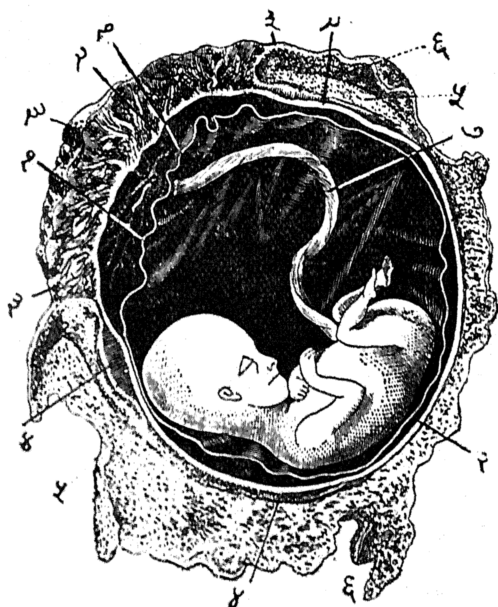


(Haeckel's Evolution of Man)

१=भ्रूणबाह्यावरण; २=अंकुर; ३=अंतरावरण; ४=नाल ; ५=पोषक पदार्थ की थैली; ६=नाभिपुट ; ७=कमल के बनने का स्थान।

के इकट्ठे होने से बन्द हो जाता है और बाहर से उसमें कोई चीज़ नहीं जा सकती।

चित्र ३५८ तीन मास का गर्भ (वास्तविक परिमाण)



(Haeckel's Evolution of Man)

१=भ्रूणांतरावरण; २=भ्रूण बाह्यावरण, जहाँ कमल बना है वहाँ यह आवरण अंकुरविशिष्ट है; (३) शेष भाग अंकुरहीन है।

३=कमल, ४=यहाँ कहीं कहीं अंकुरों के शेष भाग अभी मौजूद हैं।

५=गर्भकला का वह भाग जो भ्रूण के ऊपर है। ६=गर्भकला का वह भाग जो गर्भाशय की दीवार से लगा है। गर्भकला के दोनों भाग (५ और ६) अब एक दूसरे से मिल गये हैं और गर्भाशय में अब कोई स्थान शेष नहीं है। ७=नाभि नाल।

नाल

भ्रूण गर्भाशय की दीवार से एक रज्जु द्वारा लटका रहता है ; इस रज्जु को नाल या नाभिनाल कहते हैं । नाल एक ओर भ्रूण की नाभि से लगा रहता है और दूसरी ओर गर्भाशय से (कमल से) ; देखो चित्र ३'५७ में ७ ; नाल कई नलियों के पास पास रहने से बनता है (चित्र ३'५६); उसके मुख्य अवयव दो धमनियाँ और एक शिरा होते हैं इनके अतिरिक्त और भी कई चीज़ें होती हैं (चित्र ३'५६,) । ये सब चीज़ें एक लसदार पदार्थ से आपस में मिली रहती हैं और इन सब के ऊपर अंतरावरण का गिलाफ़ चढ़ा रहता है । नाभि नाल की लम्बाई सामान्यतः उतनी ही होती है जितनी कि भ्रूण की, कभी कभी यह बहुत छोटा या बहुत लम्बा भी होता है । रक्त-वाहिनियाँ कमल में पहुँच कर अनेक सूक्ष्म शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं । बाह्यावरण के हर एक अंकुर में ये छोटी छोटी शाखाएँ रहती हैं ।

कमल (चित्र ३'५७ में ७, ३'५८ में ३)

उस स्थान को जहाँ से भ्रूण नाल द्वारा गर्भाशय में लटका रहता है कमल कहते हैं, यह कमल गर्भकला में जिससे अंकुर विशिष्ट आवरण चिपटा रहता है बनता है । कमल में रक्त से भरे हुए बहुत से छोटे छोटे स्थान होते हैं, बाह्यावरण के अंकुर इन्हीं रक्तपूर्ण स्थानों में डूबे रहते हैं । अंकुरों के भीतर सूक्ष्म रक्त वाहिनियाँ रहती हैं ।

कमल सामान्यतः गर्भाशय के गात्र में या तो ऊपर की ओर

(ऊर्ध्वांश में) या उसकी अगली या पिछली दीवार में बनता है। कभी कभी वह गर्भाशय के अंतर्मुख के निकट बन जाता है, यहाँ बनना अच्छा नहीं क्योंकि प्रसवकाल अधिक रक्त के बहने से जननी की जान जोखों में रहती है।

गर्भाशय में भ्रूण का पोषण कैसे होता है

चौथे सप्ताह तक भ्रूण के बाह्यावरण में रक्तवाहिनियाँ नहीं बनतीं, इस समय तक भ्रूण आवश्यक पदार्थों को गर्भाशय की श्लैष्मिक कला के रक्त और लसीका से आचूषण क्रिया द्वारा ग्रहण किया करता है।

चौथे सप्ताह के पश्चात् गर्भकला में रक्त से भरे हुए गढ़े बनने लगते हैं और साथ साथ भ्रूण के बाह्यावरण में रक्तवाहिनियाँ भी बनने लगती हैं जिनमें रक्त बहता है। इन रक्त वाहिनियों में गर्भकला के गढ़ों के रक्त से आवश्यक पदार्थों का आचूषण होता है, रक्तवाहिनियों द्वारा ये पदार्थ भ्रूण के गात्र में पहुँचते हैं।

तीसरे मास में कमल अच्छी तरह बन जाता है, अब नाल की रक्तवाहिनियाँ केवल कमल के स्थान से ही पौष्टिक पदार्थों को ग्रहण करती हैं। माता के रक्त (जो गढ़ों में भरा रहता है) और अंकुरों की रक्तवाहिनियों के रक्त के बीच में रक्तवाहिनियों की पतली दीवारें और उनके ऊपर का बाह्यावरण रहता है, इन दीवारों तथा आवरण से निर्मित परदा इतना सूक्ष्म होता है कि उसमें से घुले हुए पदार्थों का आचूषण भली प्रकार हो सकता है।

जब तक बच्चा गर्भाशय में रहता है तब तक वह श्वास

नहीं लेता, फुप्फुस अपना काम नहीं करते। फुप्फुस रक्त-शोधक यंत्र हैं, इनके द्वारा शरीर ओषजन ग्रहण करता है और कओ २ त्यागता है; जब ये काम ही नहीं करते तो यन्त्र के रक्त में ओषजन कैसे पहुँचती है और कओ २ कैसे बाहर निकलती है? जैसे पोषण का कार्य कमल द्वारा होता है वैसे ही श्वासोच्छ्वास का कार्य भी इसी अंग द्वारा होता है। जितनी ओषजन की आवश्यकता होती है उतनी माता के रक्त में से नाल की रक्त वाहिनियों में आ जाती है और जितनी कर्बनद्विओषित बाहर निकलनी होती है वह माता के रक्त में चली जाती है।

भ्रूण के शरीर में सेलों के काम करने से बहुत से मलिन पदार्थ भी बनते हैं, ये भी माता के रक्त में पहुँच जाते हैं।

कमल के कार्य

१—यह भ्रूणधारक अंग है, इसके द्वारा भ्रूण माता के शरीर से जुड़ा रहता है।

२—कमल द्वारा भ्रूण का पोषण होता है।

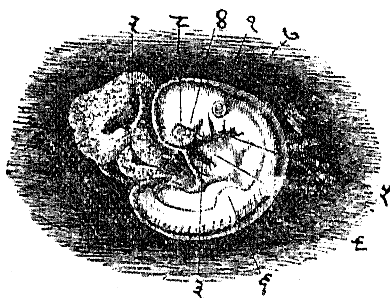
३—वह भ्रूण के लिये फुप्फुसों का काम करता है, अर्थात् कमल भ्रूण का श्वासोच्छ्वास यंत्र है।

४—उसी के द्वारा भ्रूण अपने मलिन पदार्थों को त्यागता है अर्थात् कमल रक्तशोधक यंत्र का काम देता है।

नाल में दो धमनियाँ और एक शिरा होती हैं। धमनियों द्वारा रक्त भ्रूण के शरीर से कमल में पहुँचा करता है, शिरा द्वारा शुद्ध रक्त जिसमें पौष्टिक पदार्थ रहते हैं कमल से भ्रूण के शरीर में वापस जाया करता है।

चित्र ३५९

२०-२२ दिन का गर्भ (वास्तविक परिमाण से बड़ा)

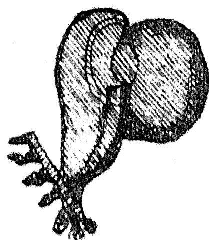


(From Haeckel's Evolution)

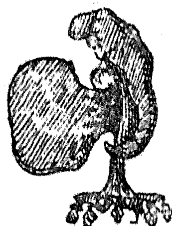
१=अंतरावरण ; २=पोषक पदार्थ की थैली ; ३=अधोहनु (चिह्न) ; ४=ऊर्ध्वहनु (चिह्न); ६=ऊर्ध्व शाखा (चिह्नमात्र) ७=कर्ण; ८=नेत्र; ९=हृदय ।

चित्र ३६० ; बारह-पंद्रह दिन लम्बाई १/१२ इंच

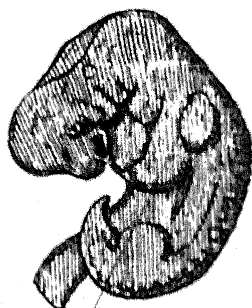
चित्र ३६१; १८-२१ दिन का गर्भ । लम्बाई १/६ इंच



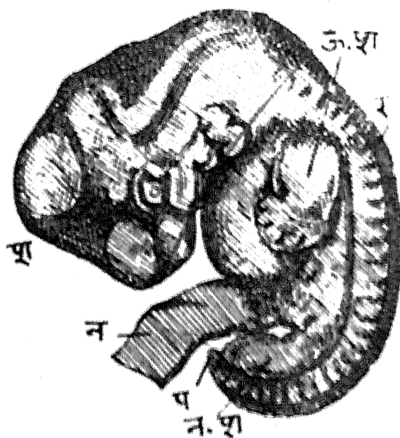
पोषक पदार्थ की थैली



चित्र ३६२; २७ से ३० दिन तक का गर्भ। लम्बाई $\frac{1}{8}$ इंच



चित्र ३६३; ३१-३४ दिन का गर्भ। लम्बाई $\frac{1}{3}$ इंच के लगभग



चित्र ३६४; आयु ४२-४५ दिन; लम्बाई $\frac{2}{3}$ इंच

गर्भ का वृद्धिक्रम

३-४ सप्ताह का गर्भ (चित्र ३५०,)



लंबाई लगभग $\frac{1}{8}$ इंच, भार १$\frac{1}{8}$ से १$\frac{1}{2}$ माशा तक, परिमाण चींटी के बराबर, एक सिरा मोटा होता है यहाँ शिर बनेगा, दूसरा सिरा पतला और नोकीला होता है इधर नाल लगा है और यहा टाँगें बनेंगी। मुख के स्थान पर एक दरार दिखाई देती

है। आँखों की जगह दो काले तिल हैं। शाखाओं के स्थान में नन्हें नन्हें उभार देख पड़ते हैं।

६ सप्ताह का गर्भ

(चित्र ३५७ और ३६४)

लंबाई ½ से १ इंच तक; भार ३ से ५ माशे तक। शिर और वक्ष अलग दिखाई देने लगे हैं; शिर में चेहरा भी साफ़ साफ़ पहचान पड़ता है। नासिका, मुख, आँखों और कानों के छिद्र बन गये हैं। शरीर के मध्य में दोनों ऊर्ध्व शाखाएँ दिखाई देती हैं; हाथ में अँगुलियाँ बन गई हैं। अधो शाखाएं मलद्वार के पास हैं। कमल बनना आरंभ हो गया है। भ्रूण के बाह्य और अंतः आवरण अभी एक दूसरे से अलग हैं। भ्रूण के अक्षक और अधो हन्वस्थि के अस्थिविकाश केन्द्र उदय हो गये हैं।

दो मास का गर्भ (चित्र ३६५)

लम्बाई १½ इंच के लगभग; भार ८ से २० माशे तक। आदि नासिका, ओष्ट और आँखें देख पड़ती हैं। जननेन्द्रियाँ बनने लगी हैं परन्तु भ्रूण स्त्री है या पुरुष यह अभी नहीं कहा जा सकता। शाखाएं जो पहले धड़ से लगी हुई थीं अब उस से अलग हटी हुई दिखाई देती हैं। मलद्वार का चिन्ह दिखाई देता है। आदि फुप्फुस, प्लीहा, उपवृक्क देख पड़ते हैं। अंत्र का वह भाग जो नाल में चला गया था अब उदर में चला आता है। कमल के स्थान में भ्रूण के दोनों आवरण एक दूसरे से मिलने वाले हैं। नाल में बल या पेंठन पड़ने लगे हैं। इन अस्थियों में अस्थिविकाश केन्द्र उदय हो गये हैं:—ललाटास्थि; पर्शुका,

शाखाओं की लम्बी अस्थियों के गात्र: करभ: प्रपाद, स्कन्ध और नितंब अस्थियाँ।

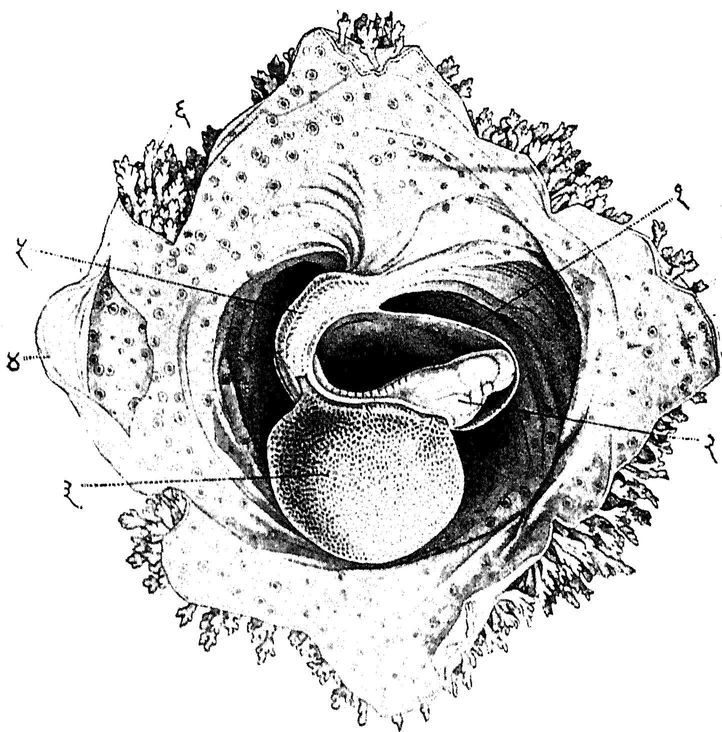
चित्र ३६५; आयु ६० दिन के लगभग लम्बाई १ इञ्च



३ मास का गर्भ (चित्र ३६८)

लम्बाई (टाँगों को छोड़कर) २-३ इंच; भार २½ छटाँक के लगभग; शिर बहुत बड़ा होता है; पलक और ओष्ठ जुड़े रहते हैं। अँगुलियाँ अलग अलग दिखाई देती हैं। भगनासा या शिश्न दिखाई देता है; स्त्री है या पुरुष अब इस बात में कोई संदेह नहीं रहता। थाइमस वा उपवृक्क ग्रन्थियाँ बन गई हैं। हृदय का क्षेपक कोष्ठ बन गया है। भ्रूण के ऊपर की

चित्र ३६६



(Haeckel's Evolution of Man)

१=अंतरावरण ३=पोषक पदार्थ कोष

२=हृदय ६=अंकुर

भ्रूण किस प्रकार पीछे को मुड़ा रहता है यह इस चित्र से साफ विदित होता है

पृष्ठ ८१६ के सम्मुख

चित्र ३६१ । ४—४½ मास का नारी भ्रूण



(Photograph of a specimen in the Anatomical Department of King George's Medical College Lucknow)

गर्भकला गर्भाशय की शेष गर्भकला से मिल गई है (चित्र ३५८)। कुछ और अस्थिविकाश केन्द्र उदय हुए हैं :—पश्चात् अस्थि, जतूकास्थि; नासास्थि, शंखास्थि। भ्रूणबाह्यावरण के अंकुर कमल के स्थान को छोड़कर और स्थानों से लुप्त होने लगे हैं।

४ मास का गर्भ (चित्र ३७३ में १५; चित्र ३६७, ३६८)

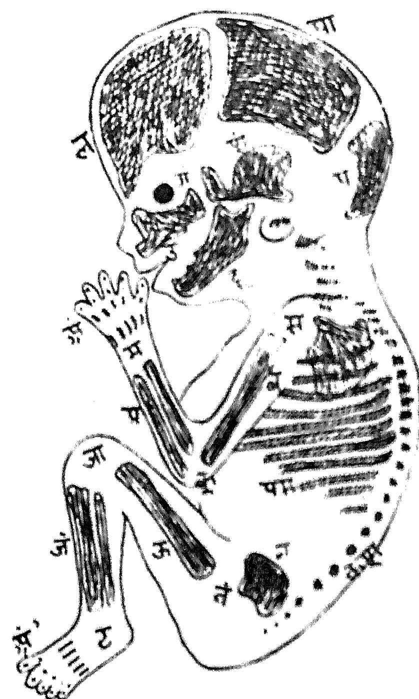
लम्बाई ३½ इंच के लगभग (टाँगों को मिलाकर लम्बाई ६ इंच के लगभग)। शिर की लम्बाई कुल शरीर की लम्बाई से चौथाई है। टटरी पर और कई और स्थानों में रोवाँ सा दिखाई देने लगा है। गर्भ का लिंग स्पष्ट है। हाथों और पावों में कुछ गति होने लगी है। नख बनने लगे हैं।

५ मास का गर्भ

शिर से एड़ी तक लम्बाई १० इंच के लगभग; भार ½ सेर, सब शरीर पर बारीक बाल हैं। त्वचा पर एक चिकनी वस्तु बनने लगी है; इस वस्तु के कारण गर्भोदक भ्रूण की उपचर्म को हानि नहीं पहुँचाता और इसके शरीर में प्रवेश नहीं कर

चित्र ३६७ असली नारी भ्रूण का फोटो है। यह भ्रूण किंगज्योर्ज मेडिकल कालेज के अनाटोमी विभाग में है। इस भ्रूण का वास्तविक परिमाण इस प्रकार है :—शिर से मलद्वार तक लम्बाई=१६ शतांश-मीटर; अधोशाखा की लम्बाई कूल्हे से एड़ी तक=११ शतांशमीटर; ऊर्ध्व शाखा की लम्बाई स्कन्ध से नखों तक=१२ शतांशमीटर; छाती की परिधि स्तनवृन्तों के ऊपर=१६½ शतांशमीटर; उदर की परिधि नाभि के ऊपर=१४½ शतांशमीटर।

चित्र ३६८ चौथे मास के गर्भ का अस्थि पंजर (After Dixon)



व्याख्या :—ल=ललाटास्थि; पा=पार्श्विकास्थि; गं=गंडास्थि; शं=शंखास्थि; प=पश्चात् अस्थि; ह=अधो हन्वस्थि; ऊ=ऊर्ध्व हन्वस्थि; कश=कशेरुका; पस=पर्शुका; व=प्रगंडास्थि; प्र=प्रकोष्ठास्थि; अं=अंगुल्यस्थियाँ; न=नितंबास्थि; ऊ=ऊर्वस्थि; जं=जंघास्थियाँ; अं=पादांगुल्यस्थियाँ ।

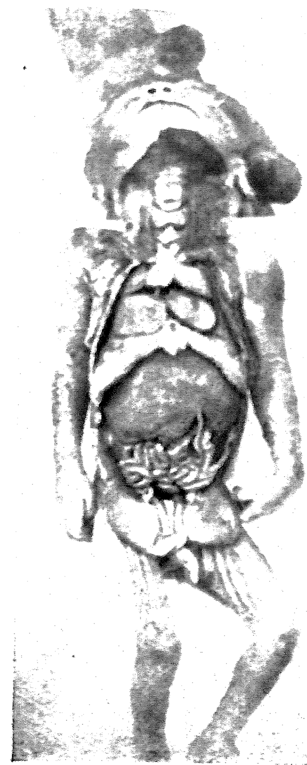
इस चित्र से यह स्पष्ट है कि लम्बी अस्थियों के सिरे जहाँ संधियाँ होती हैं बिलकुल कारटिलेज के हैं । खोपरी की अस्थियों के बीच में अभी अंतर हैं; इन अंतरों में झिल्ली रहती है । म, क, म, व, जा, ट इन सब स्थानों में कारटिलेज ही है ।

हमारे शरीर की रचना—

प्लेट ८६

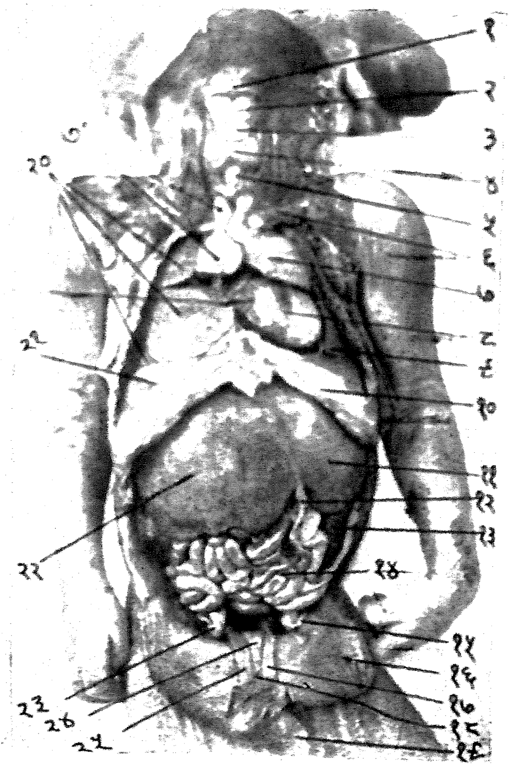
छः मास के भ्रूण का छेदन





चित्र ३२९





चित्र ३३०

८१२ के सम्मुख

चित्र ३६९, ३७० की व्याख्या

६ मास के भ्रूण का छेदन। देखिये यकृत कितना बड़ा है। अंड अभी उदर ही में है। **थाइमस ग्रन्थि कितनी बड़ी है और फुप्फुस कितने छोटे हैं।**

१=कंठिकास्थि; २=चुल्लिका कारटिलेज; ३=मुद्रा कारटिलेज; ४=चुल्लिका ग्रन्थि; ५=टेंटुवा; ६=अक्षकास्थि; ७=थाइमस (बायाँ खंड); ७′=थाइमस दाहिना खंड; ८=हृदय; ९=बायाँ फुप्फुस; १०=पर्शुका के कारटिलेज; ११= यकृत (बायाँ खंड); १२=नाभि शिरा (जिस से यकृत का गोल बन्धन बनता है); १३=अधोगामी बृहदंत्र; १४=क्षुद्रांत्र; १५=उपांड; १६=उदरक कला; १७=नाभि धमनी; १८=यह वह नली है जो मूत्राशय तक जाती है (Urachus); १९=शिश्न; २०=दाहिना फुप्फुस (तीन खंड); २१=वक्ष-उदरमध्यस्थ पेशी; २२=यकृत (दाहिना खंड); २३=अंड; २४=मूत्राशय; २५=दाहिनी नाभि धमनी।

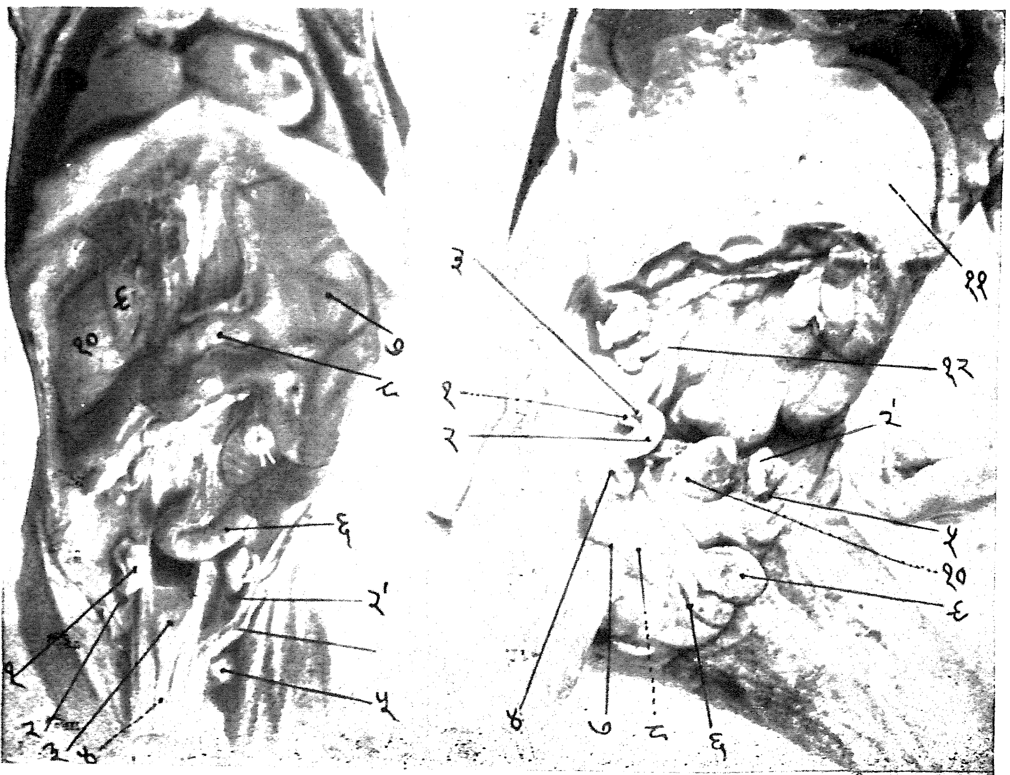
चित्र ३७१, ३७२ की व्याख्या

उसी भ्रूण का उदर (जिसके फोटो ३६९, ३७० हैं) बड़ा करके दिखाया गया है।

चित्र ३७१—इस चित्र में यह दिखाया गया है कि अंड अभी उदर के भीतर ही हैं, वृषण में अभी नहीं आये। उदर में से क्षुद्रांत्र निकाल डाली गयी है; यकृत भी निकाल डाला गया है। १=अंड; २,२'=गड्ढा जिस में से होकर अंड वृषण में जाता है; ३=मूत्राशय ४=यूरेकस; (Urachus) ५=शिश्न; ६=श्रोणिगा बृहत् अंत्र; ७=आमाशय; ८=पक्वाशय; ९=उपवृक्क; १०=वृक्क।

चित्र ३७२—इस में वृषण खोला गया है। १=उपांड; २=अंड; ३=अंड-उपांड खात; ४=अंड आकर्षणी पेशी; ६=वृषण; ७=वृषण (कटा हुआ); ८=धीरे धीरे अंड आकर्षणी पेशी की खिंचावट से अंड यहाँ आ जाता है; ९=शिश्न; १०=मूत्राशय; ११=आमाशय; १२=मूत्र प्रणाली।

चित्र ३७१ ... के भ्रूण का छेदन ... चित्र ३७२


९
१०
७
८
६
२'
५
१
२
३
४
३
१
२
११
१२
२'
५
१०
६
४
७
८
६

सकता। यकृत अच्छी तरह बन गया है। अंत्र में कुछ मल इकट्ठा होने लगा है। शिर अब भी शेष शरीर के मुकाबले में बड़ा है। भ्रूण अब अच्छी तरह गतियाँ करने लगा है और माता इन गतियों को स्पष्ट रीति से प्रतीत करती है। नख साफ़ दिखाई देते हैं।

६ मास का गर्भ

शिर से एड़ी तक लम्बाई १२ इंच; भार १ सेर के लगभग। त्वचा में सलवटें पड़ी हुई हैं कहीं कहीं त्वचा के नीचे वसा आ गई है। पलक अभी जुड़े हुए हैं; कनीनिका के सामने एक झिल्ली रहती है ; भ्रू और पक्ष्मन् बनने लगे हैं। शिर के बाल और स्थानों की अपेक्षा अधिक लम्बे हैं। अंड उदर में वृक्क के पास हैं (देखो चित्र ३६९, ३७०, ३७१, ३७२,)

७ मास का गर्भ

लम्बाई १४ इंच और भार $१\frac{१}{२}$ सेर के लगभग। अब त्वचा के नीचे पहले से अधिक वसा है। पलक एक दूसरे से अलग हो जाते हैं; कनीनिका के सामने रहनेवाली झिल्ली लुप्त होने लगी है। अंड जो पिछले मास में उदर में वृक्क के पास थे अब कुछ नीचे उतर आए हैं और वंक्षण के पास पहुँचनेवाले हैं शिर पर कोई $\frac{१}{४}$ इंच लम्बे बाल होते हैं। अंत्र में मल इकट्ठा हो गया है। इस मास के अंत में जने हुए बालक का यदि विशेष साधनों से पालन किया जावे तो उसका जीवित रहना संभव है; ऐसे बालक बहुधा मर ही जाया करते हैं।

८ मास का गर्भ

लम्बाई १६-१७ इंच ; भार २ सेर के लगभग। वसा के इकट्ठा होने के कारण त्वचा की झुर्रियाँ जाती रही हैं। अब रोवाँ दिखाई नहीं देता। अंड अब वंक्षण में आ पहुँचे हैं। इस मास में जना हुआ बालक होशियारी से पालने पर जी सकता है।

९ मास का गर्भ

लम्बाई १८ इंच तक होती है भार २½-२¾ सेर के लगभग। ऊर्वस्थि के नीचे के सिरे में अस्थि विकाशकेन्द्र उदय हो गया है। अंड बहुधा अंडकोष में पहुँच जाते हैं।

१० मास का गर्भ (चित्र ३३४)

लम्बाई २० इंच के लगभग; भार ३½-३¾ सेर के लगभग। शरीर पूरा बन गया है। हाथ की अँगुलियों के नख पोरवों से आगे निकले हुए हैं; पैर की अँगुलियों के नख पोरवों तक ही रहते हैं, आगे नहीं बढ़े रहते। खोपड़ी के बाल कोई १ इंच लंबे होते हैं। अंड अंडकोष में हैं। नाल शरीर के मध्य से कोई ½ इंच नीचे लगा हुआ है। यदि बालक जीवित उत्पन्न होता है तो वह ज़ोर से चिल्लाता है और यदि उस के ओष्ठों के बीच में कोई चीज़ दी जावे तो वह उसको चूसने की कोशिश करता है।

भ्रूण की आयु की उस की लम्बाई से निस्बत

१— पाँच मास तक के भ्रूण की लम्बाई इस प्रकार निकाली जा सकती है :—जिस मास के भ्रूण की आयु जाननी हो उस अङ्क का वर्ग करने से आयु शतांशमीटर में मालूम हो जावेगी,

चित्र ३७३ भिन्न भिन्न आयु के भ्रूण (वास्तविक परिमाण)

८



२

३

४

५

६

७

१५

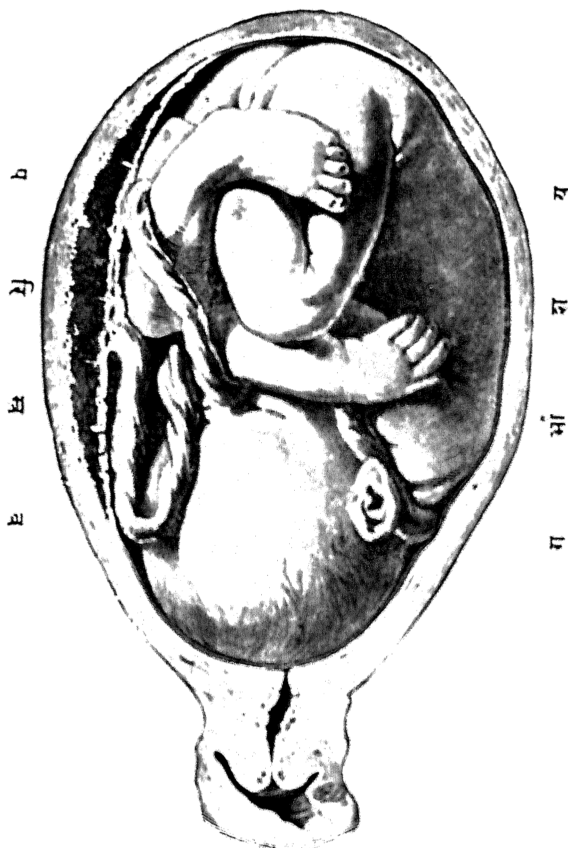
१२

(From Haeckel's Evolution of Man)

अंकों से भ्रूणों की आयु (सप्ताह में) मालूम होती है
जैसे २=दो सप्ताह ; १५=१५ सप्ताह

पृष्ठ ८२२ के सम्मुख

चित्र ३७४ पूरे दिनों के भ्रूण की स्थिति



योनि

(From Jellet's Manual of Midwifery)

पृष्ठ ८२३ के सम्मुख

उदाहरण :—तीन मास के भ्रूण की लम्बाई ३^{२}=३×३=९ शतांशमीटर ; ४ मास के भ्रूण की लम्बाई ४^{२}=४×४=१६ शतांशमीटर।

२—पाँच मास के पश्चात् लम्बाई जानने के लिये मास के अङ्क को ५ से गुणा करना चाहिये ; लब्ध=भ्रूण की लम्बाई शतांशमीटर में, उदाहरण :—७ मास के भ्रूण की लम्बाई ७×५=३५ शतांशमीटर। विविध आयु के भ्रूणों की औसत लम्बाई इस तालिका में दी जाती है :—

लंबाई (सहस्रांशमीटर)	आयु (सप्ताह)	लंबाई (सहस्रांशमीटर)	आयु (मास)
३	२½—३	१४०	४
५	३—३½	२२०	५
८	४—४½	३२०	६
२०	६—६½	३७०	७
३०	८—८½	४२०	८
८०	१२—१२½	४६०	९

गर्भाशय के परिमाण में परिवर्तन

ज्यों ज्यों भ्रूण बढ़ता है त्यों त्यों गर्भाशय भी बड़ा होता जाता है। पहिले तीन मास तक उसका परिमाण इतना ही होता है कि वह वस्तिगह्वर से ऊपर नहीं आता और भगसंधि से ऊपर उदर की दीवार में से वह स्पर्श नहीं किया जा सकता। तीसरे मास के अन्त में उसका ऊर्ध्वांश भगसंधि से ऊपर उठने लगता है और होशियारी से टटोलने पर उदर की दीवार में से स्पर्श किया जा सकता है।

चौथा मास :—ऊर्ध्वांश भगसन्धि और नाभि के बीच में पहुँच जाता है।

पाँचवाँ मास :—गर्भाशय का ऊपर का सिरा नाभि से २ अंगुल (१½ इंच) नीचे रहता है।

छठा मास :—अब ऊर्ध्वांश नाभि तक पहुँच जाता है।

सातवाँ मास :—ऊर्ध्वांश नाभि से ३ अंगुल (२¼ इंच) ऊपर रहता है।

आठवाँ मास :—ऊर्ध्वांश नाभि और उरोस्थि के नीचे के सिरे के बीच में रहता है।

नौवाँ मास :—अब वह उरोस्थि के नीचे के सिरे तक पहुँच जाता है।

दसवाँ मास :—इस मास में गर्भाशय कुछ नीचे को सरक जाता है और उसी स्थान में पहुँच जाता है जहाँ वह आठवें मास में था।

गर्भाशय की लम्बाई *

सप्ताह	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०
लंबाई (इंचों में)	४	५·४	६·६	७·८	८·७	९·३	१०

दसवें मास में गर्भाशय की लम्बाई १० इंच होती है परन्तु भ्रूण की लम्बाई २० इंच होती है; फिर भ्रूण गर्भाशय में कैसे रहता है ?

इस का उत्तर यह है कि भ्रूण गर्भाशय में सीधा नहीं रहता; और उसके हाथ पैर फैले नहीं रहते। उस की स्थिति ऐसी होती है कि वह कम से कम स्थान में आ सके। उस का शिर आगे को वक्ष पर झुका रहता है, रीढ़ आगे को मुड़ी रहती है। दोनों जाँघें उदर पर और टांगें जाँघों पर मुड़ी रहती हैं। दोनों भुजा वक्ष पर और एक दूसरे के ऊपर मुड़ी रहती हैं। मुट्ठियाँ बंद रहती हैं। हथेली और अंगुलियों में (पोरवों की संधियों के सामने) जो रेखाएं पड़ी रहती हैं वे गर्भावस्था में त्वचा के मुड़ जाने से ही बनती हैं। कुल गर्भ संकुचित अवस्था में रहता है, शरीर के मुड़े रहने के कारण भ्रूण की शकल अंडाकार दिखाई देती है (देखो चित्र ३७४)।

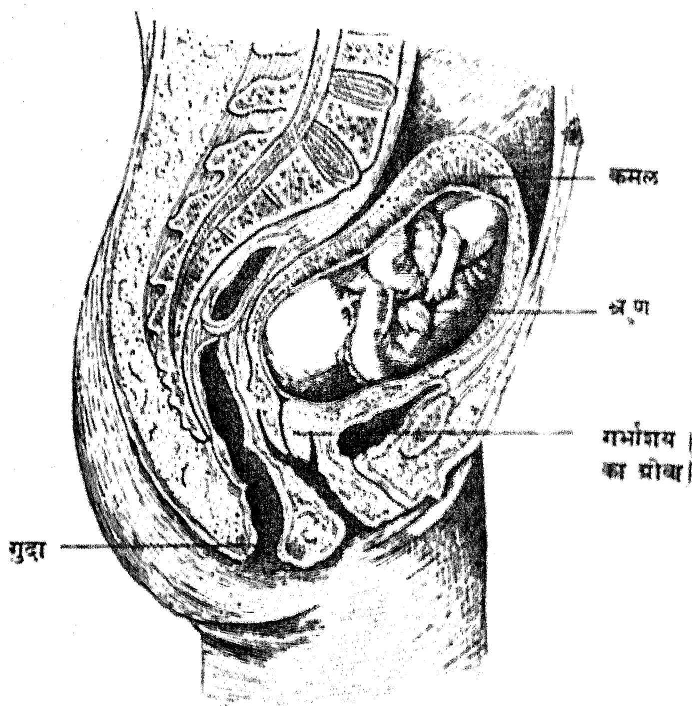
भ्रूणांडाकार की लम्बाई इस प्रकार हाती है :—*

सप्ताह	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३८	४०
भ्रूणांडाकार की लंबाई (इंचों में)	७·२	७·६	७·९	८·३	८·८	९·२	९·५	९·७

* Jellet's Manual of Midwifery

यदि आप इन लम्बाइयों का गर्भाशय की लम्बाइयों से मुक़ाबला करें तो आप को ज्ञान होगा कि भ्रूणांडाकार की लम्बाई हर एक सप्ताह में गर्भाशय की लम्बाई से कम रहती है, इस कारण भ्रूण गर्भाशय से लम्बा होने पर भी उसके भीतर अच्छी तरह रह सकता है।

चित्र ३७५ छठे मास का गर्भ



After Waldeyer from Jellet's Manual of Midwifery—Kedrann

गर्भ के पहले महीनों में जब भ्रूण छोटा होता है तब उस का शिर ऊपर को रहता है और धड़ नीचे को (गर्भाशय के मुख की ओर चित्र ३७६) । पिछले महीनों में शिर नीचे हो जाता है और चूतड़ ऊपर को (चित्र ३७७) ।

प्रतिशत ९६ भ्रूणों को स्थिति इसी प्रकार होती है अर्थात् शिर नीचे रहता है और चूतड़ ऊपर को और वे शिर के बल ही जन्म लेते हैं; योनि से पहिले शिर निकलता है और चूतड़ पीछे निकलते हैं। कभी कभी शिर ऊपर रहता है और चूतड़ नीचे (चित्र ३७८), तब बालक चूतड़ के बल जन्म लेता है अर्थात् सब से पहले चूतड़ बाहर आते हैं और शिर सब से पीछे । कभी कभी बच्चा आड़ा पड़ा रहता है; शिर एक ओर रहता है और पैर दूसरी ओर (चित्र ३८०); ऐसी दशा में कंधे या पैर या हाथ पहले बाहर निकल आते हैं।

प्रसव के समय भ्रूण का जो भाग गर्भाशय के बहिर्मुख में पहले पहल अड़ता है अर्थात् जिस भाग के बल बच्चा जन्म लेगा वही उस गर्भ का उदय कहलाता है । शिर अड़ता है तो यह कहा जाता है कि शिरोदय है (चित्र ३७७); शिर में यदि मुख अड़ता है या टटोलने से मालूम होता है तो मुखोदय बतलाया जाता है (चित्र ३७९); इसी प्रकार शीर्षोदय (जब शिर का ऊंचा भाग दिखाई देता है), भ्रूउदय या ललाटोदय, स्फिक् उदय (स्फिक्=चूतड़), पार्श्वोदय, पादोदय होते हैं । शीर्षोदय सब से अच्छा होता है; शेष प्रकार के उदय कष्टदायक होते हैं

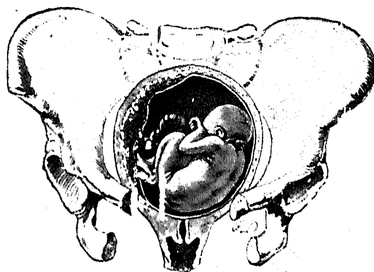
प्रसव (चित्र ३८१, ३८२, ३८३)

भ्रूण का माता के शरीर से बाहर निकलकर आना प्रसव

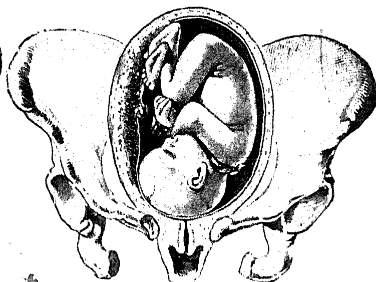
कहलाता है। इस क्रिया में जननी को कुछ न कुछ पीड़ा बहुधा हुआ ही करती है। जो स्त्रियाँ हृष्ट पुष्ट होती हैं, जिन का स्वास्थ्य अच्छा होता है, जो किसी न किसी प्रकार का शारीरिक व्यायाम सदा करती रहती हैं, जिनके वस्तिगह्वर की अस्थियाँ अच्छी तरह से बनी हैं और वस्तिगह्वर विशाल है और उसके व्यास ठीक परिमाण के हैं, और जो शांत स्वभाव हैं उन को प्रसव-पीड़ा कम होती है। जो स्त्रियाँ कमज़ोर होती हैं या जो थोड़ी उमर में (वस्तिगह्वर के अच्छी तरह बनने से पहले) बच्चा जनती हैं या जो बड़ी उमर में पहला बच्चा जनती हैं, जो अधिक अमीर होती हैं और कुशिक्षा के कारण किसी प्रकार का भी शारीरिक व्यायाम करना बुरा समझती हैं, जिनका वस्ति-गह्वर चक्र तंग होता है या जिन के वस्तिगह्वर की अस्थियाँ रोगों के कारण मुड़ जाती हैं; सभ्य जातियों की स्त्रियाँ जो प्रकृति के नियमों का अनेक विधियों से उल्लंघन करके अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ना अपना धर्म समझती हैं; या जो चंचल स्वभाव वाली होती हैं या जो प्रसव से बहुत डरती हैं—इन सब को प्रसव में अधिक दुःख होता है।

प्रसव के समय गर्भाशय का मांस संकोच करने लगता है। परन्तु वह एक दम नहीं सिकुड़ जाता; उस में धीरे धीरे थोड़ी थोड़ी देर के पीछे संकोच की लहरें उत्पन्न होती हैं और इन्हीं लहरों के साथ साथ जननी को पीड़ा होती है। मांस के संकोच से गर्भाशय की समाई कम होने लगती है। जो चीज़ें उस के भीतर हैं उनको स्थान चाहिये; गर्भाशय की समाई कम होने और उस की दीवारों का उन चीज़ों पर दबाव पड़ने के कारण वे उस में से बाहर निकलना चाहती हैं।

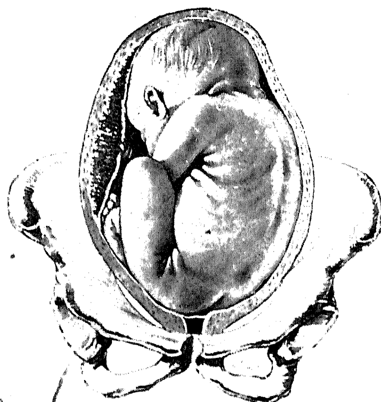
चित्र ३७६



चित्र ३७७ शिर नीचे है



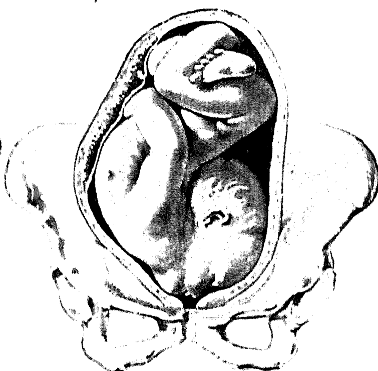
चित्र ३७८ (चूतड़ नीचे हैं)



चित्र ३७९ अनुप्रस्थ स्थिति



चित्र ३८० मुख नीचे है

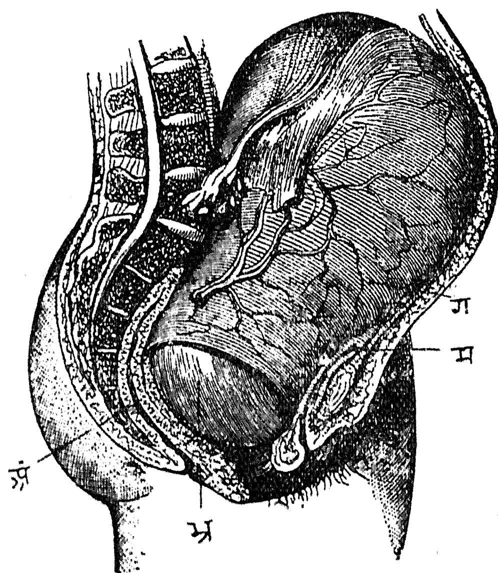


From Jellet's Manual of Midwifery.

पृष्ठ ८२८ के सम्मुख

गर्भाशय के भीतर रहनेवाली चीज़ें ऐसी हैं कि दबाव पड़ने पर उनका घनफल कम नहीं हो सकता। वायु से भरी हुई गेंद दबाने

चित्र ३८१ गर्भित जरायु



(Witkowski)

ग=गर्भित जरायु ; म=मूत्राशय जो भर्गाशय के दबाव से पिचक गया है ; भ्र=भ्रूण; अं=सरलांत्र;

से दब जाती है क्योंकि वायु संकोचनीय पदार्थ है अर्थात् उसका घनफल दबाव पड़ने पर कम हो सकता है. परन्तु यदि गेंद में जल भरा हो तो दो बातों में से एक बात होगी :—यदि गेंद में छिद्र है तो कुछ जल उसमें से बहकर निकल जावेगा ; यदि छिद्र

नहीं है तो अधिक दबाव पड़ने पर वह फट जायेगी क्योंकि उस के भीतर जो द्रव है उसका घनफल दबाव से कम नहीं किया जा सकता और जब गेंद की समाई कम होने लगी तब वह उसको फाड़कर बाहर निकल आता है। ठोस चीज़ों का भी यही हाल होता है। गर्भाशय के भीतर बच्चे का शरीर है और तरल है; इनका घनफल दबाव से कम नहीं हो सकता; जब मांस के संकोच के कारण गर्भाशय की समाई कम होने लगती है तो ये चीज़ें उसके मुख में से होकर बाहर आने लगती हैं। यदि वस्तिगह्वर की चौड़ाई कम हो जिस कारण बच्चा बाहर न निकल सके और गर्भाशय की समाई कम होती जावे तो उस की दीवार कहीं से फट जावेगी और भ्रूण को हानि पहुँचेगी।

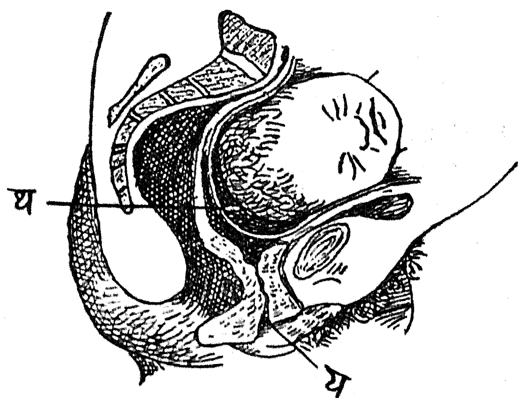
जब गर्भाशय की समाई कम होने लगती है तो गर्भोदक से भरी हुई झिल्ली एक थैली के रूप में गर्भाशय के मुख में अड़ जाती है। ज्यों ज्यों दबाव पड़ता है, मुख के आसपास का मांस जो पहले संकोच कर रहा था अब फैल जाता है और मुख धीरे धीरे चौड़ा हो जाता है (चित्र ३८२)। थैली मुख में से होकर योनि के ऊपर के भाग में चली जाती है और स्पर्श की जा सकती है। गर्भोदक से भरी थैली के दबाव से रास्ता इतना चौड़ा हो जाता है कि बच्चे का शिर बाहर निकल सके। जिस रास्ते से शिर निकल सकता है उसमें से होकर शरीर के किसी और भाग को (चूतड़ या धड़) निकलने में रुकावट नहीं हो सकती।

अब बच्चे का शिर गर्भाशय के फैले हुए मुख में आ अड़ता है। शिर के आगे तरल की थैली है (चित्र ३८२ में थ), थैली तरल के दबाव को अधिक देर तक नहीं सह सकती और वह

शीघ्र फट जाती है और गर्भोदक बहकर योनि से बाहर निकलने लगता है। झिल्ली के फटने से ज़रा सा रक्त भी निकला करता है। गर्भोदक से योनि और भग धुल जाते हैं और उसकी वजह से बच्चे को भी योनि में से निकलने में आसानी होती है।

झिल्ली के फटने पर बच्चे का शिर, ग्रीवा, कंधे, ऊर्ध्व शाखाएँ,

चित्र ३८२ गर्भोदक की थैली



(Redrawn from Jellet's Manual of Midwifery.)

थ=थैली; य=योनि। गर्भोदक की थैली जो शरीर के नीचे है अपने दबाव से गर्भाशय के मुख को चौड़ा कर रही है और योनि के निकट जा पहुँची है।

उदर, चूतड़ और अधो शाखाएँ सहज सहज बाहर आती हैं।

बच्चे की नाभि से नाल लगा रहता है। नाल द्वारा वह कमल से जो अभी गर्भाशय से लगा हुआ है जुड़ा रहता है। नाल की लम्बाई बीस इंच के लगभग होती है। यदि आप उसको

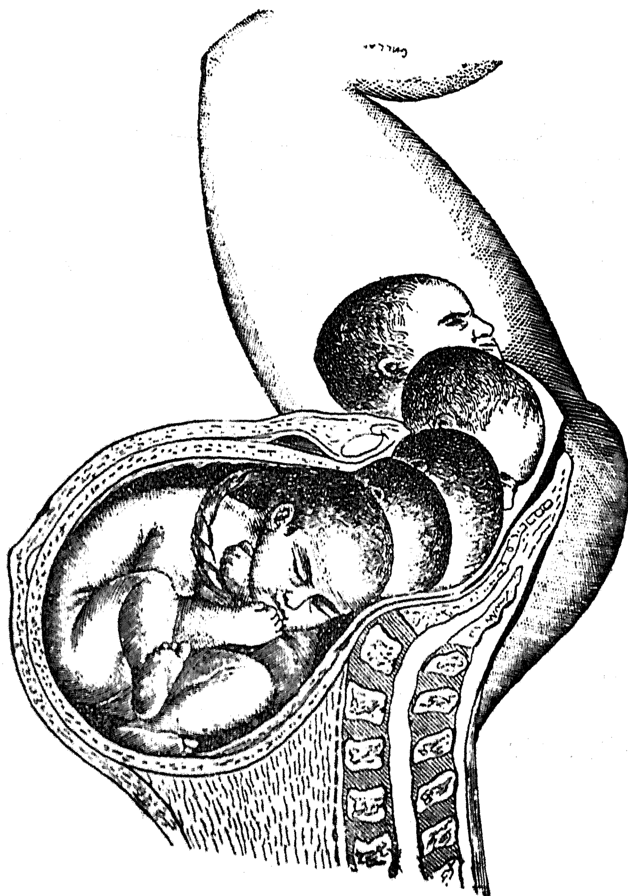
अँगुली से दबावें तो धमनियों का स्पन्दन मालूम होगा।

जब शिर बाहर निकलता है तो दबाव के कारण वह भिच-भिचा जाता है और उसकी आकृति ऐसी हो जाती है कि वह सुगमता से प्रसवपथ में से होकर निकल सके। खोपरी की अस्थियाँ अभी मुलायम होती हैं और उनकी संधियाँ भी दृढ़ नहीं होतीं। दबाव के कारण पार्श्व, पश्चात् और ललाटास्थियों के पास पास के किनारे एक दूसरे के ऊपर चढ़ जाते हैं; मस्तिष्क भी अभी भली प्रकार नहीं बन पाया और उसकी दशा ऐसी है कि थोड़े से दबाव से उसको हानि नहीं पहुँचती। दबाव पड़ने से टटरी में रक्त इकट्ठा हो जाता है; यह स्थान बहुत उभरा हुआ और पिलपिला सा मालूम हुआ करता है। बच्चे के बाहर आने से कुछ देर पीछे रक्त लौट जाता है और उभार धीरे धीरे कम हो जाता है।

ज्यों ही बच्चा योनि से बाहर निकलता है त्यों ही वह ज़ोर से चिल्लाता है; इससे यह होता है कि वह श्वास लेता है और वायु पहली बार उसके फुफ्फुसों में प्रवेश करती है। यदि बच्चा चिल्लाये नहीं तो उसके मर जाने का डर रहता है। जब बच्चा मरा हुआ पैदा होता है तब भी वह नहीं चिल्लाता है।

जन्म लेने के थोड़ी देर पीछे नाल में स्पन्दन बन्द हो जाता है। स्पन्दन बन्द होने पर (इससे पहले नहीं) नाल में दो बन्ध लगाने चाहियें एक बन्ध शिशु की नाभि से दो इञ्च की दूरी पर दूसरा माता के भग के पास। बन्ध लगाने के पश्चात् यह नाल दोनों बन्धों के बीच में परन्तु पहले बन्ध के पास से काट डालना चाहिए। बन्ध लगाने के लिये शुद्ध डोरा और काटने

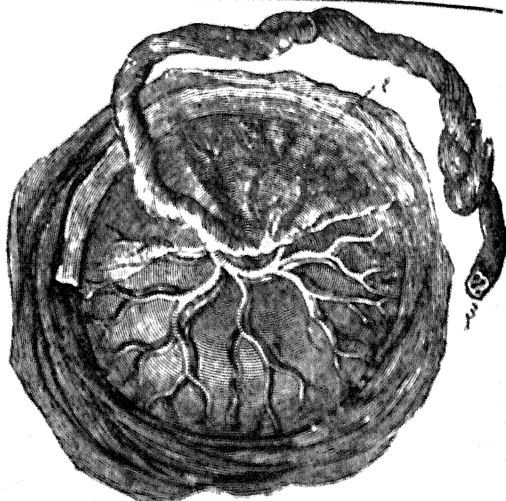
के लिये शुद्ध चाकू या कैंची का प्रयोग करना चाहिये। डोरे और चाकू को शुद्ध करने की सहल विधि यह है कि उनको जल में



चित्र ३८३ प्रसव

(Tarnier)

प्रसव—भ्रूण कैसे धीरे धीरे योनि में से बाहर आता है।



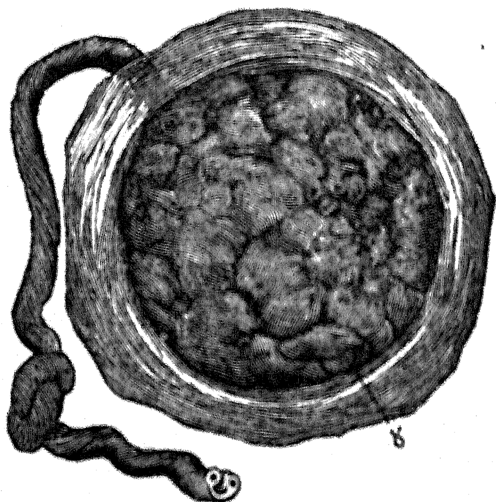
चित्र ३८४

परिस्रव का भ्रूण तल

१=भ्रूणांतरावरण

२=रक्तवाहिनियाँ

३=नाल



चित्र ३८५

परिस्रव का गर्भाशयिक तल

४=परिस्रव खंड

(Witkowski)

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
शीत	१२	Cold
शीत प्रधान	२६५	Cold
शीर्षोदय	८२८	Vertex presentation
शुष्क	३८४	Dried
शुक्र	७६४	Semen
शुक्रस्रोत	७४७	Ejaculatory duct
शुक्र ग्रन्थि	७५६	Testis
शुक्र प्रणाली	७५९	Ductus deferens
शुक्र कीट	७६०	Spermatozoon
शुक्राणु	७६५	Spermatozoon
शुक्राशय	३४, ७६१	Seminal vesicle
शुण्डिका	२२०	Uvula
ून्य स्थान	८	Vacuole
शूर्मिकास्थि	१३४	Incus
ूर्मिका शिर	६९३	Head of incus
शूर्मिका जङ्घा	६९३	Crus of incus
शोणित	७९४	Ovum
शैल	३९९	Silicon
शौच	४८०	Defaecation
शंख ध्रुव	५१४	Temporal pole
ंखास्थि	११७	Temporal bone
शंखचक्र	११७	Squama of temporal
शंकुबन्ध	५४	Conoid ligament

थोड़ी देर उबाल लिया जावे; उबलते हुए जल की गरमी से रोगोत्पादक कीटाणु मर जाते हैं। धात्री को चाहिये कि वह नाल को छूने से पहले अपने हाथों को अच्छी तरह शुद्ध कर ले। नाल काटने के पश्चात् बच्चा माता के शरीर से अलग हो जाता है।

परिस्त्रव (चित्र ३८४, ३८५)

नाल कटने के पश्चात् बच्चा माता के शरीर से अलग हो जाता है। कमल और भ्रूणावरण अभी गर्भाशय के भीतर ही हैं। सामान्यतः आध घण्टे के भीतर कमल गर्भाशय से अलग हो जाता है और फिर भ्रूणावरण सहित गर्भाशय से बाहर निकल आता है। इन दोनों चीज़ों के साथ साथ गर्भकला भी गर्भाशय से अलग हो जाती है। अब गर्भाशय में श्लैष्मिक कला का केवल वह भाग रह जाता है जो मांस से लगा हुआ है शेष सब भाग भ्रूणावरण के साथ उखड़ जाता है। बच्चे के जन्म लेने के पश्चात् जो लोथड़ा निकलता है उसको **परिस्त्रव** कहते हैं। परिस्त्रव के अवयव ये होते हैं:—कमल, भ्रूणावरण, गर्भकला और रक्त। जब ये झिल्लियाँ गर्भाशय से अलग होती हैं तब थोड़ा बहुत रक्त बहा करता है। यदि एक घण्टे के भीतर परिस्त्रव बाहर न आ जावे या उसके बाहर निकलने के आसार दिखाई न दें, तब धात्री को उसके बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये।

प्रसूता

बच्चा जनने के पश्चात् स्त्री प्रसूता कहलाती है और उस घर

को जहाँ प्रसव हुआ है और जहाँ वह रहती है सूतिकागार कहते हैं। प्रसूता की परिचर्या किस प्रकार होनी चाहिये और सूतिकागार कैसा होना चाहिये इन बातों का वर्णन इस पुस्तक की सीमा से बाहर है इसलिये हम इस विषय की केवल एक दो बातें लिखकर समाप्त करेंगे।

प्रसव की पीड़ा और रक्त के बहने के कारण प्रसूता बहुत कमज़ोर हो जाती है और उसकी स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति इस समय बहुत घट जाती है। इस कारण यदि उसकी परिचर्या भली प्रकार और यथाविधि न हो तो उसको इस समय कई प्रकार के रोग सता सकते हैं। वास्तव में यह समय प्रसूता के लिये बहुत ही संकट का और विषम है।

सूतिकागार स्वच्छ और वायुव्याप्त होना चाहिये; सूर्य के प्रकाश के प्रवेश के लिये उसमें खिड़कियाँ भी अवश्य होनी चाहियें। उसमें किसी प्रकार का आड़कबाड़ न हो, न वहाँ किसी प्रकार की दुर्गन्ध आती हो। जिस शय्या पर प्रसूता विश्राम करे वह टूटी फूटी न हो। बिस्तर बहुत स्वच्छ हो। प्रसूता के पहनने के कपड़े भी साफ़ और सुथरे होने चाहियें। भग पोंछने के लिये मैले कुचैले कपड़े या गूदड़ का प्रयोग अत्यन्त हानिकारक है। इस काम के लिये अत्यन्त स्वच्छ धुला हुआ कपड़ा होना चाहिये। प्रसूता को उचित समय पर हलका शीघ्र पचनेवाला पौष्टिक भोजन मिलना चाहिये। सूतिकागार के पास किसी प्रकार का शोर और भब्भड़ न हो ताकि उसकी निद्रा में बाधा न पड़े। कोई काम ऐसा न करना चाहिये जिससे उसे रंज और फ़िकर पैदा हो।

प्रसव के पश्चात् गर्भाशय में परिवर्तन

परिस्रव निकलने के पश्चात् गर्भाशय धीरे धीरे अपने पूर्व परिमाण को प्राप्त होने लगता है। सामान्यतः १४-१५ दिनों में वह इतना छोटा हो जाता है कि वह वस्तिगह्वर में घुस जाता है। जब तक गर्भाशय वस्तिगह्वर में न पहुँच जावे उस समय तक स्त्री को बहुत चलना फिरना या शारीरिक परिश्रम न करना चाहिये। छठे-सातवें सप्ताह में उसका क़रीब क़रीब वही परिमाण हो जाता है जो गर्भ धारण करने से पहले था।

गर्भाशय और योनि से १२-१४ दिनों तक थोड़ा थोड़ा द्रव बहा करता है। आरम्भ में इस द्रव का अधिकांश रक्त होता है धीरे धीरे रक्त कम होता जाता है, तीन-चार दिन पीछे इस स्राव का रंग भूरा सा हो जाता है; ६-७ दिन पीछे यह स्राव पीले से रंग का हो जाता है। इस स्राव में रक्त के अतिरिक्त गर्भाशय की कला की गिरी हुई सेलें और श्लेष्म भी होती हैं। स्राव में कुछ गन्ध आया करती है। यदि स्राव में सड़ाव की दुर्गन्ध आवे या उसकी मात्रा शीघ्र ही कम हो जावे या वह बिलकुल बन्द हो जावे तो इसकी चिकित्सा कराने में ज़रा भी विलम्ब न करना चाहिये।

भ्रूण का रक्तसंचार* (चित्र ३८६ और ३८७)

गर्भावस्था का रक्तसंचार जन्म लेने के पश्चात् के रक्तसंचार

* चित्र ३८६ की व्याख्या:—जिधर को तीर की नोक है उधर ही को रक्त बहता है। जिन नलियों में नन्हें बिन्दुक हैं (जैसे नाभि शिरा और श्रु) उनमें शुद्ध रक्त रहता है, जिनमें तिर्छी समान्तर रेखाएँ हैं

से भिन्न होता है। इसका कारण यह है कि गर्भावस्था में भ्रूण के फुफ्फुस काम नहीं करते और रक्त की शुद्धि कमल द्वारा होती है।

नाल एक ओर भ्रूणनाभि से लगा रहता है दूसरी ओर कमल से। उसमें तीन रक्तवाहिनियाँ होती हैं दो धमनियाँ और एक शिरा। ये नाभि शिरा और नाभि धमनियाँ कहलाती हैं (चित्र ३८७ में ध=धमनी, शि=शिरा)। नाभि धमनियों द्वारा भ्रूण का अशुद्ध रक्त कमल में पहुँचता है और नाभिशिरा द्वारा शुद्ध रक्त कमल से लौटकर भ्रूण के शरीर में पहुँचता है (चित्र ३८६) भ्रूण की महाधमनी की अन्तिम शाखाओं में से हर एक की दो बड़ी शाखाएँ हो जाती हैं; इनमें से एक शाखा वस्तिगह्वरस्थ अंगों का पोषण करती है दूसरी शाखा वंक्षण बंधन के नीचे होकर ऊरु में चली जाती है (चित्र ३८६ में वस्तिगह्वर और अधोशाखा)। वस्तिगह्वरवाली धमनियों से दो शाखाएँ निकलती हैं ये नाभि धमनियाँ हैं (चित्र ३८६, ३८७)।

नाभिशिरा कमल से आरम्भ होती है और नाल द्वारा नाभि में से होकर उदर के भीतर घुसती है (चित्र ३८६, ३८७) और यकृत के अधो भाग में पहुँचकर कई शाखाओं में विभक्त हो

(जैसे अ, और अधोगा महा शिरा) उनमें अशुद्ध रक्त रहता है, जहाँ खाने बने हैं (जैसे मि, और महा धमनी की महराब) वहाँ मिश्रित रक्त रहता है; जहाँ नन्हीं रेखाएँ बनी हैं (जैसे ऊर्ध्वगा महाशिरा, अधोगा महाधमनी) वहाँ का रक्त मिश्रित रक्त से कम शुद्ध परन्तु अधोगा महाशिरा के रक्त से अधिक शुद्ध रहता है।

प=ग्राहककोष्ठों के बीच का परदा; छि=छिद्र, सं=धमनी संयोजक। ध=धमनी, शि=शिरा।

चित्र २८६

भ्रूण का रक्तसञ्चार

जाता है। इनमें से एक बड़ी शाखा संयुक्ता शिरा से मिल जाती है (चित्र ३८६ में १)। दूसरी शाखा अधोगा महाशिरा से जुड़ जाती है (चित्र ३८६ में २); शेष छोटी छोटी शाखाएँ यकृत में घुस जाती हैं। इस प्रकार जो शुद्ध रक्त कमल से आता है उसका कुछ भाग संयुक्ता शिरा द्वारा यकृत में पहुँचता है, कुछ सीधा यकृत में चला जाता है और कुछ भाग अधोगा महाशिरा में जाता है। जो शुद्ध रक्त यकृत में जाता है वह याकृती शिराओं द्वारा अधोगामहाशिरा में पहुँचता है।

अब अधोगामहाशिरा में शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकार का रक्त मिला हुआ है, शुद्ध रक्त नाभिशिरा द्वारा आता है और अशुद्ध यकृत से और उदर और अधो शाखाओं से (चित्र ३८६)। यह मिश्रित रक्त दाहिने ग्राहक कोष्ठों में पहुँचता है। इस समय दोनों ग्राहक कोष्ठों के बीच में रहनेवाले परदे में एक छिद्र होता है जिसके द्वारा दोनों ग्राहक कोष्ठ एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं; अधोगामहाशिरा का मिश्रित रक्त ऊर्ध्वगा-महाशिरा के रक्त से बिना मिले इस छिद्र में से होकर बाएँ ग्राहक कोष्ठ में पहुँचता है (चित्र ३८६ में * ; प परदा)। बाएँ ग्राहक कोष्ठ से यह रक्त बाएँ क्षेपक कोष्ठ में जाता है। ऊर्ध्वगामहाशिरा का रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठ में जाता है। जब क्षेपक कोष्ठ संकोच करते हैं तो बाएँ क्षेपक कोष्ठ का रक्त महा-धमनी में और दाहिने क्षेपक कोष्ठ का फुफ्फुसीया धमनी में चला जाता है; फुफ्फुसीया धमनी इस समय एक छोटी धमनी (चित्र ३८६ में सं) द्वारा महाधमनी की महराब से सम्बन्ध रखती है; यह धमनी संयोजक महाधमनी से ऐसे स्थान पर जुड़ी हुई है कि जिस से ऊपर उस की तीन बड़ी शाखाएँ निकल

चुकी हैं। (चित्र ३८६)। जो रक्त बाएँ क्षेपक कोष्ठ से महाधमनी की महराब में पहुँचता है वह हृदय में और तीन बड़ी धमनियों द्वारा शिर में और दोनों ऊर्ध्व शाखाओं में पहुँचता है और इन अंगों का पोषण करता है; शेष नीचे को अधोगामहाधमनी में चला जाता है। फुप्फुस इस समय काम नहीं करते इसलिये उनमें अधिक रक्त के जाने की आवश्यकता नहीं है; इस कारण जो रक्त दाहिने क्षेपक कोष्ठ से फुप्फुसीया धमनी में जाता है उसका अधिकांश धमनीसंयोजक द्वारा महाधमनी में चला जाता है और उस रक्त से जा मिलता है जो ऊर्ध्वशाखाओं तथा शिर की धमनियों में पहुँचने के पश्चात् शेष रह गया है। यह रक्त अधोगामहाधमनी की शाखाओं द्वारा शरीर के शेष अंगों का पोषण करता है; उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि यह रक्त बहुत शुद्ध नहीं है। इस रक्त का कुछ भाग नाभि धमनियों द्वारा कमल में जाता है और वहाँ शुद्ध होकर और पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करके नाभिशिरा द्वारा लौट आता है। अधो शाखाओं और उदर में महाधमनी की शाखाओं द्वारा पहुँचा हुआ रक्त अधोगा महाशिरा द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठ में लौट जाता है; यह शिरा रास्ते में नाभिशिरा से रक्त ग्रहण करती है। इस प्रकार रक्त चक्र सम्पूर्ण हो जाता है।

उपरोक्त वर्णन से ये बातें स्पष्ट हैं।

१—यकृत में सब से शुद्ध रक्त पहुँचता है गर्भस्थ बालक में यह एक परमावश्यक अंग होता है इस कारण इस को सब से शुद्ध रक्त मिलता है। जवान मनुष्य में यकृत का भार शरीर के भार का १/४० वाँ अंश होता है, परन्तु शिशु में वह १/१८ वाँ अंश होता है अर्थात् वह बहुत बड़ा होता है (चित्र ३८८)।

२—शिर और ऊर्ध्व शाखाओं को यकृत से कुछ कम शुद्ध परन्तु और शरीर की अपेक्षा अधिक शुद्ध रक्त जाता है।

३—उदर और अधोशाखा को सब से कम शुद्ध रक्त जाता है; इस रक्त का अधिक भाग एक बार ऊर्ध्व शाखाओं और शिर में हो आया है।

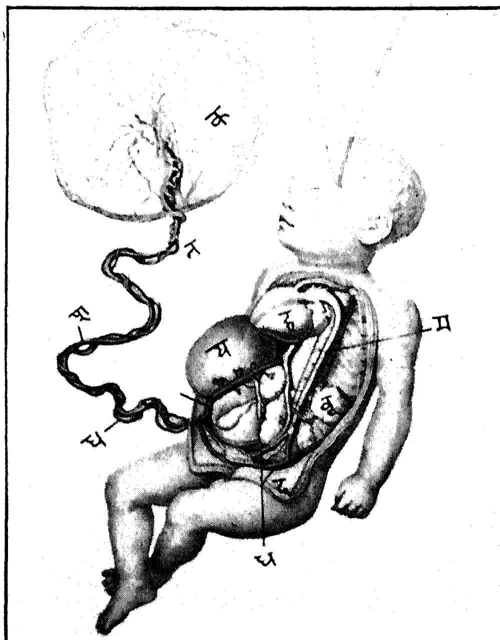
४—गर्भस्थ बालक और जवान मनुष्य के रक्तसंचालक अंगों में ये भेद होते हैं :—

(क) दोनों ग्राहक कोष्ठों के बीच में रहनेवाला परदा अपूर्ण रहता है; इस परदे में जो छिद्र होता है उसके द्वारा ये कोष्ठ एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं (चित्र ३८६ में *)।

(ख) फुप्फुसीया धमनी महाधमनी से सम्बन्ध रखती है; इन दोनों को मिलानेवाली धमनी को धमनीसंयोजक कहते हैं (चित्र ३८६ में सं)।

(ग) भ्रूण के शरीर में दो नाभिधमनियां हैं और एक नाभिशिरा है। नाभिशिरा का संयुक्त शिरा और अधोगामहाशिरा से सम्बन्ध है।

चित्र ३८७ नवजात शिशु

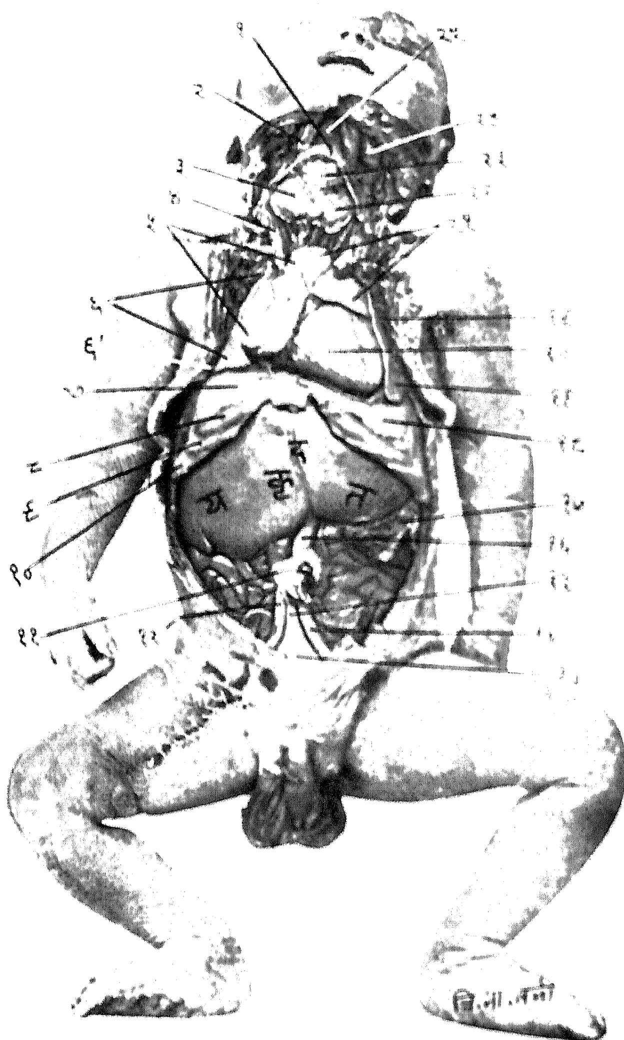


(Tiedmann)

य=कमल; न=नाल; श=नाभि शिरा; ध=नाभि धमनी; वृ=वृक्क; ह=हृदय; य=यकृत; म=महाधमनी।

पृष्ठ ८४२ के सम्मुख

चित्र ३८८ नवजात शिशु



क्षुद्रांत्र की लम्बाई '५'-८"

पृष्ठ ८४३ के सम्मुख

चित्र ३८८ की व्याख्या

इस चित्र में एक नवजात शिशु के ग्रीवा, वक्ष और उदर के अङ्ग दिखाए गए हैं। थाइमस ग्रन्थि बहुत अच्छी तरह दिखाई देती है। जवान मनुष्य की अपेक्षा शिशु में यकृत बहुत बड़ा होता है यह भी साफ़ साफ़ मालूम होता है। नाभि नाल के चार मुख्य अवयव भी साफ़ साफ़ दिखाई देते हैं। मूत्राशय वस्तिगह्वर से बहुत ऊपर निकला रहता है और उदर के अगली दीवार के पिछले पृष्ठ से मिला रहता है यह भी साफ़ दिखाई देता है।

१=कंठिकास्थि
२=द्विगुम्फिका पेशी
३=चुल्लिका ग्रन्थि का दाहिना पार्श्वार्ध
४=अन्तःशिरोधीया शिरा
५=थाइमस ग्रंथि का दाहिना खंड
६=दाहिना फुप्फुस
६'छठी पर्शुका
७=वक्ष उदर मध्यस्था पेशी
८=आठवीं उपपर्शुका
९=नौवीं उपपर्शुका
१०=दसवीं उपपर्शुका
११=नाभि
१२=दाहिनी नाभिधमनी
१३=मूत्राशय
१४=बाईं नाभिधमनी
१५=नली जो मूत्राशय के शिखर से नाभिनाल में जाती है जन्म के पश्चात् यह नली सूख जाती है और रज्जु समान हो जाती है। यही मूत्राशय का मध्यम बन्धन या नाभि-बन्धन कहलाता है।
१६=नाभिशिरा
१७=अन्त्रश्छदा कला
१८=वक्ष उदर मध्यस्था पेशी
१९, १९=बायाँ फुप्फुस
२०=हृदय
२१=थाइमस का बायाँ खंड
२२=चुल्लिका ग्रन्थि का बायाँ पार्श्वार्ध
२३=चुल्लिका कारटिलेज
२४=हन्वधोवर्ती लालाग्रन्थि
२५=हनु कंठिका पेशी

अध्याय ३३

नवजात शिशु (चित्र ३८७, ३८८)

पैदा होते ही बालक श्वास लेता है और वायु पहली बार उस के फुफ्फुसों में प्रवेश करती है। अब फुफ्फुस रक्त की शुद्धि का काम करने लगते हैं इस कारण जो रक्त फुफ्फुसीया धमनी से महाधमनी में जाया करता था वह अब वहाँ जाने के बजाय फुफ्फुसों में ही जाता है। धमनी संयोजक सिकुड़ कर तंग होने लगती है और चौथे और दसवें दिनों के बीच में पूर्ण तौर से बंद हो जाती है और अब वह ठोस हो जाती है। इस बंद अर्थात् अप्रवेश्य धमनी को धमनी बन्धन कहते हैं क्योंकि इस के द्वारा फुफ्फुसीया धमनी महाधमनी से बंधी रहती है।

जन्म से दूसरे और पाँचवें दिनों के बीच में नाभिशिरा और उस की शाखा भी बंद और अप्रवेश्य हो जाती हैं। नाभिशिरा अब एक गोल रज्जु के समान हो जाती है और यकृत से नाभि तक लगी रहती है। यही यकृत का गोल बंधन है।

दूसरे और पाँचवें दिनों के बीच में नाभिधमनियाँ भी सूखकर रज्जु समान हो जाती हैं और उन में रक्त नहीं रहता। अब इन का नाम नाभिबन्धन हो जाता है।

ग्राहककोष्ठों के बीच के परदे में जो छिद्र है वह सामान्यतः दस दिन के भीतर बंद हो जाता है; कभी कभी वह सूक्ष्म छिद्र उमर भर बना रहता है।

चौथे और सातवें दिनों के बीच में नाल सूख जाता है और शरीर से अलग होकर गिर पड़ता है। यदि काटते समय या सूख जाने से पहले उस में किसी प्रकार का मैल लग गया हो तो वह पक भी जाता है। नाल के पृथक हो जाने के पश्चात् उदर की दीवार में एक गढ़ा रह जाता है यही नाभि या सूंढ़ी है।

नवजात शिशु का भार ३-३½ सेर के लगभग होता है। पहले वर्ष के अंत में भार तिगुना हो जाता है; दूसरे वर्ष में दो-तीन सेर और अधिक हो जाता है। बालकों का भार उसी आयु को बालिकाओं के भार से कुछ अधिक हुआ करता है। यदि शिशु एक एक सप्ताह या पक्ष के पीछे तोला जावे तो इस बात का ठीक पता लग सकता है कि उस का बर्धन ठीक हो रहा है या नहीं। यदि कई सप्ताह तक तोल न बढ़े या कम होता जावे तो इस का कारण जानने में देर न करनी चाहिये।

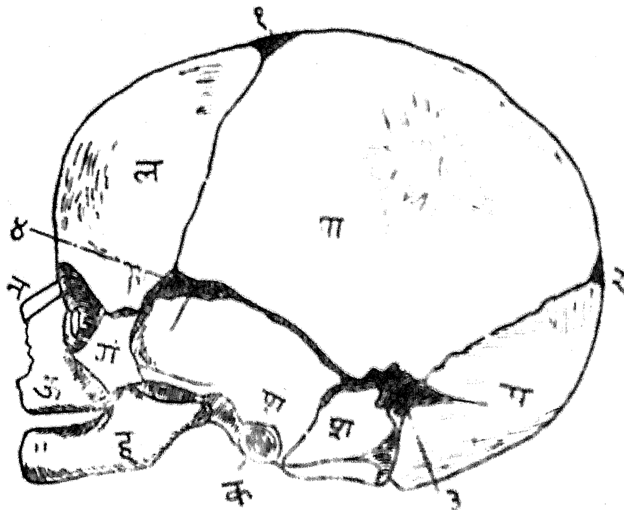
शिशु का कंकाल

कंकाल की अस्थियाँ अभी कोमल हैं; लम्बी अस्थियों के सिरे अभी कारटिलेज के हैं; कलाई की और पैर की कई अस्थियाँ अभी बननी भी आरम्भ नहीं हुईं। पाली भी अभी बिलकुल कारटिलेज की है।

खोपड़ी को अस्थियाँ अभी मुलायल हैं और पूरे तौर से नहीं बन पाई हैं। ६ स्थानों में तो अस्थि की जगह अभी झिल्ली ही है। दो स्थान खोपड़ी के ऊपर के भाग में मध्य रेखा में हैं; चार स्थान उस के पार्श्वों पर हैं दो एक ओर और दो दूसरी ओर। जो ललाटास्थि और पार्श्विकास्थियों के बीच

में है उसको पूर्व विवर (ब्रह्म रन्ध्रम्) * कहते हैं; (चित्र ३८९ में १) पश्चात् अस्थि और पार्श्विकास्थियों के बीच में पाश्चात्य विवर (अधिपति रन्ध्रम्) है (चित्र ३८९ में २) जो विवर खोपड़ी के पार्श्व पर हैं वे पूर्व पार्श्विक और

चित्र ३८९ नवजात बालक की खोपड़ी



१=ब्रह्म विवरम्; २=अधिपति या शिव विवरम्; ३=पूर्व पार्श्विक विवरम्, ४=पाश्चात्य पार्श्विक विवरम्; ल=ललाटास्थि ; पा=पार्श्विकास्थि ; प=पश्चात् अस्थि ; न=नासास्थि ; श=शंखास्थि; क=कर्णबहिर्द्वार; ह=अधोहनु; ऊ=ऊर्ध्वहनु ; गं=गंडास्थि ।

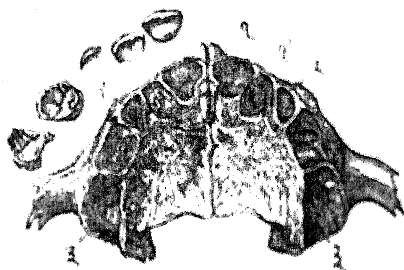
* ये प्राचीन नाम हैं । 'रन्ध्रम' की अपेक्षा हमको 'विवर' शब्द अधिक शुद्ध मालूम होता है ।

पाश्चात्य पार्श्विक विवर कहलाते हैं (चित्र ३८९ में ३,४)। इन में से पूर्व विवर या ब्रह्मरंध्र चौखुंटा और सब से बड़ा होता है; उस की लम्बाई १½ इंच और चौड़ाई १ इंच के लगभग होती है; ज्यों ज्यों इस विवर के पास की अस्थियाँ बढ़ती हैं त्यों त्यों यह छोटा होता जाता है और झिल्ली की जगह अस्थि बन जाती है। दूसरे वर्ष के मध्य में वह विवर जाता रहता है। पाश्चात्य विवर और पार्श्विक विवर छोटे छोटे होते हैं और जन्म से एक दो मास पीछे जाते रहते हैं।

दंतोद्गम—दंतोद्भेद

नवजात शिशु के दोनों हनुओं के भीतर २० पतनशील दाँतों के शिखर मौजूद रहते हैं। धीरे धीरे ये दाँत बढ़ते हैं और छठे सातवें मास में मसूढ़ों को छेदकर हनुओं से बाहर आने लगते हैं; इन के बाहर निकलने को दंतोद्गम या दंतोद्भेद कहते हैं। सब से पहले नीचे के अंतःकर्त्तनक निकलते हैं, फिर ऊपर के अंतःकर्त्तनक, फिर ऊपर के बाह्य-कर्त्तनक, फिर नीचे के बाह्यकर्त्तनक। कर्त्तनकदंत निकलने के पीछे, ऊपर और नीचे के प्रथम चर्वणक (दो ऊपर और दो नीचे) निकलते हैं; तत्पश्चात् भेदकदंत या कीले निकलते हैं (दो ऊपर और दो नीचे)। सब से पीछे द्वितीय चर्वणक निकलते हैं। इस प्रकार दस दाँत ऊपर होते हैं और दस नीचे। शिशु में केवल बीस ही दाँत होते हैं:—आठ चर्वणक; चार भेदक, और आठ कर्त्तनक; तृतीय चर्वणक और अग्रचर्वणक नहीं होते। ये सब दाँत पतनशील हैं, छठे वर्ष में ये उखड़कर गिरने लगते हैं और उन के स्थान में स्थायी दाँत निकलते हैं।

चित्र ३९० नवजात शिशु के ऊर्ध्व और अधो हन्वस्थियां



ऊर्ध्व हन्वस्थि



अधो हन्वस्थि



ऊर्ध्व हन्वस्थि

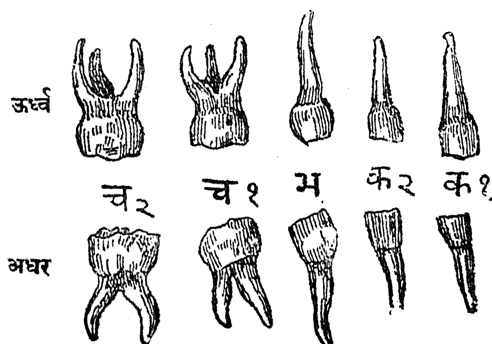
(Tomes' Dental Anatomy)

दाँत अस्थियों से बाहर निकालकर दिखाए गये हैं

१=अन्तःकर्त्तनक उलूखल — १'=बाह्य कर्त्तनक उलूखल

२=भेदक उलूखल; — ३=पश्चिम चर्वणक उलूखल

चित्र ३९१ पतनशील दंत



पतनशील दंत के निकलने का समय

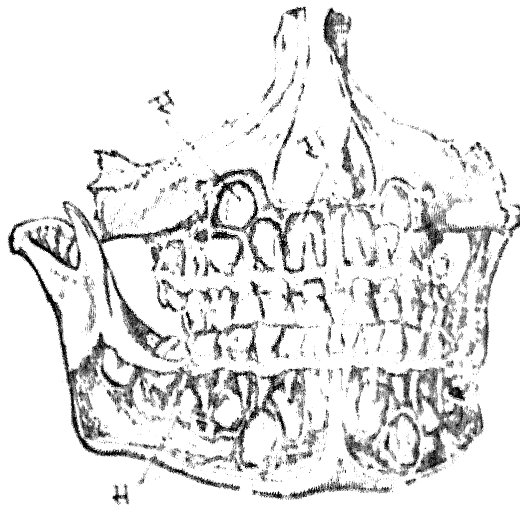
१—नीचे के अंतःकर्त्तनक	= ६ से ९ मास तक
२—ऊपर के चारों कर्त्तनक	= ८ से १२ ,, ,,
३—नीचे के बाह्य कर्त्तनक और अगले चार चर्वणक	= १२–१४ ,, ,,
४—भेदक दंत	= १८–२४ ,, ,,
५—पिछले चर्वणक	= २४-३० ,, ,,

१ वर्ष के शिशु के	६ दंत होने चाहियें।
१½ वर्ष ,, ,, ,,	१२ ,, ,, ,,
२ वर्ष ,, ,, ,,	१६ ,, ,, ,,
२½ वर्ष ,, ,, ,,	२० ,, ,, ,,

आत्शकी शिशुओं में दंतोद्गम कुछ शीघ्र होता है। रिकेट्स* आदि रोगों में दंत कुछ देर में निकलते हैं।

* अङ्गरेज़ी भाषा का शब्द है।

चित्र ३५२



(Tomes' Dental Anatomy)

दोनों हनुओं में दोनों प्रकार के दाँत हैं—स्थायी और पतनशील। जब पतनशील दंत गिर जाते हैं तो स्थायी दंत उनकी जगह आ जाते हैं।

स=स्थायी दंत। पतनशील दंत बाहर निकले हुए हैं और स्थायी दंत अस्थि के भीतर हैं।

स्थायी दंत के निकलने का समय

प्रथम पश्चिम चर्वणक	,	४ =	६	वर्ष
कर्त्तनक	,	८ =	७–८	वर्ष
अग्रचर्वणक	,	८ =	९–१२	वर्ष
भेदक	,	४ =	१२–१४	वर्ष

द्वितीय पश्चिम चर्वणक, ४ = १०–१५ वर्ष
तृतीय पश्चिम चर्वणक, ४ = १७–२५ वर्ष

नीचे के दाँत ऊपर के दाँतों से पहले निकलते हैं। छठे वर्ष में हर एक हनु में २४ दंत होते हैं दोनों में ४८। इन में से २० पतनशील होते हैं और २८ स्थायी; स्थायी दंत पतनशील दंत के नीचे रहते हैं या मसूढ़ों से ढँके रहते हैं। २५ वर्ष की आयु में बहुधा हर एक हनु में १६ दंत होते हैं दोनों में ३२; कभी कभी बुद्धिदंत २५ और ४० वर्ष के बीच में निकला करते हैं। [चित्र ३९२ में ५ वर्ष के बालक के जावड़ों के दाँत दिखाए गये हैं]

वक्ष

नवजात शिशु के वक्ष के अग्र-पश्चात् और व्यत्यस्त व्यास क़रीब क़रीब एक होते हैं। ज्यों ज्यों शिशु बढ़ता है व्यत्यस्त व्यास बढ़ जाता है और वक्ष अंडाकार हो जाता है।

नवजात शिशु के वक्ष का घेरा शिर के घेरे से ½ इंच छोटा होता है; शिशु काल में दोनों घेरे बराबर रहते हैं; तीसरे वर्ष में वक्ष का घेरा शिर के घेरे से बड़ा हो जाता है। मज़बूत बालकों का वक्ष बड़ा होता है; छोटा वक्ष इस बात का साक्षी है कि बालक कमज़ोर है।

अन्नमार्ग–उदर

आमाशय—नवजात शिशु के आमाशय की समाई ½ छटाँक के लगभग होती है; तीन मास में यह कोई २ छटाँक हो जाता है; छठे मास में ३ छटाँक; एक वर्ष से में ४½ छटाँक के लगभग।

अंत्र—नवजात शिशु की क्षुद्र अंत्र की लम्बाई ९ फुट और बृहत् अंत्र की लम्बाई १½ फुट के लगभग होती है।

शिशु काल में उदर का घेरा (परिधि) क़रीब क़रीब वक्ष के घेरे के बराबर होता है। दूसरे वर्ष के अंत तक शिर, वक्ष और उदर के घेरे क़रीब क़रीब एकसे होते हैं, इसके पश्चात् वक्ष का घेरा बढ़ने लगता है। उदर का बड़ा होना और फूलना रोगों का साक्षी है।

शिशु की गति

चौथे मास में शिशु चीज़ों के पकड़ने की कोशिश करने लगता है। इस मास के लगभग उसका शिर धड़ पर सीधा टिकने लगता है।

सातवें-आठवें मास में स्वस्थ शिशु कुछ समय तक अपने सहारे बैठने लगता है।

ग्यारहवें-बारहवें मास में वह थोड़ा सा सहारा मिलने पर खड़े होने की कोशिश करने लगता है।

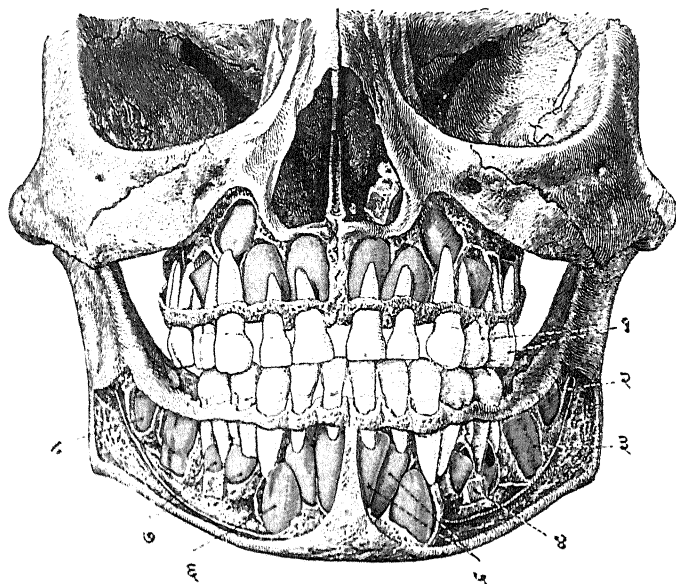
चौदहवें-पन्द्रहवें मास के लगभग वह चलना आरम्भ करता है।

शिशु की ज्ञानेन्द्रियाँ

दृष्टि—नवजात शिशु के नेत्र इतने कोमल होते हैं कि वह अभी प्रकाश के तेज को नहीं सह सकते। तेज़ प्रकाश के प्रभाव से उसकी आँखें तुरन्त मिच जाती हैं। इस कारण कुछ सप्ताह तक उसको तेज़ प्रकाश से बचाना चाहिये। पहिले सप्ताह के अन्त में उसकी आँखें प्रकाश की ओर फिरने लगती हैं। नव-

क्षुद्र

चित्र ३९३, ५ वर्ष के बालक के दाँत



(Sobotta's Atlas deskriptiven Anatomie)

१=पतनशील चर्वणक
२=सुरंग
३=प्रथम स्थायी चर्वणक दंत
४=अनुचिबुक रंध्र
५=स्थायी कर्त्तनक दंत
६=स्थायी भेदक दंत
७=स्थायी अग्र चर्वणक दंत
८=स्थायी द्वितीय चर्वणक दंत

पृष्ठ ८'११ के सम्मुख

जात शिशु के नेत्रों की पेशियाँ अभी ठीक ठीक और एक दूसरे के साथ काम नहीं करतीं, उसकी आँखें जिधर घूमनी चाहियें उधर ठीक ठीक नहीं घूमतीं। चौथे मास से उसकी नज़र ठहरने लगती है और नेत्र की गतियाँ पहले की अपेक्षा अच्छी तरह होने लगती हैं। ६ मास की आयु का शिशु देखी हुई चीज़ों को कुछ कुछ पहचानने लगता है।

श्रवण—पैदा होने के २४ घंटे पीछे तक कभी कभी कई दिन तक शिशु को कुछ सुनाई नहीं देता। धीरे धीरे सुनने की शक्ति बढ़ती जाती है; फिर यह शक्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि धीमे शब्द या आहट से भी वह जाग जाता है। दूसरे-तीसरे मास वह यह पहचानने लगता है कि शब्द किस दिशा से आता है, शब्द सुनकर वह अपना शिर उस दिशा की ओर मोड़ लेता है।

स्पर्श—स्पर्श शक्ति कुछ न कुछ जन्म से ही मौजूद रहती है। ओष्ठों और जिह्वा की अपेक्षा जो चूसने के काम में आते हैं शेष शरीर में यह शक्ति कम होती है। तीसरे मास में यह शक्ति सब शरीर में उत्पन्न हो जाती है। गरमी-सर्दी को वह ख़ूब पहचान सकता है, जिह्वा में यह शक्ति सब से अधिक होती है। शिशु के माथे और कर्णाञ्जली में स्पर्श ज्ञान की शक्ति सब से ज़्यादा होती है।

स्वाद—स्वाद पहचानने की शक्ति जन्म से ही बहुत अच्छी होती है। शिशु मीठी चीज़ों को अधिक पसन्द करता है।

गंध—गंध पहचानने की शक्ति भी थोड़ी बहुत जन्म से ही होती है।

शब्दोच्चारण

पहले वर्ष के अन्त में शिशु कुछ बोलने की कोशिश करने लगता है। दूसरे वर्ष के अन्त में वह दो-तीन शब्द मिलाकर बात कहने लगता है। सब से पहले वह मनुष्यों के नाम सीखता है, फिर चीज़ों के नाम सीखता है। यदि दो वर्ष का बालक कुछ बोलने न लगे तो इसका कारण जानना आवश्यक है।

वर्द्धन तालिका*

आयु पिछले जन्म दिन को	बालक			बालिका		
	ऊँचाई		भार	ऊँचाई		भार
	फुट	इञ्च		फुट	इञ्च	
१ वर्ष	२	५½	१८½ पौंड	२	३½	१८ पौंड
२ ,,	२	८½	२२½ ,,	२	७	२५½ ,,
३ ,,	२	११	३४ ,,	२	१०	३१½ ,,
४ ,,	३	१	३७ ,,	३	०	३६ ,,
५ ,,	३	४	४० ,,	३	३	३९ ,,
६ ,,	३	७	४४½ ,,	३	६	४१¾ ,,
७ ,,	३	१०	४९¾ ,,	३	८	४७½ ,,
८ ,,	३	११	५५ ,,	३	१०½	५२ ,,
९ ,,	४	१¾	६०½ ,,	४	०¾	५५½ ,,
१० ,,	४	३¾	६७½ ,,	४	३	६२ ,,
११ ,,	४	५½	७२ ,,	४	५	६८ ,,
१२ ,,	४	७	७६¾ ,,	४	७½	७६½ ,,
१३ ,,	४	९	८२½ ,,	४	९¾	८७ ,,
१४ ,,	४	११¼	९२ ,,	४	११¾	९६¾ ,,
१५ ,,	५	२¼	१०२¾ ,,	५	१	१०६¼ ,,

* From Leonard Williams' Obesity (Oxford Medical Publications) 1926

यूरोप और अमेरिका के पुरुषों के औसत भार (पौंड में)
(ऊँचाई में जूता शामिल है)

आयु वर्ष	फु० ५	फु० इं० ५·२	फु० इं० ५·४	फु० इं० ५·६	फु० इं० ५·८	फु० इं० ५·१०	फु० ६	फु० इं० ६·२	फु० इं० ६·४
१६	९९	१०४	११०	११८	१२६	१३४	१४४	१५४	१६४
१८	१०३	१०८	११४	१२२	१३०	१३८	१४८	१५८	१६८
२०	१०७	११२	११८	१२६	१३४	१४२	१५१	१६१	१७१
२२	१०९	११४	१२१	१२९	१३६	१४४	१५३	१६३	१७३
२४	१११	११६	१२३	१३१	१३८	१४६	१५५	१६७	१७७
२६	११३	११७	१२४	१३२	१४०	१४८	१५८	१७०	१८१
२८	११५	११९	१२५	१३३	१४१	१४९	१६०	१७२	१८३
३०	११६	१२०	१२६	१३४	१४२	१५१	१६२	१७४	१८६
३२	११७	१२१	१२७	१३५	१४४	१५३	१६४	१७६	१८७
३४	११८	१२२	१२८	१३६	१४५	१५५	१६६	१७८	१९०
३६	११९	१२३	१२९	१३७	१४६	१५६	१६७	१८०	१९२
३८	१२०	१२४	१३०	१३८	१४७	१५७	१६९	१८२	१९४
४०	१२१	१२५	१३१	१३९	१४८	१५८	१७०	१८३	१९६
४२	१२२	१२६	१३२	१४०	१४९	१५९	१७१	१८४	१९८
४४	१२३	१२७	१३३	१४१	१५०	१६०	१७२	१८५	१९९
४६	१२४	१२८	१३४	१४२	१५१	१६१	१७३	१८६	२००
४८	१२४	१२८	१३४	१४२	१५१	१६१	१७३	१८७	२०१
५०	१२५	१२८	१३५	१४३	१५३	१६३	१७४	१८८	२०२

क्षुद्र

यूरोप और अमेरिका की स्त्रियों के औसत भार (पौंड में)
(ऊँचाई में जूता शामिल है)

आयु वर्ष	फु० इ० ४'८	फु० इ० ४'१०	फु० इ० ५'०	फु० इ० ५'२	फु० इ० ५.४	फु० इ० ५'६	फु० इ० ५'८	फु० इ० ५'१०	फु० इ० ६'०
१६	९६	१००	१०३	१०८	११४	१२२	१३०	१३७	१४७
१८	९८	१०२	१०६	१११	११७	१२४	१३२	१३९	१४९
२०	१००	१०४	१०८	११३	११९	१२६	१३४	१४१	१५०
२२	१०१	१०५	१०९	११४	१२०	१२७	१३५	१४२	१५०
२४	१०३	१०७	१११	११५	१२१	१२८	१३६	१४४	१५२
२६	१०४	१०८	११२	११६	१२२	१२९	१३८	१४५	१५२
२८	१०५	१०९	११३	११७	१२४	१३१	१३९	१४७	१५४
३०	१०६	११०	११४	११८	१२५	१३२	१४०	१४८	१५५
३२	१०७	१११	११५	११९	१२६	१३३	१४१	१४८	१५५
३४	१०९	११३	११७	१२१	१२८	१३६	१४४	१५०	१५६
३६	११०	११४	११८	१२२	१२९	१३७	१४५	१५२	१५८
३८	१११	११५	११९	१२४	१३१	१३९	१४७	१५४	१६०
४०	११३	११७	१२१	१२६	१३२	१४०	१४८	१५५	१६१
४२	११४	११८	१२३	१२७	१३३	१४१	१४९	१५६	१६३
४४	११६	१२०	१२४	१२९	१३५	१४३	१५१	१५८	१६५
४६	११७	१२१	१२५	१३०	१३६	१४४	१५२	१५९	१६६
४८	११८	१२२	१२६	१३१	१३७	१४६	१५५	१६२	१६९
५०	११९	१२३	१२७	१३२	१३८	१४६	१५५	१६३	१७०

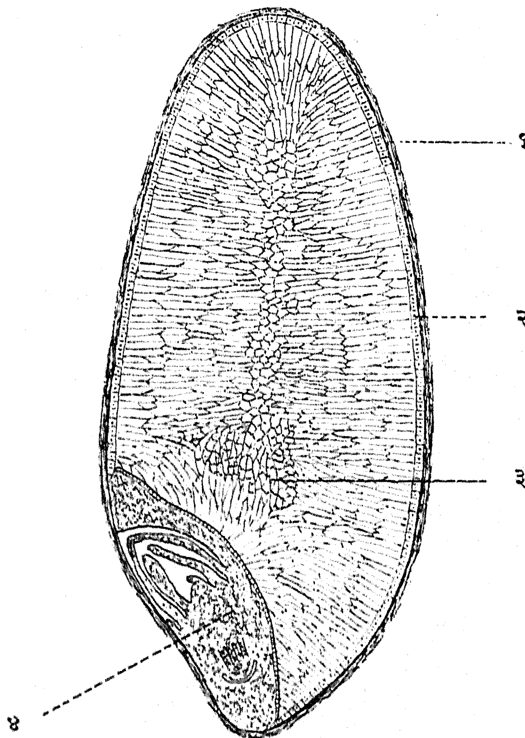
मध्य प्रदेश और संयुक्त प्रान्त के हिन्दुओं के औसत भार (पौंडों में)

आयु वर्ष	फु० इ० ४'१०	फु० इ० ५'०	फु० इ० ५'१	फु० इ० ५'२	फु० इ० ५'३	फु० इ० ५'४	फु० इ० ५'५	फु० इ० ५'६	फु० इ० ५'७	फु० इ० ५'८	फु० इ० ५'९	फु० इ० ५'१०	फु० इ० ५'११	फु० इ० ६'०
२०	१०२	१०६	१०८	११०½	११३	११५½	११८½	१२१	१२४	१२८	१३२	१३६	१४०	१४५
२५	१०५	१०९	१११	११४	११६	११८½	१२१	१२४	१२७	१३१	१३५	१३९	१४४	१४९
३०	१०९	११३	११५½	११८	१२१	१२४	१२७	१३०	१३३	१३६	१४०	१४४	१४९	१५४
३५	११२	११६	११९	१२२	१२४	१२७	१३०	१३३	१३६	१४०	१४५	१५०	१५५	१६०
४०	११६	१२०½	१२३	१२६	१२९	१३२	१३५	१३८	१४१	१४६	१५१	१५६	१६१	१६६
४५	१२०	१२५	१२७	१३०	१३३	१३६	१३९	१४२½	१४६	१५०	१५४	१५८	१६२	१६७
५०	१२१	१२६	१२९	१३२	१३५	१३८	१४१	१४५	१४९	१५४	१५९	१६४	१६९	१७३

Experience of the Oriental Government Security Life Assurance Co. Ltd.

अध्याय १५ का परिशिष्ट

चित्र ३९४ गेहूँ के दाने की बनावट



(By permission of H. M. Stationary office, from Dr. J. M. Hamill's "Report on the Nutritive Value of Bread made from Different Varieties of Wheat")

१=वह भाग जिस से चोकर बनती है २=सेलों की तह जो मशीन से आटा पीसे जाने पर चोकर के साथ अलग हो जाती है ३=बीच का भाग ४=भ्रूण—इसी में खाद्योज नं० २ पाया जाता है

अध्याय १६ का परिशिष्ट

उदर की अगली दीवार

चित्र ३९५, ३९६ की व्याख्या

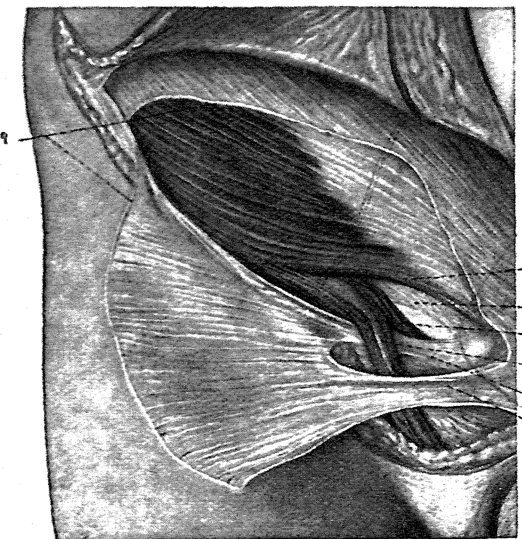
इन चित्रों में यह दर्शाया गया है कि अंड धारक रज्जु किस प्रकार उदर से वृषण में पहुँचती है। उदर के नीचे के भाग में एक मांस और कला से ढका हुआ एक विवर होता है (एक दाहिनी ओर और एक बाईं ओर); इसी विवर की बनावट इन चित्रों में दिखाई गई है।

चित्र ३९५

१=उदरच्छदा बहिःस्था की कंडरा कला
२=उदरच्छदा मध्यस्था पे०
३=उदरच्छदा अंतःस्था की कला
४=अंड धारक रज्जु
५=अंडोत्थापिका पे०
६=उपरितन वंक्षण विवर का अधर शृङ्ग
७=उपरितन वंक्षण विवर का ऊर्ध्व शृङ्ग

चित्र ३९६

१=उदरच्छदा मध्यस्था कटी हुई
२=उदरच्छदा बहिःस्था की कंडरा कला
३=उदरच्छदा अंतःस्था पे०
४=उदरच्छदा अंतःस्था की कंडरा
५=बंधन
६=अंड धारक रज्जु
७=अंडोत्थापिका पे०



Schultze-Lubosch—Topographischen Anatomie

चित्र ३९५, ३९६

अध्याय २१ का परिशिष्ट

(स्वाधीन या स्वतंत्र नाड़ी संस्थान)

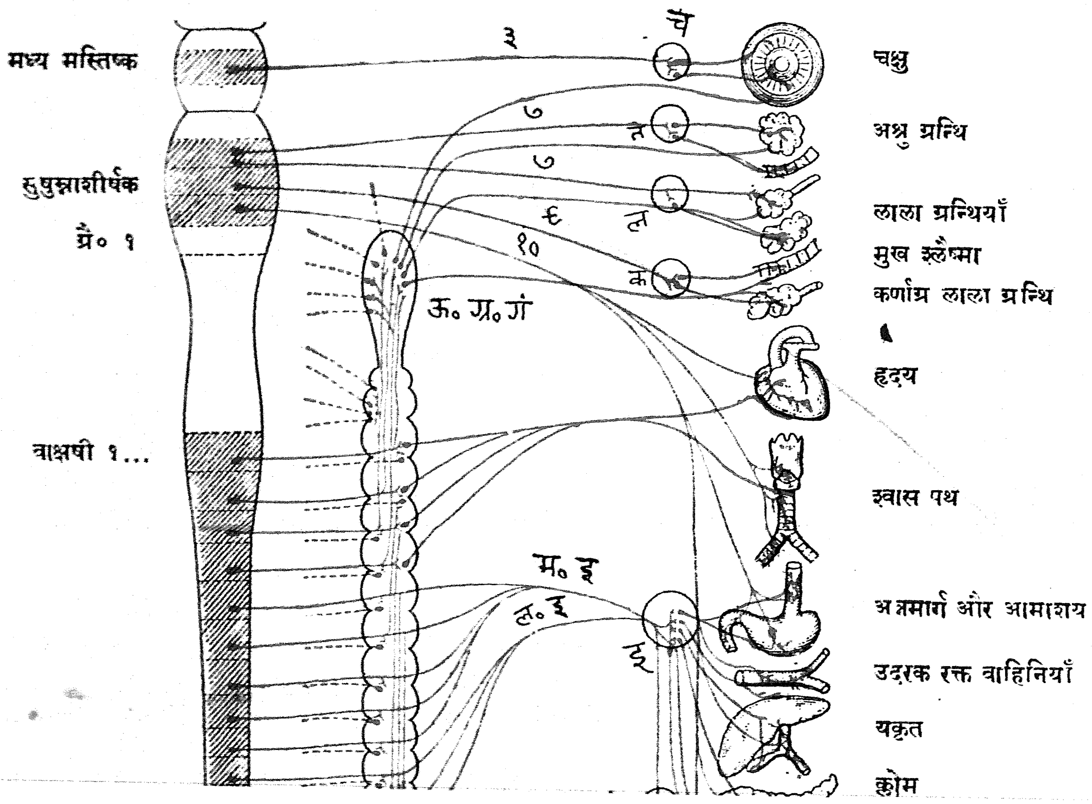
रंगीन चित्र २२६ प्लेट ९२

इस संस्थान के तार आशयों, ग्रन्थियों, रक्त वाहिनियों और अनैच्छिक मांस को जाते हैं। इस संस्थान के दो भाग हैं :—

(१) **मध्यस्थ स्वतंत्र नाड़ी मंडल**—जिसकी सेलें मस्तिष्क और सुषुम्ना में रहती हैं विशेषकर मध्य मस्तिष्क, पश्चात्य मस्तिष्क (=सुषुम्ना शीर्षक, सेतु और लघु मस्तिष्क) में और सुषुम्ना के वाक्षसी, कटिकी और त्रिक भागों में।

(२) **प्रान्तस्थ स्वतंत्र नाड़ी मंडल**—जो मध्यस्थ स्वतंत्र नाड़ी मंडल की सेलों के तारों से बनता है। ये तार कुछ मास्तिष्की और सौषुम्न नाड़ियों में रहते हैं। ये तार अपने इष्ट प्रदेश को सीधे नहीं पहुँचते प्रत्युत वे कुछ गंडों में जाकर रह जाते हैं। फिर इन गंडों से नये तार निकलते हैं जो इष्ट प्रदेश तक पहुँचते हैं।

चित्र २९६ स्वतंत्र नाड़ी संस्थान



स्वतंत्र नाड़ी संस्थान के दो विभाग हैं।

(१) सपिंगल विभाग—यह स्वतंत्र नाड़ी संस्थान के कापालिक और त्रिक सिरों पर पाया जाता है (चित्र २९६ में इस विभाग के तार नीले हैं। ये तार ऊपर की ओर अर्थात् कपाल की ओर और नीचे की ओर अर्थात् त्रिक की ओर हैं)। कापालिक सपिंगल तार मस्तिष्क की तीसरी, सातवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं नाड़ियों द्वारा निकलते हैं (देखो चित्र में ३,७,९,१० नीले तार)। इन तारों का अंत इस प्रकार होता है :—तीसरी द्वारा तारों का चाक्षुषी गंड में (चित्र में च); सातवीं द्वारा तारों का तालिवकी और लाला गंडों में (चित्र में त और ल); नवीं द्वारा कर्णी गंड में (चित्र में क) नवीं, दसवीं और ग्यारहवीं नाड़ियों के तार अधिकतर सपिंगल होते हैं और जिन गंडों में इनका अंत होता है वे गंडें उन अंगों की दीवारों में रहती हैं जो इन तारों के इष्ट प्रदेश हैं। (देखो चित्र में १० नीले तार जो हृदय, स्वरयंत्र और टेंटुआ, अन्न प्रनाली और आमाशय ; उदर की रक्त वाहिनियाँ, यकृत, क्लोम, उपवृक्क क्षुद्रांत्र और बृहदंत्र को जा रहे हैं)।

त्रिक सपिंगल तार दूसरी तीसरी और चौथी त्रिक नाड़ियों द्वारा निकलते हैं। इनका अंत श्रोणि नाड़ी जालों की गंडों में होता है। इन गंडों से जो तार निकलते हैं वे श्रोणि के अंगों को जाते हैं (देखो चित्र में श्रो० नीले तार)।

(२) पिंगल विभाग—स्वतंत्र नाड़ी संस्थान का शेष भाग इन तारों से बनता है। पिंगल नाड़ी मंडल का वर्णन पीछे किया जा चुका है। इस विभाग में केन्द्र त्यागी तार सब वाक्षषीऔर पहली और दूसरी (कभी कभी तीसरी) काटिकी नाड़ियों द्वारा सुषुम्ना से निकलते हैं (देखो चित्र में लाल तार जो सुषुम्ना के

१५ खंडों से निकल रहे हैं)। इन नाड़ियों से श्वेत सम्बन्धक द्वारा निकलकर वे पिंगल गंडों में घुस जाते हैं। वहाँ से फिर नये तार निकलते हैं जो धूसर सम्बन्धक द्वारा फिर नाड़ियों से मिल जाते हैं और इन नाड़ियों द्वारा अपने अपने इष्ट प्रदेशों को पहुँचते हैं (पढ़ो पिंगल नाड़ी मंडल—और देखो चित्र में लाल तार जो पिंगल गंडों से निकल कर हृदय और श्वास पथ को, और महा इड़ा और लघु इड़ा नाड़ियों द्वारा (चित्र में म-इ और ल-इ) अन्न मार्ग और अन्न मार्ग सम्बन्धी ग्रन्थियों को ; और श्रोणि में रहने वाले मूत्राशय, इत्यादि अंगों को जाते हैं।)

चित्र में :—

च=चाक्षुषी गंड ; न=नासिका गंड ; ल=जिह्वा अधोवर्ती लाला गंड ; क=कर्णी गंड । अ, प्र, गं=ऊर्ध्व प्रैवेयी गंड । म० इ=महा इडा नाडी ; ल० इ=लघु इडा नाडी; इ=इडा गंड; अ० अं० गं=ऊर्ध्व आंत्रिक गंड; अ० अं=अधर आंत्रिक गंड ।

श्रो=श्रोणिमा पिंगल नाड़ियाँ ।

लाल तार=सपिंगल नाड़ी संस्थान ।

नीले तार=पिंगल नाड़ी संस्थान ।

अनुक्रमणिका वा परिभाषा

अनुक्रमणिका वा परिभाषा

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
ुवीक्षण	३	Microscope
ुवीक्ष्य	७	Microscopic
ीबा	८	Amœba
ु	६७९	Molecule
ुमींगी	१८	Nucleolus
स्थि संस्थान	२५	Osseous system
्भुत बालक	८०२	Monster
ो शाखा	२७	Lower extremity
ुजंघास्थि	८५	Fibula
र खंड	१०५	Xiphoid process
र धारा	१०७	Inferior border
ध पति रन्ध्रम्	११४,११७	Posterior fontanelle
रतालुखात	११९	Anterior palatine fossa
र चर्वणक दन्त उलूखल	११९	Alveolus for anterior premolar
नेद्रा	३७९	Sleeplessness
ुकूट प्रवर्द्धन	११९	Jugular process
त्रजनीय	३५९	Non-nitrogenous
्म कूट	११९	Petrous process

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
अर्बुद	५१	Protruberance
अधोभाग	५१	Base
अक्षक	४३	Clavicle
अक्षक पर्शुका बन्धन	५४	Costo-clavicular ligament
अग्र बाह्य तल	६०	Anterolateral surface
अग्र धारा	६०	Anterior border
अधर श्रृङ्ग	७४	Inferior horn
अन्तर्मणिक	६७	Styloid process of ulna
अपार दर्शक	२३४	Opaque
[illegible]ण्डाकार	२४६	Oval, ovoid
[illegible]रंगेच्छुश्वेताणु	२४८	Eosinophile leucocyte
अर्द्ध चन्द्राकार	२६४	Semilunar
अन्न प्रणाली परिखा	२९७	Groove for oesophagus
अनामिका धमनी परिखा	२९७	Groove for innominate artery
अन्तः त्रिपार्श्विका	९०	Internal or first cuneiform
अंतः श्वसन	३१४	Inspiration
अश्रु छिद्र	६६४	Punctum lacrimale

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
अक्षि गोलक	६४०	Eye ball
अक्षि खात	६३९	Orbital fossa
अक्षि लोम	६३९	Eye lash
अपार दर्शक	६५२	Opaque
अर्द्ध स्वच्छ	६५२	Translucent
अंडोत्थापिका प्रतिक्रिया	६३४	Cremastric reflex
अक्षि श्लैष्मिककला प्रतिक्रिया	६३५	Conjunctival reflex
अग्र कोष्ठ	६३९	Anterior chamber
अधो अन्वायाम शिरा कुल्या	५६६	Inferior sagittal sinus
अश्व पुच्छ	५८१	Cauda equina
अग्र चालनी स्थान	५७५,५५१	Anterior perforated space
अग्र संयोजक	६०४	Anterior commissure
अन्तः कुटिल पिण्ड	६०४	Medial geniculate body
अधर चतुष्पिंड	६०४	Inferior colliculus
अधर चतुष्पिंड बाहु	६०४	Inferior brachium
अग्र अवगुंठन	५५८,६०४	Anterior medullary velum
अधर शाखा क्षेत्र	६१०	Lower extremity area
अन्तरीय नाड़ी कोष	६१०	Internal capsule

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
अनुप्रस्थ बृहत् अंत्र	४६७	Transverse colon
*अमोनिया	३६०	Ammonia
अनघुल	३६०	Insoluble
*अल्ट्रा वायोलेट रेज़	३७३	Ultra-violet rays
अर्बुदांतरिक रेखा	४०५	Intertubercular plane
अधर शृङ्ग	४११	Inferior cornu
अन्न मार्ग	४१४	Digestive tract
अन्न प्रणाली	४२०	Oesophagus
अग्र चर्वणक	४१८	Anterior molar
अन्त्र पुट	४३१	Cæcum
अन्त्रच्छदा कला	४७४	Omentum
अन्त्र धारक कला	४४६	Mesentery
अन्त्र परिशिष्ट	४५६	Appendix
अधर क्षुद्रांत्र	४४५	Ileum
अधोगा महा शिरा खात	४५१	Groove for inferior vena cava
*अमाइलोप्सिन	४५०	Amylopsin
अपक्व	४८८	Undigested
अनात्मीकृत	४८८	Unabsorbed
अतिनिद्रा रोग	५०५	Sleeping sickness
अमोघोषध	५२८	Specific medicine
अविनाशक मात्रा	५३४	Non-lethal dose
अधर ललाट सीता	५४४	Inferior frontal sulcus

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
अधः पाश्चात्य चक्रांग	५४४	Postero-inferior gyrus
अक्ष	६५४	Axis

आ

आन्तर ऊर्वार्बुद	८३	Medial condyle of femur
आन्तर जंघार्बुद	८५	Medial condyle of tibia
आभ्यन्तर	११५	Internal, inner
आलम्ब कूट	११६,११९	Occipital condyles
आंडिकी	२९२	Testicular, spermatic
आकुंचन	२६०	Contraction
आकुंचन रक्त भार	२७४	Systolic blood pressure
—आनुगा	५२	Towards
—आन्तरिक	५२	Inter-
आन्तर अर्बुद	५८	Medial epicondyle
आन्तरार्बुदिक तीरणिका	६०	Medial supracondylar ridge
आकृति	१०	Form
आकार	१९	Form

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
उष्णांक	३१८	Calorie
उत्तेजना	१५	Irritant, Stimulant
उत्तेज्य	१५	Irritability
उत्पादन शक्ति	१०	Reproductive-power
उपचर्म	३३०	Epidermis
उत्पादक संस्थान	७४४, २६	Reproductive system
उत्तर क्षुद्रांत	४४५	Jejunum
उड़नशील	२९८	Volatile
उदय	८२०	Appearance, Presentation
उद्भेद	५१	Small projection
उदर	२०	Abdomen
उदरतल	५२	Volar surface
उदरक कला	४१२, ४१३	Peritoneum
उरस्थल	३१	Thorax
उलूखल	५१	Deep cavity, Acetabulum
उलूखल भङ्ग	७०	Acetabular notch
उलूखल खात	७४	Acetabular fossa
उपवृक्क	३३५	Adrenal
उपांड	७५६	Epididymis
उपांड शिर	७५७	Caput epididymis

ऊ

औ

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
औवीं	२९०	Femoral

अं

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
अंकुश	१२९	Hamular process
अंग	२१	Organ
अंगुष्ठ	३५	Thumb
अंगुल्यस्थि	७१	Phalanx
अंड	७५६	Testicle
अंड कोष	७५४	Scrotum
अंडाकार	२४५	Ovoid, oval
अंडधारक रज्जु	७६०	Spermatic cord
अंत्र	४३१	Intestine
अंतः श्वसन	३१४	Inspiration
अंतः प्राचीर	६००	Inner wall
अंतरीय पटल	१३१	Inner coat
अंस		Shoulder
अंस सन्धि	१६३	Scapula
अंस फलक	५६	Shoulder blade
अंश कूट	५६	Acromion process
अंस तुण्ड	५६	Coracoid process
अंस पीठ	५६	Glenoid cavity
अंश प्राचीरक	५६	Spine of scapula
अंसार्बुद	५९	Deltoid tuberosity

क

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
टु	६८८	Pungent
क्ष	३५	Axilla
क्षतल	३५	Armpit axilla
क्षतलमध्य रेखा		Midaxillary line
क्षानुगाधारा	५७	Axillary border
लल	८०३	Morula
रतल	३५	Palm
निष्ठा	३५	Little finger
रभ	३५	Dorsum of hand
ला	४०	Membrane
र्पर	११०,४९	Skull
रोटी	४९	Skull
शेरु	४९	Vertebra
ण्टक	५१	Spinous process
ण्डरा	५८	Tendon
ण्डरा कला	४१७	Aponeurosis
र्बोज	३६२	Carbohydrate
र्बन द्विओषित क ओ २	२३८, १२	Carbondioxide, CO_2
पाल	११०	Cranium
पोल	२८	Cheek
पोलास्थि	१३३	Malar bone
कठिन तालु	२९	Hard palate
कनपुटी	२९	Temple

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
कनीनिका	६४३	Cornea
कण्ठिकास्थि	३०,१३५	Hyoid bone
कटि देश	३३	Lumbar region
कटु	६८८	Pungent
कमर	३३	Loin
कमल	८११	Placenta
कशेरुका	९३	Vertebra
कशेरुकण्टक	९४	Spinous process
कटि कशेरुका	१००	Lumbar vertebra
कशेरु पत्रक	१०२	Lamina of vertebra
कर्त्तनक दंत	४१८	Incisor teeth
कर्त्तनक दंत उलूखल	११९	Alveolus of incisor tooth
कर्णाग्रवर्ती लाला ग्रन्थि	४२४	Parotid gland
कर्ण बहिर्द्वार	११९	Opening of External auditory meatus
कर्णान्तर द्वार	१२५	Internal auditory meatus
कर्णपाली	१२६	Lobule of ear
कर्णाअली	१३४	External acoustic meatus
कर्णकुटी	१००	Vestibule of internal ear
कर्ण कुटी सम्बन्धी कुल्या	१०८	Scala vestibuli

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
कर्ण शष्कुली	१३४	Pinna
कर्ण पटह	१३४	Tympanic membrane
कर्ण कुहर	६९०	Concha
कर्ण दर्शक यंत्र	६९२	Otoscope
कण्ठ कर्णी नाली	१३४	Eustachian tube
कफोणि संधि	१६१	Elbow joint
कण्डरा वितान	१७०	Sprain of tendon
कण	२३९	Corpuscle
कणरञ्जक	२४६	Hæmoglobin
कपाट	२५४	Valve
कर्पर	४९	Skull
कर्बन	९	Carbon
कारटिलेज	१३६,४५, १४२	Cartilage
काष्ठोज	३६२	Cellulose
कारण	१५	Cause
कार्य्य	१५	Function
कार्य्य विभाग	२०	Division of functions
काशेरुकी नाली	१०२	Vertebral canal
कामाद्रि	७७३	Mons Veneris
किरण	६५२	Radiation
किलाट	३६१	Cheese; caseus
किलाटज	३६१	Casein

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
कृकाटिका	३१	Back of neck
कीटाणु	५१२	Bacteria
कृमिका	२०५	Wormlike, lumbrical
कृमिवत् आकुंचन	४६५	Peristaltic movement
कुकुन्दरास्थि	७३	Ischium bone
कुकुन्दरगुदा गुहा		Ischiorectal fossa
कुकुन्दरपिण्ड	७३	Ischial tuberosity
कुकुन्दर भंग	७४	Small sciatic notch
कुक्षि	४०७	Hypogastrium
कुकुन्दर कंटक	७४	Ischial spine
कुमारी	७०३	Unmarried girl
कुमारिच्छद	७०३	Hymen
कूर्पर	३५	Elbow
कूर्परकूट	६२	Olecranon process
कूर्पर खात	६१	Olecranon fossa
कूल्हा	३०	Hip
कूट	५१	Process of bone
कूर्च	२८	Beard
कूर्चास्थियां	८९	Tarsal bones
केशिका	२३२	Capillary
केन्द्र		Centre
केरवाकार पिंड	५४९	Caudate nucleus

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
शिर	६०४	Head of caudate nucleus
पुच्छ	६०४	Tail ,, ,, ,,
त्यागी तार	५९५	Efferent fibres
गामी तार	५९५	Afferent fibres
शयम फोस्फेट	१४०	Calcium phosphate
शयम कार्बोनेट	१४०	Calcium carbonate
शयम क्लोराइड	१४०	Calcium chloride
ा	५२	Angle
र	५२	Air sinus
ल तालु	२२	Soft palate
य	४५५,३४	Pancreas
य स्रोत	४५६	Small ducts of pancreas
य प्रनाली	४५६	Pancreatic duct
य रस	४५६	Pancreatic juice
मोत्तेजक	४५८	Enterokinase
गच्छिद्र	११९	Foramen spinosum
कला	१३४	Cochlea
कला प्रवर्द्धन	६९३	Processus cochleariformis
कलाद्वार	७०१	Fenestra cochleæ
कला स्तम्भ	७०४	Modiolus
कला नली	७०५	Canal of cochlea

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
कोकला फलक	७०५	Lamina spiralis
कोख	७६	Iliac region
कौड़ी प्रदेश	४०६	Epigastrium
कौड़ी प्रतिक्रिया	६२४	Epigastric reflex
कौर्चिक प्रतिक्रिया	६२५	Wrist jerk
कौर्टी	७१३	Corti
कंकाल	४०	Skeleton
कंदली	५९	Capitulum
कंठस्तंभ	६८३	Pillars of fauces
कंठ कर्णी सुरंगा	६९३	Semicanalis tubæ auditivæ

ख

खनिज पदार्थ	२४०	Mineral matter
खटिक यौगिक	२४०	Calcium compound
खटिक कर्बनित	४२१	Calcium carbonate
खटिक प्लविद्	४२१	Calcium fluoride
खटिक स्फुरित	४२१	Calcium phosphate
खटिक संयोजित	३५८	Calcium compound
खाद्य	३९८	Food
खाद्योज	३६९	Vitamine
खाद्योज १	३००	Vitamine A
खाद्योज २	३०१	Vitamine B

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
,, ,, बहिर्मुख	७८५	Os uteri externus
गर्भाशय स्थान भ्रंश	७८४	Displacement of uterus
गर्भाशय स्थान च्युति	७८४	,, ,,
गर्भ विज्ञान	८०४	Embryology
गर्भाधान	८०१	Impregnation
गर्भोदक	८०८	Liquor amnii
गर्भ मेल	८०३	Zygote
गर्भ कला	८०६	Decidua
गर्भस्थिति	७९८	Fertilisation
गट्टा	४२	Malleolus
गवाक्ष	७३	Obturator foramen
गवाक्ष कला	११५	Obturator membrane
गवाक्ष प्रवर्द्धन	७८	Obturator tubercle
गण्ड	५८२	Ganglion
गण्ड शृङ्खला	५८२	Chain of ganglions
गण्डास्थि	१३३,११९	Malar bone
गण्ड प्रवर्द्धन	११९	Zygomatic process
गहन	६९९	Labyrinth
गन्ध	६७९	Smell
गन्धक	९	Sulphur
गन्धित	३०८	Sulphate
गन्धज्ञ सेलें	६७९	Olfactory cells

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
गुली पिण्ड	५५३	Olive
गुलिका पिण्ड	५०५	Olive
गुप्त छिद्र	५०५,१२५	Foramen cæcum
गुरुत्व	२३५	Specific gravity
गुरुत्वाकर्षण	२४२	Gravitation
गुहा	६००	Fossa
गुहाच्छदि	६००	Roof of fossa
गुहा भूमि	६००	Floor of fossa
ग्रैवेयी		Cervical
गोस्तन प्रवर्द्धन	११९	Mastoid process
गोधूम	३६०	Wheat
गोधूमज	३६१	Gluten
गोलाभाकार	५४७	Ellipsoid
गोलार्ध	५४७	Hemisphere
गौल्फी	२८५	Malleolar
गौल्फी प्रतिक्रिया	६३५	Ankle jerk
गृध्रस्या भंग	७७	Sciatic notch

घ

घनाकार	२१	Cubicle
घनास्थि	९०	Cuboid bone
घन सहस्रांशमीटर	२४३	Cubic Millimetre
घर्म	३४१	Sweat

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
घर्म ग्रन्थि	३४०	Sweat gland
घेघा	७३१	Goitre
घ्राण	६६९	Smell
घ्राण केन्द्र	६०५	Olfactory centre
घ्राण पथ	५५६	Olfactory tract
घ्राण पथ अंतः शाखा	५७५	Medial stria
,, मध्य शाखा	५७५	,, Intermediate stria
,, बाह्य शाखा	५७५	,, Lateral stria
घ्राण खंड	५५६,५७४	Olfactory lobe
घ्राण पिण्ड	६८०	Olfactory bulb
घ्राण त्रिकोण	५५१	Olfactory trigone
घ्राण सेल	६७९	Olfactory cell
घ्राणांकुर	६७९	Olfactory hairs
घ्राण प्रदेश	६७९	Regio olfactoria
घ्राण सीता	५८५	Olfactory Sulcus
घिडरी	६६७	Pulley
घुलनशील		Soluble

च

चक्री	९४	Disc
चक्राकार	५१२	Spirrilum
चक्र मूल	९४	Pedicle
चक्रवत् शिरा त्या	६४५,६३९	Canal of Schlemm

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
चक्राङ्ग	५४१	Gyrus, Convolution
चर्ण खात	११५	Pterygoid fossa
चर्णतालुसुरंगा	११९	Pterygopalatine canal
चतुरस्रखंड	४५१	Lobus quadratus
चतुष्पिंड	५५८	Lamina quadrigemina
चतुष्पिंड लघु मस्तिष्क योजक	५४८	Brachium conjunctivum
चरक	१५४	Ancient great Hindu Physician
चल संधि	१५१	Movable joint
चर्वण	४९०	Mastication
चर्म	३३०	Dermis
चर्म प्रवर्द्धन	३३८	Skin papillæ
चर्वणक दंत (पश्चिम)	४१८	Molars
चर्वणक दंत (अग्र)	४१८	Premolars
चणकज	३६१	Legumen
चक्षु	२८,६३९	Eye
चक्षु दर्शक यंत्र	६५१	Ophthalmoscope
चक्षु बिम्ब	६५०	Optic disc
चक्षु नाल	३	Eye piece, Ocular
चपनी	३०	Patella
चतुर्थचन्द्राकार	६८	Lunate bone

छ

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
छदि कूट	१२५	Posterior clinoid process
छत्रिकांकुर	६८५	Fungiform papillæ
छेद	५१	Dissection
छेदन		Dissection
छेदन शास्त्र	३८	Anatomy
छाया चित्र	६३०	Photograph
छाया चित्रण यंत्र	६३०	Photographic camera
छेदक दंत	४२०	Incisor teeth

ज

जघन	७६	Iliac region
जघनास्थि	७२	Iliac bone
जघन चूड़ा	७६	Iliac crest
जघनार्बुद	७७	Tuberosity of iliac crest
जघनीया बृहदंत्र	४७२	Iliac colon
जतूक	१२०	Bat
जतूकास्थि	१२०	Sphenoid bone
जतूका चरण	११९-१२०	Pterygoid process
जतूका कंटक	१२५	Sphenoidal spine

झ

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
झर्झरास्थि	१२०	Ethmoid bone
झिल्ली	४०	Membrane
झिल्लीकृति अंतःस्थकर्ण	१०६	Membranous labyrinth
झिल्लीकृत कोकला	१०८	Membranous cochlea
झिल्लीकृत नालियाँ		Membranous canals

ट

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
टखना		Ankle
टायफॉयड	२४१	Typhoid
टारटारिक अम्ल		Acid tartaric
*टिटेनस	४५०	Tetanus
टेंटुवा	२०६	Trachea
*ट्रिप्सीन	४५०	Trypsin

ड

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
डबल रोटी	४०१	Bread
डमरुक	६१	Trochlea of humerus
डिम्ब	३८९	Ovum
डिम्बज	३६०	Albumen

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
ताल बंधन	६३९	Suspensory ligament of lens
तालाकार केन्द्र	६१०	Lenticular nucleus
तालु	२९	Palate
तालुफलक	१२५	Palatine process
ताल्रूपम पिण्ड	६०३	Lentiform nucleus
ताल्वस्थि	१३२	Palatine bone
ताल्व प्रवर्द्धन		Palatine process
ताप परिमाण	२३५	Temperature
ताप मापक यंत्र	२३५	Thermometre
तिक्त	६८८	Bitter
तितली स्वरूपास्थि	१२०	Sphenoid bone
तिर्यक दृष्टि	६६१	Squint
तीरणिका	५१	Raised line
तुण्ड	५२	Beak-like process
तुण्ड प्रगंडिका बंधन	१६३	Coraco-acromial ligament
तोड़	३६०	Whey

थ

थक्का	२३८	Clot
थाइमस	३५५,७३५	Thymus
थैलेमस	५६९	Thalamus

द

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
दृष्टि नाड़ी परिखा	१२५	Optic groove
दृष्टि नाड़ी योजिका	६५१,५०४	Optic chiasma
दृष्टि पथ	६५४	Optic tract
दृष्टि प्रदेश	५९६	Visual region
दृष्टि किरणें	६१०	Optic radiations
दृढ़ावस्था	७४५	Rigid or hard condition
द्राक्षौज	३९४,३३८	Dextrose; Grape sugar
द्वादशांगुलांत्र	४४५	Duodenum
द्विशिरस्कार्बुद	६३	Bicipital tuberosity
द्विशिरस्का प्रतिक्रिया	६३५	Biceps reflex
द्विध्रुव वातसेल	५६९	Bipolar nerve cell
द्वीप	६१०	Insula
दंत	४१०,२८	Tooth
दंत वेष्ट	४२०	Enamel
दंत कोष्ठ	४२०	Pulp cavity
दंत मूल	४२०	Root of tooth
दंत शिखर	४१९	Crown of tooth
दंत ग्रीवा	४१९	Neck of tooth
दंत केन्द्र	५४८	Dentate nucleus
दंतोद्गम	८४८	Dentition
दंतोद्भेद	८४८	Dentition
दंतोलूखल	१२४	Socket of tooth

ध

धमनियाँ

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी	
अक्षकाधोवर्ती	धमनी	२९२	Subclavian artery	
अक्षकाधरा	"	२८३	Subclavian	"
अधोओष्ठीया	"	२८३	Inferior labial	"
अधोगाबृहद्धमनी	"	२८४	Descending aorta	
अधोगामी महा	"	२८४	"	"
अग्रमांडलिक	"	६५६	Anterior ciliary	"
अंतरीय स्तनीया	"	२८४	Internal mammary	
अंतःशिरोधीया	"	२८३	Internal carotid	"
अंतः उपाङ्गीया	"	२८३	Angular	"
अंतः प्रकोष्ठिका	"	२८५	Ulnar	"
अंसोर्ध्व	"	२८३	Suprascapular	"
अन्त्रोर्ध्व	"	२८५	Superior mesenteric	"
अन्त्राधः	"	२९१	Inferior mesenteric	"
अनामिका	"	२९०	Innominate	"
आंगुलीया	"	२८५	Digital	"
आंडिकी	"	२८५	Spermatic, Testicular	"
आमाशयिकी	"	२८५	Gastric	"
आन्त्रिकी	"	२८५	Intestinal	"
आश्रवी	"	२८७	Lacrimal	"
आमाशय-अन्त्रच्छदा	"	४००	Gastro-epiploic	"
आमाशय-पक्वाशय	"	४००	Gastro-duodenal	"

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी	
पादपृष्ठिका	"	२८५	Dorsalis pedis	"
पादतलिकी	"	२८५	Plantar	"
पादांगुलीया	"	२८५	Foot digital	"
पर्शुकान्तरिका	"	२८५	Intercostal	"
प्रगंडीया	"	२८५	Brachial	"
प्रपाद	"	चित्र १३६	Malleolar	"
पक्काशयिकी	"	२९०	Duodenal	"
पक्काशय-क्लोम अधर	"	४००	Inferior pancreaticoduodenal	"
पाश्चात्य दीर्घमांडलिक	"	६५६	Posterior long ciliary	"
फुप्फुसीया	"	२५४	Pulmonary	"
बहिः शिरोधीया	"	२८३	External carotid	"
बहिः प्रकोष्ठिका	"	२८५,२९२	Radial	"
बहिः श्रोणिगा	"	२९२	External iliac	"
मूल फुप्फुसीया	"	२८३	Main Pulmonary	"
मूल शिरोधोवर्तिनी	"	२८३	Common carotid	"
मूल शिरोधीया	"	२८३,२९२	Common carotid	"
मौखिकी	"	२८२	Facial	"
यौनी	"	२९०	Vaginal	"
याकृती	"	२८५	Hepatic	"
रासनिकी		२८३	Lingual	"
वृक्किका	"	२८५	Renal	"
बृहत्	"	२५६	Aorta	"

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी	
वित्रर्तनी	,,	२८५	Peroneal	,,
शांखिकी	,,	२८३	Temporal	,,
शिश्न पृष्ठ	,,	७५२	Dorsal of penis	,,
शष्कुलीया	,,	२९०	Auricular	,,
श्रोणिगामूलीया	,,	२८५	Common iliac	,,
सरलांत्रोर्ध्व	,,	४७२	Superior haemorr-hoidal	,,
स्वारयंत्रिकी	,,	२९०	Laryngeal	,,
हार्दिकी	,,	२८३	Cardiac	,,
हान्विकी	,,	२९०	Maxillary or man-dibular	,,

न

नख	३४४	Nail
नर वस्तिगह्वर	७४५	Male pelvis
नरजननेन्द्रियां	७४४	Male genital organs
नर श्रोणिभाधार	७५१	Male perineum
नलाकार ग्रन्थि	४३६	Tubular glands
नवजात	११४	Newborn
नवजात शिशु	८४५	Newborn baby
नवसालवर्सान	५२८	Neo-salvarsan
नत्रजन	२३८, ९	Nitrogen
नत्रजनीय	३५८	Nitrogenous

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
		lysed
निम्न महा शिरा	२५४	Inferior vena cava
नील लोहित	६४९	Violet
नेत्र	२८	Eye
नेत्रच्छद	६३९, ६६१	Eyelid
नेत्रच्छदि फलक	६६०, १२२	Tarsal plate
नेत्रच्छद ग्रन्थि	६६३	Meibomian glands
नेत्र गुहा	१२२, ६३९	Orbital fossa
नैल	३६३	Iodine
नौकाकृति	६८	Navicular, scaphoid
नौकार्बुद	६८	Tubercle of navicular
नौकापार्ष्णि बन्धन	१६८	Calcaneonavicular ligament
नाड़ियाँ		**NERVES**
अष्टमी नाड़ी	५०४	Eighth ,,
अस्थ्यांतरिका ,,	६१८	Intercostal ,,
अक्षकोर्ध्व त्वगीया ,,	५८३	Supraclavicular ,,
अक्षकाधरा ,,	६२४	Nerve to subclavius muscle
अंसोर्ध्वगा ,,	५८३, ६२४	Suprascapular ,,
अंसोत्कर्षणी ,,	५८३	N. to Levator scapuli
अंसपृष्ठिका ,,	५८३	Dorsal scapular ,,

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
कटिप्रगंडिका	,,	५८३	N. to Latissimus dorsi
कटि नाड़ी जाल		५८५	Lumbar plexus
गति सम्बन्धी	,,	५७८	Motor nerve
गवाक्षिणी	,,	५८४	Obturator ,,
गृध्रस्या	,,	५८४	Sciatic ,,
गवाक्षिणी अन्तःस्था	,,	५८४	N. to Obturator internus
गवाक्षिणी अधिकता	,,	५८४	Accessory obturator ,,
ग्रैवेयी त्वगीया	,,	५८३	Cutaneus colli
ग्रैवेयी नाड़ी जाल		५८५	Cervical plexus
घ्राण नाड़ियाँ	,,	५७४	Ollactory ,,
चतुर्थी	,,	५७४	Fourth or trochlear ,,
चालक	,,	५७८	Motor ,,
चतुरस्या और्वी	,,	५८४	N to Quadratus femoris
चालक	,,	५७८	Motor
जनन	,,	५८४	Pudendal ,,
जनन और्वी	,,	५८४	Genito femoral ,,
जननेन्द्रिय नाड़ीजाल		५८६	Pudendal plexus
जंघिला नाड़ी		६२१	Tibial ,,
जंघाबहिः पार्श्विका	,,	६२१	Sural ,,
जंघा अंतः त्वगीया	,,	६०२	Saphenous ,,

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
जंघा संयुक्त त्वगीया ,,	६२२	Sural.
जघन-कुक्षिया ,,	५८४	Iliohypogastric ,,
जघन वंक्षणीया ,,	५८४	Ilio inguinal ,,
जघनीया ,,	५८४	N. to Iliacus
जिह्वा कंठ ,,	५७४	Glossopharyngeal,,
जिह्वाधोवर्ती ,,	५७४	Hypoglossal ,,
त्रिक नाड़ी जाल ,,	५८६	Sacral plexus
त्रिकशाखा (पंचमी) नाड़ी	५७४	Trigeminal or fifth,,
तुण्ड प्रगंडिका ,,	६१८	N. to Coracobrachialis
पर्शुकान्तरिका ,,	५८३	Intercostal ,,
दशमी ,,	५७४	Tenth ,,
द्वादशी ,,	५७४	Twelvth ,,
दृष्टि ,,	५७४	Optic ,,
द्विशिरस्का ,,	६१८	N. to Biceps
नवमी ,,	५७४	Ninth ,,
नितंबाधो ,,	६२०	Inferior gluteal ,,
(नैतंबिकी) नितंबोर्ध्वगा ,,	५८४	Superior gluteal ,,
(नैतंबिकी) नितंबाधोगा ,,	५८४	Inferior gluteal
नेत्र चालनी ,,	५७४	Oculo-motor
पर्शुकान्तरिका ,,		Intercostal
पर्शुकान्तरिका प्रगंडिका ,,	५८३	Intercosto-brachial
पाश्चात्य नाड़ी मूल	५७८	Posterior nerve root
पूर्व नाड़ी मूल	५७८	Anterior nerve root

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
पाश्चात्य उपाक्षिका त्वगीया"	६१६	Posterior supraclavicular
प्रगंडान्तर त्वगीय (अंत: त्वगीया प्रगंडिका) ना०	६१८	Brachial cutaneus,,
पार्श्विक उरस्या "	५८३	Lateral thoracic ,,
पिङ्गला नाड़ी	५८८	Sympathetic nerve
प्रगंड अंतः त्वगीया "	५८३	Brachial cutaneus,,
प्रकोष्ठ अन्तः त्वगीया "	५८३	Antibrachial cutaneus ,,
फुफ्फुसीया नाड़ी जाल	५९४	Pulmonary plexus
बहिः अग्र वाक्षयी "	६२४	Lateral anterior thoracic ,,
बहिः ललाटिक "	६२४	Supraorbital ,,
बाह्य (अग्र) उरस्या "	५८३	Lateral anterior thoracic ,,
अन्तः अग्र उरस्या "		Medial anterior thoracic ,,
बहिः प्रकोष्ठिका "	५८३	Radial ,,
बाह्य और्वी त्वगीया "	५८४	Lateral femoral cutaneus ,,
भुजा नाड़ी जाल	५८५	Brachial plexus
महा शष्कुलीया "	५८३	Great auricular ,,
मध्य प्रकोष्ठिका "	५८३,६१६	Median ,,
मिश्रित "	५७९	Mixed ,,

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी	
मौखिकी	,,	५७४	Facial	,,
यौनि	,,		Vaginal	,,
वक्ष उदर मध्यस्था	,,	५८३	Phrenic	,,
विवर्तनी सम्बन्धक	,,	६२१	Peroneal anasto-motic	,,
विवर्तनी (मूलिया)	,,	६२१	Peroneal	,,
वंक्षणी त्वगीया	,,	६२२	Inguinal	,,
बृहत् शष्कुलीया	,,	६२४	Great auricular	,,
षष्ठी	,,	५७४	Sixth	,,
श्रावणी	,,	५७४	Auditory	,,
शिरपृष्ठ लघु त्वगीया	,,	५८३	Lesser occipital	,,
सप्तमी	,,	५७४	Seventh	,,
संधि	,,	६२९	Articular	,,
सांवेदनिक	,,	५७८	Sensory	,,
सौषुम्न	,,	५७८	Spinal	,,
सक्थि नाड़ी जाल		५८६	Lumbar plexus	
हस्त तलीका त्वगीया	,,	५८४	Palmar cutaneus	,,

प

पनीर	३९१	Cheese
पश्चिम चर्वणक दंत	४१२	Molar teeth
पक्वाशयिक द्वार	४३७	Pyloric opening
पक्वाशय	४४५	Duodenum

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
पक्वीकरण	४९१,४९५	Digestion
पक्वाशय-उत्तरक्षुद्रांत्र जोड़	४७०	Duodenojejunal junction
परिवर्तन	४९४	Anabolism
परिवर्तिका	७४६	Phimosis
पर्यौडिका	७५५	Tunica vaginalis
पलक	६६१	Eyelid
पटह नाभि	६९४	Umbo
पटहोत्तंभनी सुरंगा	६९३	Canalfor Tensor tympani
परावर्तन	६९४	Reflection
परावर्तित क्रिया	६२०	Reflex action
पर्शुकाधो रेखा	४०५	Subcostal plane
परिफुप्फुसीया कला	२९०	Pleura
परिवृक्क वसा	३०१	Perirenal fat
पक्ष्मन्	३४२	Eyelash
परिखा	५१	Groove
पर्व	३५	Phalanx
पत्रा	३८	Section, Leaf
पहुँचा	६८	Wrist
पश्चिमोर्ध्व कूट	७७	Posterosuperior spine
पश्चिमाधः कूट	७७	Posteroinferior spine

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
पक्षी श्रेणी	२४४	Aves
पश्चात् विवर	११४	Posterior fontanelle
पश्चिमोर्ध्व कोण	११५	Posterosuperior angle
पश्चिमाधः कोण	११५	Posteroinferior angle
पश्चिमचर्वणक दंतोलूखल	११९	Socket of molar tooth
पश्चिम तालु छिद्र	११९	Posterior palatine foramen
पर्शुका	१०६	Rib
पक्षांतराला	१२५	Superior orbital fissure
पञ्चमी नाडी गंड	१२५	Gasserion ganglion
पटलान्तर	१३१	Diploe
पक्षान्तर	१३१	Superior orbital fissure
पट्टी	३	Slide
परिवर्तन	१५	Change
परिमाण	१९	Size
परिस्रव	८३६	Placenta
प्रवर्द्धन	९६,५१	Process, Projection
प्रगंड	३५	Arm
प्रगंडास्थि	५७	Humerus

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
प्रकोष्ठ	३५	Forearm
प्रकोष्ठास्थि	६३	Forearm bone
प्रदेशिनी	३५	Index finger
प्रतिविष	२३८	Antidote
प्राचीन	१५१	Ancient
प्रसार	२६०	Diastole, Expansion
प्रपाद्	९०	Tarsus
प्रपादास्थि	९०	Tarsal bone
प्रसार रक्त भार	२०४	Diastolic blood pressure
प्रश्वास	३१४	Expiration
प्रणाली सहित ग्रन्थि	३५१	Gland with duct
प्रणाली विहीन ग्रन्थि	३५१	Ductless gland
प्रत्यय	३६०	Suffix
प्रदेश	४०६	Region
प्रहृष्ट शिश्न	७४५	Erect penis
प्रजाता	७८३	A woman who has given birth to children
प्रसव	८२९	Labour
प्रसूता	८३६	Lying-in-woman
प्रकाश शंकु	६९४	Cone of light
प्रतिबिम्ब	६५३	Focus
प्रौढावस्था	२८	Adult age

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
पादोदय	८२८	Foot presentation
पारदर्शक	६५२	Transparent
पादतलीका प्रतिक्रिया	६३४	Plantar reflex
पाठ केन्द्र	६०२	Reading centre
पाश्चात्य शृङ्ग	५६२	Posterior horn
पाश्चात्य कोष्ठ	६३९	Posterior chamber
पार्ष्णि	८९	Heel, Calcaneus
पार्श्व प्रवर्द्धन	९५	Transverse process
पार्श्व शिरा कुल्या परिखा	११५	Groove for lateral sinus
पाली	३०	Patella
पादतल	३८	Sole
पित्त	४५४	Bile
पित्ताशय	४५४	Gall-bladder
पित्त स्रोत	४५५	Hepatic duct
पित्ताशयिक नली	४५५	Cystic duct
पित्त प्रणाली	४५५	Bile duct
*पिट्युट्री	७३८	Pituitary
पिट्युट्रीन	७३८	Pituitrin
पिट्युट्री खात	१३२	Pituitary fossa
पिट्युट्री नाल	५५१	Stalk of pituitary
पिण्ड	५२	Body
पिण्डक	५१	Thick projection; Tuberosity

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
पृष्ठ		Surface
पृष्ठ देश	३१	Back
पृष्ठाच्छादक तंतु	७५	Epithelial tissue
पृष्ठ वंश	७९	Spine, Vertebral Column
पृष्ठवंशविहीन विभाग	२४४	Invertebrata
पृष्ठवंशधारी विभाग	२४४	Vertebrata

पेशियाँ

अक्षकाधरा पेशी	५३	M. Subclavius
अधो अन्वायाम रसनिका "	१८३	M. Longitudinalis linguæ inferior
अंगुष्ठ संकोचनी दीर्घा "	१९८	M. Flexor pollicis longus
अंगुली प्रसारणी "	२००	M. Extensor digitorum communis
अंगुष्ठ बहिर्नायनी दीर्घा "	२०१	M. Abductor pollicis longus
अंगुष्ठ प्रसारणी ह्रस्वा "	२०१	M. Extensor pollicis brevis
अंगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा "	२०२	M. Extensor pollicis longus
अंगुष्ठ बहिर्नायनी ह्रस्वा "	२०२	M. Abductor pollicis brevis

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
अंगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा	,,	२०३	M. Flexor pollicis brevis
अंगुष्ठ अंतरनायनी	,,	२०३	M. Abductor pollicis
अंगुष्ठ संकोचनी दीर्घा	,,	१९८	M. Flexor pollicis longus
अंतरनायनी	,,	१८२	M. Adductor
अंतर वाहिनी	,,	१८२	M. Adductor
अंसाच्छादनी	,,	५३, १९२	M. Deltoideus
अंस कंठिका	,,	१८०	M. Omo-hyoid
अंसोत्कर्षनी	,,	१९१, १८०	M. Levator scapulæ
अंस पर्शुका	,,	१८६	M. Serratus anterior
अंस कशेरुका बृहती	,,	१९०	M. Rhomboideus major
अंस कशेरुका लघ्वी	,,	१९०	M. Rhomboideus minor
अंसाधरा	,,	१९३	M. Subscapularis
अंडाकर्षणी	,,	८२२	M. Gubernaculum testis
उदरच्छदा बहिःस्था	,,	१७८	M. Obliquus externus abdominis
उदरच्छदा मध्यस्था	,,	१७८	M. Obliquus internus abdominis

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
उदरच्छदा अंतःस्था	”	४११	M. Transversus abdominis
उदरच्छदा सरला	”	४११	M. Rectus abdominis
उदरच्छदा सूच्याकारा			M. Pyramidalis
उरश्छादनी बृहती पेशी		१७८	M. Pectoralis major
उरश्छादनी लम्बी	”	१७८	M. Pectoralis minor
उरःकंठिका	”	१८०	M. Sterno-hyoid
उरःकर्णमूलिका	”	१८०	M. Sterno-cleido-mastoid
उरस्था बृहती	”	१९१	M. Pectoralis major
उरस्था लम्बी	”	१९१	M. Pectoralis minor
ऊर्वंतः पार्श्विका	”	२१८	M. Gracilis
ऊर्ध्व नेत्रच्छदोत्थापिका	”	६५७	M. Levator palpabræ superioris
ऊर्ध्वोष्ठगत चतुरस्रा	”	१८०	M. Quadratus labii superioris
ऊर्ध्व अन्वायाम रसनिका	”	६८३	M. Longitudinalis linguæ superior
ऊरु प्रसारणी बहिःस्था	”	२१६	M. Vastus lateralis
ऊरु प्रसारणी मध्यस्था	”	२१७	M. Vastus medialis
ऊरु प्रसारणी अंतःस्था	”	२१७	M. Vastus intermedius
ऊरु अंतरनायिनी दीर्घा	”	२१८	M. Adductor longus

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
कनिष्ठा संकोचनी ह्रस्वा	"	२०४	M. Flexor digiti quinti brevis
करोत्तानिनी	"	२०१	M. Supinator
कृमिका		२०५	Lumbrical
कला कल्पा		२२२	M. Semi-membranosus
कूर्पर संकोचनी	"	१९४	M. Brachialis
कूर्पर प्रसारणी	"	२००	M. Anconeus
कंकतिका	"	२१८	M. Pectineus
कंडरा कल्पा	"	२२२	M. Semitendinosus
कर्णांतरिका	"		M. Stapedius
चर्वणी	"	४२४	M. Masseter
चतुरस्त्राऔर्वी	"	२२१	M. Quadratus femoris
चिबुका	"	१८०	M. Mentalis
चिबुक जिह्वा कंठिका	"	१०३,१८२	M. Genio-hyo-glossus
चुल्लि कंठिका	"	१८०	M. Thyro-hyoid
जघनीया	"	८२	M. Iliacus
जानुका	"	२१७	M. Articularis genu
जानुपृष्ठिका	"	१९२,२२४	M. Popliteus
जिह्वा कंठिका	"	१८२	M. Glossopharyngeus

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
जंघा पुरोगा	,,	२२२	M. Tibialis anterior
जंघा पश्चिमगा	,,	२२५	M. Tibialis posterior
तालुस्रंसनी	,,	४३०	M. Tensor palati
तालुत्थापिका	,,	४३०	M. Levator palati
तुण्ड प्रगंडिका	,,	१९४	M. Coracobrachialis
द्विगुल्फिका	,,	१८०	M. Digastricus
द्विशिरस्का और्वी	,,	२२१	M. Biceps femoris
द्विशिरस्का (प्रागंडिया)	,,	१९४	M. Biceps brachii
निम्नोष्ठगत चतुरस्रा		१८०	M. Quadratus labii inferioris
नेत्रनिमीलनी		२८९	M. Orbicularis oculi
नैतंबिका मध्यस्था		२१९	M. Gluteus medius
नैतंबिका महती		२१९	M. Gluteus maximus
नैतंबिका लघ्वी		२१९	M. Gluteus minimus
प्रसारणी	,,	१८२	M. Extensor
प्रकोष्ठ चतुरस्रा	,,	१९८	M. Quadratus pronatus
प्रगंड बहि प्रकोष्ठिका	,,	१९९	M. Brachioradialis
पादांगुष्ठ प्रसारणी दीर्घा	,,	२२३	M. Extensor hallucis longus

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
पादांगुली प्रसारणी दीर्घा	,,	२२३	M. Extensor digitorum longus
पाद् विवर्तनी लघ्वी	,,	२२३	M. Peroneus tertius
पादांगुष्ठ संकोचनी दीर्घा	,,	२२४	M. Flexor hallucis longus
पादांगुष्ठ संकोचनी ह्रस्वा	,,	२२८	M. Flexor hallucis brevis
पादांगुली सङ्कोचनी दीर्घा	,,	२२४	M. Flexor digitorum longus
पाद् विवर्तनी दीर्घा	,,	२२५	M. Peroneus longus
पाद् विवर्तनी ह्रस्वा	,,	२२५	M. Peroneus brevis
पादांगुली प्रसारणी ह्रस्वा	,,	२२६	M. Extensor digitorum brevis
पादांगुष्ठ बहिर्नायनी	,,	२२६	M. Abductor hallucis
पादांगुली सङ्कोचनी ह्रस्वा	,,	२२६	M. Flexor digitorum brevis
पादचतुरस्रा	,,	२२८	M. Quadratus plantæ
पाद् कृमिका	,,	२२८	M. Lumbricales of foot
पादांगुष्ठ अन्तरनायनी	,,	२२९	M. Adductor hallucis
पादतल अस्थ्यांतरिका	,,	२३०	M. Plantar interossei

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
मणिबन्ध प्रसारणी बहिःस्था ह्रस्वा "	१९९	M. Extensor carpi radialis brevis
मणिबन्ध प्रसारणी अन्तःस्था "	२००	M Extensor carpi ulnaris
मुख संकोचनी "	१८०	M. Orbicularis oris
यमला ऊर्ध्वस्था "	२२०	M. Gemmilus superior
यमला अधस्था "	२२१	M. Gemmilus inferior
योनि संकोचनी "	१८२,७७४	M Sphincter vaginæ
रकाबीया "	९९३	M. Stapedius
लम्ब रसनिका "	९८३	M. Verticalis linguæ
वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी "	१८२	M. Obliquus superior
वक्राधो नेत्र चालनी "	१८२	M. Obliquus inferior
वक्षउदरमध्यस्था "	३३	M. Diaphragma
विरला "	२१८	M. Gracilis
श्रोणी गवाक्षिणी अंतःस्था "	२२०	M Obturator internus
श्रोणीगवाक्षिणी बहिःस्था "	२२१	M. Obturator externus

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
श्रोणी आधार व्यत्यस्ता ”	७७४	M. Transversus perinei
शिफा कंठिका ”	१८०	M. Stylo-hyoid
शिश्न मूलिका ”	७५३	M. Bulbo-cavernosus
शिश्न प्रहर्पिणी ”	७५३	M. Erector penis
शिफा रसनिका ”	६८२	M. Styloglossus
शंखच्छदा ”	१८०	M. Temporalis
सरलोर्ध्व नेत्रचालनी ”	१८२	M. Rectus superior
सरलाधो नेत्रचालनी ”	१८२	M. Rectus inferior
सरलान्तर नेत्रचालनी ”	१८२	M. Rectus internus
सरलवहिर्नेत्रचालनी ”	१८२	M. Rectus externus
सन्मुख कारिणी अंगुष्ठगा ”	२०३	M. Opponens pollicis
सन्मुख कारिणी कनिष्ठागा ”	२०४	M. Opponens digiti quinti
सरला और्वी ”	२१६	M. Rectus femoris
*सारटोरियस ”	२१६	M. Sartorius
सृक्कणी नमनी ”	१८०	M. Triangularis
सृक्कणी उत्कर्षणी ”	१८०	M. Zygomaticus
संकोचनी ”	१८२	M. Flexor
हस्तांगुली संकोचनी मध्य पर्विका ”	१२७	M. Flexor digitorum sublimis
हस्तांगुली संकोचनी अग्रपर्विका’	१९८	M. Flexor digitorum profundus

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
बाह्य	१५	External
बाह्य धारा	६०	External border
बाह्य उदर विवर	४११	External abdominal ring
बाह्य ऊरु अर्बुद	८३	External femoral ring
बाह्य-प्रार्बुद	५८	External epicondyle (humeral)
बाह्य जङ्घार्बुद	८५	External condyle of tibia
बाह्य कर्त्तनक	५१८	Lateral incisor teeth
बाह्य जानु पिण्ड	५५१	External geniculate body
बाह्य कर्ण	३८९	External ear
बाह्य वंक्षण विवर	७५२	External abdomina ring
बाह्य आंडिकी रक्तवाहिनियाँ	७५२	External spermatic vessels
बाह्य जनन रक्तवाहिनियाँ	७५२	External genital blood vessels
बाह्य पटल	६४३	Sclera : External coat
बाह्य कुडिल पिण्ड	६०४	External geniculate body

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
भग नासा मणि	७७५	Glans clitoridis
भगोष्ठ (क्षुद्र)	७७१	Labium minus
,, (बृहत)	,,	Labium majus
भेदक दंत	४१८	Incisor tooth
भेदक दंतोलूखल	११९	Incisor tooth socket
भावप्रकाश	१५२	Treatise on Ayur-veda by Bhava Misra Hindu physician
भ्रू	२८	Eyebrow
भ्रू उदय	८२८	Brow presentation
भ्रूण	८०३	Embryo
भ्रूण सेल	८०३	Zygote
भ्रूणांतरावरण	८०७	Amnion
भ्रूणबाह्यावरण	८०७	Chorion
भ्रूणांडाकार	८२६	Fœtal ovoid
भंग	५१	Notch
भंवरजाल	१८	Labyrinth
भौतिक घटना	२४४	Physical phenomenon

म

मधुमेह रोग	४५६	Diabetes mellitus
मध्यावरणाधः प्रदेश	५६४	Subarachnoid space

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
मध्य सीपाकृति	१२२	Middle turbinate
मध्य खंड	१०५	Mesosternum
मध्य मस्तिष्का नाड़ी परिखा	१२५	Groove for middle meningeal artery
मध्यांश	५४०	Middle part or vermis
मध्य धारा	६०	Medial border
मधुर	६८८	Sweet
मध्य कर्तनक	४१८	Medial incisor
मल	४८८	Fæces
मलेरिया	५०५	Malaria
मलिन	१२	Bad
मलोत्सर्जन	१०	Excretion
मलद्वार	३४	Anus
मलाई	३६०	Skin of milk
मग्न स्फुरित	४२१	Magnesium sulphate
मग्नेशियम फौस्फेट	१४०	Magnesium phosphate
मद्यसार	३६२	Alcohol
मन्या	३०	Nape of neck
मन्यार्बुद	११९	External occipital protruberance
मन्यातीर्गिका	११९	External occipital crest

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
महा धमनी	२५६	Aorta
महा लसीका वाहिनी	२०९	Thoracic duct
महा शिखरक	८३	Trochanter major
मटराकार	६८	Pisiform
मत्स्यश्रेणी	२४४	Piscidia
मण्डूक श्रेणी	२४४	Amphibia
म्यू	५१३	Sign for $\frac{1}{1000}$ mm
मात्रिका		Meninges
मात्रिका धमनी छिद्र	३३५	Foramen spinosum
मासिक स्राव	३४,०९८	Monthly periods, menstruation
माध्यमिक	५५	Medial
मार्जेरीन	३०४	Margarine
माध्यम	६५२	Medium
माण्डलिक नाड़ी	६५६	Ciliary artery
मास्तिष्क स्तंभ	५०४	Crura cerebri
मानस क्षेत्र	६०२	Psychical areas
मांस पेशी	४१	Muscle
मांस तंतु	४४	Muscular tissue
मांसावरक	४१	Fascia
मांसज	३६०	Myosin
मांस संस्थान	२६	Muscular system
मिथ्या पाद	८	Pseudopodium
मिश्रण	४१०	Mixing, mixture

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
मूल तत्व	९	Element
मूलअवयव	३६८	Main ingredients
मेरु दंड	४९	Spinal column
मैथुन	७९९	Copulation
मैदस पिधान	५०३	Myelin sheath
मैदस पिधान विहीन वात सूत्र	५६९	Non-medullated nerve fibre
मोहरा	९३	vertebra
मौलिक	९	Element

य

यकृत्	३४, ४४९	Liver
यकृत् प्रदेश	४०६	Right hypochondriac region
यकृत्-प्लीहा-आमाशय मूल धमनी या यपक धमनी	४००	Cœliac artery
यवौज	३६३	Maltose
यवनिका	५४६	Septum pellucidum
युगलोन्नतोदर	३४६	Bi-convex
युगलनतोदर	३४५	Bi-concave
यूरिया	३३५	Urea
यूरिकाम्ल	३६०	Uric acid
योनि	७८०	Vagina

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
रकाबास्थि	६९०, १३४	Stapes
रकाबाधार	६९०	Base of stapes
रकाब कला	६९३	Membrana obturatoria stapedis
रचना	६	Structure
रचना विभेदन	२०	Differentiation of structure
रचना भेद	२०	.. .. ..
रज	७९४	Menstrual fluid
रजस्वला	७९४	Menstruating female
रजोदर्शन	७९५	First appearance of menstrual discharge
रजोनिवृत्ति	७९६	Menopause
रदनक दन्त	४१८	Canine tooth
रदिन	४२०	Dentine
रश्मि	५४८	Frenulum
रस	६८०	Taste
रसना	६८२	Tongue
रसज्ञ सेल	६८६	Gustatory cell
रण भूमि		Battlefield
रासायनिक	९	Chemical
रासायनिक सङ्गठन	१३९	Chemical composition

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
लघु मस्तिष्क चतुष्पिंड योजक	६०५	Brachium conjunctivum
लघु मस्तिष्क जिह्वा	६०५	Lingula
लघु दात्रिका	५६४,५७८	Falx cerebelli
लघु शिखरक	८३	Lesser trochanter
ललाट	२८	Forehead
लब्ध	८२३	Resultant
लब-डप्प	२६०	Lubb dupp
ललाटास्थि	११०	Frontal bone
ललाट कोटर	११२	Frontal sinus
ललाट ध्रुव	५४१	Frontal pole
ललाटोद्‌य	८२८	Forehead presentation
लवण	६८८	Saltish
लसीका	३२,१०६	Lymph
लसीकाणु	२४०	Lymphocyte
लसीका ग्रन्थि	३०,२८०	Lymph gland
लसीका कोष	२००	Receptaculum chyli
लसीका वाहिनी	२०६	Lymphatic
लाला	४२६	Saliva
लाला ग्रन्थि	३५५	Salivary gland
लालायिन	४२०	Ptyalin
लाङ्गूलीया खंड	४०२	Caudate lobe

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
वक्रास्थि	९८	Unciform
वर्तुलक	६८	Pisiform
वर्तन	६५२	Refraction
वर्तनीय संख्या	६५३	Refractive index
वक्षःस्थल	२०	Thorax
वक्षोऽस्थि	३१, १०४	Sternum
वात तंतु	४४	Nervous tissue
वात गंड		Nerve ganglion
वात रज्जु	४२, ५०१	Nerve
वात सूत्र	४०	Nerve fibre
वात संस्थान	५३६	Nervous system
वानस्पतिक	५०८	Vegetable
वायव्य	३६२	Gas
वायुप्रणाली	३०९	Bronchus
वायु प्रणालिका	३०९	Bronchiole
वायु मन्दिर	३१०	Infundibulum
वायु कोष्ठ	३११	Air cell
वास्तविक	८	Real; actual
बिन्दुक (बिन्दुक)	४६३	Dot
विद्युत	५९५	Electricity
बिजली (बिजली)	५९५	Electricity
विषनाशक	२३८	Antitoxic; poison destroyer
विषनाशक रक्तरस	५३५	Antitoxic serum

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
शंक्वाकार पिण्ड	६६४	Caruncula lacrimalis
शंक्वाकार कारटिलेज	७२४	Corniculate cartilage

शिराएं   Veins

*अज़ाइगोस		५९४	Azygos vein
अधोगा महा शिरा		२९१	Vena cava inferior
ऊर्ध्वगा महा शिरा		२९२	Vena cava superior
और्वी	,,	२९२	Femoral vein
उपरितन शिरोधीया	,,	२९२	External jugular ,,
अंतः कूर्परिका	,,	२९२	Medial cubital ,,
ऊर्वंतः पार्श्विका	,,	२९२	Saphena magna ,,
अंतः श्रोणिगा	,,	२९२	Hypogastric ,,
अंतः प्रकोष्ठिका	,,	२९२	Basilic ,,
गंभीर जंघिल	,,	२९२	Anterior tibial,, ,,
गम्भीर कूर्परिका	,,	२९२	Profunda ,,
गम्भीर शिरोधीया	,,	२९२	Internal jugular ,,
गम्भीर मास्तिष्की	,,	२९२	Great cerebral ,,
जंघा बहि पार्श्विका	,,	२९२	Saphena parva ,,
जानु पृष्ठिका	,,	२९२	Popliteal ,,
पटलांतरिक	,,	१३१	Diploic ,,
पादांगुलीया	,,	२९२	Digital of foot

हिन्दी		पृष्ठ	अंग्रेज़ी
प्लीहा क्लोम	"	२९२	Lienal ..
प्रगंडीया	"		Brachial .
प्लैहो	"	२९२	Splenic ..
बहि कूर्परिका	"	२९२	Lateral cubital ..
मध्य प्रकोष्ठिका	"	२९२	Medial antibra-chial ..
मध्य हार्दिकी	"	२५०	Middle cardiac ..
महा हार्दिकी	"	२५०	Coronary sinus
तिर्यक शिरा	"	२५०	Oblique vein of Marshall ..
याकृती	"	२९२	Hepatic ..
वृक्किका	"	२९२	Renal ..
संयुक्ता (मूल) श्रोणिगा	"	२९६	Common iliac ..
बाह्य श्रोणिगा	"	२९२	External iliac ..
आंडिकी	"	२९२	Internal spermatic ..
डिम्बिकी	"	२९२	Ovarian ..
अंत्रोर्ध्व	"	२९२	Superior mesenteric ..
अंत्राधो	"	२९२	Inferior mesenteric
कक्षीया	"	२९२	Axillary ..
अक्षकाधोवर्ती	"	२९२	Subclavian ..
अक्षकाधरा	"	२९२	Subclavian ..
अंतः श्रोधीया	"	२९२	Internal jugular ..
संयुक्ता शिरा	"	४०६	Portal ..

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
सन्धि	१६४	Joint
सन्धि बंध	१६४	Ligament
सन्धि कोष	१६४	Capsule of joint
सन्धि प्रवर्द्धन	९५	Articular process
सन्ध्यर्बुद	११९	Eminentia articulata
सन्धि भंग	१००	Dislocation
सन्धिग्धार्थता	७९४	Ambiguity
सहस्रांश मीटर	२४३	Millimeter
सरला औवीं की कंडरा	१६५	Tendon of Rectus femoris
स्कन्ध	३५	Shoulder
स्कन्धास्थि	५६	Scapula
स्कन्ध सन्धि (अंस सन्धि)	१६३	Shoulder joint
स्कटोल	४८९	Skatol
स्तर	९३	Layer
स्तन	७९१	Mamma
स्तनवृन्त	३१	Nipple
स्तन मण्डल	७९२	Areola
स्तनधारी श्रेणी	२४४	Mammalia
स्तंभाकार	२१	Columnar
स्थालक	९४	Facet
स्थूल रचना	३८	Coarse structure
स्थिति	८२८	Position

ह

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
हनु		Jaw
हनुकूट	१२४	Ramus of mandible
हनुमुण्ड	१२४	Condyle of mandible
हनुकुन्त	१२४	Coronoid process of mandible
हनु मंडल	१२४	Body of mandible
हनुस्थंभ	५०६	Tetanus
हनुसन्धि स्थाऊक	११०,११९	Glenoid fossa
हरिन	३६६	Chlorine
हस्ततल	३५	Palm
हन्वधोवर्ती लाला ग्रन्थि	४२३	Submaxillary salivary gland
हृदय	२५१	Heart
हृदय कोष	२५२	Pericardium
हृदावरण	२५२	Pericardium
हृदय केन्द्र	६००	Heart centre
हँसली	३१	Collar bone
हंसग्रीवाकार सेल	७११	Outer rod of Corti
हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	४३६	Acid hydrochloric
हाइपोफिसिस	६२८	Hypopi ysis cerebri
हाइपोफिसिस खात	६७२	Pituitary fossa
* हिस्टीरिया		Hysteria

क्ष

त्र

हिन्दी	पृष्ठ	अंग्रेज़ी
त्रिपार्श्विक	६३	Cuneiform
त्रिकोण कारटिलेज	१२४	Triangular cartilage
त्रिशिरस्का प्रतिक्रिया	६३५	Triceps jerk

ज्ञ

ज्ञानेन्द्रिय	२६	Sense organ
ज्ञानपथ	६१५	Sensory path
ज्ञान वाही नाड़ी		Sensory nerve

* अंग्रेज़ी भाषा

ग्रन्थावली

इस पुस्तक के लिखने में मुझे निम्नलिखित ग्रन्थों से बहुत सहायता मिली है—

Piersol's Human Anatomy
Gray's Anatomy
Cunningham's Text book of Anatomy
" " Practical Anatomy
Morris's Human Anatomy
Sobotta's Atlas der deskriptiven Anatomie des menschen
Schultze Lubosch's topographischen Anatomie
Rauber-Kopsch's Lehrbuch der Anatomie
Toldt-Hochstetter's Anatomischer atlas
Howell's Text book of Physiology
Halliburton's Text book of Physiology
Short and Ham's Synopsis of Physiology
Lewis's Anatomy and Physiology for nurses
Warwick and Tunstall's First Aid
Orrin's First Aid Atlas of Arteries
Jellet's Manual of Midwifery
Adami's General Pathology
Swanzy's Diseases of Eye
Politzer's Diseases of Ear
Holt's Diseases of Children
Lyon and Waddel's Jurisprudence
Notter and Firth's Text book of Hygiene
Ghosh and Das's Hygiene
Hutchison's Dietetics
McCay's Protein element in nutrition
Friedenwald and Ruhrah's Diet in Health and Disease
Macleanos Diagnosis and Treatment of Glycosuria and Diabetes
Leonard Williams' Obesity
Hæckel's Evolution of Man
Pettigrew's Design in Nature
Hoernle's Studies in the Medicine of Ancient India-Osteology
Indian Journal of Medical Research Vol. 6, No. 1
Manson's Tropical Diseases
Witkowski's La Generation Humaine

श्री प्रसादीलाल झा कृत प्रसूतिशास्त्र प्रथमभाग

श्री गणनाथसेन कृत प्रत्यक्षशारीरम् प्रथमो भागः

भावप्रकाश

चरक संहिता

सुश्रुत संहिता

त्रिलोकीनाथ वर्मा

पुस्तक मिलने के कुछ पते—

लखनऊ

१—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय,
अमीनाबाद पार्क।

प्रयाग

१—मैनेजर, साहित्य-भवन।
२—मंत्री, विज्ञान-परिषत्।

कलकत्ता

१—Messrs Butterworth & Co.,
Post Box 251, Calcutta.

२—मैनेजर, हिन्दी पुस्तक एजंसी,
१२३ हैरिसन रोड।

लाहोर

१—मेहरचन्द लक्ष्मणदास, संस्कृत पुस्तकालय,
सैदमिट्ठा बाज़ार।

२—मोतीलाल बनारसीदास, संस्कृत बुकडिपो।

Printed by K. P. Dar, at The Allahabad Law Journal Press, Allahabad
Published by Dr. T. N. Varma, Sitapur